पूज्याश्री : संक्षिप्त जीवन रेखा

नाम : संयम-वय-तप-स्थविरा पूज्याश्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब

जन्म दिन : कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा विक्रम संवत् १९६६, 13 नवम्बर सन् 1910

जन्म स्थान : बरमंडल, जिला-धार (म.प्र.)

मातृश्री : श्रीमती वजीबाई

पिताश्री : श्रेष्ठी जड़ावचंदजी जैन

संसारी नाम : लीलावती

दीक्षा तिथि : वैशाख शुक्ला दशमी विक्रम संवत् २००८, ई.सन् 1951

दीक्षास्थल : श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ (जि. धार, म.प्र.)

दीक्षा गुरुवर्या : प.पू. प्रशांतमूर्ति गुरुणीजी श्रीहेतश्रीजी महाराज साहब एवं प.पूज्या शासनदीपिका प्रवर्तिनी श्रीमुक्तिश्रीजी म.सा.

दीक्षा नाम : साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म.सा.

वर्तमान आज्ञानुवर्तिनी : प.पू. राष्ट्रसंत, साहित्यमनीषी आचार्यदेवेश श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब

शिष्या प्रशिष्याएँ : साध्वी डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्री, साध्वी डॉ. श्री सुदर्शनाश्री, श्री आत्मदर्शनाश्री, श्री सम्यग्दर्शनाश्री, श्री चारुदर्शनाश्री आदि ।

कुल चारित्र पर्याय : 50 वर्ष

ग्रन्थनायिका

संयम-वय:तप:स्थविरा

मालव-सौरभ साध्वीप्रवरा श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) महाराज साहब
के देदीप्यमान कांतियुक्त दीक्षा जीवनी के अर्धशताब्दी एवं
जन्म-शताब्दी में दशाब्दी के उपलक्ष्य में

साध्वीरत्ना श्री महाप्रभा स्मृति-ग्रन्थ

(सिखा गई..... दिखा गई.....)

दिव्याशीष प्रदाता :
परम पूज्य परम कृपालु विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब

आशीर्वाद प्रदाता :
राष्ट्रसंत वर्तमानाचार्यदेवेश श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब

लेखिका - संपादिका :
साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री (एम.ए., पी-एच.डी.)
साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री (एम.ए., पी-एच.डी.)

सुकृत सहयोगी
श्री सौधर्मबृहत्तपोगच्छीय श्रीजैन श्वेताम्बर सकल श्रीसंघ धाणसा,
जिला-जालोर (राजस्थान)

: प्राप्तिस्थान :
(१) श्री राजेन्द्रसूरि जैन कीर्तिमंदिर तीर्थ ट्रस्ट
सेवर रोड़, पो. भरतपुर (राज.)

(२) श्री राज-धन-जयन्तसेन आराधना भवन
श्री राजेन्द्रसूरि गुरुमंदिर, ओसवाली मोहल्ला, तेरापंथ भवन के पास,
पो. मदनगंज-किशनगढ़, (राज.), जिला-अजमेर.

प्रथम आवृत्ति
वीर सम्वत् 2530
राजेन्द्र सम्वत् 98
विक्रम सम्वत् 2061
ईस्वी सन् 2004

मूल्य : पठन-पाठन, आचरण, अनुमोदन-अनुकरण एवं प्रेरणा

प्रतियाँ : 2000

अक्षरांकन
अरिहंत ग्राफीक्स
खाडिया चार रस्ता, अहमदाबाद.
फोन : 079-55430980

मुद्रण
नवप्रभात प्रिन्टींग प्रैस
घीकांटा रोड़, अहमदाबाद-380 001.
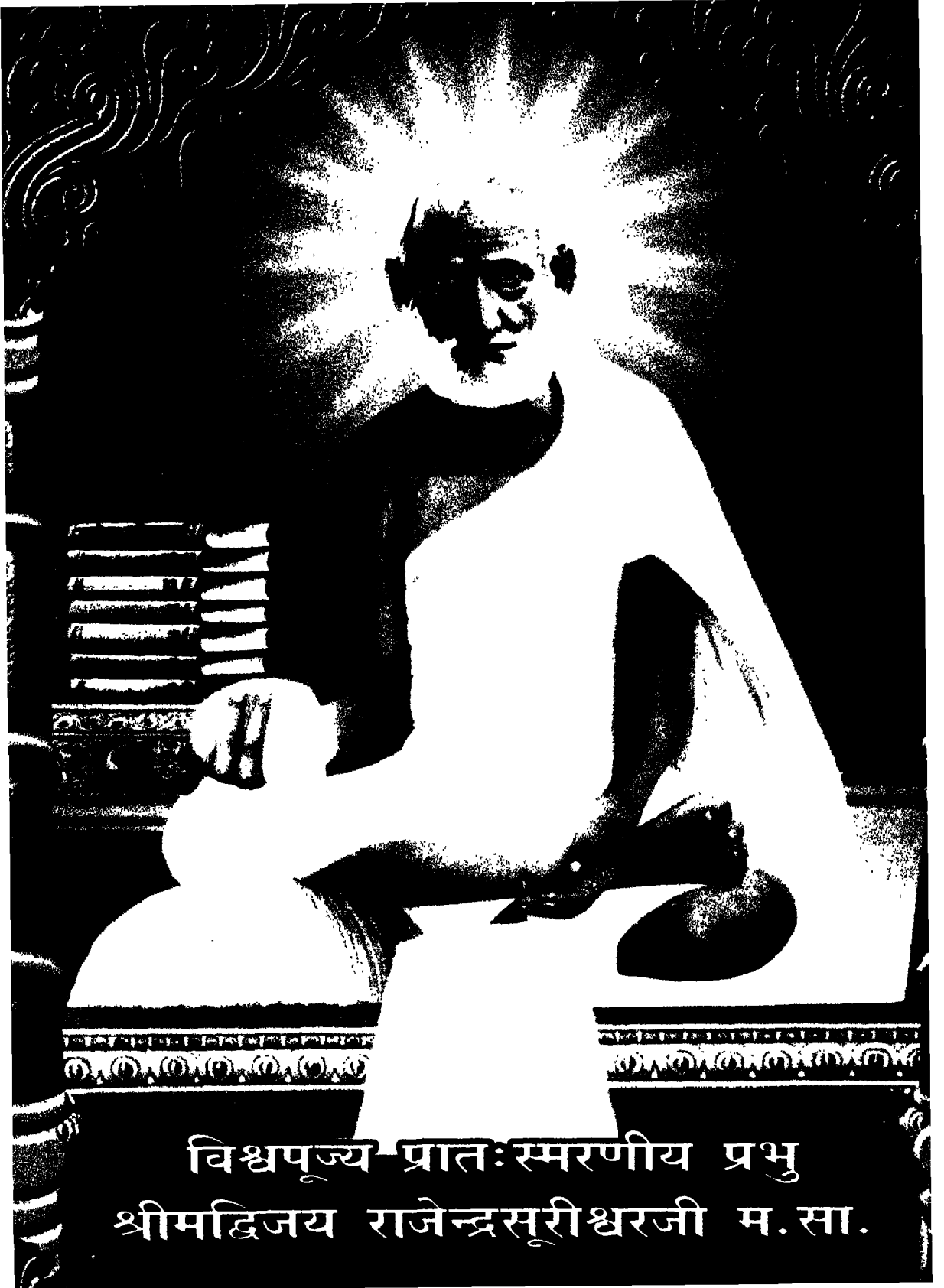
विश्वपूज्य प्रातःस्मरणीय प्रभु
श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

प. पूज्य आचार्य भगवन्तश्री
श्रीमद् विजय
धनचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.
श्रीमद् विजय
भूपेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.
श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा
श्रीमद् विजय
यतीन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.
श्रीमद् विजय
विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.
श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म.सा.

पू. राष्ट्रसन्त आचार्य श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म.सा.

प.पूज्या श्रीगुरुवर्या द्वय

प.पू. प्रशांतमूर्ति गुरुणीजी
श्री रतनश्रीजी म.सा.

प.पूज्या गुरुवर्याश्री मुक्तिश्रीजी म.सा.

राजगढ़ निवासी श्री मोहनखेड़ातीर्थ निर्माता संघवी सेठ लूणाजी के वंश परम्परा के ये पंचरत्न

संघवी सेठ लूणाजी की कुलदीपिका पौत्रवधू एवं पौत्र शाह चंपालालजी जमींदार की सम्मांग धर्मपत्नी, गजमलजी जमींदार की मातुश्री साथ ही आपकी चारों पुत्रियाँ (गजमलजी की सुपुत्रियाँ)

डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी

डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी

प.पू. साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा.
जन्म वि. सं. १९६६, वरमण्डल (म.प्र.)
दीक्षा वि.सं. २००८ (मोहनखेड़ा, राजगढ़)
स्वर्गवास वि.सं. २०५६ धाणसानगर (राज.)

श्री आत्मदर्शनाश्रीजी

श्री सम्यग्दर्शनाश्रीजी

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिगुरुदेवश्री के परम गुरुभक्त
मोहनखेड़ातीर्थ निर्माता राजगढ़ निवासी संघवी सेठ लूणाजी पौरवाल
(पू.दादीजी म.सा.के संसारपक्षीय ददिया श्वसूर)

कहाँ क्या ?

प्रथम खंड : श्रद्धार्चना

गद्य विभाग

पद्य विभाग

द्वितीय खंड : अभिनन्दनीय व्यक्तित्व

-लेखिका : साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

तृतीय खंड : व्यक्तित्व के प्रतिबिम्ब

चतुर्थ खंड : विज्ञता

पंचम खंड : विविधा

धन्य है वरमण्डल (मालव) की माटी,
जहाँ महाप्रभाश्रीजी ने जन्म लिया ।
धन्य है इनके माता-पिता को,
जिन्होंने जिनशासन को ऐसा रत्न दिया ।

हे माँ ! हमें ऐसी शक्ति देना कि हम अपने जीवन में सही दिशा पर चल सकें ।

अपुव्वणाण गहणे, सुयभत्ती पवयणे पहावणया ।
एएहिं करणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥

नए नए ज्ञान का अभ्यास करने से आत्मा बीसवें पद तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन करती है। इसलिए ज्ञानोपासना में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

चित्र-सूची

कोई भी कार्य असम्भव नहीं है । 'असम्भव' शब्द कायर मनुष्यों के शब्द-कोष में मिलता है ।

श्रद्धा सिक्त समर्पण

जिनकी पावन प्रेरणादायिनी सुमधुर अमृतमय वाणी ने,
हमें संयम के पुनीत पथ की ओर अग्रसर किया।
जिनके जीवन ने सम्पूर्ण विश्व का असीम स्नेह हमें प्रदान किया।
जिनकी सुखद छाया ने हमारे भीतर की सुप्त चेतना को जगाया।
जिनकी अन्तराशीष और वात्सल्य से
छलछलाती ममता हमारे जीवन का संबल रही।
जिनकी हितशिक्षाएँ हमारे जीवन की थाती रहीं।
जिनकी कृपादृष्टि की वृष्टि से सिंचित होकर
हमारे हृदय में तप-त्याग स्वाध्याय के बीज अंकुरित हुए,
विकसित हुए-फले-फूले अभिवृद्धि को प्राप्त हुए।
उन्हीं ममतामयी जीवननिर्मात्री, संस्कारदात्री
समता, सरलता व संयम की साक्षात् प्रतिमूर्ति परम श्रद्धेया
सद्गुरुवर्याश्री महाप्रभाश्रीजी (पूज्या दादीजी) महाराज साहब
की पावन स्मृति स्वरूप उन्हीं के श्रीचरणों में,
सश्रद्धा, सविनय, सभक्ति सर्वात्मना समर्पित....

विनयावनता साध्वीयुगल
प्रिय-सुदर्शना

आशीर्वचन !

जीवन अनमोल अवसर है।

" अत्तहियं खु दुहेण लब्भई " आत्म हित का अवसर मुश्किल से प्राप्त होता है।

चेतन तत्त्व का जिज्ञासु चिंतनशील रहता है, यह दृष्टि उस की सृष्टि को स्वाभिमुख उपस्थित करती है।

स्वयं की प्रत्येक श्वास स्वयं के आत्म विश्वास को दृढ़तर करती रहती है। जहाँ स्वयं का दृष्टि बिन्दु निर्मल बनता है वहाँ विकास का राजमार्ग अधिगत हो जाता है। यही स्थिति प्रस्तुत ग्रन्थ नायिका की रही है। गृहस्थाश्रम से विरक्त हो कर संयम के राजमार्ग में आरूढ हुई, इतना हि नहीं संयम पथ पर गतिशील उस महान आत्माने स्वपर हितार्थ प्रबल पुरुषार्थ भी किया और अपनी चार-चार पौत्रियों को कदम बढ़ाने हेतु प्रेरित किया, यही उन की संयम के प्रति पूर्ण आस्था एवं विश्वास का प्रतीक है।

गुरु के प्रति भी उन का समर्पण अनुकरणीय था।

अपनी मां थी वह, उस के हृदय में वात्सल्य था, इसी लिये तो उस की स्मृति सदा हि बनी रहना स्वाभाविक है।

एक मां की भांति मेरी भी सदा चिन्ता की उन्होंने और मेरे लिये हर तरह से प्रेरिका बन कर रही है वह पुण्यात्मा।

गुरु मैया की उज्ज्वल जीवन कथा सभी के लिये प्रेरणा प्रदायिनी प्रतीत हो रही है।

प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ उन की स्मृतियों को लेकर प्रकाशित किया जा रहा है वह सर्वथा समुचित है। इस ग्रन्थ के संपादन एवं लेखन-आलेखन में उन की ही सुशिष्याएं साध्वीजी डॉ. प्रियदर्शना श्रीजी एवं डॉ. साध्वीजी सुदर्शना श्री जी का अत्यधिक श्रम सार्थक हुआ है एवं उन के दृढ संकल्पने ग्रन्थ को मूर्तरूप में संजोया है। मेरी ओर से प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन की पावनवेला में अनेकशः हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ सभी लाभान्वित हों यही शुभेच्छा।

श्री राज राजेन्द्रसूरि जैन ज्ञान-
मन्दिर, थराद (उ.गु.)
फाल्गुन शु. पूर्णिमा
वि.सं. २०६०

संपादकीय
(संपादन में अनुभूत स्पन्दन)

महान् विभूतियों के साधनामय पद-चिह्न साधकों के पथ- प्रदीप बनकर पथ-प्रशस्त करते रहते हैं । उनकी पुनीत पावन ज्योति उस पथ पर बढ़नेवाले हर पथिक के लिए एक नई चेतना, एक नई ऊर्जा, एक नया संदेश, एक नई प्रेरणा और संबल बनकर सतत गतिशील रहने का साहस प्रदान करती है ।

परम श्रद्धेया परम पूज्या दृढ़ मनोबल की स्वामिनी श्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब का जीवन ऐसी ही उदात्त और सबल प्रेरणा देता है जिससे जीवन को निर्भय, निर्मल-निश्छल, एवं दृढ़ता की जीवन्त प्रतिमा बनाया जा सकता है ।

पूज्याश्री के स्वर्गगमन के समय बड़ी संख्या में बाहर से पधारे हुए श्रद्धालुओं की उपस्थिति तथा बाद में अनेक पत्र, श्रद्धांजलियाँ, शोक-संदेश आदि प्राप्त हुए । यह सब देखकर हमारे मन में एक विचार उत्पन्न हुआ कि पूज्या दादीजी महाराज साहब के प्रति समाज-संघ की जो अपूर्व श्रद्धा-निष्ठा है, उसका मूलाधार है उनका निर्मल व्यक्तित्व । उनका बहुमुखी चुम्बकीय व्यक्तित्व स्व उपकारक न होकर लोकोपकारक था । उनकी वृत्ति मूलतः लोकैषणा से विमुख थी । वे न यश चाहती थीं, न प्रसिद्धि और न लोक-वंदना । इस कारण से भी उन्हें अधिकाधिक लोक-श्रद्धा मिली ।

पूज्याश्री के व्यक्तित्व से सम्बन्धित आलेख / श्रद्धांजलियाँ-काव्यांजलियाँ आदि सामग्री हमारे पास आयीं । इसलिए हम पूज्याश्री के व्यक्तित्व का आकलन करती-करती इस निर्णय पर पहुँचीं कि उपलब्ध सामग्री को व्यवस्थित करके क्यों न इसे एक स्मारिका का रूप दिया जाय ? और परमोपकारिणी जीवननिर्मात्री महिमामयी माँ के व्यक्तित्व को प्रकाश में लाया जाय ? तभी सम्माननीय डॉ. जवाहरचन्द्रजी पटनी दर्शनार्थ पधारे । चर्चा के दौरान उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि आपको 'स्मारिका' नहीं, पर पूज्या दादीमाँ का 'स्मृति-ग्रन्थ' सुंदर अति सुंदर ढंग से तैयार करना है । चूँकि पू. दादी मातेश्वरी का आप

दोनों पर असीम उपकार है । वे स्मृति-ग्रंथ तैयार करने हेतु हमें बार-बार प्रेरित करते रहे । इसके साथ ही श्री राजमलजी जमींदार भी इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु सतत स्मरण दिलाते रहें, किन्तु पूज्याश्री के अमृततुल्य वात्सल्य एवं अपनत्वभरा साया छीन जाने से हमारी मनःस्थिति इस कार्य हेतु अनुकूल नहीं बन पा रही थी । प्रेरणा और प्रोत्साहन के बावजूद भी इस विषय में कुछ भी कार्य करने का मानस ही नहीं बन पाया ।

ईस्वी सन् 2003 के मदनगंज-किशनगढ़ वर्षावास के पश्चात् स्मृति-ग्रंथ का कार्य पूरा करने का मानस बनाया और दृढ़ संकल्प किया, पर इसके संपादन-कार्य को हाथ में लेते समय बार-बार मन-मस्तिष्क में ये विचार उभरते रहे कि अति अल्पावधि में यह सब कुछ कैसे संभव हो सकेगा? किन्तु दृढ़ संकल्प में बल था और यही कारण है कि हमारी आस्था के केन्द्र अचिन्त्य महाप्रभावंत श्रीफलवृद्धि पार्श्वनाथ परमात्मा एवं परमाराध्यपाद कृपावतार विश्वपूज्य दादागुरुदेवश्री के नाम स्मरण के साथ कार्य प्रारंभ किया ।

प्रतिपल वंदनीया पूज्याश्री के विषय में हम क्या लिखें ? क्या भूलें और क्या छोड़ें ? कुछ समझ में नहीं आ रहा था ! असीम को ससीम शब्दों में बाँध पाना सर्वथा असंभव है । पूज्याश्री के प्रति मन का कण-कण असीम आस्था से ओतप्रोत था, है और जन्म-जन्मान्तरों तक रहेगा ।

पूज्याश्री के जीवन का एक-एक पल प्रेरणा का अमृत-कलश था । आपश्री के जीवन का एक-एक प्रेरक प्रसंग प्रेरणा का महास्रोत था । उनका जीवन हम सभी के लिए एक उत्कृष्ट आलंबन था । इसलिए पूज्याश्री मात्र स्मृति का विषय नहीं, लेकिन आलंबन और प्रेरणा का विषय थीं । आपश्री की स्मृतियाँ मात्र स्मारक नहीं, अपितु प्रेरक हैं । एतदर्थ यह ग्रन्थ 'स्मृति-ग्रंथ' नहीं, अपितु बहुत बड़ा प्रेरणा-ग्रंथ है । इस ग्रंथ के पृष्ठ-पृष्ठ से सुगन्धित जीवन-पुष्प का दिव्य-सौरभ महक रहा है ।

पूज्याश्री उज्ज्वल चारित्र एवं अध्यात्म-पथ की एक ऐसी महान् साधिका रही हैं, जिनके दिव्य जीवन का महाकाव्य अनेकों धर्म श्रद्धालु भक्तों का

वास्तव में उनका जीवन एक लाइट हाउस (प्रकाश-स्तंभ) की तरह था । उनका उत्कृष्ट तप-त्याग, विशुद्ध आचार, परिष्कृत विचार (सुलझे हुए विचार), सूझ-बूझ की धनी, सरल स्वभाव, निष्कपट-निश्छल व्यवहार, सुमधुर वाणी,संयम में जागरूकता (प्रत्येक क्रिया में सजगता), मौन, ज्ञान- ध्यान-स्वाध्याय एवं अध्यापन के प्रति विशेष अनुराग, बालिकाओं व बहनों में सुसंस्कारों का बीजारोपण एवं नैतिक-आध्यात्मिक चेतना जागृत करने हेतु व्यापक स्तर पर धार्मिक कन्या-शिविरों का विशिष्ट योगदान अविस्मरणीय है ।

यथार्थतः इन दिव्य सद्गुण-सुमनों से आपश्री का जीवन-उद्यान सुवासित था, जिसका सौरभ आज भी चारों दिशाओं में सुवासित हो महक रहा है ।

पूज्या दादीमाँ हमें सदा-सदा के लिए निराधार-निराश्रित रोती-बिलखती छोड़कर अनन्त में विलीन हो गयीं । हमारी जिन्दगी का यह पहला हृदय विदारक दृश्य था कि हम स्वयं को संभाल नहीं पायीं । जन्मदात्री माँ गई, तब भी दिल इतना नहीं रोया; जितना 'सर्वस्वदात्री' दादीमाँ की चिर विदाई ने हमें अधीर बना दिया ।

हमारा प्रबल पुण्योदय कहें, जनम जनम की सुकृत साधना कहें ? बाल्यकाल से ही हमें आपका पावन सान्निध्य व मार्गदर्शन मिला है । हमें गर्व है कि हम उनकी शिष्याएँ हैं, तो संसारपक्षीय पौत्रियाँ भी हैं । हमें दुगुना वात्सल्य प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ है । उन्हें पाकर हम अपने आपको अत्यन्त गौरवशालिनी मानती हैं । इससे ज्यादा हमारा क्या सौभाग्य हो सकता है ? चार वर्ष पूरे हो गये । इस समय में एक पल भी ऐसा नहीं गुजरा होगा, जिनमें पूज्या दादीमाँ की अतीत की स्मृतियों की सुगंध न बसी हो ।

आपके जीवन को जिस पहलू से पढ़ें, देखें या समझें, केवल गुणों की पंक्तियाँ ही दृष्टिगत होती हैं, उनके जीवन की एक नहीं, अनेक घटनाएँ हैं जो कभी दिल को दहला देती है तो कभी बहला देती हैं । हमारे मस्तिष्क के शब्द-कोश में सारे शब्द असमर्थ, शक्तिहीन नजर आ रहे हैं, एक भी शब्द

ऐसा नहीं कि हम अपनी जीवन निर्मात्री, प्रशस्त पथ-प्रदात्री गुरुमैया के प्रति श्रद्धा व्यक्त कर सकें।

हमारी स्थिति तुलसी की इन पंक्तियों की तरह हो रही है, "नयन बिनु बैन, बैन बिनु वाणी।" उनके पार्थिव देह के विलीन हो जाने से यह महसूस हुआ कि अब हमारा सर्वस्व खो चुका है। वे दादी थीं, ममतामयी माँ थीं, जीवननिर्मात्री थीं, गुरुणीमैया थीं; हमारी सबकुछ थीं। उनकी अत्यन्त कृपा व स्नेह-वात्सल्य विगत सैंतीस वर्षों से अनवरत हम पर रहा है। हमारे अन्तर्हृदय के कण-कण में भी उनके प्रति गहरी आस्था-श्रद्धा व लगाव था, है और रहेगा।

यद्यपि हम अपनी ज्ञान-ध्यान-स्वाध्यायादि प्रवृत्तियों के कारण उनकी अधिक सेवा नहीं कर पायीं और वे करवाती भी तो नहीं थीं? फिर भी हमें इतना तो आत्मतोष जरूर है कि वे हम से पूर्णरूप से संतुष्ट थीं। प्रसन्न थीं। उस शीतल-सुखद छाँव के तले हमें क्या नहीं मिला? उस वत्सल छाया-स्नेह ने हमें सब कुछ दिया! अगर नहीं दे पायीं तो लम्बा आश्रय!

काश! यदि कहीं वैसी ही मधुर, शीतल-सुखद छाँव हमें और दीर्घ अवधि तक मिलती! आज उसकी अनुपस्थिति से प्रतिपल हृदय में एक टीस उठती है।

ममतामयी माँ की सुखद छाँव को हम कैसे भूल सकती हैं? वह स्नेहिल छाया तप्त दोपहरी में किसी घने वृक्ष की शीतल छाया सदृश थी। हर सांस में संयम की प्रेरणा फूँकनेवाली माँ की अतीत की स्मरणीय यादें हमारे जीवन की सुखद अनुभूतियाँ, वे ही प्रसंग, हमारी स्मृति के विषय बन रहे हैं। परंतु आपश्री के गुण-मुक्ताओं को, शब्द-सूत्र में पिरोने का हमारा प्रयास नगण्य प्रतीत होता है। जैसे-तेजपुंज प्रकाश के समक्ष नन्हा-सा दीप रखा हो।

यद्यपि हमें संकोच होता है-पूज्याश्री दादीजी महाराज साहब के जीवन / व्यक्तित्व के विषय में लिखने में। तथापि परम पूज्यपाद राष्ट्रसंत वर्तमानाचार्य देवेश श्रीमद् विजय जयंतसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब एवं

प.पू. प्रशांतमूर्ति गुरुवर्या श्री हेतश्रीजी महाराज साहब की परमकृपा एवं शुभाशीष से ही हम यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री को जो स्मृतियों में सुरक्षित थीं, उसे टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं के रूप में शिशु की भाँति खींचने के लिए अभिप्रेरित हुई हैं। उसी के परिणाम स्वरूप प्रस्तुत ग्रंथ को इसके वर्तमान स्वरूप में प्रस्तुत किया जा सका है।

प्रस्तुत ग्रंथ का संयोजन पाँच खण्डों में किया गया है, जो इसप्रकार है :-प्रथम खण्ड 'श्रद्धार्चना' के नाम से है। इस खण्ड में श्रद्धालुओं द्वारा पूज्याश्री दादीजी महाराज साहब के प्रति अपनी भावभरी श्रद्धांजलियाँ दी गई हैं। जो गद्य एवं पद्य दोनों रूपों में हैं। ये श्रद्धांजलियाँ पूज्या दादीजी महाराज साहब के प्रति श्रावक-श्राविकाओं की अटूट श्रद्धा का प्रतीक हैं। अनेकानेक श्रद्धालुओं की साँसों में समायी हुई अविचल श्रद्धा उस तराशे हुए हीरक खण्ड के समान प्रतीत होती है, जो अपनी ही कांति से ज्योतिर्मय है। स्वनामधन्या पूज्याश्री के प्रति जन-जन का अन्तरमन किसप्रकार समर्पित रहा है और भौतिक दृष्टि से विलीन हो जाने पर भी जिस रूप में हैं, उसका सशक्त प्रमाण हैं ये श्रद्धांजलियाँ।

यहाँ यह भी रेखांकित करना प्रासंगिक प्रतीत होता है कि इन श्रद्धांजलियों को कोरमकोर श्रद्धांजलियाँ ही न समझा जाय। इन श्रद्धांजलियों में पूज्याश्री दादीजी महाराज साहब के व्यक्तित्व के सद्गुणों की सुवास एवं स्मृतियों की मिठास भी है। इन श्रद्धांजलियों के माध्यम से हम पूज्या श्री के ज्योतिर्मय विराट् व्यक्तित्व के दर्शन सहज ही कर सकते हैं।

'अभिनन्दनीय व्यक्तित्व'-यह शीर्षक है द्वितीय खण्ड का। इस खण्ड में पूज्याश्री के व्यक्तित्व की आलोकमयी आभा को प्रकट करनेवाले प्रेरक प्रसंगों के साथ बहुत ही सूक्ष्मरूप से उनके जीवन से सम्बन्धित समस्त घटनाओं, प्रसंगों और उनके पीछे रही भावनाओं को भी जीवन्त रूप देने का प्रयास किया गया है, किन्तु लगता है कि आपश्री की श्रम-साधना को, समस्त सद्गुणों तथा अलौकिक विशिष्टताओं को शब्दों में नहीं बाँधा जा

सकता। उनका सम्पूर्ण सांगोपांग / जीवनवृत्त का वर्णन ग्रन्थ में भी नहीं किया जा सकता। केवल मुख्य प्रसंग और जीवन की घटनाएँ ही दी जा सकती हैं और वे ही दी गई हैं। किसी भी प्रकार के चामत्कारिक वर्णन को भी यहाँ प्रस्तुत नहीं किया गया है।

पूज्याश्री दादीजी महाराज साहब का व्यक्तित्व रंग-बिरंगे फूलों के गुलदस्ते की भाँति विविध गुणों के सौरभ से सुरभित था। बस, उसे ही सामान्य भाषा शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसमें किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नहीं, सहजता है, स्वाभाविकता है। प्रदर्शन नहीं, स्फूर्त भावना है। अतिशयोक्ति नहीं, यथार्थता है। इसमें भारमुक्ति की नहीं, आभार अभिव्यक्ति की साधना है। इसके साथ ही इस खण्ड में अक्षर-शब्द-महिमा भी प्रकट की गई है।

तीसरा खण्ड 'व्यक्तित्व के प्रतिबिम्ब' के नाम से दिया गया है। इस खण्ड को दो भागों में प्रस्तुत किया गया है। प्रथम भाग में हम लोगों (प्रियसुदर्शनाश्री) के द्वारा आलेखित संस्मरण हैं। इस शीर्षक के अन्तर्गत उनके वे संस्मरण अंकित किये गए हैं, जो स्मृति-कोष की अमूल्य धरोहर बनकर रह गये हैं, जिन्हें संस्मरण रूप में लेखनी बद्ध किया है। जबकि द्वितीय भाग में श्रावक-श्राविकाओं द्वारा लिखे गये संस्मरण हैं। व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित संस्मरण उसके जीवन का आइना होते हैं जिसमें उसका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है और उसके गुणों को, सद्गुणों को प्रकट करता है। ऐसे संस्मरणों से साधक की साधना की गहराई का भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। चूँकि इसप्रकार के संस्मरण बिना किसी आग्रह के लिपिबद्ध किये जाते हैं। अतः इनमें किसीप्रकार की अतिशयोक्ति का स्थान नहीं होता है। ये संस्मरण स्वानुभूत होते हैं और साधक के समग्र व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करने में सक्षम होते हैं; इस दृष्टि से ये इतिहास की अमूल्य धरोहर भी होते हैं।

इस खण्ड में आलेखित व संपादित संस्मरण भी इसी श्रेणी के हैं जिनके अध्ययन मात्र से पूज्याश्री दादीजी महाराज साहब के व्यक्तित्व का सहज ही

परिचय मिल जाता है ।

'विज्ञता' नाम से दिया गया है चतुर्थ खण्ड । पूज्याश्री दादीजी महाराज साहब का संयमी जीवन सुदीर्घ रहा है, चारित्र अंगीकार करने से पूर्व भी उनका जीवन धार्मिक क्रिया-कलापों और स्वाध्याय से ओतप्रोत था । इस अवधि में उन्होंने बहुत कुछ अनुभव किया, सहा और देखा भी । इसके फल स्वरूप उनके मानसपटल पर कुछ विशिष्ट विचार-बिन्दु उभरे, जो उन्होंने सहेजकर रखे थे या फिर उनके श्रीमुख से निःसृत इन चिंतन कणों को सुनकर हमने लिपिबद्ध कर सुरक्षित रखा था । ऐसे चिंतनकणों के साथ उनके उपदेशों के अंश, उनकी हितप्रद शिक्षाएँ, आचरण के पालनार्थ विशिष्ट बिन्दु, अनुशासन के पालनार्थ निर्धारित बिन्दु, उनकी प्रियकहानियाँ, लोकोक्तियाँ, कहावतें, प्रिय दोहे, भजन-स्तवन जो वे सदैव अपने भक्तों को सुनाया करती थीं अथवा सदैव जिनका स्मरण वे करती रहती थीं । साथ ही उनके हस्तलिखित कुछ पत्र भी इस खण्ड में दिए गये हैं । ये सभी अनुकरणीय एवं आचरण में उतारने योग्य हैं । उनके द्वारा निर्दिष्ट नियमों को देखने मात्र से यह प्रतीति हो जाती है कि वे साध्वाचार के पालन में कितनी जागरूक एवं सुदृढ़ थीं ।

पंचम खण्ड 'विविधा' के नाम से दिया गया है । इसमें पोरवाल जाति की उत्पत्ति एवं महत्त्व, उनके पूर्वजों द्वारा निर्मित श्री मोहनखेड़ा तीर्थ का संक्षिप्त इतिहास, संघवी सेठ लूणाजी का परिचय, संसार पक्षीय परिवार का संक्षिप्त परिचय, पूज्याश्री के सान्निध्य में आयोजित होनेवाले धार्मिक कन्या शिविरों का परिचयात्मक विवरण, पूज्याश्री को समर्पित अभिनन्दन पत्र, प्रशस्ति पत्रों के साथ ही विभिन्न स्थानों पर उनके द्वारा व्यतीत किये गये चातुर्मासों की सूची दी गई है ।

इसप्रकार यह सहज ही कहा जा सकता है कि प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ पूर्णतः पूज्याश्री दादीजी महाराज साहब के जीवन पर ही केन्द्रित है । इतना ही नहीं, यह भी कहा जा सकता है कि प्रस्तुत स्मृति ग्रंथ परम्परागत

स्मृतिग्रन्थों से हटकर एक नवीन परम्परा का श्रीगणेश करने में मील के पत्थर का काम करेगा। क्योंकि अनेक व्यक्तियों के प्रेरक तत्त्व के रूप में भी काम करेगा।

परम पूज्यपाद साहित्यमनीषी तीर्थप्रभावक गुरुदेव राष्ट्रसंत आचार्यदेवेश श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब के चरणकमलों में वन्दना करती हूँ, जिन्होंने हमारे विनम्र भावपूर्ण आग्रह को स्वीकार करके 'आशीर्वचन' लिखकर जिस स्नेह वात्सल्य एवं अनुग्रह का परिचय दिया, इतना ही नहीं अस्वस्थता एवं कार्य व्यस्तता के बावजूद पूरा मैटर पूर्ण मनोयोग से अत्यल्प अवधि में देखा। तदर्थ हम उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हैं। हमें आपकी शुभप्रेरणा एवं अन्तराशीष सदैव मिलती रहे, यही करबद्ध प्रार्थना है। इसके साथ ही परम पूज्यवर्या परम श्रद्धेया शासनदीपिका प्रवर्तिनी गुरुवर्या श्री मुक्तिश्रीजी महाराज साहब के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हैं। जिन्होंने 'समर्पण क्या ?' का आलेखन कर हम पर महती कृपा की है। एतदर्थ हम उनके प्रति हृदय से आभारी हैं। आपश्री की सान्त्वना प्रेरणा भी हमारा सम्बल रही है।

हमारे पास आप पूज्य गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए न तो शब्द है, न कौशल है, न कला है और न है अलंकार। फिर भी हम इनकी करुणा, असीम कृपा और वत्सलता का अमृतपान कर प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ के सम्पादन एवं आलेखन में सक्षम बन सकी हैं। उनके पादपद्मों में हम अनन्यभावेन समर्पित हैं, नतमस्तक हैं।

इस अवसर पर माननीय डॉ. श्री तेजसिंहजी गौड़ द्वारा प्राप्त सहयोग को भी कभी भुलाया नहीं जा सकता है। जिन्होंने अपनी व्यस्तता व अस्वस्थता के बावजूद संपूर्ण मैटर को जांचा और यथास्थान अपनी लेखनी से परिष्कृत परिमार्जित करने में सहयोग प्रदान किया। तदर्थ हम उनके प्रति हृदय से आभारी हैं।

हिन्दी अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी माननीय श्री भागचंदजी जैन के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना नहीं भूल सकती हैं, जिन्होंने अल्प समय में

श्रमणत्व दुष्कर

श्रमण जीवन का पालन करना मोम के दांतों से लोहे के चने चबाना है ।

○

जैसे कपड़े के थैले को हवा से भरना कठिन है, वैसे ही कायर व्यक्ति के लिए श्रमण धर्म का पालन करना भी कठिन है ।

○

जैसे मेरुपर्वत को तराजू से तोलना बहुत कठिन कार्य है, वैसे ही निश्चल और निःशंक होकर श्रमणत्व का पालन करना कठिन है ।

○

जैसे प्रज्वलित अग्नि-शिखा का पान करना अतिदुष्कर है वैसे ही युवावस्थामें श्रमण धर्म का पालन करना अतिदुष्कर है ।

○

जैसे भुजाओं से समुद्र को तैरना अतिकठिन है, वैसे ही अनुपशान्त व्यक्ति के लिए इन्द्रिय-दमनरूपी समुद्र को पार करना अतिमुश्किल है ।

○

इस श्रमण-चर्या में जीवनभर कहीं विश्राम नहीं है । भारी लोहभार की तरह सदा गुणों का महान् गुरुतर भार उठाना बहुत ही मुश्किल है ।

○

साधु की कसौटी : समता

साधु इसलोक और परलोक में निरपेक्ष भाव से रहे । वसुले से काटे जाने पर अथवा चन्दन लगाये जाने पर, भोजन मिलने पर या न मिलने पर हर परिस्थिति में वह समभाव से रहे ।

○

संयमी साधक अध्यात्म तथा ध्यान-योग से आत्मा का दमन एवं अनुशासन करनेवाला होता है ।

श्री संघ, धाणसा के प्रति आभार

धर्मानुरागिन्, श्रुतज्ञानप्रेमी, उदारमना सकलश्रीसंघ, धाणसा

धन्यवादका पात्र है श्रीसंघ, जिन्होंने प्रस्तुत 'महाप्रभा स्मृति ग्रन्थ' प्रकाशन के मुद्रण का लाभ लेकर अत्यन्त ही प्रशंसनीय एवं अनुमोदनीय कार्य किया है।

यथार्थ में, धाणसा श्रीसंघ की श्रुतज्ञान के प्रति रुचि अनुमोदनीय है। उसीका दिव्यफल है प्रस्तुत 'महाप्रभा स्मृतिग्रन्थ' का प्रकाशन। इस सुकृत में सहयोग देकर धाणसा श्रीसंघने संघ-गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखा है। हम उनकी ज्ञानानुरागिता की भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं। जैसा कि आवश्यक निर्युक्ति में कहा है - "नाणं पयासगं।"

ज्ञान प्रकाश करनेवाला है। ज्ञान से ही विवेक जगता है। उपाध्याय यशोविजयजी म.ने कहा है - 'ज्ञान' समुद्रमन्थन के बिना प्रादर्भूत अमृत है, बिना औषधि का रसायन है और किसी की अपेक्षा नहीं रखनेवाला ऐश्वर्य है।

बृहत्कल्पभाष्य में तो 'सूयं तईयं चक्खु' अर्थात् श्रुतज्ञान को तीसरा नेत्र बताया है। इतना ही नहीं, सूक्तमुक्तावली में कहा है - ज्ञान दुनिया की आँख है। इस संसार में ज्ञान से बढ़कर अन्य कोई पवित्र वस्तु नहीं है।

दशवैकालिक सूत्र में भी स्पष्ट कहा है - 'पढमं नाणं तओ दया'।

- पहले ज्ञान और फिर दया (आचरण)। यह श्रीसंघ का सर्वप्रथम लक्ष्य रहा है। श्रीसंघ की महिमा भी ज्ञानोपासना में निहित है। जैनधर्म के सात क्षेत्रों में जिनबिम्ब, जिनालय जिनागम-शास्त्र, साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविका के पोषण का प्रभु ने आदेश दिया है। श्रीसंघ, जिनशासनरूपी स्वर्णरजतरत्नमय सुरथ के चक्रतुल्य है। कुमारपाल प्रतिबोध में कहा है -

"अणुदियहं दिंतस्सवि झिज्झन्ति न सायरस्स रयणाइं"।

अर्थात् प्रतिदिन देते हुए भी सागर के रत्न कभी समाप्त नहीं होते। इसी तरह संघ को भी सरोवर की उपमा दी गई है। प्रतिदिन सप्तक्षेत्र में सद्व्यय करते हुए भी उसका धन-कोष कभी समाप्त नहीं होता।

धाणसा श्रीसंघ की उदारता / विशालता के बारे में हम क्या कहें ? सन् 1999 के चातुर्मास के पूर्व 'श्री अभिधानराजेन्द्रकोश में, 'सूक्तिसुधारस' षष्ठम भाग का प्रकाशन करवाकर श्रुतज्ञान की भक्ति का अपूर्व परिचय दिया । तत्पश्चात् आप श्रीसंघने अत्यन्त श्रद्धाभक्तिपूर्वक पू. साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (दादीजी) म.सा. का अपने ग्राम में यशस्वी एवं ऐतिहासिक वर्षावास सम्पन्न करवाया तथा आप श्रीसंघ ने मुक्त दिल से पू. दादीजी म.सा. के महाप्रयाण का जो भव्य महोत्सव किया, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता, वह धाणसा नगर के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में सदा अंकित रहेगा । इतना ही नहीं, अपितु सन् 2001 में व्यापक स्तरपर ग्रीष्मकालीन 'अ.भा.श्रीराजेन्द्र-जयन्त जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर' का उत्साह-उल्लासपूर्वक अति सुन्दर ढंग से आयोजन किया, जो अपने आपमें अनूठा था ।

धाणसा श्रीसंघ की पू. दादीजी म. के प्रति अनन्य आस्था रही है और है आज भी । उसी गुरु-भक्ति से प्रेरित होकर ही प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशन में धाणसा श्रीसंघ का तन-मन व धन से सर्वात्मना जो सराहनीय योगदान रहा है उसे हमलोग कभी भी नहीं भूला सकतीं ।

प्रशंसा के लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं है । किन शब्दों में आप की प्रशंसा करें ?

सचमुच धन्वन्तरी एवं धर्मनगरी धाणसा श्रीसंघ परम सौभाग्यशाली है, जिन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन में मुक्तहृदय से अपनी सम्पदा का सद्व्यय कर दरियादिल का स्मरणीय परिचय दिया है ।

तदर्थ हम अन्तःकरण से धर्मलाभ के साथ लाख-लाख धन्यवाद देती हुई यह मंगल कामना करती हैं कि आपके अन्तःकरण में यथावत् गुरु-भक्ति और श्रुतज्ञान के प्रति आंतरिक लगाव-रूचि दिन दुगुनी रात चौगुनी वृद्धिगत होती रहे ।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण आत्मविश्वास है कि धाणसा श्रीसंघ समय-समय पर इसीतरह भविष्य में भी ऐसे सुकृत्यों में सदा-सर्वदा लाभ लेता रहेगा ! यही अन्तरेच्छा !

— साध्वी डॉ. प्रिय-सुदर्शनाश्री द्वय

प्रथम खंड

श्रद्धार्चना

परम श्रद्धास्पद साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के चरणों में देश के कोने-कोने से कई विद्वानों एवं भक्त-हृदयों ने अपनी-अपनी अनुभूतियाँ, उस विराट् व्यक्तित्व पर सूक्ष्म दृष्टि से हृदयस्पर्शी अध्ययन-चिन्तन प्रस्तुत कर प्रेरणा की सुरम्य सरिता प्रवाहित की है जिसमें अवगाहन करने से जीवन निर्मल, पावन व प्रगति-पथ पर निःसंदेह रूप से उन्नति के शिखर पर आसीन होगा। इस सौरभमय व सुरम्य खण्ड में 154 गद्य विधा तथा 20 पद्य विधा की सुगंधित पुष्पांजलियाँ अर्पित की गई हैं जो स्तुत्य एवं ग्रहणीय है।

पू. गुरुजनों से आशीर्वाद प्राप्त करती हुई पू. दादीजी म.सा.

प. पू. राष्ट्रसंत श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म.सा. पूज्या दादीजी म.सा. को शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए

प. पू. राष्ट्रसंत श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी गुरुदेवश्री पूज्या दादीजी म.सा. से वातचीत करते हुए

प. पूज्या गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. पू. दादीजी म.सा. को शुभाशीर्वाद प्रदान करती हुई

अपूरणीय क्षति ।

समाचार मिले कि वयोवृद्धा मां म. का देवलोक गमन हो गया ज्ञात कर संघ समाज में एक अपूरणीय क्षति का अनुभव हुआ । पूरा जीवन जिन का गुरुगच्छ की सेवा में ही व्यतीत हुआ । जिन की शान्त प्रकृति सभी के लिये अनुकरणीय थी । उन के देवलोक गमन से प्रिय सुदर्शना को जो तकलीफ होगी उस का मैं अनुमान कर सकता हूँ । मुझे भी दुःख अवश्य हुआ, क्यों कि मेरे लिये एक मां की तरह चिन्ता करती थी ।

प्रिय सुदर्शने ! खूब धैर्य रखना ! अपनी उम्र को लेकर मां म. ने विदाई ली है । उन की आत्म शान्ति के लिये सब कोई आराधनाएं करना !

विदुषि प्रवर्तनीजी श्री मुक्ति श्रीजी का इस प्रसंग पर वहाँ आना भी गुरु की ऋणानुबंध स्थिति का प्रतीक है ! उन्हें भी खूब २ सुखशाता पूछना !

मां म. के वियोग से मानसिक विचलितता स्वाभाविक है तथापि यह स्थिति स्थायी न रहे यह भी जरूरी है । मां की महत्ता, मां की ममता एवं मां का उपकार कौन भूल सकता है ? उस की स्मृति सदा के लिये अमर है । मानसिक संतुलन के साथ मां के विगत कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाये रखें ।

पुन. मां की आत्मा को शान्ति की कामना के साथ उन की चिरशान्ति की अभिलाषा !

— [signature]

पालीताणा
दि. २/३/२०००

2. श्रद्धांजलि

- मुनि जयानंद विजय

भीनमाल वालों से दु:खद समाचार सुने। साध्वीजीश्री ने अपनी अंतिम अवस्था तक विशुद्ध चारित्र का पालन कर चतुर्विध संघ को एक आदर्श दर्शाया है। जिनकी कथनी करनी एक थी। ऐसी साध्वीरत्ना का वियोग अतीव दु:खदायी हुआ है, पर टूटी की बूटी न होने से सहन करना ही है। आप पर से छत्र हटा है, परंतु अब आप को छत्र बनना है। उनके आचरित सिद्धान्तों को आप अपने जीवन में अपनाकर उनको सच्ची श्रद्धांजलि देंगे। ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। शासन देव उनकी आत्मा को शांति पहुँचाये।
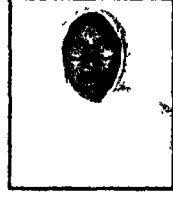
3. महाप्रभाश्रीजी : एक चमत्कारी मूर्ति

- मुनि जयानंद विजय

आज से सार्द्ध अष्टादश सहस्र वर्ष तक जिनशासन चलेगा, यह सूत्रोक्त कथन सत्य है।

जिज्ञासा का विषय तो यह है कि यह चलेगा किनसे ?

सुविधिनाथ प्रभु के शासन से धर्मनाथ के शासन तक के समय में शासन विच्छेद के वर्णन में कहा है '**साधु के अभाव में शासन का अभाव**'।

साधु वेश से या वेश एवं वर्तन से ?

ऐसे प्रश्न के समाधान में वेश एवं वर्तन से जो शुद्ध है, वह साधु है। उनसे ही शासन चला है, चल रहा है और चलता रहेगा।

'निरतिचार चारित्र पालन करनेवालों से ही शासन !' इस अवसर्पिणी काल के लिए **ज्ञानियों का कथन है कि इस काल में 'मूंड अधिक मुनि अल्प'।**

दिन-प्रतिदिन संघयण, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि का ह्रास हो रहा है। चारों ओर शिथिलता का साम्राज्य-फैल गया है। जहाँ देखो वहाँ शिथिलता ही शिथिलता दृष्टिगोचर हो रही है और वह भी शुद्धाचार के नाम से।

पच्चीस सौ वर्षों में अनेक बार शिथिलता के उन्मूलन के लिए प्रयत्न हुए हैं। इसका साक्षी 'पट्टावली' ग्रंथ है।

'उन्नीसवीं सदी की महान् विभूति विश्वपूज्य विश्वोद्धारक श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने यतिवर्ग में अतिशय व्यापक शिथिलाचार के उन्मूलन के लिए नौ कलमें स्वीकृत करवा कर क्रियोद्धार का भगीरथ कार्य किया था।

गुरुदेव ने क्रियोद्धार के साथ ज्ञान-भक्ति के रूप में अभिधान राजेन्द्र-कोश का निर्माण और सम्यग्दर्शन की निर्मलता के लिए मालवा में राजगढ़नगर के पास मोहनखेड़ा तीर्थ के निर्माण की प्रेरणा दी।

गुरुदेव की प्रेरणा को पाकर गुरुदेव के अनन्यभक्त श्री लूणाजी दल्लाजी संघवी पौरवाल ने अपने स्व द्रव्य से जिनमंदिर का निर्माण करवाकर अपना नाम इतिहास में अमर कर दिया। आज 'मोहनखेड़ा तीर्थ' विश्व प्रख्यात बन गया है।

संघवी सेठ लूणाजी के ही परिवार में से उनकी कुल की पौत्रवधू ने भागवती प्रव्रज्या स्वीकार कर आत्मोद्धार के मार्ग पर प्रस्थान किया। नाम भी मिला 'साध्वी श्री महाप्रभाश्रीजी।' नाम में भी चमत्कार था। दीक्षा के दिन से ही चारित्र पालन की महान् प्रभा रोम-रोम में जगमगा रही थी।

गुरुवर्याओं के पास में समर्पित भाव से रहकर ग्रहण शक्त्यनुसार ज्ञानार्जन कर वैयावच्च का अनुपम लाभ प्राप्त करती थीं।

स्वयं तो साध्वी बनी, पर अपने परिवार में से चार-चार पौत्रियों को भी प्रेरणा का पीयूषपान करवाकर चारित्र मार्ग में दीक्षित करवा दी। जो आज **'दादी-पौत्री' के प्रेमाल नाम से प्रख्यात है।** उत्कृष्टचारित्रपालिका विदुषी साध्वीश्री महाप्रभाश्रीजी का परिचय मेरी दीक्षा के पूर्व हुआ था। वह अति अल्प था।

दीक्षा के बाद जब-जब भी मिलना हुआ, तब उन्हें अप्रमत्त पाया। 'समयं गोयम! मा पमायए' वाला सूत्र तो उनके शरीर के रोम रोम में बसा था। नब्बे वर्ष की आयु तक भी जिन्होंने अपना कार्य अपने हाथों से किया था। प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, प्रमार्जना, संडासाप्रतिलेखन आदि दैनिक क्रिया में विधि का पूर्ण पालन करना तो सहज था।

स्नेह का स्रोत तो सतत प्रवाहित था। अन्य साध्वियों के मुख से सुना है कि इनके मस्तक पर सतत बरफ की लादी रहती थी।

दीक्षा के बाद जब भी मिले, तब स्नेह-सभर भाव से वंदन, वाणी एवं वर्तन देखने को मिला।

वर्तमान युग में जहाँ अनेक साधु-साध्वियाँ मजदूर, लोरी एवं व्हीलचेयर के द्वारा पाप से निर्भय होकर चारों ओर दौड़ते दिखाई दे रहे हैं। शासन प्रभावना के नाम पर स्वप्रभावना के प्रचार-प्रसार में संयम-यात्रा का आनंद लेने के स्थान पर कर्मराय को देने का काम रोकेट की गति से हो रहा है वाहनों के प्रयोग द्वारा। ऐसे समय में पैदल विहार का ही आग्रह अति अल्प व्यक्तियों में ही दिखायी देता है। **उनमें एक नाम है विदुषी साध्वी श्री महाप्रभाश्रीजी।** जिन्होंने अपने जीवनकाल में मजदूर को भी सामान नहीं दिया।

स्वर्गवास के एक महिने पूर्व का धाणसा का मिलन और उनके मेरे लिए अंतिम शब्द 'काया रो कस तो लेणोइज चाहिजे' अत्यन्त अनुमोदनीय है।

नित्य एकाशन का तप, स्वाध्याय और ध्यान में तो निमग्न जीवन था। मैं आशान्वित हूँ कि उनकी शिष्याएँ भी इसी मार्ग पर चलकर स्व-पर उन्नति में सहायक बनेंगी। शासन में, गच्छ में एक उत्कृष्टचारित्रपालिका आत्मा की क्षति हुई है, जिसकी पूर्ति अशक्य है।

शासनदेव उनकी आत्मा को शांति दें।

4. दिव्यगुणों की मणि

- मुनि सम्यग्रत्न विजय, आहोर

संयमधर्ममूर्ति, शुद्धसंयमपालिका, सरलस्वभाविनी, दिव्यगुणों की मणि, वयोवृद्धा सुसाध्वीजी श्रीमहाप्रभाश्रीजी के स्वर्गगमन के दुःखद समाचार सुनकर हृदय को बड़ा आघात लगा। वे एक आदर्श साध्वीरत्ना थीं। उन्होंने अपने संयमी जीवन में किंचित्मात्र दोष नहीं लगाया। इतनी अशक्ति और वृद्धावस्था में भी पैदल चलकर ही विहार किया। जैसलमेर, किशनगढ़, भरतपुर आदि गाँवों-नगरों में विचरण करते हुए रास्ते में भी आपने निर्दोष आहार-पानी का ही सेवन किया।

निरभिमानिनी ऐसी साध्वीजी भगवन्त की अपने संघ-समाज में क्षति हुई। आप दोनों के लिए तो वे सिर छत्र थीं। मगर काल के आगे किसकी चली है ?

उनकी कितनी पुण्यवानी थी कि उनकी भावनानुसार अन्तिम समय में भी अपनी गुरुणीजी का सुयोग मिल गया और उनके मुख से अन्तिम आराधना हुई। देवाधिदेव से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को चिर शांति प्रदान करें।

जो हितकर हो, उसीका अनुसरण करना चाहिए।

•

यदि तुम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो नम्र बनो और जब ज्ञान प्राप्त हो जाय तो और भी नम्र हो जाओ।

•

5. श्रद्धांजलि

- मुनि प्रशांतरत्न विजय, मुनि दर्शनरत्न विजय, चैन्नई

कल ही वयोवृद्धा, श्रमणी संघाग्रणी साध्वीजी श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज के देवलोक गमन के समाचार ज्ञात हुए। वैसे इतनी वृद्ध अवस्था में उनकी स्वस्थ प्रसन्नता अनुमोदनीय थी। अंतिम समय तक समाधिभाव एवं शासन-सेवा, गुरुगच्छ के प्रति उनका समर्पण अद्वितीय था। अपने संघ समाज में ऐसी श्रमणी की अपूरणीय क्षति हुई।

उनकी पावनात्मा को सद्गति मिले एवं उनका वियोग सहने की शक्ति प्रदान करें, यही परमात्मा एवं गुरुदेव से मात्रैकेच्छा। साध्वीजी श्रीमहाप्रभाश्रीजी के दीर्घ संयमपर्याय अनुमोदन निमित्त यहाँ महोत्सव करवाया, जो सबके लिए प्रेरणास्रोत रहेगा।

महान् पुरुषों की जीवनियाँ हमें स्मरण कराती हैं कि हम भी अपने जीवन को उत्कृष्ट बनायें। क्योंकि जो प्रस्थान कर जाते हैं वे समय की बालू पर अपने पैरों के चिह्न अवश्य छोड़ जाते हैं। उन पद-चिह्नों को देखकर, जीवन के स्वर्णिम लक्ष्य की ओर बढ़ता अन्य मझधार में फँसा, हताश नाविक बन्धु शायद फिर से हृदय को बाँध सकेगा।

●

मौन मन का विश्राम है और निद्रा से जैसे शरीर को पोषण और ताजगी मिलती है, वैसे मौन से आत्मा को भी पोषण और ताजगी मिलती है। मौन मूर्खता को ढ़क देता है, गौपनीयता का ध्यान रखता है, कलह को टाल देता है पापों को रोक देता है।

●

मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक्शक्ति रहती है।
मौन बातचीत की एक कला है।

●

जब तक तुम एक दूसरे के कंधे से कंधा, हाथ से हाथ पकड़कर खड़े रहोगे, तब तक तुम्हें कोई भी क्षति अथवा नुकसान नहीं पहुँचा सकता है। तुम साथ-साथ या इकट्ठे हो तब तक तुम्हें शांति और सलामती है, लेकिन जो एक बार अलग हुए तो जरूर भूमि पर गिर पड़ोगे।

6. समर्पण क्या ?

– प्रवर्तिनी मुक्तिश्री

समर्पण क्या किया जाय ? न तो शब्द है, न शक्ति है। फिर भी आपकी आत्मीयता तो अब तक हृदय-पटल पर अंकित है और रहेगी भी।

जबतक सहवास रहा, तबतक सेवा में अहर्निश जागृत रहकर अद्वितीय अपूर्व सेवा बजाई और अनेक को धर्ममार्ग का बोध देकर आत्मोत्सर्गी बनाया।

चारों पौत्रियों को दीक्षित बनाकर उत्तमोत्तम अध्ययनशील बनाया। शासन सेवा प्रभावना के कार्य में कटिबद्ध बनाया। अति कष्टदायक स्थिति में अध्ययन करवाया, साथ ही हित-मित-परिमित शब्दों से आत्म प्रगतिदायक आत्मशिक्षा देकर चारों बहिनों को सुयोग्य बनाकर जिनशासन को समर्पित किया जो वर्तमान में शासन सेवा एवं प्रभावना में दत्तचित्त है।

आपने जो मेरी सेवा, सामुदायिक सेवा, पारिवारिक सेवा बजाई, वह तो अवर्णनीय, अविस्मरणीय है और रहेगी।

आप जहाँ भी हों, आत्म साधना में आगे बढ़कर शीघ्रातिशीघ्र सिद्धि सोपान में आरूढ़ होवें।

यही शुभाकांक्षा ! हमें आत्म साधना में जागृति प्रदान करें।

7. प्रेरणास्पद जीवन

- साध्वी कोमललताश्री

सरलस्वभाविनी, मृदुभाषिणी, महान् तपस्विनी संयमभावों की सजगप्रहरी, परमकरुणावतार, संयमवय:तप:स्थविरा प.पू. वयोवृद्धा गुरुणीमैया श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब का अकस्मात् कालधर्म सुनकर अत्यन्त आघात लगा। सोचती-विचारती हैं तो ऐसा लगता है क्या वास्तव में वह महान् आत्मा इस लोक से विदा हो गयी ?

पू. दादीमाँ का शुद्ध सरल जीवनयापन, उनके जीवन में स्थित शुद्धप्रवृत्तियाँ, चारित्र के भावों के प्रति अटूट अचल श्रद्धा हम जैसे अज्ञानियों के लिए अत्यन्त प्रेरणास्पद है।

हम सभी छद्मस्थ हैं।

आघात लगना स्वाभाविक है, फिर भी ज्ञान के माध्यम से उसे कुछ हल्का करना भी अपना कर्तव्य है।

बस, परमपिता परमात्मा से यही प्रार्थना करती हैं कि उस दिव्यात्मा दादीजी महाराज साहब को परम शान्ति प्राप्त हों एवं उनकी अन्तरात्मा में स्थित गुणों का हमारे में भी सन्निवास हो! इन्हीं भावों के साथ श्रद्धा-सुमन सर्मपित हैं।

8. ઘણું જ દુ:ખ થયું

- સાધ્વી શશીકલાશ્રી

અમો મુંબઈથી વિહાર કરતા નવસારી આવ્યા ને સમાચાર મળ્યા પ.પૂ. દાદીજી મહારાજ સાહેબ દેવલોક થયા. ઘણું જ દુ:ખ થયું. ક્યારે પણ બીમારી સાંભળી જ ન હતી. ધાણસાવાલા સુખજીભાઈ કબદી સમાચાર આપતા હતા કે માજી મહારાજ સાહેબ શાતામાં છે. અને હવે ધાણસામાં જ સ્થાઈ રાખવાની ભાવના છે. ભાવીભાવ.

ઘડપણ હતું અને સમાધિ માઁ થઈ ગયું. એમના આત્માને શાંતિ મળે. બસ એટલું જ ઈચ્છીએ છીએ.

9. दादीमाँ

- साध्वी द्वय आत्मदर्शनाश्री एवं सम्यग्दर्शनाश्री

परम पूजनीया दादीजी महाराज साहब समता, सरलता व सहनशीलता की प्रतिमूर्ति थीं। त्याग एवं तपोमय जीवन से आपने न केवल अपने जीवन को विशुद्ध बनाया, अपितु आपके संसर्ग में आनेवाला प्रत्येक मानव धन्य हो गया। हम संसारपक्षीय आपकी पौत्रियाँ भी हैं और संयमी जीवन से लघुशिष्याएँ भी। वैसे हमारा जन्म तो आपके चारित्र ग्रहण करने के दस-पन्द्रह
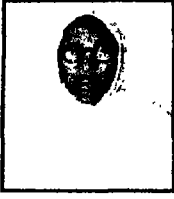
वर्षों पश्चात् हुआ है। जन्म के पश्चात् बचपन से ही माता-पिता के साथ प्रतिवर्ष हम आपके श्रीचरणों में दर्शनार्थ आती रहीं। आप हर समय बड़े स्नेह एवं मधुरवाणी से चारित्रमय जीवन जीने की शिक्षा प्रदान करती रहीं। हम से पूर्व हमारी संसारपक्षीय दो बड़ी सहोदर बहनें डो. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डो. श्रीसुदर्शनाश्रीजी म. संयम ग्रहण कर आपके श्री चरणों में आ चुकी थीं। संयम-पथ पर अग्रसर होने में आप दोनों का वरदहस्त तो हम पर रहा ही। साथ ही हमारी मातेश्वरी एवं पिताश्री का आशीर्वाद भी हमें प्राप्त हुआ। पन्द्रह-सोलह वर्ष तक लगातार आप सभी की प्रेरणा एवं हितशिक्षा फलीभूत होने से मोहनीय कर्म का क्षयोपशम हुआ और संयम मार्ग पर अग्रसर होने की हमारी शुभ घड़ी आ गयी। आपश्री ने हम दोनों को भी हमारी बड़ी बहनों की तरह क्रमशः एक-के बाद एक को संयम देकर शिष्या के रूप में अपने श्रीचरणों में स्थान देकर हमें उपकृत किया।

आपने चारित्रमय जीवन जीने की कला हमें सिखाना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे आपने हमें इस योग्य बनाया कि हम अपनी क्षमतानुसार संघ-समाज में वीतराग प्रभु की वाणी का संदेश पहुँचा सके।

आपने हमें उद्‌बोधित करते हुए समझाया कि चारित्रमय जीवन में अपनी आवश्यकतानुसार जो कुछ भी संघ-समाज से लेते हैं, उससे ऊऋण होने के लिए केवल एक ही सुगम उपाय है कि हम अपनी बुद्धि एवं विवेकानुसार संघ-समाज को वीतरागवाणी का संदेश देती रहें।

हे उपकारिणी माँ ! आपके उपकारों को, आपके गुणों को हम जीवनभर नहीं भूल सकती हैं। आपका कठोर चारित्रमय जीवन सदैव हमारे लिए प्रेरणास्पद रहा है। हमारी अन्त में आपसे यही विनम्र विनती है कि आप जहाँ कहीं भी विराजित हों, वहीं से हमें आशीर्वचन प्रदान करें कि हम जीवन पर्यन्त चारित्रमय जीवन व्यतीत करती हुई जन-कल्याण करती रहें।

यदि इस मार्ग पर हम सतत चलती रहीं तो निश्चय ही पू. दादा गुरुदेव का, आपश्री का, साथ ही संसारी दादामह श्रीमोहनखेडा तीर्थ निर्माता संघवीसेठ लूणाजी के कुल का और संसारपक्षीय अपने माता-पिता का नाम रोशन कर सकेंगी !

आन्तरिक भावना सहित श्रद्धा-सुमन श्रीचरणों में समर्पित ! आप जहाँ भी हों, हमारी भावभरी वंदना स्वीकार करावें !

ऐसा हित-मित भोजन करना चाहिए जो जीवनयात्रा एवं संयमयात्रा के लिए उपयोगी हो सके।

•

कष्ट सहन किए बिना कुछ भी अच्छा परिणाम कभी भी नहीं निकलता है।

10. श्रद्धा सुमन के दो पुष्प

- पू. गु. श्री पुष्पाश्रीजी म. की शिष्या साध्वी अनुभवदृष्टाश्री

परम करुणामयी वात्सल्य की सरिता, सागर के समान, समता धारक प.पूज्या साध्वीजी श्री महाप्रभाजी महाराज साहब के चरणों में श्रद्धापूर्वक भाव-सुमन समर्पित हैं। इस विराट् विश्व में प्रतिदिन प्रतिपल असंख्य आत्माएँ जन्म लेती हैं, और अपनी विविध अवस्थाओं को पार कर काल कवलित हो जाती हैं, परंतु उन सब को कौन याद करता है ? स्मरण मात्र उन्हीं का किया जाता है, जिन्होंने जीवन के महत्त्व को समझा है। सद्‌भावना एवं अनेक शुभ कार्यों से अपने जीवन को तथा अपनी भारतीय संस्कृति को त्यागमय चारित्र जीवन का गौरव प्रदान किया। एक कवि ने कहा है –

"यूं तो जीने के लिये लोग जिया करते हैं।
लाभ जीवन का नहीं, फिर भी जिया करते हैं।
मृत्यु से पहले मरते हैं हजारों लेकिन,
जीवन उन्हीं का जो मरकर भी जिया करते हैं ॥"

ऐसे ही अजब व्यक्तित्व की प्रतिभा का जन्म मालवांचल की धन्य धरा वरमंडल (म.प्र.) में हुआ था। आप का पारिवारिक जीवन भी सुखी रहा, आपने अपने जीवन की सुमधुर सुगंध से, शीतल-सौम्य, सरलता के साथ जन जन के लिये करुणा एवं अनुकंपा का झरना बहाया। आपका जीवन सदा-सर्वदा मंगलमय रहा। आपका त्याग प्रधान चारित्र धर्म आंतरिक यात्रा का साधना-मार्ग रहा।

मुझे बचपन का एक संस्मरण याद आ रहा है। बहुत पुरानी बात है। मैं एक छोटी सी बालिका थी। आपने लगातार दो चातुर्मास धर्ममयी थीरपुर नगरी (थराद) में किये। मुझे बराबर याद है उस वक्त का आपका परम सान्निध्य सुखद था। जब भी हम आप के पास आतीं, चेहरे पर करुणा एवं ताजगी भरी मुस्कान। पास में बिठाकर प्रेम से पढ़ाना, लिखाना, ममतामयी माँ के समान शिक्षा देना आदि आपका एक देदीप्यमान प्रभाव था। आपश्री की निश्रा में उसी चातुर्मास के बाद जब शंखेश्वर तीर्थ की पैदल यात्रा का मुझे जो सौभाग्य मिला, उस समय आपने जो प्रेम दिया, आप से उदारता, आत्मीयता और निश्छल स्नेह मैंने जो प्राप्त किया, वह शब्दातीत है। आपका स्वर्गवास संपूर्ण समाज की क्षति है, फिर भी, उसी का जीना, जीना है जो मरकर भी मरे नहीं, भौतिक शरीर से विलीन होने पर भी अमर रहें।

"व्यक्ति चला जाता है स्मृतियाँ रह जाती हैं।
हर फूल की महक मिट्टी में रह जाती है।
धन्य हैं वे जग में जिनके बाद।
श्रद्धा और आस्था से भरी गाथा रह जाती है।"

आपका जीवन एक कवि के शब्दों में फूलों सा कोमल और गंगा सा निर्मल था।

अनेकानेक गुणों से युक्त आपके महान् जीवन का मैं क्या वर्णन करूँ ? हृदय श्रद्धा से पूर्णतः अभिभूत है। ऐसी महान् विभूति के श्रीचरणों में श्रद्धा सहित भावपुष्प समर्पित करती हूँ।

11. આત્માને શાંતિ મલે

- સાધ્વી અનંતદ્રષ્ટાશ્રી

પ. પૂજ્યા દાદીજી મહારાજજીના સ્વર્ગ ગમનના સમાચાર જાણી અત્યંત દુઃખ થયું. ગુરુ ગચ્છમાં ત્યાગી, તપસ્વિની, ચારિત્ર સંપન્ન મહાત્માની ઉણપ થઈ. પૂ. દાદીજી મ.નું જીવન અનેક મહાન ગુણોંથી સુશોભિત હતું. સંયમમાં અપૂર્વ જાગૃતિ વગેરે ગુણોં તો ક્યારેય ભૂલાય તેવા નથી. એમની આત્માને શાંતિ મળે. બસ એટલું જ ઈચ્છીએ છીએ.

12. ફૂલ ગયું ને સુગંધ રહી છે

- સાધ્વી વસંતમાલાશ્રી, સધ્વી રંજનમાલાશ્રી

પૂજ્ય વડીલ ગુરૂબેનનું જીવન ઝરમર. કંચન અને મણીમય સોપાન પંક્તિવાળુ હજારોં થોભલાથી વિભૂષિત હતું. સુવર્ણના ભૂમિત વાળુ જિનાલય કોઈ બંધાવે તેના કરતા તપ અને સંયમની સાધના મારા વડિલ ગુરૂબેન મહાપ્રભાશ્રીજીસા. ને અધિક ફળદાઈ થઈ.

ફુલ ગયું ને સુગંધ રહી છે. હું જ્યારે આવું ત્યારે સ્વાધ્યાયમાં રત રહેતા હતા. મૌન એમને ઘણું જ પ્રિય હતું. કહ્યું છે કે :

"જિન શાસન જયવંતુ વર્તાવ્યું, સંયમ ધરી વર્તાવતા રે
ભવ વૈરાગી, અતિ ઉપકારી, પૂર્વભવના દઢ સંસ્કારી
સંસારે ત્યાગી સમજીવન વિતાવતા રે
બિમારીમાં અદ્‌ભુત શક્તિ, અંતર આત્મામાં ન અશાંતિ
પવિત્રપંથ વીરનો વિસ્તારતા રે
અનિત્ય-અશરણ, ત્યાગ ભાવના ભાવતા
વિહારમાં દોષ કિંચિત્ નહીં લગાવતા રે."

સમાધિમાં ગયા. અમારા સંઘ-સમાજ અને સમુદાયમાં એમની ઘણી ખોટ પડી છે. ગુરુજીની સેવા ભક્તિ તો એમનો પ્રાણ હતો. મારી દીક્ષા તો એમની હાજરીમાં થઈ માટે જ બધો અનુભવ છે. તેમના આત્માને શાંતી મળે. મોક્ષગામી આત્મા એક ભવ કરી જલદી મળે, એવી મારી ભાવના પૂર્ણ થાય. એ જ આપની નાની ગુરૂબેન વસંતમાલા-રંજનમાલાના વંદન.

13. अनुकरणीय जीवन

- साध्वी चारूदर्शनाश्री

परम पूज्या परमत्यागी माधुर्य गुणों से युक्त दादीजी महाराज साहब का जीवन अनुकरणीय है। जब-जब भी मुझे आपके पावन चरणों में रहने का सान्निध्य प्राप्त हुआ तो ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे कोई तेजस्विता मेरे अन्तर्मन में व्याप्त हो रही है। आपका त्यागमय जीवन, वाणी की मिठास एवं स्नेह की अजस्रधारा आज भी मेरे हृदय को प्रभावित कर रही है। इस वयोवृद्ध अवस्था में भी आप अपनी समस्त क्रियाएँ स्वयं करती थीं। सदैव पैदल विहार करतीं और सभी का मार्गदर्शन करती हुई मुख्य रूप से हमें चारित्र-पालन की शिक्षा देती थीं।

आपने अपनी चार-चार संसारपक्षीय पौत्रियों को चारित्र-मार्ग का उपदेश देकर अपने चरणों में लिया।

हे परम पूज्या दादीजी महाराज साहब! आप जिस लोक में भी हो, मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें कि मैं अपने जीवनकाल में सदैव संयम-पथ का पालन करती रहूँ।

14. श्रद्धा सुमन

- पू.गु. श्री पुष्पाश्रीजी म.सा. की शिष्या साध्वी रत्नरेखाश्री 'कुसुम'

त्याग-विराग की साक्षात्मूर्ति, वात्सल्यवारिधि, सरलस्वभाविनी, श्रमणीरत्ना पू. श्री महाप्रभाश्री जी महाराज साहब का साधनामय जीवन अपने आप में एक अलौकिक जीवन था। आपका व्यक्तित्व नभतल में सुशोभित इन्द्रधनुष की तरह बहुरंगी प्रतिभायुक्त था। उपवन में खिले हुए विविध पुष्पों की तरह आपकी संयम-साधना पारिवारिक, धार्मिक एवं सामाजिक आदि अनेक क्षेत्रों में पल्लवित थी। भव्य प्राणियों के लिए आपकी आत्म-आराधना मनोज्ञ सुगंधित इत्र की तरह सुवासित थी। आपके चारित्रबल में भक्तों को बरबस अपनी ओर खींचने की अनुपम चुम्बकीय शक्ति थी। आप मृदुभाषिणी, मिलनसार, सौम्यप्रकृति एवं प्रतिभासंपन्न थीं। जीवन के अंतिम चरण में भी मंजिल की ओर बढ़ने का निरंतर प्रयास, आग बरसाती ग्रीष्म ऋतु में मरूधर प्रांत की शुष्क भूमि पर विचरण, व्याधि के क्षणों में भी जीवन के अंतिम श्वास तक कोई अंग्रेजी दवाई का उपयोग नहीं करना एवं मृत्यु को सन्निकट जानकर पंडितमरण की आराधना, ये सभी आपके अदम्य साहस व आत्मबल के परिचायक हैं। आपके महाप्रयाण से प.पू. दादा गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब के समुदाय की श्रमणीश्रेष्ठा गुरुणीजी श्रीमानश्रीजी म.सा. के साध्वी समूह में एक अपूरणीय क्षति हुई है। आपका साधनामय जीवन सभी साधकों को मार्गदर्शन देता रहे। इसी कामना के साथ श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं...

श्री शांतिनाथजी
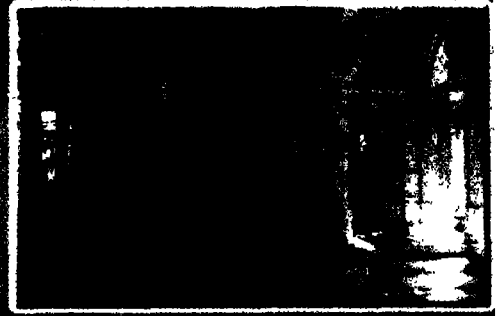
श्री शांतिनाथ भगवान्

श्री शांतिनाथजी मंदिर
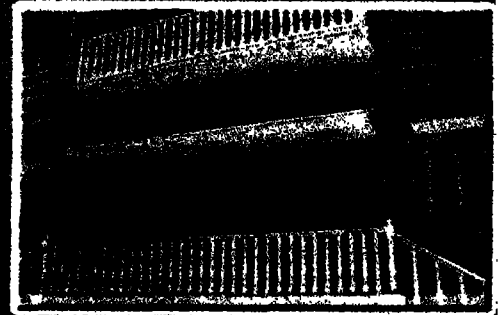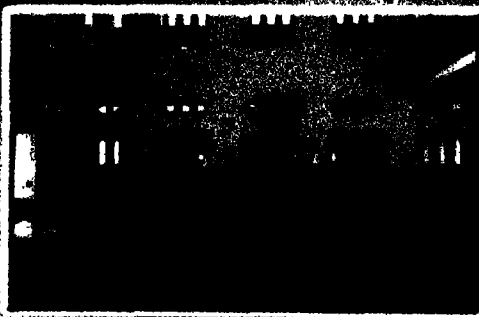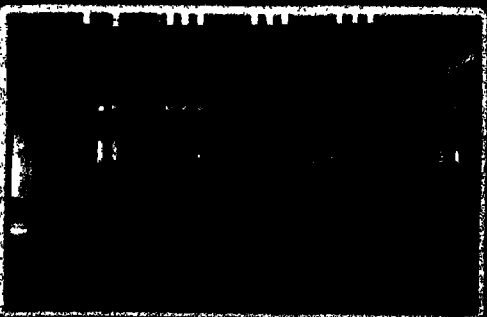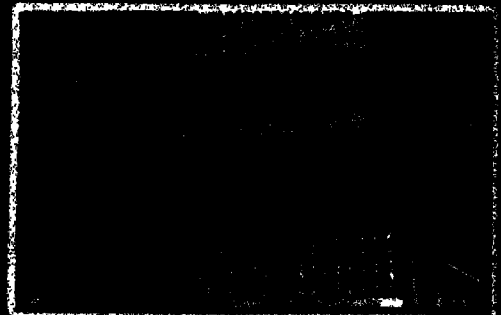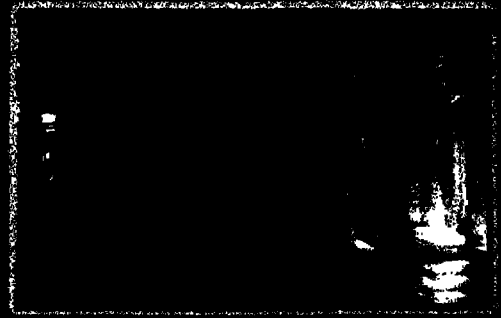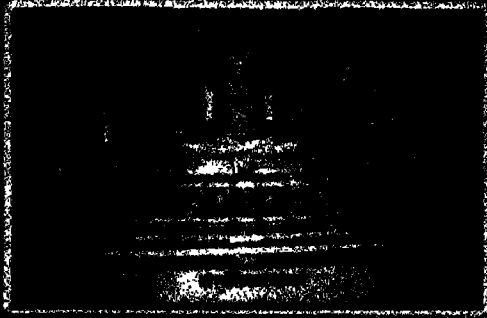
धाणसा श्री गोड़ी पार्श्वनाथजिनालय एवं गुरुमंदिर का दृश्य
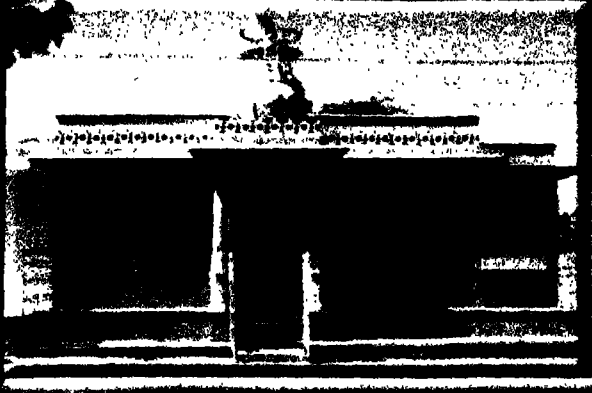
श्री गोड़ी पार्श्वनाथ मंदिर
धाणसा (राज.) का बाहरी दृश्य

श्री गोड़ी पार्श्वनाथ मंदिर
धाणसा (राज.) का भीतरी दृश्य

श्री राजेन्द्रसूरि गुरुमंदिर , धाणसा (राज.)

धाणसा श्री ओपोनी जैन धर्मशाला के बाह्य-भीतरी विभिन्न दृश्य
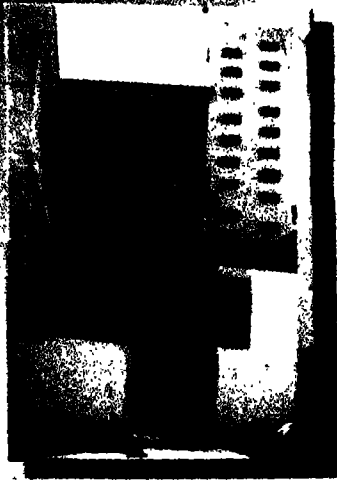
श्री ओपोनी जैन धर्मशाला
धाणसा (राज.) का बाहरी भाग
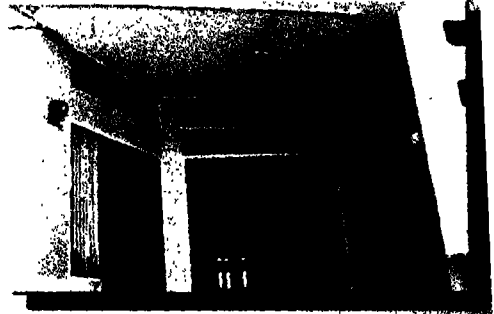
श्री ओपोनी जैन धर्मशाला
धाणसा (राज.) का बाहरी दृश्य,
जहाँ पू. दादीजी म.सा.ने
वर्षावास किया।

श्री ओपोनी जैन धर्मशाला
धाणसा (राज.) का भीतरी भाग
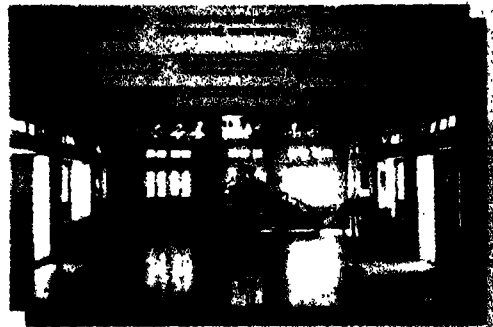
श्री ओपोनी जैन धर्मशाला
धाणसा (राज.) का भीतरी भाग
जहाँ पूज्याश्री ने चातुर्मास किया।

श्री ओपोनी जैन धर्मशाला
धाणसा (राज.) का भीतरी दृश्य,
जहाँ पू. दादीजी म.सा.ने पार्थिव देह छोड़ी

17. धन्य हुआ धाणसा

- श्री संघ, धाणसा, जिला-जालोर (राज.)

"संतों का सान्निध्य पानेवाला व्यक्ति जीवन के हरदिन को त्यौहार-पर्व महसूस करने लगता है। संत ज्ञान और आचरण के झरने हैं। जहाँ आकर कुछ लोग अपनी प्यास बुझाते हैं तो कुछ एक-दो घूंट ही पीते हैं और कुछ तो सिर्फ कुल्ला ही करते हैं।

आप स्वयं सोचें हमें क्या करना है ? लेकिन ध्यान रखना-सार्थक जीवन जीने का तरीका किसी सद्गुरु के श्रीचरणों में बैठकर ही आता है ?"

इसतरह हृदय को आंदोलित करनेवाले पूज्या दादीमाँ के अनमोल जीवन सूत्रों को सुनकर हमारे अन्तर् में धर्म के प्रति एक अनूठी प्यास जागृत हुई।

चातुर्मास के पूर्व आपका दो-तीन बार का धाणासा पदार्पण हमें अपनी जिंदगी का महत्त्वपूर्ण बोध दे गया और हमारे अन्तर्मानस में आपका वर्षावास कराने की प्रबलतम भावना जागृत हो उठी।

धाणसा श्रीसंघ के प्रमुखलोग वैशाख (मई) में भीनमाल विराजित श्रद्धेया पूज्या दादीजी महाराज साहब के दर्शन-लाभ कर श्रद्धाभिभूत हो उठे। वन्दन-नमन के पश्चात् हमने करबद्ध अपने यहाँ वर्षावास करने की भावभीनी एवं आग्रहभरी विनती की। तत्रस्थ स्थानीय भीनमाल संघ और उनकी शिष्याओं ने प्रत्युत्तर में कहा-"पू. दादीजी महाराज साहब से अब विहार नहीं हो पाता है। थोड़ा सा भी चलती हैं तो भी आपकी साँस फूलने लगती है। अतः वहाँ तक पहुँच पाना संभव नहीं है। दूसरी बात आप किसी भी वाहन का उपयोग नहीं करती हैं, यह तो आपको पता ही है ?"

श्रीसंघ ने पुनः आत्मीयभरा निवेदन किया-दादीजी महाराज साहब ! हमारी भावनाओं पर कुछ तो ध्यान दीजिए। बड़ी आशा लेकर आये हैं, हमें निराश मत कीजिए। विगत कई वर्षों से आपका चातुर्मास करवाने की हमारी प्रबल भावना थी, पर योग-संयोग की बात है, भावना होते हुए भी चातुर्मास नहीं करवा पाएँ। इस वर्ष पुनः संयोग आया है तो आप थोड़ी तकलीफ उठाकर भी हमें चातुर्मास का लाभ देकर स्वीकृति प्रदान करें। भीनमाल से धाणसा अधिक दूर नहीं है। लगभग चालीस-पैंतालीस किलोमीटर है। अगर आपश्री रोज तीन-चार किलोमीटर भी विहार करेंगी तो भी दस-पन्द्रह दिन में धाणसा पधार सकेंगी। दबी जुबान से डरते-डरते हमने निवेदन किया-यदि रास्ते में कहीं कुछ टैंट वगैरह की जरूरत पड़ी तो वह व्यवस्था भी हो जाएगी। हम लोग आपके साथ रहेंगे। कहीं कुछ तकलीफ नहीं आएगी, पर इस बार तो इतनी महरबानी कर आप हमारी भावनाओं को साकार रूप दीजिए। आप तो केवल धाणसा चातुर्मास की आज्ञा फरमाइए। बस, आपसे हम इतनी सी भीख माँगते हैं।

पू. दादीजी महाराज साहब का स्वभाव ही ऐसा था कि वे स्वयं कष्ट सहकर भी अन्य की

भावनाओं का आदर करती थीं। किसी का भी ऐसा अत्याग्रह देखकर उनका हृदय पसीज जाता था। **धाणसा संघ के श्रावकों की हार्दिक श्रद्धा का अनुभव करते हुए दादीजी महाराज साहब ने कहा-"देखो, भाई ! मैं तो चल भी लूँगी, पर पहले यह बताइए, आपके पूरे संघ में एकता तो है ना ? किसी प्रकार का कोई विवाद तो नहीं है न ? सभी की पूर्ण सहमति से आये हैं न आपलोग ?"**

"हाँ, महाराज साहब ! पूरे संघ की सहमति से आये हैं।" दूसरी बात आपश्रीने फरमाई - "आपलोग पहले हमारे सिरताज पूज्यपाद आचार्य भगवंतश्री की आज्ञा लावें, तभी यह सम्भव है। मैं स्वयं आज्ञा कैसे दे सकती हूँ ?" अपने गुरुजनों के प्रति उनकी लघुता, उनकी विनयशीलता कैसी गजब की थी, जो उनकी महत्ता में चार चाँद लगा रही थी। उनके रोमरोम से नम्रता झलक रही थी।

आपके कहे अनुसार एकमत से संघ ने श्रद्धापूर्वक प्रस्ताव पारित किया। संघ के कुछ प्रतिनिधि पूज्यपाद आचार्यश्री के श्रीचरणों में पहुँचे। वहाँ से आचार्यश्री का शुभसन्देश (आज्ञा-पत्र) लेकर ससंघ हम पुनः भीनमाल गए और पू. दादीमाँ की सेवा में उपस्थित होकर नमन के बाद ससम्मान आज्ञा-पत्र थमाते हुए करबद्ध प्रार्थना की-"**दादीजी महाराज साहब ! यदि चार माह का सान्निध्य हमें प्राप्त हो जाये तो संघ का भाग्य जाग उठे, हमारा जीवन धन्य हो जाये।"**

करुणामूर्ति पूज्या दादीजी महाराज साहब ने असीम अनुकंपा पूर्वक चातुर्मास की स्वीकृति देकर हमें उपकृत किया। आज्ञा-प्राप्ति की स्वीकृति सुनकर सभी के हृदय में प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो गई। मन की मुराद पूरी होते ही संघ के लोगों ने हर्षोल्लासपूर्वक भगवान् महावीर और दादा राजेन्द्रगुरुदेव की जयजयकार करते हुए अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। सभी मुक्तकण्ठ से धन्य धन्य कह रहे थे। आपका मंगलपाठ व आशीर्वाद प्राप्तकर संघ हर्षविभोर होता हुआ अपने गाँव लौट गया। चातुर्मास की खुशखबरी सुनकर धाणसा का आबालवृद्ध प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो उठा ! संघ आपके शुभागमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा रत था। चातुर्मास में अभी कुछ समय शेष था।

अद्भुत आत्मशक्ति का परिचय :

उधर भीनमालस्थित पूज्या दादीजी महाराज साहब के दृढसंकल्प एवं आत्मविश्वास का क्या वर्णन करें हमलोग ? नब्बे वर्ष की वृद्धावस्था में भी चारित्रपालन के प्रति उनकी गजब की निष्ठा थी। चारित्र-पालन में सूक्ष्मदोष भी वे पसन्द नहीं करती थीं। फिर चाहे इसके लिए उन्हें कितनी ही तकलीफ क्यों न उठानी पड़े। हमें पता है जब पू. दादीजी महाराज साहब का चातुर्मास धाणसा तय हो गया। तब भीनमाल संघ का शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति बचा होगा, जिसने पू.दादीजी महाराज साहब से व्हीलचेअर या डोली से विहार करने की विनती नहीं की हो।

अपने यहाँ से विहार नहीं करने देने की इच्छा से भीनमाल संघ ने निवेदन किया-महाराज

साहब ! भयंकर गर्मी है ? लू चल रही है। तापमान बहुत बढ़ गया है। आपको स्थंडिल-मात्रा जाने में भी इतनी साँस फूलती है ? तो आप धाणसा कैसे पहुँच पाएँगी ? आप विहार करने का मानस बदल दीजिए। आप किसी भी हालत में चातुर्मास तक वहाँ नहीं पहुँच पाएँगी। देखना ! आपको एक मुकाम जाकर पुन:लौटकर आना पड़ेगा। अगर आपको पधारना ही है तो किसी साधन का उपयोग करके पधारो। वर्ना रास्ते में बड़ी तकलीफ हो जाएगी। **दादीजी महाराज साहब ने सिर्फ इतना ही कहा– "आत्मशक्ति-आत्मबल प्रबल है, फिर क्या ? 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।' मेरे से चला जाएगा तो चलूँगी। एक दो मुकाम चलकर तो देखूँ ? नहीं तो वापस आ जाऊँगी। आत्मबल मेरे स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छी खुराक है।"**

इससे स्पष्ट है कि पू. दादीजी महाराज में संकल्प का कितना बल था ? कैसी उनकी आत्मशक्ति थीं। साधारणतया मनुष्य यह नहीं समझ सकता, परन्तु तत्त्वत: संकल्प में बहुत बड़ी आत्मशक्ति निहित है।

आखिर उनके दृढसंकल्प और अद्‌भुत आत्मशक्ति के सामने सभी को हारना पड़ा ! वे अपने संकल्प में अत्यन्त अविचल एवं कठोर थीं।

शुभ समय देखकर पू. दादीजी महाराज साहब ने अपनी शिष्याओं के साथ भीनमाल से धाणसा की ओर प्रस्थान किया। उससमय ज्येष्ठ मास प्रारम्भ था। गर्मी अपनी चरम सीमा पर थी, पर अपने दृढ़मनोबल व आत्मविश्वास के साथ गुरुदेव का स्मरण करके चल पड़ी धाणसा की ओर। मार्गस्थित क्षेत्रों में धर्मध्वजा फहराते हुए धाणसा की ओर कदम बढ़ रहे थे। इस वृद्धावस्था में आपको पैदल विहार करती हुई देखकर जैन-जैनेतर सभी लोग अत्यंन्त प्रभावित और आश्चर्यचकित होते थे।

हमने देखा है-विहार में पूज्या दादीजी महाराज साहब को बहुत ही कष्ट हो रहा था। बहुत साँस फूल रही थी, एक-एक कदम उठाना दूभर हो रहा था। देखकर दंग रह गए हम। बाप रे बाप ! इतनी साँस फूलती है, परन्तु वे कष्ट को कष्ट नहीं मानती थीं। **कष्टों को हँसते-हँसते सहन करने की अद्‌भुत सहिष्णुता उनके जीवन का महान् गुण था। कष्टों और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे 'मेरुव्व वाएण अकंपमाणो' – मेरु की तरह सदा अडोल और अविचल रहीं।** कष्ट के क्षणों में भी उनका मुखकमल शतदल की भाँति सदा खिलता हुआ देखा। आपका हृदय बहुत ही करुणाशील था। दूसरों को दु:खी देखकर बर्फ की तरह पिघलनेवाला था। साथ ही अपने संकल्पों में कठोर '**वज्रादपि कठोराणि**'-वज्र से भी अधिक दृढ़, चट्टान से भी अधिक अडिग और अपने गुरु के प्रति अविचल आस्था लिए हुए था। अर्थात् यों कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि वे वज्रसंकल्पी थीं।

सभी ने उन्हें डिगाने का कम प्रयत्न नहीं किया, लेकिन आपके अध्यवसाय बहुत दृढ़ थे। आत्मशक्ति जबरदस्त थी। उनके जैसा संकल्प का धनी कोई दूसरा नहीं था। विहार में जब भी कोई उनके साथ होता। वह उन्हें चलते हुए देखता तो कहता-महाराज साहब ! आपको

चलने में कितनी तकलीफ हो रही है ? "**भाई ! इस शरीर को तकलीफ ही तो होती है, होने दो। साँस ही तो फूलती है, फूलने दो । ये अपना काम कर रहा है हम अपना काम कर रहे हैं । थोड़ी देर विश्राम करूँगी तो अभी सब ठीक हो जाएगा । आप क्यों इतना संकल्प-विकल्प करते हो ? यह तो पुद्‌गल का धर्म है । होता रहेगा ।" दादीमाँ ने कहा ।**

उनकी वाणी में ऐसा प्रभाव था, जो जादू की तरह सुननेवालों के मन-मस्तिष्क को शीघ्र ही प्रभावित कर देता था। धाणसा प्रवेश करने के एक दिन पूर्व तो जंगल में भयानक आँधी-तूफान व बारिश की बौछारों के कारण मौसम बहुत ठंडा एवं खराब हो गया था। केवल एक ही चिंता थी दादीमाँ की। विहार कैसे होगा ऐसे मौसम में। हमारी आँखों से आँसू छलछला आए। निवेदन किया - महाराज साहब ! आपको कोई दोष नहीं लगेगा। चार बहनें डोली में केवल एक मुकाम तक पहुँचा देंगी। सिर्फ चार-पाँच किलोमीटर की बात है।

पू. दादीजी महाराज साहब ने एक ही जवाब दिया-"**आप कुछ भी कहें, पर मैं तो नहीं बैठूँगी डोली में । मेरे बापजी ने मुझे सौगन्ध दी है और मैंने उनसे संकल्प कर लिया है किसी भी साधन में नहीं बैठने का ।" संकल्प की बात सुनकर हमें बड़ा ताज्जुब हुआ । आपके हृदय के कण-कण में गुरु के प्रति कितनी अटूट आस्था, श्रद्धा व अनन्यभक्ति थी कि ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा कर ली, वह भी आज के इस व्हीलचेअर, डोली और लारी के आधुनिक जमाने में ।**

सामान्यत: देखने, सुनने में इस प्रतिज्ञा की भीष्मता इतनी प्रतीत नहीं होती, किन्तु जब व्यवहार में आता है तो पता चलता है कि यह प्रतिज्ञा कितनी कठिन है। इस भीषण प्रतिज्ञा को आपने दो चार दिन नहीं, अपितु जीवन के अन्तिम क्षण तक निभाया।

जो साधक सतत जागरूक रहता है, उसकी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होती हैं। वह जीवन में कदम-कदम पर-'**भारंड पक्खीव चरेऽप्पमत्ते**'-भारण्डपक्षी की तरह निरन्तर सावधान और जागरूक होकर विचरता है। पूज्या दादीजी महाराज साहब के जीवन में तप:साधना की कठोरचर्या ने उन्हें तपाया तो हृदय की सरलता, समता ने उनमें अद्‌भुत निखार भर दिया।

आपकी संयम चर्या देखकर उसके विषय में अधिक कुछ कहने को नहीं रह जाता । फिरभी चंद शब्दों में यही कहा जा सकता है कि आप में अटूट आत्मशक्ति थी, जिसका पूरा परिचय हमें भीनमाल से धाणसा तक के विहार में हुआ ।

आप में कितना अदम्य साहस, कितना आत्मबल, कितनी स्फूर्ति और कितनी आत्मशक्ति समायी हुई थी। सहसा विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है।

मार्गस्थित ग्रामों में विचरण करती हुई यथासमय आप अपनी शिष्याओं के साथ धाणसा गाँव के बाहर पधार गईं। वहाँ गाँव के आबालवृद्ध सभी पू. दादीजी महाराज साहब के हार्दिक स्वागतार्थ उपस्थित थे।

सभी आपके शुभागमन पर हर्षविह्वल हो उठे। हमने असीम हर्षोल्लास व धूमधाम से जय-

जयकार के गगनभेदी नारों के साथ आपको नगर-प्रवेश करवाया। उपाश्रय में आपके चरण पड़ते ही हम सभी को बहुत संतोष एवं आनन्द का अनुभव हुआ।

चातुर्मास बड़ी सफलता के साथ चला। इस चातुर्मास में तो हमारे गाँव में अपूर्व कार्यक्रम, धर्मध्यान एवं त्याग-तपश्चर्याएँ भी खूब हुई जो पहले कभी नहीं देखी।

चातुर्मास कैसे समाप्त हो गया, कुछ पता ही नहीं चला। कभी तपस्याओं की लड़ी तो कभी ज्ञान-प्रश्नोत्तरी की झड़ी। बड़े हर्षपूर्ण माहौल में चातुर्मास सानंद-सोल्लास सम्पन्न हुआ। **यह सब महाप्रभावी महाप्रभा गुरुणीमैयाश्री का ही प्रभाव था।**

चातुर्मास पूर्णाहूति के पश्चात् पूज्या दादीजी महाराज साहब ने संघ के समक्ष विहार करने की भावना प्रकट की। हमलोगों ने आपसे भावभरी प्रार्थना की-महाराज साहब ! होली चातुर्मास पर्यन्त तो आपश्री यहीं विराजिए। उनकी मनोगत भावनाओं से हमें ऐसा लगा कि उन्हें एक स्थान पर रहने की अपेक्षा विचरणशील जीवन ही अधिक पसन्द था। बोलीं - **भाग्यशालियों! "रमता जोगी और बहता पानी पवित्र रहता है।"** हाँ, दादीजी महाराज साहब ! बात तो एकदम सत्य है आपकी। पधारना तो है ही। पर अभी सर्दी का मौसम है, इसलिए विहार का नाम मत लीजिए आप और अगला चातुर्मास भी तो यहीं करना है।

बड़े आनन्दपूर्वक विराजमान थीं आप। परन्तु -

"अघटितं घटितं घटयति, सुघटितं घटितानिदुर्घटीकुरुते।
विधि तान्विघटयति, यान् नरो नैव चिन्तयति ॥"

सरलता से सम्पन्न होनेवाले कार्य कठिनता से सम्पन्न हो पाते हैं। अनहोनी घटनाएँ सामने उपस्थित हो जाती हैं। विधि का विधान कुछ ऐसा विचित्र है कि उन घटनाओं का हम सबको सामना करना ही पड़ता है, जिनके बारे में मनुष्य सोच भी नहीं पाता है।

किसे पता था कि पूज्या दादीजी महाराज साहब का वि.सं. २०५६ का यह अन्तिम चातुर्मास हमारे यहाँ होगा, और यहीं से सदा-सदा के लिए विदा होकर आप हम सभी को निराधार छोड़कर चली जायेंगी। सिवाय केवलज्ञानी के कोई भी नहीं जान सकता और हुआ भी ठीक वैसा ही। जैसा ज्ञानी ने अपने ज्ञान में देखा था। हाँ, ज्ञानीजनों की बात तो ज्ञानी ही जाने।

धाणसानगर के प्रबल पुण्य का प्रभाव था कि पू. दादीजी महाराज साहब अन्तिम चातुर्मास करने हमारे यहाँ पधार गईं। अरे ! पधार ही नहीं गईं, बल्कि हमेशा-हमेशा के लिए हमारी ही हो गईं।

धाणसानगर के इतिहास में साधु-साध्वी भगवन्त के महाप्रयाण का यह प्रथम अवसर था। तदनुरूप श्रीसंघ ने मुक्तमन से पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के महाप्रयाण का भव्य महोत्सव जिस उल्लास- उत्साहपूर्ण वातावरण में किया। वह धाणसानगर के इतिहास में सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।

प्रयाण तो हमें भी करना है, लेकिन हमारे प्रयाण का कोई महत्त्व नहीं है। महत्त्व है इन

चारित्रसम्पन्न आत्माओं के महाप्रयाण का, जिनके पीछे हजारोंहजार नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बरसती है। **महान् संयम साधिका साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब (श्री मोहनखेड़ा तीर्थनिर्माता संघवी सेठ लूणाजी के कुल की संसारपक्षीय कुलदीपिका पौत्रवधू)ने नब्बे वर्ष की आयु में उनपचास वर्ष पर्यन्त विशुद्ध चारित्र का परिपालन करते हुए फाल्गुन कृष्णा एकादशी को धाणसानगर में महाप्रयाण किया। इस महाप्रयाण की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह रही कि पू. श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब को महाप्रयाण के अन्तिम समय में गुरुवर्या प.पू. शासनदीपिका प्रवर्तिनी श्री मुक्तिश्रीजी महाराज साहब ने दर्शन दिये। यह एक महान् पुण्यवानी का लक्षण है। वास्तव में यह उनकी एक अद्‌भुत पुण्यवानी और साधना का ही चमत्कार था कि 'भक्त के घर भगवान् पधारे, पायो परमानन्द' यह पंक्ति आपके जीवन में अक्षरशः चरितार्थ हुई। इससे बढ़कर और क्या महापुण्यवानी हो सकती है कि अन्तिम क्षणों में शिष्या अपने गुरु के सान्निध्य और उन्हीं की गोद में महाप्रयाण करें।**

दिवंगत होने के पाँच-सात दिन पहले से पूज्या दादीजी महाराज साहब का स्वास्थ्य थोड़ा नरम चल रहा था। बीच में कुछ आराम सा लगा। सोचा कि संकट टल गया है। हमने राहत की सांस ली, लेकिन यह सब हमारा भ्रम ही था। वास्तव में स्थिति कुछ और ही थी। **'ज्ञानी के मन कुछ और है, विधि मन कुछ और'**। ऐसा लगता है कि यह पुण्यात्मा शिष्या अपनी गुरुवर्याश्री के अन्तिम दर्शनों की प्रतीक्षा में ही थी कि कब गुरुवर्याश्री पधारें और उनके दर्शन-वन्दन करके उनकी निश्रा में ही महाप्रयाण करूँ? उनकी इस सच्ची अन्तरंग भक्ति-भावना को साकार करने हेतु ही अनायास विहार करती हुई गुरुवर्याश्री उसी दिन पधारीं, जिसदिन आपको यहाँ से महाप्रयाण करना था। फाल्गुन कृष्णा एकादशी वि.सं. २०५६, दिनांक 1-3-2000 बुधवार को सुबह दस बजे गुरुवर्याश्री धाणसा पधारीं। अपनी सुशिष्या को दर्शन दिये। शिष्या ने भी दर्शन-वन्दन कर अपने आपको कृतार्थ किया। **आठ-दस घंटों के बाद सभी से क्षमापना करते हुए शाम को आठ बजे गुरु की निश्रा में, गुरु की गोद में समाधिपूर्वक महाप्रयाण कर दिया। बस, गुरु से अन्तिम विदा ले ली महावीर के शासन बगिया के इस माली ने।**

१. धन्य हो गई यह महान् पुण्यात्मा !

२. धन्य हो गई वह गुरुवर्या, जिसने अपनी सुयोग्य शिष्या को अश्रुकणों के साथ महाप्रयाण के लिए विदा कर दिया !

३. धन्य हो गई पौत्रियाँ जिन्हें ऐसी चारित्रगुणसम्पन्ना वात्सल्यमयी दादीमाँ मिली!

४. और धन्य हो गया धाणसा संघ उस महान् पुण्यात्मा को पाकर !

गुरुवर्याश्री ने, दादी की प्रियपौत्रियों ने, अन्य सभी गुरुबहनों ने, दादीजी के संसारपक्षीय समस्त परिवार ने और स्थानीय एवं अन्य उपस्थित समस्त श्रीसंघ ने शोक संतप्त हृदय एवं

दु:खपूरित अश्रुधारा के साथ आपको महाप्रयाण के लिये विदा किया।

पूज्याश्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के देह-विसर्जन का दु:खद समाचार विद्युत् गति से चारों ओर फैल गया। जिसने भी सुना हतप्रभ रह गया। विश्वास ही नहीं हो रहा था करुणामूर्ति दादीमाँ बेसहारा छोड़ जाएँगी। आहोर, जालोर, सियाणा, बागरा, साथूँ, सूरा, मोदरा, भीनमाल, पाली, जोधपुर आदि समीपवर्ती ग्रामों-नगरों के भक्तगणों के समूह के समूह पूज्या दादीजी महाराज साहब के अन्तिम दर्शन हेतु एकत्र होने लगे। राजगढ़, इन्दौर, भरतपुर, किशनगढ़, बैंग्लोर, मद्रास आदि सुदूरवर्ती श्रावकगण भी दूरभाष के द्वारा सूचना मिलते ही महाप्रयाण में विदा देने हेतु सम्मिलित हो गए। ओपोनी धर्मशाला मानो स्वयं रुदन कर रही थी। जहाँ सुबह, शाम, दोपहर हर घड़ी हर समय चहल-पहल रहती थी। आज वहाँ सब उपस्थित थे, लेकिन एक की, अनुपस्थिति ने ही सम्पूर्ण वातावरण में उदासीनता घोल दी थी।

चारों ओर विभिन्न सुगन्धित सुमन बिखेरकर बगिया का माली विदा हो चुका था। आपकी पार्थिव देह को विराजमान करने हेतु देवविमान सी सुन्दरतम नौखंडी शिबिका तैयार की गई। भक्तगणों द्वारा विभिन्न बोलियाँ बोली गई। **'जय जय नंदा, जय जय भद्दा'** की ध्वनि के साथ उस पार्थिव देह को नौखंडी शिबिका में विराजमान किया गया। अपनी जीवन आराध्या **प्रियदादीमाँ को अन्तिम विदाई देते हुए पौत्रियाँ बिलख उठीं।**

'महाप्रभाश्रीजी अमर रहे' नारों के साथ उनकी पार्थिव देह सैंकडों भक्तगणों की अश्रुपूरित नेत्रों से उठायी गई।

'जय जय नंदा, जय जय भद्दा' के साथ महाप्रयाण यात्रा प्रारम्भ हुई। हजारोंहजार जनमेदिनी अपनी पूज्या दादाजी महाराज साहब की शिबिका के साथ अश्रुभरी आँखों से आगे बढ रही थीं। बाजार और विभिन्न गलियों में होती हुई अन्तिमयात्रा श्री गोड़ीजी पार्श्वनाथ भगवान् के मंदिर के समीप पहुँची। चिता तैयार हुई। बरसते नयनों से, कांपते करों से सुपुत्र श्रीराजमलजी जमींदार, पौत्र पुष्पेन्द्र व प्रपौत्र मयंक जमींदार ने मुखाग्नि क्रिया प्रारम्भ की। यह एक अद्वितीय दृश्य था।

उपस्थित विशाल जनमेदिनी अश्रुभरे नयनों से अन्तिम संस्कार को देख रही थी। देखते ही देखते विशाल चिता की लपटों ने उस देह को अपने विशाल अंक में धूधू करते समा लिया। सारा वातावरण बेहद गंभीर हो उठा। दूसरे दिन रात्रि में प.पू. शासन दीपिका प्रवर्तिनी श्रीमुक्तिश्रीजी महाराज साहब के सान्निध्य में शोक सभा का आयोजन किया गया। सभी ने श्रद्धासुमनों की वर्षा की। सभी के नयन अश्रूपूरित थे। श्रीसंघ ने महाप्रयाण का मुक्तहृदय से उत्सव किया, वह धाणसा नगर के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

अन्त में हम इतना ही कह सकते हैं कि पूज्या दादीजी महाराज साहब का जीवन 'सत्यं शिवं सुंदर' था। जिसका जीवन सुन्दर होता है, उसका अन्त भी सुन्दर होता है और जिसकी मृत्यु सुन्दर होती है, उसके जीवन की धवलता असंदिग्ध होती है। आपका पूरा
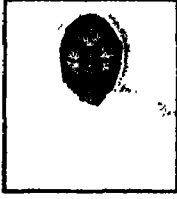
जीवन यशस्वी और गौरवमय रहा। आपका जीवन रत्नत्रयी की त्रिवेणी से सुशोभित था। आपका जीवन पावन गंगा से भी पवित्र था। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन कठोर साधना की कसौटी पर कसकर हमारे संघ-समाज और गुरुगच्छ में चार चाँद लगाये तथा अंतिम क्षणों में समाधिपूर्वक मृत्यु का सहज वरण किया।

ऐसी पुण्यात्मा के जीवन के बारे में हम क्या श्रद्धासुमन अर्पण करें? आपने अपनी महान् प्रभा से हम अज्ञ / अबोध आत्माओं को ज्ञान का प्रकाश दिया। हम जैसी भूली-भटकी आत्माओं को राह पर लगाया।

ओ दादीमाँ! आप से हम सभी की यही विनम्र प्रार्थना है कि आप जहाँ भी हों, वहाँ से हम भूले-भटके राहगीरों का पथप्रदर्शन करती रहें, धर्ममार्ग में दृढ़ रहने की प्रेरणा देती रहें।

ऐसी संयम और चारित्रिक ऊर्जा की धनी प.पूज्या दादीजी महाराज साहब के श्री चरणों में अनगिनत सश्रद्धा अभिवन्दन-अभिनमन और कृतज्ञता-ज्ञापित करते हैं।

18. MERI SHUBH KAMNAE

- Hadly Nunes

I met jain saint Dr. PriyaDarshanaji and Jain Saint Dr. Sudarshanaji for the first time at the Jain Mandir in Haridwar during my first trip to India. I have seen the beautiful and marvelous statues of God Shri Chintamani Parshwanath in this temple. I will never forget the traquility herein this sacred place.

I came to know of their book entitled **"Mahaprabha Smruti Granth"**, which will be published in memory of their grandmother Jain Saint Shri Mahaprabhaji.

It is from the depth of my heart I have been led here to meet with this immensity of beauty. Even in a time so burdened, I listen and hear love, and give freely that light, trusting generousity will carry it to the farthes treaches, one day to be tasted by all.

Never forget the orgin of this beauty, where it lives. In our hearts, peace and love as our dearest companion.

Finally, on the occasion of the publication of this book it is my sincere wish that the words which are written may be received with open hearts and minds, for the uplifting of all who read what they have shared.

Namaste,
Hadly Nunes
June 7, 2004
Haridwar

179 9th Street 2nd Floor,
Brooklyn NY 11215 USA.
Phone : 9177490356
email : hadley@hadleynuned.com

19. मेरी दृष्टि में : त्रिस्तुतिक श्रमणी परंपरा का प्रथम स्मृति-ग्रंथ

-डो. वसुन्धरा डोमाल 'वसु', देहरादून

जैन समाज की मणि वंदनीया साध्वीरत्ना पूज्या दादीजी महाराज साहब यद्यपि आज इस भौतिक संसार में नहीं हैं, किन्तु उनके महान् व्यक्तित्व की अमर छाप आज जैन एवं जैनेतर सब पर है। भारतवर्ष एक धर्मप्रधान देश है। जहाँ सदियों से महान् आत्माओं, ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तों का सम्मान होता रहा है।

भारत की वसुन्धरा पर अनेक महान् आत्माएँ उत्पन्न हुईं। इन आत्माओं में परम पूजनीया, परम वात्सल्यमयी दादी मातेश्वरी साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब का नाम सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

भगवान् महावीर की वाणी है-"धम्मस्स विणओ मूलं"-धर्म का मूल विनय है। नन्हीं दूब के समान संत को तो हमेशा नन्हा ही रहना चाहिए। गुरु नानक ने संतों की परिभाषा देते हुए कहा है-"**नानक नन्हें हो रहो जैसे नन्हीं दूब।**"

पूज्या दादीजी महाराज साहब ऐसी ही विनम्र प्रकृति की थीं। मुझे उनके सम्पर्क / सान्निध्य में रहने का सौभाग्य बहुत पहले मिला था। तत्पश्चात् समय-समय पर मुझे आपके दर्शनों का लाभ मिलता रहा।

आप अलौकिक व्यक्तित्व की धनी थीं। महाप्रभा रूप आदित्य मालवांचल के वरमंडल ग्राम के क्षितिज पर उदित हुआ तथा अपने जीवन की संध्या की अन्तिम रवि-रश्मियाँ पश्चिमांचल मरुधर माटी धाणसा में ही समेटीं और लीला ने अपनी जीवनलीला संवरण की।

साध्वी डो. प्रियदर्शनाश्रीजी म.सा. एवं डो. सुदर्शनाश्रीजी म.सा. ने आपके कुशल नेतृत्त्व में एवं आपकी ही सुप्रेरणा से उच्चस्तरीय व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त की तथा साहित्यिक क्षेत्र में जो कार्य किया, वह अपने आप में अलौकिक है। धन्य है आपकी ज्ञान के प्रति लगन एवं निष्ठा को!

पूज्या दादीजी महाराज सा. की 'दीक्षा-अर्धशताब्दी' एवं 'जन्म-शताब्दी में दशाब्दी' के उपलक्ष्य में साध्वी डो. प्रिय-सुदर्शनाश्रीजी द्वय ने प्रस्तुत 'महाप्रभा स्मृति-ग्रन्थ' (सिखा गई.... दिखा गई....) के आलेखन व संपादन का श्रमसाध्य अतिसुन्दर जो कार्य किया है वह अपने आप में अद्वितीय है। धन्य है गुरुणी मैया के प्रति इनके समर्पितभाव को!

निःसंदेह रूप से मैं यह कह सकती हूँ कि त्रिस्तुतिक श्रमणी परम्परा में तो प्रस्तुत स्मृति- ग्रंथ पहला ही होगा। जो अपने आप में एक अनूठी विशेषताएँ लिए हुए हैं। जहाँ तक मेरा खयाल है श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्रमणी परम्परा में भी संभवतः ऐसा स्मृतिग्रंथ

अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ है, क्योंकि मैंने मेरे जीवन में अनेक स्मृतिग्रंथ देखे हैं, किंतु आजतक ऐसा स्मृतिग्रन्थ देखने में नहीं आया। यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण कथन नहीं, बल्कि मैंने इसे आद्योपान्त बड़े गौरपूर्वक पढ़ा, देखा, वही सब कुछ यहाँ लेखनीबद्ध किया है।

प्रस्तुत स्मृति-ग्रन्थ की सम्पूर्ण पाठ्यसामग्री को साध्वी डो.द्वय ने बड़ी सरसता, सरलता, रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता के साथ पाँच खण्डों में वर्गीकृत किया है-

१. श्रद्धार्चना २. अभिनंदनीय व्यक्तित्व ३. व्यक्तित्व के प्रतिबिम्ब ४. विज्ञता और ५. विविधा।

प्रस्तुत स्मृति-ग्रंथ की खूबी यह भी है कि इसमें धर्म-दर्शन-संस्कृति व जैन धर्म आदि से सम्बन्धित एक भी खण्ड नहीं होने के बावजूद करीबन पाँचसौ पृष्ठों का यह ग्रंथ अपने आप में पूर्णता लिये हुए है, अद्वितीय है।

प्रस्तुत स्मृतिग्रन्थ के प्रकाशन वेला के पावन प्रसंग पर मैं उस महान् व्यक्तित्व की धनी दिव्यात्मा को कोटि-कोटि नमन करती हूँ। मेरी ओर से बहुत-बहुत हार्दिक शुभकामनाएँ!

20. रत्नत्रय की साधिका

- प्रो. डा. मदनराज डी. महेता, जोधपुर

पूजनीया साध्वीश्री महाप्रभाश्रीजी ने गौरवशाली जैनधर्म एवं दर्शन की लोकवंद्य एवं पवित्र परम्परा का अपने सार्थक योग से विस्तार किया। आयुष्य के अंतिम क्षणों तक उन्होंने 'रत्नत्रय' की साधना की एवं आत्मोत्कर्ष के लिये सदैव समुद्यत एवं समर्पित रहीं। धैर्य, गांभीर्य, करुणा एवं कर्तव्यनिष्ठा प्रभृति सात्त्विक गुण उनमें कूटकूट कर भरे थे। उनका व्यक्तित्व सदैव स्मरणीय रहेगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनका 'स्मृतिग्रंथ' नैतिक गुणों को उद्भावित करनेवाला अभिनन्दनीय ग्रंथ होगा।

21. हार्दिक श्रद्धांजलि

- डा. तेजसिंह गौड़, उज्जैन

श्रीमान् पी.सी. गादिया के माध्यम से समाचार मिले गुरुणीजी सुसाध्वीजी श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब का दिनांक 1-3-2000 को देवलोक गमन हो गया है। इस समाचार से हार्दिक दुःख हुआ। अपनी पूजनीया गुरुणीजी के वियोग से आपको जो दुःख हुआ होगा, आघात लगा होगा; उसकी तो मेरे लिये कल्पना करना भी कठिन है। क्रूरकाल के सम्मुख सभी विवश है।

यह भी सत्य है कि **'टूटी की बूटी' नही है**। शाश्वत सत्य है कि जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है। जिसप्रकार हम जन्म के अवसर पर खुशियाँ मनाते हैं, उसीप्रकार मृत्यु का भी प्रसन्नतापूर्वक सामना करना चाहिये, किंतु, ऐसा होता नहीं है। जिनके सान्निध्य में रहे, जो जीवन निर्मात्री हो, उसके वियोग से कष्ट होना स्वाभाविक है, किंतु विवशता है। हमारे सामने धैर्य धारण करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय / मार्ग शेष नहीं है। अस्तु, दुःख की इन घड़ियों में आप धैर्य धारण करें। चिंता छोड़कर चिंतन करें। अपनी गुरुणीमैया के अवशिष्ट कार्यों को पूरा करने के लिये पुरूषार्थ करें। उनके बताये मार्ग पर चलने के लिए दृढ़ता से अपने कदम बढ़ायें। अपनी ओर से उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

22. श्रद्धा सुमन

- डॉ. अखिलेशकुमार राय, छतरपुर (म.प्र.)

परमश्रद्धेया पूज्या दादीजी महाराज साहब के देवलोकगमन के विषय में यथासमय सूचना मिली थी। इस बीच मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या लिखूँ ? इस बात का अफसोस अवश्य है कि चाहते हुए भी, विगत वर्षों में, मैं उनसे आशीर्वाद न ले सका और न उनके दर्शन ही कर सका।

इस संदर्भ में आपको तो सान्त्वना के दो शब्द लिखना मेरे लिए धृष्टता होगी। आप स्वयं संत हैं और संयोग-वियोग की परिधि के परे ही आपकी जीवनदृष्टि है, चिन्तनशीलता है। मैं तो पूर्णतः एक संसारी पुरुष हूँ, इसलिए अविचल नहीं रह सकता तथा अनेक अवसरों पर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता हूँ।

अस्तु, समझ में नहीं आता कि क्या लिखूँ ? बस इतना ही कि परम पूज्या दादी माताजी के श्रीचरणों में सश्रद्धा कोटि-कोटि वन्दना ! श्रद्धा-सुमन अर्पण !

23. हार्दिक संवेदना

- डॉ. अमृतलाल गांधी, जोधपुर

पत्रिका एवं भास्कर में परम श्रद्धेया परम पूज्या साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के कालधर्म प्राप्त होने के समाचार पढ़कर अत्यधिक शोक हुआ। आज आप पर से पूज्या दादीजी महाराज का वरद हस्त एवं छत्रछाया उठ गई। अतःशोक एवं दुःख होना स्वाभाविक है।

अन्य दृष्टि से आप इसे शासनदेव एवं विश्वपूज्य गुरुदेव की, आप दोनों पर असीम

अनुकंपा समझिये कि इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश तक उनकी छत्रछाया आप पर बनी रहीं, जिसमें आपने उनकी भरपूर वैयावच्च करते हुए, स्वयं की संयम आराधना में सुदृढ़ता प्राप्त करते हुए जिनवाणी के विपुल ज्ञान भंडार में उल्लेखनीय अभिवृद्धि की। जिसकी मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ।

शासनदेव परम पूज्या साध्वीप्रवरा श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज को शांति और सद्गति प्रदान करें। इसी प्रार्थना के साथ मैं सपरिवार हार्दिक संवेदना अभिव्यक्त करता हूँ।

24. विनम्र श्रद्धांजलि

- डॉ. सागरमल जैन, शाजापुर

परम पूज्या दादीजी महाराज साहब के स्वर्गवास के समाचार ज्ञात हुए। अतीव दुःख हुआ! सुदीर्घ संयम पर्याय के साथ आचारनिष्ठ रहकर उन्होंने जो साधना की, वह अनुमोदनीय और अनुकरणीय है। अमित वात्सल्य का जो छत्र आपके ऊपर था, उसका अभाव तो निश्चय ही स्मृति को कुरेदता रहेगा। फिर आपने स्वयं भी उनके सान्निध्य में रहकर समभाव की कठोर साधना की है। अत: मेरा यह लिखना कि धैर्य धारण करें। परम्परा के निर्वाह के अतिरिक्त कोई अर्थ नहीं देगा। अब तो स्वयं ही अपना मार्गदर्शक बनकर संयमसाधना और ज्ञानसाधना करनी है।

उन महान् आत्मा के प्रति हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।

25. दिव्य जीवन

- डॉ. जवाहरचन्द पटनी, कालन्द्री (राज.)

वात्सल्य का क्षीर पिलाया जिस दादी मातेश्वरी ने जगत् को, जिसके नयनों में सरलता की दुग्धधवल गंगाधारा नित्य लहराती थी। जिसने अपने तन को तप से कुंदन बना दिया था। जो मौन-मधुर मुस्कान से सबको आशीर्वाद के फूल बरसाती थीं। उस दिव्य ज्योति के दर्शन से रोते हुए मनुष्य हँसते हुए जाते थे। उसकी परम पावन स्मृति से आँखों में अश्रु छलछलाने लगते हैं।

मैं कई वर्षों से परम पूज्या गुरुवर्याश्री के सम्पर्क में रहा। इसका श्रेय भी उनकी पौत्री द्वय विदुषी साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी व डॉ. सुदर्शना श्रीजी महाराज को हैं, जिन्होंने मेरी जीवनसंध्या में उनके दर्शन कराये।

उनकी महाप्रभा इतनी सौम्य थी, जैसे चन्द-ज्योत्स्ना। वे सचमुच परम पूज्या साध्वी चिंतामणिरत्न महाप्रभा थीं। यथा नाम तथा गुण।

उनके आशीर्वाद से उनकी पौत्री द्वय डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी व डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी साध्वियों ने पी-एच.डी. की उपाधि का परम शोभनीय अलंकार पहना। उनकी सुरतरु छयातले वे अब डी. लिट् कर रही थीं। डी. लिट् भी महर्षि राजेन्द्रसूरिजी महाप्रभु पर कर रही हैं। किन्तु पूज्या दादी मातेश्वरी का साया उठ जाने से इस कार्य में कुछ शिथिलता आ गई।

महाप्रभु राजेन्द्र गुरुवर आत्मरमण मुनीश्वर थे, जो उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में जगत् कल्याण के लिए इस धराधाम पर जन्मे थे। सन् 1827 से सन् 1906 तक उन्होंने 61 ग्रन्थ रचे और अभिधान राजेन्द्रकोश-अर्द्धमागधी-प्राकृत-संस्कृत का 'विश्वकोश' रचा। भारतीय संस्कृति की उससमय उन्होंने दुंदुभी बजाई जब ब्रिटिश राज्य में अंग्रेजी की चकाचौंध में भारत का प्रबुद्धवर्ग संमोहित हो गया था। उनके अद्वितीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने पश्चिम जगत् को चमत्कृत कर दिया।

पूज्या दादी माताजी कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा वि. संवत् १९६६ में वरमण्डल (म.प्र.) जिला-धार में जन्मी थीं। श्रेष्ठी जड़ावचंदजी एवं मातेश्वरी वजीबाई की लाड़ली लीलावती ने जब जन्म लिया, उस समय परिवार में मानो चिंतामणि देवलोक से उजाला करने के लिए आ गयी हो। परन्तु विधि का विधान कहिए या भवमण्डप का नाटक! लाड़ली लीलावती को संसार का सुख अधिक नहीं था, शाश्वत सुख के पथ पर प्रयाण करने के लिए जन्मी थी। वैशाख शुक्ला दसमी वि.सं. २००८ को उन्होंने दीक्षा ली और लोकमंगल की ज्योति जगाती हुई फाल्गुन कृष्णा एकादशी वि.सं. २०५६ बुधवार दिनांक 1-3-2000 सायं आठ बजे दिवंगत हुई।

धाणसानगरी (जिला-जालोर) के श्रीसंघ का महापुण्य था कि अंतिम प्रयाण उस धर्मनगरी में हुआ। उनकी महाप्रयाण यात्रा में मालवा, मारवाड़, मेवाड़, निमाड़, गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश आदि से अनेक जन आये और उस दिव्यात्मा को अश्रुमुक्ता बरसा कर अर्घ्य दिया।

उनकी तपस्या, संयमनिष्ठा और ध्यानयोग मुद्रा अद्वितीय थी। इकराणवे वर्ष की आयु में भी उन्होंने एकासणा किया और विदेहरूपा रहकर जीवन को दिव्यतम बना दिया।

मैं उनके दर्शन-वन्दन हेतु भीनमाल और धाणसा अनेकबार गया। दिव्यजीवन की भौतिक ज्योत नहीं रही, परन्तु अन्तर्ज्योति सदा प्रज्वलित है; वह ज्योति जन-जन में अहिंसा और प्रेम का उजाला फैला रही है।

मैं जब उनके विषय में स्मरण करता हूँ तब मुझे एक दिव्य प्रभा दिखाई देती है जो यह सन्देश देती हैं 'जड़ता को मिटाओ, चेतन को जागृत करो। विश्वनाथ, करुणासागर प्रभु हृदय-मन्दिर में पधारेंगे।'

दिव्य जीवन के चरण-कमलों में अनन्त प्रणाम!

26. आत्मनिष्ठ विभूति

- डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर

मुक्तिपथ पर आगे कदम बढ़ाती हुईं पू. साध्वीप्रवरा श्री महाप्रभाश्रीजी की पुनीत आत्मा यहाँ के पड़ाव को 1-3-2000 को सदा-सदा के लिए छोड़ कर चली गईं। 'स्व' में स्थायी रूप से रहने का उद्यम करनेवाली यह आत्मा संयम के प्रति कितनी जागरूक रही है; यह उनका जीवन दर्शाता है। अहिंसा भगवती की अनन्य उपासिका दादीजी महाराज ने अन्तिम समय तक किसी वाहन का उपयोग नहीं किया। पुद्गल शरीर के आकर्षण में बद्ध हो कभी अशुद्ध दवा का सेवन नहीं किया-यह सब आचरण यह दर्शाता है कि उनकी आत्मा के प्रति कितनी निष्ठा थी। **'स्व' और 'स्व का अवलम्बन' स्वावलम्बन ही जिनका लक्ष्य था-ऐसी वह पुण्यात्मा** यथाशीघ्र अपना संसार परिभ्रमण समाप्त कर शाश्वत सुख की भोक्ता बनें, यही मंगल कामना है।

उस दिव्यात्मा के प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि!

27. पुण्यस्मरणाञ्जलयः

- पं. जयनंदन झा, जोधपुर (राज.)

परमश्रद्धेया स्वनामधन्या साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाजी (पू. दादीजी) महाराज साहब अब इस संसार में नहीं रही अर्थात् परम ज्योति में ज्योति समाविष्ट हो गई। यह वृत्त पत्र के माध्यम से प्राप्त कर मेरा मन कुछ क्षण के लिये अति खिन्न सा हो गया, किन्तु इसी को संसार कहते हैं। यह सर्वविदित एवं सर्वमान्य है। यह कड़वी घूँट तो एकदिन सब के लिए नितान्त अनिवार्य है।

किन्तु अब आप जैसे धर्मानुचारिणी के धर्मोपदेश से वंचित अशान्त जनसाधारण के मानस के लिये कौन प्रकाशस्तम्भ प्रोद्भासित करेगा? भव के मायाजाल में उलझा हुआ अतृप्त प्राणिमात्र को अब कौन ज्ञानपीयूष का पान कराकर सदा-सदा के लिये तृप्त करेगा? आपका पार्थिव शरीर अब अवश्य ही हमारे पास नहीं रहा है। पर, कीर्ति कौमुदी की शीतल एवं स्निग्ध रोशनी जन-जन के मन को प्रकाशित कर रही है। यह कथन सत्य ही है कि **"कीर्ति र्यस्य सः जीवति"**। मानवीय गुणों की मानो आप प्रतिमूर्ति ही थीं। ममता, करुणा, सहनशीलता आदि गुणसमूह तथा गुरुजनों के प्रति अटूट सद्भक्ति मानो आपके रोम-रोम से प्रकट हो रही थी। स्वाध्याय, माला-जाप आदि शास्त्रीय विधि से दैनिक जीवन-यापन स्तुत्य एवं अन्य के लिये अनुकरणीय है। ज्ञान चर्चा तो आपके जीवन का अविभाज्य अंग सा बन गया था। **इसी का प्रतिफल है कि "गुरु गुड़ चेला शक्कर" इस कहावत को चरितार्थ करनेवाली आपकी शिष्याओं में साध्वी डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी म. साध्वीद्वय**

तो अपने द्वारा प्रणीत कृतियों से सूर्य एवं चन्द्रमा की भाँति अपनी प्रखर रश्मियों से युग-युग तक धर्म एवं ज्ञान प्रेमियों के हृदय में आस्थाजनक स्थान बनाने में पूर्णतः सक्षम हैं। यह सम्पूर्ण श्रेय आपकी प्रेरणा, आत्मीयता पूर्ण सहयोग एवं श्रेष्ठ मार्गदर्शन को ही जाता है।
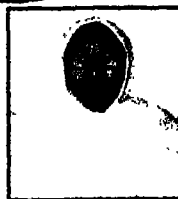
अन्त में इतना ही व्यक्त करना क्या पर्याप्त नहीं होगा कि **आप तो गुणमाला की मणिकाओं में सुमेरुमणिका ही थीं**, जिसके अभाव में वह माला अपूर्ण ही रहती है। आपकी पवित्र गुणानुचर्चा से मेरी वाणीजन्य लेखनी धन्य हो गई। आप शाश्वत शान्ति को पाकर उस महती ज्योति को और भी देदीप्यमान करें, यह मेरी अन्तरात्मा से निवेदन है।

"तमसो मा ज्योति र्गमय" यही सत्य है।

28. हार्दिक संवेदना

- चैतन्यकुमार काश्यप, रतलाम

तीर्थस्वरूपा पू. साध्वीजी श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब ने अपनी नब्बे वर्ष की अवस्था एवं उनपचास वर्ष के दीर्घ दीक्षा पर्याय में चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष तप-त्याग, भक्ति, सेवा एवं समर्पण के नवीन आयामों की संस्थापना की है। आपके द्वारा संस्थापित इन आयामों के फलस्वरूप समस्त श्रीसंघ आपका चिर-ऋणी रहेगा। आपके कुशल मार्गदर्शन के परिणामस्वरूप ही आज श्रीसंघ में आपकी विदुषी शिष्याओं डा. प्रियदर्शनाश्रीजी, डॉ. सुदर्शनाश्रीजी महाराज साहब ने लेखन व साहित्य के क्षेत्र में नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं, वंदनीया हैं। पूज्या साध्वीजी के स्वर्गारोहण पर मैं अपनी हार्दिक संवेदना एवं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि स्वर्गस्थ परम आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करें।

29. श्रद्धा-सुमन

- सौभाग्यमल सेठिया-एडवोकेट, निंबाहेड़ा

महान् तपस्विनी वयोवृद्धा परम पूज्या साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के दिवंगत होने के दुःखद समाचार मिले। आपका यशस्वी जीवन तप-त्याग व माधुर्य से भरा था। ऐसी महान् आत्माएँ संसार में कम ही मिलती हैं। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन आत्मसाधना व समाजसेवा में अर्पित किया था। इतना ही नहीं, आपने अपनी शिष्याओं को पढ़ा लिखाकर सुयोग्य बनाया। मेरा दुर्भाग्य रहा कि मैं जालोर के पश्चात् आपश्री के दर्शन नहीं कर सका। आपको भी स्नेहशीला दादीमाँ का अभाव खटकेगा ही, परंतु.........।

स्वर्गीया प.पूज्या दादीजी महाराज साहब संसार की असारता को समझ वैराग्यवंत हुईं

और दीक्षा अंगीकार करके जीवन को कठोर संयमसाधना में लगाया और मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर हुईं।

दिवंगत आत्मा को शासनदेव शांति प्रदान करें। उस दिव्यात्मा को शुद्धहृदय से श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए शतशः वन्दन।

30. सादगी की प्रतिमूर्ति

- कोलचंद धर्मचंद गांधी मुथा, भीनमाल

परम पूजनीया वयोवृद्धा साध्वीप्रवरा श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब शान्तस्वभाविनी, सरलता एवं सादगी की प्रतिमूर्ति थीं। धर्ममय जीवन, भेदभाव रहित आदरणीय भाव उनकी जीवन शैली में निरन्तर झलकते थे। वयोवृद्धा होते हुए भी, अशक्ति को झेलते हुए भी वे अपने मन से सचोट स्वस्थ लगती थीं; जो उनकी क्रियाशैली से कभी नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता था। उनकी वाणी का धर्ममय बोध भक्तजन की अन्तर् आत्मा तक प्रवेश कर जाता था। ऐसी थीं वो अनन्य आत्माओं की कल्याणकारिणी भव्य आत्मा श्री महाप्रभाश्री।

सादा जीवन, धर्ममय विचार।
दृढ़ निश्चय, जीवनाधार॥

ऐसी महानतम धर्मप्रभाविका परम पवित्र दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कोटिशः वंदन।

31. सच्ची श्रद्धांजलि

- अचलचंद जैन, सायला (राज.)

वयोवृद्धा साध्वी शिरोमणि प.पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के देवलोक गमन के समाचारों से हृदय व्यथित हुआ, परन्तु 'आत्मा अमर है' का स्मरण कर मन को शान्त किया।

आपश्री सरलस्वभाव की धनी, विदुषी एवं कठोर साध्वाचार पालने वाली साध्वी शिरोमणि थीं। आपश्री के देवलोकगमन से निश्चितरूप से जैन समाज को अपूरणीय क्षति हुई है और अब इस अपूरणीय क्षति की पूर्ति का जिम्मा निश्चितरूप से आप दोनों साध्वीरत्नों पर हैं।

आप दोनों समाज को आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक एवं साहित्यिक मार्गदर्शन देकर साध्वी शिरोमणि श्री महाप्रभाश्रीजी को सच्ची श्रद्धांजलि दे सकती हैं।

मुझे विश्वास है कि आप दोनों के सान्निध्य में जैन समाज सभी क्षेत्रों में प्रगति की ओर अग्रसर होगा।

32. हार्दिक श्रद्धांजलि

- कन्हैयालाल बाँठिया, दिल्ली

प.पू. महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के महाप्रयाण के दुःखद समाचार कानपुर से रवाना होने के पूर्व मिले थे। यह एक संयोग मात्र था कि धाणसा, जिला जालोर में मुझे उनके अन्तिम दर्शन-वंदन का लाभ मात्र एक माह पूर्व मिला। उनकी अक्षुण्ण स्मृति हृदय पटल पर जीवन पर्यन्त अंकित रहेगी। उनकी छत्रछाया में आपने जो ज्ञानार्जन किया। उनके दिवंगत होने के पश्चात् वह और भी अधिक फले फूलें, चौगुना-सौगुना हो।

परम कृपालु प्रभु से मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को चिरशांति प्रदान करें। उनकी लौकिक जीवनयात्रा के अवसान पर नश्वरदेह के परमाणुओं के विसर्जन का महोत्सव अभूतपूर्व रूप से मनाया गया होगा। अन्तरायकर्मवश मैं इसमें सम्मिलित न हो सका। इस बात का मुझे खेद है। उन महान् दिव्यात्मा के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि !

33. दिव्यात्मा

- ललित मेहता 'जालोरी', कोयम्बतूर

परम पूजनीया दादीजी महाराज साहब के देवलोक गमन के समाचार दैनिक पत्र में ज्योंही पढ़ें, हृदय दुःख से सराबोर हो उठा। एक महान् शान्तस्वभाविनी आत्मा का चला जाना सम्पूर्ण जैन समाज के लिए अपूरणीय क्षति है।

आपके समाज-सुधार के क्रान्तिकारी विचार युवा-युवतियों को जागृत करने की दिशा में एक नवीन कदम थे। पूर्णविश्वास है आपके इस अभियान को डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी महाराज साहब पूर्ण करेंगी। इसी भावना के साथ मैं उस दिव्यात्मा को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

34. शोक-संदेश

- श्री राजेन्द्रसूरि जैन कीर्तिमंदिर तीर्थ ट्रस्ट एवं त्रिस्तुतिक समाज, भरतपुर

परम श्रद्धेया पूज्या गुरुणीजी श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के स्वर्गवास की आकस्मिक दुःखद सूचना सुनकर यहाँ समाज में एकदम शोक छा गया। सबकी आँखें अश्रुपूर्ण हो गईं। यह संपूर्ण त्रिस्तुतिक समाज के लिए अपूरणीय क्षति हुई है। इस क्षति की निकट भविष्य में पूर्ति होना असंभव है।

यहाँ कीर्तिमंदिर तीर्थ ट्रस्ट स्थल पर एक शोक सभा का आयोजन भी किया गया।

जिसमें दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करने हेतु दो मिनट का मौन रखा गया एवं शोक संतप्त उनकी शिष्याओं को इस कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करने हेतु भगवान् से प्रार्थना की गई। उस पुण्यात्मा के श्रीचरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित।

35. श्रद्धा-सुमन

- त्रिस्तुतिक श्रीसंघ आलोट, जि. रतलाम (म.प्र.)

स्वर्गीया परम पूज्या श्रीमहाप्रभाश्रीजी (प.पू. दादीजी) महाराज साहब के जीवन में महान् उपलब्धियाँ थीं। उन्होंने अपने जीवन में तप-त्याग, ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय और नियम-संयम का अनुसरण कर समाज को धर्ममय प्रेरणा देकर जीवन सफल व धन्य बनाने का संदेश दिया था।

आज से करीब पच्चीस वर्ष पूर्व स्व. साध्वीप्रवरा श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज सा. का चातुर्मास हमारे यहाँ हुआ था। उस समय चातुर्मास में काफी धर्म आराधनाएँ हुईं, जो आज भी चिरस्मरणीय हैं। जब कभी उनके दर्शन, वंदन करने जाते थे तो यही संदेश देती थीं कि धर्म का आचरण करो। नियम-संयम का पालन करो। मनुष्यभव बड़े ही पुण्य से प्राप्त होता है। मन में हमेशा अच्छे विचार रखो। राग-द्वेष का त्याग करो। देवदर्शन नियमित करो। जीवन में कभी अहंकार मत करो। हमेशा करुणा भाव बनाये रखो। सत्य-अहिंसा का पालन करो। स्वाध्याय करो। इतना ही नहीं, वे हम सभी को आत्मीयभाव से मांगलिक सुनाती और आशीर्वाद देती थीं। आलोट श्रीसंघ पर आपकी महती कृपा रही है। ऐसी महान् आत्मा के श्रीचरणों में त्रिस्तुतिक श्रीसंघ आलोट नमन करता है तथा अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि उस दिव्यात्मा को शांति व मोक्ष प्रदान करें।

36. गंगा से अधिक निर्मल जीवन

- श्रीजैन श्वेताम्बर त्रिस्तुतिक संघ, सूरा (राज.)

परम पूज्या समतामूर्ति साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के दिवंगत के दुःखद समाचार सुनकर संघ में शोक की लहर छा गई। सूरा श्रीसंघ के प्रति आपकी विशेष कृपा दृष्टि रही। संघ की भी उनके प्रति अपूर्व भक्ति-भावना रही। आपने हमारे यहाँ सन् 1994 में यशस्वी चातुर्मास किया था। उसकी स्मृति आज भी तरोताजा है।

नब्बे वर्ष की उम्र में कठोर संयमयात्रा का पालन कर आपने हमारे संघ-समाज का खूब गौरव बढ़ाया। आपका श्रमणीजीवन गंगा से भी अधिक शुद्ध विशुद्ध था।

सूरा श्री संघ का एक-एक बच्चा पू. दादीजी महाराज साहब के प्रति श्रद्धा से समर्पित है।

सूरा संघ की ओर से उस दिव्यात्मा को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित है।

37. निर्दोष साध्वी जीवन

- श्री जैन श्वेताम्बर सकल श्रीसंघ, पाँथेड़ी (राज.)

परमश्रद्धेया सरलस्वभाविनी पूज्या श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के आकस्मिक स्वर्गारोहण होने के समाचार पढ़ते ही पूरा समाज गहरे शोकसागर में डूब गया।

लंबी आयु तक विशुद्ध निर्मल संयम पालकर संघ एवं समाज की सेवा का अनूठा उदाहरण आपने समाज के समक्ष रखा, जिसे हम युगों युगों-तक भी नहीं भूल सकेंगे।

आपके कठोर साध्वी जीवन का निर्दोष-निर्मल सौरभ दूर-दूर तक आज भी महक रहा है। जो सभी के लिए प्रेरणादायी है। आपने हमारे यहाँ नवपद ओली, शीतकालीन धार्मिक कन्याशिविर आदि करवाकर श्रीसंघ को लाभान्वित किया। **आपका चातुर्मास करवाने की भावना मन की मन में ही रह गई। साकार नहीं हो पायी। काश ! एक चातुर्मास का लाभ हमें मिल जाता।** पाँथेड़ी संघ, ऐसी साधनाशील महान् विभूति पूज्या दादीजी महाराज साहब के चरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

38. 'कैसे भूल जावें ? एक स्मरणाञ्जलि'

- श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्रीसंघ, किशनगढ़ (राज.)

परम श्रद्धेया साध्वीरत्ना संयम साधिका दादीजी (श्रीमहाप्रभाश्रीजी) महाराज साहब के कालधर्म प्राप्ति का दुःखद संदेश पाकर श्रीसंघ किशनगढ़ को बड़ा हृदयाघात हुआ, मानो वज्रपात हो गया। संपूर्ण संघ एक पल तो स्तब्ध रह गया।

अकल्पनीय सा प्रतीत हुआ। यह पौद्‌गलिक शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है, आत्मशरीर नहीं। पू. दादीजी महाराज साहब पौद्‌गल शरीर नहीं, आत्मस्वरूपा थीं। अतः ऐसा हम कैसे कहें कि आज वे हमारे मध्य नहीं हैं ? उनका आत्मस्वरूप आज भी हमारे स्मृतिपटल पर वैसा ही विद्यमान है, जैसे वे व्यक्तिशः हमारे मध्य विद्यमान थीं। उनकी पावन स्मृतियाँ निःसंदेह हम भव्य प्राणियों को सद्‌मार्ग की ओर उन्मुख कर सद्‌गति को प्राप्त करने की प्रेरणा देती रहेंगी।

किशनगढ़ मूर्तिपूजक श्रीसंघ बोझिल हृदय से अपने श्रद्धा-सुमन इस अवसर पर आपके

श्रीचरणों में समर्पित कर अपने आपको कृतज्ञ मानता है। प्रभु वीर से संघ की यही प्रार्थना है कि कालधर्म प्राप्त उस महान् आत्मा को चिर शांति प्रदान करें।

इन्हीं स्मृति-पुष्पों की अंजलि समर्पित करते हुए...।

39. उनका जीवन आदर्श था

- श्री त्रिस्तुतिक श्रीसंघ, भँवरलाल छाजेड़ अध्यक्ष, नीमच (म.प्र.)

श्री सौधर्मबृहत्तपोगच्छीय जैन त्रिस्तुतिक श्रीसंघ गच्छाधिपति, साहित्यमनीषी, तीर्थप्रभावक, आचार्यप्रवर राष्ट्रसंत श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब की शुभाज्ञानुवर्तिनी वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी, साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब का जालोर जिले के धाणसा नगर में दिनांक 1 मार्च 2000 को देवलोक गमन हो गया। साध्वीजी महाराज साहब के महाप्रयाण के अभाव से जैन त्रिस्तुतिक संघ में शोक व्याप्त हो गया।

दिनांक 3 मार्च 2000 को श्रीराजेन्द्रसूरिज्ञानमंदिर नीमच में श्री भँवरलाल छाजेड़ की अध्यक्षता में त्रिस्तुतिक जैन श्रीसंघ तथा अ.भा. श्रीराजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद शाखा नीमच की ओर से श्रद्धांजलि सभा का आयोजन कर शोक श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

शोकप्रस्ताव में साध्वीजीश्री के गुणों, उनके आदर्श जीवन, तप-त्याग एवं धर्म के प्रति निष्ठा, कठोर साध्वाचार-पालन, जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिक्षण शिविरों के आयोजन, जैन संस्कृति व आदर्श जीवन की प्रेरणा के कार्यों का गुणगान किया गया।

साध्वीजीश्री के निधन से त्रिस्तुतिक जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

जिनेश्वरदेव से प्रार्थना कर उनकी आत्मा की शांति के लिए तेरह-तेरह नवकार का जाप कर श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

40. शोकाञ्जलि

- सम्पूर्ण सदाचार समिति, इन्दौर (म.प्र.) एवं रमणिकलाल दोसी

मृत्यु जीवन का ऐसा सत्य है, जो पूर्णरूप से निश्चित है। उसका कोई विकल्प नहीं है। संसार का यह एकमात्र सत्य, जिसे अनिच्छा एवं दुःखी हृदय से भी स्वीकार करना ही पड़ता है।

करुणामूर्ति, परम श्रद्धेया गुरुवर्या सुसाध्वीजी श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के देवलोक गमन की सूचना पाकर सदाचार समिति इन्दौर को अत्यन्त हार्दिक दुःख हुआ। श्रद्धेया महासतीजी के देवलोकगमन के कारण जिनशासन को जो अपूर्व क्षति हुई है, उसकी पूर्ति सन्देहास्पद है।

इस विषाद की घड़ी में सदाचार समिति सान्त्वना एवं शोकाञ्जलि प्रेषित करती है।

परमात्मा से विनम्र प्रार्थना है कि उस सद्गत आत्मा को परम शान्ति प्रदान करें।
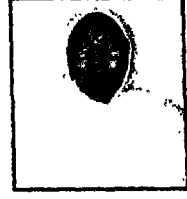
41. जादुई व्यक्तित्व

- श्री श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्रीसंघ, मदनगंज. (राज.)

परम पूजनीया परम वात्सल्यमयी दादीमाँ श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब का अन्तिम चातुर्मास धाणसा श्री संघ को मिला। संघ धन्य हो गया। 1 मार्च 2000 को वह सूर्य अस्त हो गया। सारा देश ही स्तब्ध रह गया। हम श्रीसंघ पर तो मानो व्रजपात हो गया। दादीमाँ महाराज साहब हजारों में एक थीं। उनके व्यक्तित्व में ऐसा जादू था कि एक बार संपर्क में आने पर जीवन भर उस दर्शन व याद को भुलाया नहीं जा सकता। वे दृश्य आँखों में अभी भी तैरते रहते हैं। वे आज भी सभी के हृदय पटल पर विराजमान हैं।

हे गुरुणी मैया (दादीमाँ) ! आपने जो संयम लेकर रास्ता प्रशस्त किया। उस पर हम चलें। आप मोक्ष गामी बनें। दुःख भरी आहों के साथ व हृदय की असीम आस्था के साथ आपको शत-शत वन्दन।

42. शाश्वत सुख प्राप्त करें

- श्री राजेन्द्र महिला मंडल, मदनगंज (राज.)

परम पूज्या श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के देवलोकगमन की खबर मदनगंज वासियों को फोन द्वारा मिली। जिससे पूरे मदनगंज शहर में शोक व्याप्त हो गया। जिसने भी सुना बड़ा दुःख प्रकट किया।

कुछ भाई बहन उसी दिन पू. दादीजी महाराज साहब के अंतिम दर्शन करने के लिए 3 मार्च 2000 को होने वाली महाप्रयाण यात्रा में सम्मिलित होने हेतु निकल पड़े। अंतिम दर्शन के लिए धाणसा पहुँचे। अपारजन समूह के बीच गुरुवर्याश्री की महाप्रयाण यात्रा निकली। **'महाप्रभाश्रीजी' अमर रहें ! 'जब तक सूरज चांद रहेगा, महाप्रभाश्री का नाम रहेगा'** के नारों के साथ उनके पार्थिव देह को अग्नि समर्पित की गयी। उससमय सभी नरनारियों की आँखें अश्रुपूरित थीं। जब वहाँ से लौटकर हम आये तो श्री संभवनाथ जैन मंदिर में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया।

मुख्य वक्ताओं ने अपने विचार रखें। तत्पश्चात् बारह नवकार का जाप करके जिनेश्वरदेव से उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की गई।

समाज-संघ के लिए यह एक अपूरणीय क्षति है। जिनेश्वरदेव से यही प्रार्थना है कि

उनकी आत्मा शाश्वत सुखों को प्राप्त करें।

हार्दिक श्रद्धांजलि !

तुम इस दिल से दूर नहीं हो, सिर्फ दूर है शरीर तुम्हारा।
जब तक सूरज चांद रहेगा, चमकेगा शुभ नाम तुम्हारा ॥

43. शोक-सन्देश

- पारसमल सेठिया सचिव, नीमच (म.प्र.)

परमश्रद्धेया साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के देवलोकगमन के समाचार-प्राप्ति से सकल संघ नीमच को बड़ा आघात लगा। श्रद्धेया साध्वीजीश्री ने वृद्धावस्था होते हुए भी कभी विहार में किसी वाहन का उपयोग नहीं किया। साथ ही नित्य के श्रमणी जीवन के आचार-विचार एवं क्रियाओं के प्रति दृढ़तापूर्वक पालन करने में सदैव समर्पित रहीं।

उनके निधन से हमारे संघ में अपूरणीय क्षति हुई। उस महान् आत्मा को मेरा कोटि-कोटि नमन एवं वन्दन।

44. वे साधुता का भूषण थीं

- श्री जैन श्वेताम्बर सकल संघ, भीनमाल (राज.)

जब यह सूचना मिली कि पू. साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब का 1 मार्च 2000 को देवलोकगमन हो गया है तो श्रीसंघ को गहरा आघात लगा। पू. दादीजी महाराज साहब के दिवंगत होने से जो क्षति हुई है, वह अपूरणीय है, पर होनी के आगे किसी का जोर नहीं चलता।

आपका जीवन दर्पण की तरह स्वच्छ, साफ और निर्मल था। वृद्धावस्था में भी संयम के प्रति पूर्ण जागरूक एवं अनुशासनप्रिय थीं। आपके जीवन का हरक्षण, हरपल हितशिक्षा एवं उज्ज्वल आदर्शों से भरा हुआ था।

हमारे यहाँ सन् 1992 में आपका चातुर्मास यशस्वी एवं शानदार ढंग से सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् श्रीसंघ के अत्याग्रह से वृद्धावस्था के कारण सन् 1996 से 1998 तक आपके तीन चातुर्मास यहाँ हुए। तब हमें निकट से उन्हें देखने समझने का अच्छा अवसर मिला। हमने पाया कि आप स्वयं के लिए हिमालय की चट्टान के समान अडिग थीं, किंतु दूसरों के प्रति फूल-सी कोमल थीं।

सुदीर्घ कठोर संयम साधना की तेजस्विता से आपका जीवन कुंदन के समान निखर चुका था। आप सबसे निस्पृह रहकर संयम की मस्ती व आचार की चुस्ती के साथ आराधना-

साधना में लीन रहती थीं।

यथार्थतः आचारांग सूत्र के अनुसार आपका जीवन व्यवहार **"जहा अन्तो तहा बाहिं, जहा बाहिं तहा अन्तो"**-के अनुरूप ढल चुका था। आप आचार शुद्धि एवं व्यवहार शुद्धि पर अत्यधिक बल देती थीं। संयम-मार्ग में प्रमाद आलस्य या सुस्ती बिल्कुल पसन्द नहीं थी। आपकी वाणी में मधुरता, हृदय में शुचिता, चिंतन में गहनता और आचरण में प्रकर्षता थी। इतना महान् व्यक्तित्व होते हुए भी आपको अहंकार छू तक नहीं गया था। इतना ही नहीं, आपका जीवन सादा और विचार उच्च थे। **आपकी सरलता साधुता का भूषण थीं।**
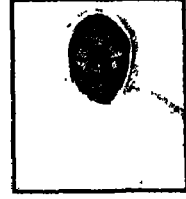
आपकी कठोर चर्या का तो कहना ही क्या ? कभी भी दीवार का सहारा लेकर बैठे नहीं देखा। और तो और ! दिन में भी एक ही आसन में विराजती थीं। हम कहते- बावसी ! दिन में तो आप थोड़ी पोढ़ जाओ ! थोड़ा तो आराम करो। तो आप फरमातीं- "मैं तो हमेशा आराम ही कर रही हूँ।" जब देखो तब ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय में ही तल्लीन रहती थीं।

कष्ट सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति ने अपनी जिंदगी में उफ् कहना तो सीखा ही नहीं था। जिंदगी के हर पड़ाव पर चाहे वह सुखद हो, चाहे दुःखद हो सदा जीवंत बनी रहीं। आपकी आकृति में, प्रकृति में जो सहजता, समता व सहिष्णुता देखी, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिली।

आप जहाँ भी विराजमान हो, वहाँ से आशीर्वाद प्रदान करती रहें। आपका वरद हस्त सदा श्रीसंघ पर बना रहे। इन्हीं शब्दों के साथ आपके चरणों में शत-शत वन्दन-नमन !

45. शाश्वत दीप

- के. सी. जैन, लंदन

परम पूजनीया साध्वी प्रवरा श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के वात्सल्य के विषय में मैंने बहुत सुना।

जीवन शुभकर्मों की रंगस्थली है, यदि इसका चिंतन करें तो अन्तर् में विराजमान आनंदघन कृपासागर के दर्शन हो जाते हैं।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि परमपुनीता साध्वीवर्याश्री का जीवन निर्मल दर्पण के समान था जिसमें करुणासागर परमात्मा की शुभ्र छबि के दर्शन होते थे।

मनुष्यजीवन के दो रूप हैं - एक है देहानन्द और दूसरा है आत्मानन्द।

देहानन्दी दैहिक सुख के लिए रातदिन दौड़ते रहते हैं, परन्तु अन्त में देह छोड़नी पड़ती है। देहानन्दी रोग और भोग से विनष्ट होते हैं तथा आत्मानन्दी योग से चेतना की ज्योति जगाकर अन्ततः परमकृपालु परमात्मा के चरण-कमलों में सुगन्धित फूल के समान शोभायमान होते हैं।

पूज्यवर्याश्री महाप्रभाश्रीजी चेतना की शाश्वत ज्योति जगाकर देवलोक सिधारीं।

मैंने उनके परम संयमनिष्ठ, करुणामय, वात्सल्यमय जीवन के विषय में अनेक लोगों से काफी सुना है, इसीलिए मैं उनके प्रति ये हृदयोद्‌गार प्रकट कर रहा हूँ।

एक शुभ्र ज्योति जो पहले बाहर उजाला कर रही थी, जिसने अपने पावन जीवन में जन- जन को शान्ति का मार्ग बताया, वह महान् प्रभा अब सबके हृदय-मन्दिर में करुणा, प्रेम और परोपकार का उजाला कर रही है।

ऐसे महाप्रभावन्त दीप कभी बुझते नहीं, उनका उजाला अन्तर् में सदा रहता है।

महाप्रभा के दीप की प्रभा मेरे अन्तर् में सदा उजाला करे, ऐसी करुणेश्वरी गुरुवर्याश्री से प्रार्थना है।

46. दयामय विदेह साधिका

- डी. एस. महेता, किशनगढ़

न उनका कोई अपना था न पराया। जीवन पर्यन्त सागर में गागर बनी रहीं। उनका समग्र जीवन त्याग, वैराग्य और संयम साधना से सतत संभृत था। उनका आत्मबल अपराजेय था। वे थीं संयम, धैर्य और दृढ़ संकल्प की प्रतिमूर्ति! उनमें सहजता, सरलता, मार्मिकता और निश्छल भावनाओं के दर्शन किये जा सकते थे। यह उनकी आत्मा के अन्तः सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब था। जिस सौन्दर्य को मैंने देखा, लकीरें खींचकर चित्रावली बनाने में अक्षमता प्रकट करना ही हितकर होगा।

मृदुवचन उनकी वाणी का प्रमुख आयाम था। वृद्धावस्था स्वयं उनकी पुजारिन थी। बस न आगे सोचना न पीछे, केवल सोचना तो साधना का पथ और कैसे विचक्षण हो, इस पर अन्तर में निरन्तर मंथल चलता रहता था। **"दादीमाँ" का न तो कोई "आकार था न प्रकार" और ना ही कुछ और। वह तो केवल वात्सल्य की प्रतिमूर्ति थी। स्नेहिल दृष्टि? कोणार्कमंदिर सूर्य की किरणों के प्रकाश में लिपटा रहता। उसीतरह उनका शरीर साधना में प्रज्वलित रहता। क्षमामूर्ति दयामय विदेह साधिका कहती "करो तो अपना आपका और न करो तब भी आपका अपना"।**

चारित्रिक आत्माओं के दर्शनों में उनका स्वयं का दर्शन विद्यमान था। शीतल निर्मल व्यक्तित्व की धनी। कहते हैं महाराजा जनक विदेह पुरूष थे। दादीमाँ कर्म से जुझाँरु, स्वभाव से शान्त दया-क्षमा का मन और जब भी देखा, परखा स्वयं को जिनेन्द्र की भक्ति में संलग्न पाया। उनको न कभी अपनी पौत्रियों से लगाव था, न भक्तों से। वे तो जीती जागती विदेह

साधिका थीं। बस आचारसंहिता की पारदर्शी परख उनके जीवन का लक्ष्य था। यथार्थ जीवन की धनी होने के साथ साथ उनके चेहरे पर सौम्य मुस्कान बनी रहती थीं। एक सैलाब उमड़ता उनकी आँखों में कि संसार की हलचल में मानव शान्त मन से, अपना कर्तव्य करता चलें और जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति में समर्पित हो। कभी उनके चिंतन में जोश-खरोश अपनापन, परायापन, बाहरी चमक-दमक कुछ भी नहीं था। वे तो केवल वैराग्य की प्रतिमूर्ति थीं, और कुछ भी नहीं। **ऐसी थीं दादीमाँ श्री। और तो और उनकी (साध्वीरत्ना) पौत्रियाँ 'बाप रे बाप ! पता नहीं किस मिट्टी की बनी है ?**

दादीमाँ श्री के पास चौकी पर कुछ पोथियाँ रखी रहतीं। उन्हें ही वे उलट पलट करती रहतीं। यह पता नहीं उन पोथियों से कौनसा रस पान कर अपनी प्यास बुझातीं। पैर की आवाज नहीं। मुख की ऊँची आवाज भी नहीं। शरीर का हिलना डुलना भी नहीं। बस केवल स्थिर और अपने ध्यान में मग्न। अन्तर् में झाँकती रहतीं, पता नहीं क्या खोजना चाहती थीं ?

आस्था श्रद्धा की अभिव्यक्ति की मैंने, ऐसा बिल्कुल नहीं हैं। जो देखा, समझा और पाया उसी को श्रद्धा-सुमन के रूप में उकेरा हैं। ऐसी प्रज्ञा-महान् आत्मा को बार-बार नमन करते हुए हार्दिक श्रद्धांजलि।

"रोशनी अपना रास्ता खुद ब खुद निकाल लेती हैं।"

47. दिव्य व्यक्तित्व की धनी

- पारसमल शंकरलाल गजानी - सूरा (राज.)

दिव्य व्यक्तित्व की धनी, सरलमना व अनुपम ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय की ज्योति पू. दादीजी महाराज साहब को मिश्री की डली के समान किसी भी कोने से देखें, परखें सभी तरफ गुण ही गुण नजर आयेंगे।

आपकी समझाने की शैली इतनी सहज-सरल व सरस थी कि सुननेवाला मंत्रमुग्ध हो जाता था। यह कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि **'महाप्रभा' की प्रभा आगन्तुक व्यक्ति के मन को प्रभावित करती थी**। यह उनके उज्ज्वल व्यक्तित्त्व का ही प्रभाव था कि आप जहाँ भी पधारतीं, वहाँ ज्ञान-ध्यान के साथ जप-तपादि की धूम मच जाती। हमारे छोटे से सूरा गाँव में उन्होंने यशस्वी चातुर्मास किया जो सदा-सदा चिरस्मरणीय रहेगा।

आपके गुणों का वर्णन इस छोटे से पृष्ठ पर करना असंभव है। अस्तु, उस महान् पुण्यात्मा के प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ यह कामना करता हूँ कि पू. दादीजी महाराज के जीवन व उपदेशों के अनुरूप अपना जीवन बनाऊँ !

48. संयम की साक्षात् प्रतिमूर्ति

- भगवानदास महेन्द्रकुमार गोठी, भरतपुर

परम पूज्या वयोवृद्धा साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के स्वर्गवास के समाचार पढ़े। अत्यधिक दुःख हुआ। पूज्या दादीजी महाराज समता, सहिष्णुता एवं संयम की साक्षात् प्रतिमूर्ति थीं। उनका हम सब पर अतीव स्नेह और वात्सल्य था। समय-समय पर हमलोग उन्हें याद करते ही रहते थे।

यहाँ के जैन समाज ने उनके स्वर्गवास पर अत्यन्त खेद प्रकट किया और परमतारक प्रभु से यही प्रार्थना की कि वह दिव्य आत्मा जहाँ कहीं भी विराजमान हों, उनकी आत्मा को पूर्ण शांति प्रदान करें। इसी प्रार्थना के साथ मैं सपरिवार उनके श्रीचरणों में सादर श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

49. श्रद्धा-सुमन

- भंडारी मदनराज, करुणामंडल परियोजना, जोधपुर

परम श्रद्धेया साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के देवलोक सिधारने का दुःखद समाचार अखबार में पढ़ा। बड़ा ही खेद हुआ।

परमपिता परमेश्वर से उनकी आत्मा की शांति एवं मुक्ति हेतु प्रार्थना करता हूँ। वे आप दोनों को इस महाशोक को झेलने हेतु पर्याप्त शक्ति प्रदान करें। साथ ही उस महान् विभूति दादीमाँ के श्रीचरणों में सादर श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ।

50. अतीत की स्मृतियाँ

- प्रकाश छाजेड़, पारा (म.प्र.)

सन् 1970 में जब पारा में आपका ऐतिहासिक चातुर्मास चल रहा था। तब मेरी उम्र मात्र चौदह वर्ष की थी। पर अभी जैसे ही पू. दादीजी महाराज का अनुरोध पत्र मिला तो अतीत की सारी स्मृतियाँ नजरों के सामने आ रही हैं। मैंने आपकी निश्रा में पन्द्रह दिवसीय अक्षयनिधि तप की आराधना की थी। नियमित आरती, पूजा- भक्ति में भाग लेकर हम बच्चे उपाश्रय की पेढ़ी पर विश्राम कर लेते थे। उस वक्त श्रीसंघ के वरिष्ठ श्री पन्नालालजी डूंगरवाल, श्री रिखबचंद जी मोदी, श्री नेमचंदजी कोठारी, श्री नानालालजी सेठ व महिलाओं में दाखाबाई, भण्डारी सूरजबाई कोठरी, वालीबाई, शांताबाई छाजेड़ आदि थे।

पारा चातुर्मास के बाद पारा श्रीसंघ आपके पारिवारिक सदस्य के रूप में जुड़ गया एवं

आपश्री की प्रेरणा से मैं स्वयं इतना प्रभावित हुआ कि मन्दसौर, उज्जैन, जालोर, भरतपुर, भीनमाल, मोदरा आदि जगह दर्शन-वंदन कर चातुर्मास की विनती की। बालिकाओं को भी पारा से शिविरों में भेजा। गुरुभक्ति से शक्ति मिली तथा परिषद से जुड़कर पारा परिषद नगरी बन गई। अनेक गतिविधियों का संचालन करते हुए आपश्री की कृपा से राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच गया। प्रकाशित ग्रंथ के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ प्रकट करते हुए विनम्र श्रद्धांजलि प्रकट करता हूँ।

51. विनम्र श्रद्धांजलि

- श्रीजैन श्वेताम्बर संघ एवं परिषद, पारा

प.पू. साध्वीप्रवरा श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के संयम जीवन के उनपचास वर्ष का स्मृति ग्रंथ प्रकाशित होने जा रहा है। हमारी मंगल-कामनाएँ।

पारा श्रीसंघ पर दादीजी महाराज साहब की असीम कृपा रही। सन् 1970 के आपके पारा चातुर्मास में धर्म व ज्ञान की गंगा बही। विभिन्न तपस्याएँ नवपद ओली, अक्षयनिधि तप, अट्ठाई महोत्सव आदि अनेक कार्यक्रम हुए।

मंदिरजी में सपनाजी की व्यवस्था आपश्री की प्रेरणा से ही हुई। आपके पारा चार्तुमास के बाद यहाँ धर्म क्रियाएँ, गुरुभक्ति का प्रवाह निरन्तर बहता रहा। गुरुदेव के इस गच्छ की शोभा बढ़ाने, गुरुजन्मभूमि-भरतपुर में निर्माणाधीन श्रीराजेन्द्रसूरि जैन कीर्तिमंदिर तीर्थ एवं अनेक शासन प्रभावना के कार्यों की सम्पूर्ण श्रीसंघ व शाखा परिषद पारा, आपके सत्कार्यों की भूरि-भूरि अनुमोदना करते हुए विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करतें हैं।

श्रद्धावनत हैं - श्री सौधर्मबृहत्तपोगच्छीय त्रिस्तुतिक जैन श्वेताम्बर श्रीसंघ पारा, अ.भा. श्रीराजेन्द्रजैन नवयुवक परिषद, महिला परिषद, तरुण परिषद एवं बालिका परिषद शाखा पारा।

52. आघात लगा

- म. जुगतीराम संगीतकार, जोधपुर

प.पूज्या साध्वीश्री महाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) महाराज साहब के महाप्रयाण का दुःखद समाचार प्राप्त हुआ। इससे हृदय को आघात लगा, लेकिन इस क्रूर काल के आगे किसी का जोर नहीं चलता। काल की गति बड़ी विचित्र है।

परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उस दिवंगत महान् आत्मा को शांति प्रदान करें। साथ ही उनको शत-शत नमन!

53. प्रेरणा मिलती रहे

- मनोहर वागरेचा, नागदा (म.प्र.)

अद्‌भुत व्यक्तित्त्व की धनी, करुणामूर्ति परम पूज्या साध्वीप्रवरा श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) महाराज साहब स्वर्ग सिधार गयीं। यह जानकर वागरेचा परिवार को अत्यन्त दुःख हुआ। आपश्री का हमारे परिवार पर महान् उपकार है। हमें इस बात का अधिक अफसोस है कि जीवन में आये उतार-चढ़ाव में उलझे रहने से हम आपश्री के अन्तिम दर्शन भी नहीं कर सकें।

हम सपरिवार उस दिव्यात्मा के प्रति संवेदना एवं सहृदय श्रद्धासुमन श्रीचरणों में समर्पित करते हुए मंगलकामना करते हैं कि स्वर्गस्थ दिवंगत आत्मा जन-जन को शाश्वत जीवन जीने की प्रेरणा देती रहें।

54. समता की प्रतिमूर्ति

- कुन्दन जैन, अलीराजपुर (म.प्र.)

परम श्रद्धेया तपस्विनी, सरलहृदया, साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब देवलोक पधार गईं। उनके दिवंगत होने से गुरुगच्छ में मालवधरा की एक महान् श्रमणीरत्ना की क्षति हुई। जिसकी पूर्ति असंभव है।

समता, सहिष्णुता व संयम की प्रतिमूर्ति साध्वीप्रवराश्री के निर्दिष्ट मार्ग का हम सब को अनुसरण करना है और उनसे प्रेरणा प्राप्त कर हमें धर्म-पथ की ओर अग्रसर होना है।

अलीराजपुर श्रीसंघ ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

55. श्रद्धा-मूर्ति

- इन्दरमल सदाजी, धाणसा

नींव से शिखर तक, उदय से अस्ताचल तक, भूत, भविष्य तथा वर्तमान, जहाँ तक मन की आँखें देख सकती हैं, वहाँ चारों ओर श्रद्धा ही श्रद्धा दिखाई देती थी।

ऐसी श्रद्धा की प्रतिमूर्ति उस महान् आत्मा को मैं एक साधारण अल्पमति व्यक्ति क्या श्रद्धांजलि अर्पण करूँ? समझ में नहीं आता! उनका सम्पूर्ण जीवन ही श्रद्धा की अंजलि से आलोकित था और भविष्य में भी आलोकित करता रहेगा। उस दिव्यात्मा को, वह जहाँ भी हों; आत्मकल्याण की ओर अग्रसर हो रही होंगी, सश्रद्धा कोटि-कोटि वन्दन।

56. महान् विभूति थीं

- रिखबचंद लहरी, जालोर

प.पू. शान्तमूर्ति वयोवृद्धा तपस्विनी स्वर्गीया साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के देवलोक होने के खेदजनक समाचार 5 मार्च को राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर में मुझे पढ़ने को मिले। इस दुःखद समाचार को पढ़कर हृदय को अत्यन्त कष्ट हुआ । पू.दादीजी महाराज के गुणों का मैं क्या वर्णन करूँ ? वे करुणा, क्षमा, माधुर्य, स्नेह-वात्सल्यादि गुणों से समृद्ध थीं । उनकी सुमधुरवाणी में इतनी मिठास थीं कि एकबार जो उनके सम्पर्क में आ जाता, वह उनके प्रति श्रद्धावान् बन जाता । इस संसार में ऐसी महान् विभूतियाँ बहुत कम होती हैं ।

उनकी समाजसेवा, कठोर तप-त्याग व संयमसाधना की अमिट छाप जनमानस पर छायी रहेगी ।

उन पूज्या दादीमाँ के श्रीचरणों में श्रद्धांजलि सह वन्दन-नमन ।

57. शोकाञ्जलि

- सम्पादक सुरेन्द्रसिंह लोढा, श्रमणभारती

परमश्रद्धेया सुसाध्वीजी श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के कालधर्म का समाचार जानकर दुःख हुआ । उनके स्वर्गगमन से संघ में अपूरणीय क्षति हुई है ।

जिनेन्द्रप्रभु से प्रार्थना है कि उस दिव्यात्मा को चिरशान्ति प्राप्त हो ।

58. प्रकाशपुञ्ज

- अचलचन्द जैन, सायला (राज.)

यह श्रद्धांजलि उस महान् प्रकाशपुंज को समर्पित है, जो विशुद्ध संयम की जीवन्त प्रतिमूर्ति थीं और जिन्होंने साध्वीजीवन के पाँच दशकों तक समता, सरलता, सहनशीलता, जप-तप और समर्पण के द्वारा एक नया इतिहास रचा । विक्रम संवत् १९६६ की कार्तिक पूर्णिमा को वरमंडल, जिला धार (म.प्र.) में श्रेष्ठी श्री जड़ावचन्दजी एवं श्रीमती वजीबाई के घर जन्मी लीलावती का प्रकाश पूर्णमासी के शीतल प्रकाश की तरह सम्पूर्ण आध्यात्मिक जगत् में फैला और दीक्षा के बाद वे महाप्रभाश्रीजी के नाम से विख्यात हुईं ।

प.पू. राष्ट्रसंत श्रीमद् विजय श्रीजयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब की आज्ञानुवर्तिनी एवं आदर्श साध्वी पू. गुरुणीजी श्रीहेतश्रीजी महाराज सा. की इस सुशिष्या ने न केवल एक ही समय भोजन ग्रहण किया, अपितु सम्पूर्ण जीवन में डोली, व्हीलचेअर आदि किसी वाहन

अथवा विहार में किसीतरह की कोई व्यवस्था तक का उपयोग नहीं किया। उन्होंने कपड़ों की उज्ज्वलता के बजाय मन की उज्ज्वलता पर विशेष ध्यान दिया। इतना ही नहीं, अस्वस्थ रहने की हालत में और जीवन के अन्तिम श्वास तक भी आपने अंग्रेजी दवाई का सेवन नहीं किया। आज के युग में जब साधु-सन्तों में भी शिथिलाचार जड़ें जमा रहा है, यह मन की दृढ़ता का एक अनुपम उदाहरण है।

प्रतिदिन स्वाध्याय, नवस्मरण का पाठ, माला, ध्यान और जप-तप के द्वारा वे अपने जीवन को भगवद्भक्ति में समर्पित करती रहीं। उनका अधिकांश समय माला के सहारे प्रभु स्मरण में व्यतीत होता था।

सूझबूझ की धनी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी ने जिसतरह अपनी शिष्यारत्नों का चयन कर उन्हें शिक्षित-दीक्षित किया, उसमें सांसारिक रिश्तेदारी को आड़े नहीं आने दिया। वे अनुशासनप्रिय थीं।

इनकी दो विदुषी शिष्याएँ साध्वी डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी एवं साध्वी डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी सांसारिक रिश्तों में इनकी पौत्रियाँ हैं और इसी कारण वे "दादीपौत्री" महाराज साहब के नाम से विख्यात हुईं। साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी की समाज को अनमोल देन है।

इन दोनों विदुषी साध्वियों ने अपनी गुरुवर्याश्री की सुप्रेरणा से एवं उन्हीं की निश्रा व कुशल नेतृत्व में केवल तपस्याओं पर बल देने के बजाय महिला-जागरण, आध्यात्मिक संस्कार कन्या-शिविर, महिला-संगठन आदि के माध्यम से जो नये आयाम स्थापित किये हैं, वे स्तुत्य हैं।

साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी ने अपने जीवनकाल में स्वयं को ध्रुव बनाकर ध्रुवमण्डल के छह सदस्य को दीक्षित कर एक सप्तऋषि मण्डल बनाकर समाज को नई दिशा और नई रोशनी देने का प्रयास किया। जिसकी शुरूआत उन्होंने अपने जीवनकाल में ही अपनी विदुषी शिष्याओं-डॉ. साध्वी द्वय से विभिन्न प्रकार के समाजोपयोगी साहित्य की रचनाएँ करवाकर एवं महिला जागृति का शंखनाद किया। गुरुवर्याश्री के स्वर्गारोहण के पश्चात् इस कार्य को आगे बढ़ाने का दायित्व अब इनकी वरिष्ठा विदुषी शिष्याओं पर हैं। समाज को इन सबसे बहुत अधिक अपेक्षाएँ हैं।

वयोवृद्धा साध्वीरत्ना महाप्रभाश्रीजी मौन रहकर आत्मिकशक्ति संचय करती थीं। वे कई दिनों तक मौन रहती थीं और मौन से प्राप्त शक्ति को ईश्वरोपासना एवं अपनी शिष्याओं को प्रेरणा देने में उपयोग करती थीं। वे एक अनुशासित एवं गंभीर साध्वी थीं। उन्हें व्यर्थ की बातें एवं हँसी-मजाक पसन्द नहीं था। उन्होंने सांसारिक जीवन एवं साध्वाचार की मर्यादाओं की रक्षा करते हुए नब्बे वर्ष से अधिक का लंबा जीवन जिया। मैंने स्वयं उन्हें पांथेडी धाणसा, आदि स्थानों पर अपना काम स्वयं करते देखा है। इसतरह वे जीवनभर स्वावलंबी बनी रहीं।

सरलता इनके जीवन का मूलमंत्र था। दूसरे शब्दों में वे सरलता की पुजारिन थीं। सरलता इनमें कूटकूट कर भरी हुई थीं। कोई भी छोटा-बड़ा जो उनसे मिलने गया, उनकी सरलता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। प्रचारतंत्र से दूर रहकर वे मौन साधना में लीन रहती थीं। साथ ही अपनी शिष्याओं को भी इसके लिए प्रेरणा देती थीं। **मौन-साधना उन्हें बड़ी प्रिय थीं।**

साधु-साध्वी भगवंत का जीवन चारित्रप्रधान होता है। चारित्र ही उज्ज्वलता की कसौटी है और इस कसौटी पर तपकर साध्वीश्री महाप्रभाश्रीजी सौ टंच के सोने की तरह खरी उतरीं। इनके चारित्रिक उज्ज्वलता से जो प्रकाश फैला, वह सम्पूर्ण समाज को युग युगों तक आलोकित करता रहेगा।

साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब द्वारा स्थापित प्रतिमानों पर चलकर ही हम इस महान् प्रकाश-पुंज को सच्ची श्रद्धांजलि दे सकते हैं। इस महान् आत्मा को मेरी ओर से श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए शतशः वन्दन एवं नमन।

59. वात्सल्यमयी दादी माँ

- डॉ. दूदराज जैन, भीनमाल

परम श्रद्धेया परम शान्त, सरलता-समता की मूर्ति, ज्ञान की ज्योति प्रस्फुरित करनेवाली वात्सल्यमयी दादीमाँ से मेरा सम्पर्क मेरी राजकीय सेवा निवृत्ति के बाद सन् 1991 में हुआ, तब से मृत्यु पर्यन्त आपके सम्पर्क में रहा। **जैसे चुम्बक लोहे को आकर्षित करता है, वैसे मैं भी आपके चारित्र से खिंच गया।** मेरा अहोभाग्य है कि मुझे आपकी सेवा करने का मौका मिला। बदले में मैंने जो कुछ पाया, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। मैं हमेशा मातृ तुल्य वात्सल्यभाव से आत्मविभोर हो जाता था। मैंने मेरे जीवन में इतनी उत्कृष्ट चारित्रवान् साध्वी नहीं देखी। जब से मुझे कुछ समझ आई है। इनके गुणों का वर्णन लेखनी करने में असमर्थ है, फिर भी संक्षेप में कुछ गुणगान करता हूँ। वृद्धावस्था के कारण साँस फूलती थी, फिर भी कभी आपने शरीर की परवाह नहीं की, न किसी अपवाद मार्ग का अनुसरण किया। जीवन पर्यन्त पैदल विहार को प्राथमिकता दी। हरक्षेत्र में समता व संतोष से तृप्त जीवन। जब भी आप से समागम होता तो एक ही बात। **"जीव तू थारो संभाल, दूसरा ने मत देख।" "जीवे बान्ध्या है और जीव को ही भोगना है।"** अन्तसमय में ऐसी जागृतदशा, ऐसा चिन्तन, ऐसी सहनशीलता के आगे मैं कई बार नतमस्तक हो चुका हूँ। अत्यन्त शारीरिक व्याधि होने पर भी अँग्रेजी दवाई नहीं लेना, ऐसी दृढ़ता मैंने नहीं देखी। इनके गुणों का गुणगान क्या करूँ ? अपना कार्य खुद करना। इतनी वृद्धावस्था में भी सिलना, सुई पिरोना, यहाँ तक की अगर विशेष परिस्थिति में जरूरत पड़े तो गौचरी पानी भी लाना, पर सामने लाया हुआ नहीं लेना। अहं का नामोनिशान
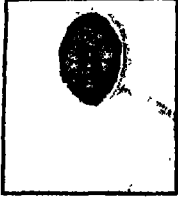
नहीं था। इतना होते हुए भी अपने को कुछ नहीं मानना। अंत समय में अपने गुरुणीजीश्री का सान्निध्य प्राप्त होना, ये सब समाधि मरण वाले जीवों को प्राप्त होता है। आपका चारित्र ही मेरे लिए आदर्श व प्रेरणायुक्त था। आपकी मूक वाणी ही मेरा मार्गदर्शन था। नियति को कौन रोक सकता है ? आयुष्य कर्म के क्षय होने पर हर जीव को अपना शरीर छोड़ना पड़ता है, परन्तु उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण कर अपना जीवन सार्थक करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पण करना है।

दादीजी महाराज भले ही शारीरिक रूप से उपस्थित नहीं हैं, पर उनकी आत्मप्रेरणा हमेशा हमारे साथ है। ऐसा मुझे आज भी आभासित होता है।

60. माँ के श्रीचरणों में श्रद्धा-सुमन रूप भावभरी वन्दना

- (राजू) पूर्णनाम राजमल जमींदार , इन्दौर (म.प्र.)
(साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी म.सा. का संसारपक्षीय ज्येष्ठ पुत्र)

ओ मेरी अनन्त उपकारिणी माँ !

मेरी छिहत्तर वर्ष की उम्र हो गई। अभीतक तो मैं प्रत्यक्षरूप से आपश्री के चरणों में नमन-वन्दन करके शुभाशीष लेता रहा। अब परोक्षरूप से भाव-वन्दना करते हुए शुभाशीष ले रहा हूँ। **माँ !** आपका शुभाशीष मुझ पर यथावत् बना रहे। यही मेरी हरसमय हरक्षण आप से माँग है।

हे संस्कारदात्री माँ ? आप तो बचपन से ही धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत रही हैं। इस धर्म के प्रभाव से धार्मिक उच्चकुलीनवंश में पू. दादा गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब के परमगुरुभक्त, सुश्रावक मोहनखेड़ा तीर्थनिर्माता संघवी सेठ लूणाजी के कुल की आप कुलदीपिका बनीं।

पुण्योदय से मैंने आपकी कुक्षि से जन्म लिया। जन्म लेते ही आपने मुझे धार्मिक संस्कारों की घूँट पिलाई। गोद में लेकर आप मुझे प्रभुदर्शन, प्रभुपूजन करातीं, साधु-सन्तों के पास ले जातीं। पाँव चलने पर पिताश्री के साथ नित्य प्रभु-पूजन करने भेजतीं। वही पूजा-पाठ का क्रम अबाधगति से आज छिहत्तर वर्ष की उम्र में भी यथावत् चल रहा हैं। इतना ही नहीं, बचपन में ही आपने मुझे पंचप्रतिक्रमण कण्ठस्थ करवा दिया था। जो आज भी मुझे एकदम शुद्ध व कण्ठस्थ याद है। यह आपकी ही कृपा का सुफल है। नौ वर्ष की अल्पायु में ही मेरे पिताश्री का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद आपके मन में चारित्र लेने की सुषुप्त भावना जाग उठी, किन्तु मेरी बाल्यावस्था के कारण आप कुछ समय रूकीं और जमींदारी जैसा व्यवसाय मुनीमों से अपनी बुद्धिबल पर करवाते हुए मेरे युवावस्था में प्रवेश करते ही उच्चकुलीन धार्मिक

पूज्या दादीजी म.सा. का श्वसूर पक्षीय परिवार

संघवी सेठ
लूणाजी के पौत्र
शा. चम्पालालजी जमींदार
संसारपक्षीय पतिदेव

श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी
गुरुदेव के परम भक्त
मोहनखेड़ातीर्थ निर्माता राजगढ़
निवासी संघवी सेठ लूणाजी

संघवी सेठ लूणाजी के
प्रपौत्र दादीजी म.सा.
के संसारी सुपुत्र
राजमलजी जमींदार

दादीजी म.सा. के
सुपौत्र पुष्पेन्द्र जमींदार

प.पू. साध्वी रत्ना
श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब

संघवी सेठ लूणाजी की
प्रपौत्रवधू दादीजी म.सा. की
संसारी पुत्रवधू स्व. श्रीमती
पूनमबाई राजमलजी जमींदार

दादीजी म.सा. की संसारी
पौत्रवधू संगीता जमींदार

दादीजी म.सा. के संसारी
पौत्र जिनेन्द्र जमींदार

दादीजी म.सा. के संसारी प्रपौत्र
चि. मयंक जमींदार

दादीजी म.सा. की संसारी
प्रपौत्री नेहा कुमारी जैन

दादाजी म.सा. के संसारी
दामाद भंवरलाल जैन

दादाजी म.सा. की
संसारपक्षीय पौत्री साधना

सुसंस्कारिणी सुयोग्य सुशीला कन्या के साथ मेरा विवाह किया, और मुझे गृहस्थजीवन का सम्पूर्ण भार संभलाया।

गृहस्थ जीवन का सारा उत्तरदायित्व मेरे कंधों पर आ पड़ा। तत्पश्चात् **आपने तुरन्त विक्रम संवत् २००८, सन् 1951 में गुरुभगवन्त से अपने ददिया श्वसुरजी द्वारा निर्मित श्री मोहनखेड़ातीर्थ (राजगढ़) में संयम ग्रहण करके जीवन को धन्य बनाया।**
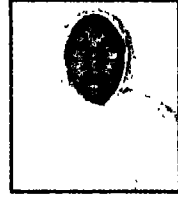
उनपचास वर्ष पर्यन्त दृढ़ता के साथ विशुद्ध रूप से कठोर संयम का पालन करते हुए विक्रम संवत् २०५६ ईस्वी सन् 1-3-2000 में राजस्थान की धन्वन्तरी धर्मनगरी धाणसा की धन्य धरा पर समाधिपूर्वक महाप्रयाण (स्वर्गगमन) किया।

इस उनपचास वर्ष की सुदीर्घ दीक्षा पर्याय में मैं प्रतिवर्ष आपके चरणों में आपकी संसारपक्षीय पुत्रवधू पुनीदेवी (पूनमदेवी) आदि परिवार के साथ जहाँ भी आप रहीं, दर्शन-वंदनार्थ आता रहा। **मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य तो यह रहा कि अंतिम समय में महाप्रयाण के तीन दिन पहले ही आपके श्रीचरणों में पहुँच कर मैंने आपका शुभाशीष प्राप्त किया।**

आपने मुझे और संसारपक्षीय अपनी पुत्रवधू पुनीदेवी (पूनमदेवी) को समय-समय पर जो हित-शिक्षाएँ दी थीं। उसी के सहारे हमारे जीवन में धार्मिक संस्कार अद्यावधि बने हुए हैं। आपकी पुत्रवधू भी आपकी सेवा में इतनी अधिक तत्पर थी कि जिसकी कोई सानी नहीं है।

आपकी इस पुण्यवान् पुत्रवधू के विक्रम संवत् २०४८ में तीर्थयात्रा संघ के साथ सभी यात्री को तीर्थ यात्रा करते-कराते हुए धार्मिक चर्चाओं में लीन अनायास स्वर्गवास हो जाने के समाचार से आपके मन में थोड़ी हलचल जरूर हुई, परन्तु **संयम की दृढ़ता के अनुरूप आपने मुझे इस दुःख की घड़ी में प्रत्यक्ष और परोक्ष में जो साहस बँधाया, हिम्मत दिलाई, जो समयोचित उपदेश देकर मेरे विचारों को मोड़ दिया। मैं उसे जीवन पर्यन्त कभी नहीं भूल सकता। आपने मुझे साहस के साथ जो कहा कि-"तुम दोनों एक साथ तो जानेवाले नहीं थे। तुम पहले जाते तो वह दुःख मनाती और वह पहले गईं तो तुम दुःख मना रहे हो। हिम्मत रखो, धैर्य धारण करो और साहस से काम लो। धर्मध्यान में पूर्णरूप से मन लगावो। यह संसार इसी क्रम से चलता आया है, चल रहा है, और चलता रहेगा। इसीलिए ज्ञानी भगवन्त संसार की असारता को समझाते हैं।"**

मुझे आपके ये वाक्य हरसमय, हरक्षण, हरपल याद आते हैं। इसी वाक्य ने मुझे दुःख की घड़ियों में साहस बँधाया और आज तक ये ही वाक्य मुझे हिम्मत व साहस दे रहे हैं।

हे मातेश्वरी ! यदि आपके गुणों को याद करके लिखने लगूँ तो शायद एक मोटी पुस्तक तैयार हो जाय। मुझ पर और पुत्रवधू पर आपके अनन्त उपकार हैं। उन उपकारों से मैं कभी भी उऋण नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, आपने अपनी संसारपक्षीय चार-चार पौत्रियों को भी अपने श्रीचरणों में लेकर शिष्या के रूप में इनका जीवन भी धन्य-धन्य बना दिया। इनको पढ़ाया, लिखाया और अपनी क्षमतानुसार विद्वत्ता हाँसिल करवाकर चारित्रमय जीवन व्यतीत

करने का मंत्र सिखाया।

आपकी ये चारों पौत्रियाँ क्रमशः साध्वी डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी, साध्वी डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी, साध्वी श्री आत्मदर्शनाश्रीजी एवं साध्वी श्री सम्यग्‌दर्शनाश्रीजी आज शासनप्रभावना एवं गुरुगच्छ की सेवा में तत्पर हैं। जैन-अजैन सभी के बीच "दादीपौत्री" के नाम से जानी जाती हैं। साथ-साथ अपनी विद्वत्तानुसार जैन-जगत् में गुरुभगवंतों के नाम को चमकाती हुई अपने संसारी पूर्वजों के कुल और वंश की उज्ज्वलता में चार चाँद लगा रही हैं।

हे मातेश्वरी ! मैं तो हरसमय जब भी आपके चित्र को निहारता हूँ। मुझे तो ऐसा लगता है कि आप परोक्ष रूप से नहीं, प्रत्यक्ष रूप से मुझे कुछ समझा रही हैं। **आपके पीछे आपकी पौत्रियाँ आपके नाम को, संसारी कुलवंश के पूर्वजों की उज्ज्वलता को ऐसा चमका रही हैं जो मोहनखेड़ा तीर्थ के साथ युगों तक चमकती रहेंगी।**

हे मातेश्वरी ! यह आपका ही प्रबल पुण्योदय था कि आप से मुझे व मेरे परिवार को इतने उच्च कोटि के धार्मिक संस्कार प्राप्त हुए। आपको कोटि-कोटि नमन करता हूँ। आपके दिखाए मार्ग पर अग्रसर होने के लिए आपके परिवार का वचन-बद्ध होना ही आपके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। अन्त में परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि आप मुझे अपने श्रीचरणों में स्थान दें। हमारी आत्मा को शान्ति प्रदान करें और परिवार के सदस्यों को आपका वियोग सहने की शक्ति प्रदान करें।

धन्य हैं आप !
धन्य हैं आपके कुलवंश के पूर्वज !
धन्य हैं आपकी पौत्रियाँ !! और
धन्य हुआ आपकी रत्नकुक्षि में मेरा जन्म लेना !!! तथा
धन्य हुई धन्वन्तरी धाणसानगरी !
जिस नगरी में आपने महाप्रयाण करके स्थायी यादगार बनायी।

बस, अब प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ में आपके गुणों की झलक किंचित्‌रूप से याद करते हुए हर्ष मिश्रित आँसुओं से श्रद्धासुमन रूप अनगिनत वंदना करते हुए यही माँग करता हूँ कि अपने इस पुत्र एवं पुत्र-परिवार पर यथावत् कृपादृष्टि रखते हुए परोक्षरूप से भी धार्मिकता से ओत-प्रोत होने का शुभाशीष प्रदान करती रहें।

जो मनुष्य हिताहारी, मिताहारी और अल्पाहारी हैं, उन्हें किसी वैद्य से चिकित्सा करवाने की आवश्यकता नहीं, वे स्वयं ही अपने वैद्य हैं, चिकित्सक है।

61. शुभाशीर्वाद देती रहें
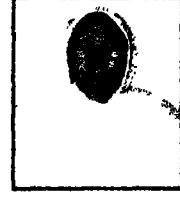
-(मुन्ना) पूर्ण नाम पुष्पेन्द्रकुमार एवं श्रीमती संगीता जमींदार, इन्दौर (म.प्र.)
(साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. के संसारपक्षीय पौत्र एवं पौत्रवधू)

परम श्रद्धेया स्नेह-वात्सल्यमयी दादीजी महाराज साहब ! बचपन से ही माता-पिता के साथ आपके श्रीचरणों में मैं प्रतिवर्ष दर्शनार्थ आता रहा। शादी होने के बाद कभी माता-पिता के साथ तो कभी आपकी संसारपक्षीय पौत्रवधू के साथ आता रहा हूँ।

आप हमें कभी जीवन जीने की, तो कभी धर्म-मार्ग पर आगे बढ़ने की, कभी धर्म पर दृढ़ रहने की, तो कभी अभक्ष्य, कन्दमूल, व रात्रि-भोजन त्याग की सुंदर प्रेरणा देती थीं। फैशन-व्यसन, व अंधानुकरण आदि से दूर रहने की हितशिक्षाएँ भी समय-समय पर बहुत ही मधुर-मृदुल वाणी से दिया करती थीं। आपकी वाणी के प्रभाव से हमारे जीवन में उत्तरोत्तर यथाशक्य धर्म-भावना में अभिवृद्धि हुई है और आपके मंगलमय आशीर्वाद एवं पुण्यप्रताप से आनन्द व सुखपूर्वक जीवन बीत रहा है।

हे दादीमाँ ! आपकी ये अमृत तुल्य हितशिक्षाएँ हमें जीवनपर्यन्त याद आती रहेंगी।

आपश्री जहाँ भी विराज रही हों, वहीं से प्रत्यक्ष की भाँति परोक्ष रूप से भी यथावत् शुभाशीर्वाद हमें प्रदान करती रहें, जिससे हम धार्मिक लक्ष्य को न भूलते हुए उस पर अडिग बने रहें।

इसी अन्तर्अभिलाषा के साथ पुनः आपके श्रीचरणों में शत-शत वंदन।

श्रद्धा सुमन अर्पण !

62. संसारपक्षीय पौत्र की श्रद्धांजलि

-(छोटू) पूर्ण नाम जिनेन्द्रकुमार जमींदार, इन्दौर (म.प्र.)

परम पूज्या उपकारिणी दादीजी महाराज साहब ! मैं आपश्री के जीवन के विषय में तो विशेष नहीं जानता ! क्योंकि मेरी स्मरणशक्ति थोड़ी कमजोर है, फिर भी इतना जरूर जानता हूँ कि जन्म से लेकर अभीतक प्रतिवर्ष अपने पू. माता-पिता के साथ आपश्री के दर्शन-वंदन करने के लिए आता रहा और जितनी अवधि तक वहाँ रहता, अधिक-से अधिक समय आपके श्रीचरणों में बैठकर ही व्यतीत करता था। इस अवधि में आप मुझे हरतरह से प्रेम के साथ समझाईश देती थीं, अपने जीवन को धार्मिक कार्यक्रमों में लगाने के लिए। बस, वे ही आपकी हिदायतें मुझे बार-बार याद आती रहती हैं !

आपश्री जहाँ भी हों ! मुझे आपका शुभाशीर्वाद इसीप्रकार प्राप्त होता रहें कि मैं अपने जीवन में धार्मिक लक्ष्य प्राप्त कर सकूँ। इसी मंगलभावना के साथ दिवंगत आत्मा के श्रीचरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

63. संसारपक्षीय प्रपौत्र-प्रपौत्री की श्रद्धांजलि

- नेहाकुमारी (बिट्टू) एवं मयंक (चिन्टू) जमींदार, इन्दौर (म.प्र.)

हमारी परम पूज्या ममतामयी पड़दादीजी महाराज साहब ! हम दोनों अबोध बालक आप पूज्याश्री की जीवनी के विषय में तो कैसे जान सकते हैं ? क्योंकि हम दोनों भाई बहिन अभी तो बिलकुल छोटी उम्र में क्रमशः चौदह और दस वर्ष के ही हैं, किन्तु इतना जरूर जानते हैं कि आप हमारी पड़ दादीजी महाराज साहब थीं और हम हैं आपके आज्ञाकारी संसारपक्षीय प्रपौत्री व प्रपौत्र ! हम प्रतिवर्ष अपने पूज्य माता-पिता के साथ आपश्री के दर्शनों के लिए आते रहे हैं। तब आपश्री हमें अपने पास बिठाकर बड़े प्यार से मीठे-मधुर शब्दों में स्कूली अध्ययन के साथ-साथ धार्मिक अध्ययन करने की भी खूब-खूब प्रेरणा देती थीं।

हमें तो आपकी मीठी-मीठी वाणी, मधुर मुस्कान के साथ मन प्रसन्न करनेवाली बातें ही याद आती हैं। इतना ही नहीं, अपितु आप हमें समय-समय पर प्रेरणास्पद-शिक्षाप्रद सुन्दर-सुन्दर कहानियाँ भी सुनाती थीं।

हे पूज्या दादीजी महाराज साहब ! आप जहाँ भी विराज रही हों, वहीं से हम दोनों को इसीप्रकार शुभाशीष प्रदान करती रहें कि हम अपने भौतिक जीवन में भौतिकता के साथ-साथ धार्मिक उन्नति भी कर सकें ! इसी विनम्र प्रार्थना के साथ दिवंगत आत्मा के श्रीचरणों में श्रद्धा-सुमन सादर समर्पित है।

64. सद्गुणों की धारिका

- (बड़ी मुन्नी) पूर्ण नाम श्रीमती साधना जैन , पूना (महाराष्ट्र)
(साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी म.सा. की संसारपक्षीय पौत्री)

त्यागी, तपस्विनी, उत्कृष्टचारित्रपालिका, समता, शांति, सहिष्णुतादि गुणों की धारिका मेरी पू. दादीमाँ श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के दर्शनों का सौभाग्य मुझे समय-समय पर अपने माता-पिता के साथ प्राप्त होता रहा। मेरी दो संसारपक्षीय बड़ी बहनें डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्रीसुदर्शनाश्रीजी म. ने आपके श्रीचरणों में संयम ग्रहण किया। मेरे मोहनीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं होने के कारण मुझे गृहस्थाश्रम में ही रहना पड़ा। जबकि मेरी दोनों छोटी बहनों का भी मोहनीयकर्म का क्षयोपशम होने से श्री आत्मदर्शनाश्रीजी म. एवं श्री सम्यग्दर्शनाश्रीजी म. ने भी आपके श्रीचरणों में संयम ग्रहण कर लिया।

आपका वरद हस्त सदैव मुझ पर रहा। आपकी मीठी वाणी एवं प्रेरणास्पद वाक्य मेरे कानों में सदैव गूँजते रहते हैं। हे दादीमाँ ! आप जहाँ भी विराजमान हों, वहीं से मुझ अबोध को धर्म का मार्ग प्रशस्त करती रहें। मैं विनयपूर्वक स्नेहमय भावों से आपके श्रीचरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

दादीजी म. सा. के सहोदर
लघुभ्राता श्री रिखवचंदजी

दादीजी म. सा. की संसारी
मातुश्री वजीबाई

दादीजी म. सा. की
भोजाई कांताबाई

दादीजी म. सा. के सहोदर
लघुभ्राता श्री पूनमचंदजी

प. पू. साध्वीरत्ना
श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब

दादीजी म. सा. की
संसारी भोजाई फुलीबाई

दादीजी म. सा. की सहोदर
लघु बहन श्रीमती सुंदरबाई

दादीजी म. सा. की सहोदर
श्रीमती लघु बहन चंदुबाई

65. उनकी मृत्यु महोत्सव बनी

- रिखबचंद पुनमचंद जैन, इन्दौर
(पू. साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. के संसारपक्षीय लघुभ्राताद्वय)

परम पूजनीया बहन महाराज साहब के दिवंगत होने के कर्ण-कटु दुःखद संवाद ने हमें असीमित दुःख में डूबो दिया। वे कितनी शांत-प्रशान्त विनम्र और सरलहृदया थीं। हमारे पास कहने के लिए कोई शब्द नहीं है। जिनके गुणों की चर्चा से प्रत्येक मनुष्य प्रसन्नता का अनुभव करता है। अपरिचित व्यक्ति भी उनके गुण-श्रवण करने के क्षणों में भावविभोर हो जाता था और मन सहज ही आपके चरणों में झुक जाता था।

उस दिव्यात्मा बहन महाराज साहब ने अपने आत्मकल्याण के साथ जनकल्याण भी किया। उनका व्यक्तित्व, उनके कार्य और उनका असीम उपकार उनकी सहज याद दिलाता है। उनकी आकृति आज भी आँखों में तैरती है। उनकी वाणी कानों में गूँजती है। उनका जीवन, जीवन बनाने की प्रेरणा देता है। उनका ज्ञान उनकी क्रियाओं (आचरण) में देखने को मिलता था। इसलिए उनका जन्म, जीवन और मृत्यु तीनों मंगलमय बने। उनकी मृत्यु भी महामहोत्सव बनी।

जो जिंदगीभर अपने मन को नहीं संभालता, उसका मन अंतसमय संभल जाय, बहुत मुश्किल है। हमारी पूज्या बहन महाराज साहब ने उनपचास वर्ष की संयम-साधना में मन को इतना अधिक साधा कि अन्त समय तक आपकी समाधि बनी रही, और वे हमें छोड़कर अनन्त में विलीन हो गईं।

ऐसी साधनाशील गुरुवर्या बहन महाराज साहब को हमारा सम्पूर्ण परिवार वन्दन-नमन सह श्रद्धा-सुमन समर्पित करते हुए आज परम आनन्द की अनुभूति कर रहा है।

66. हमारी पथप्रदर्शिका

- श्रीमती सुंदरबाई एवं श्रीमती चन्दुबाई, इन्दौर (म.प्र.)
(पू. श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. की संसारपक्षीय सहोदर लघुबहनें द्वय)

समता और सरलता की मूर्ति, हमारी पथप्रदर्शिका बड़ी बहन महाराज साहब के स्वर्गगमन के समाचार सुनते ही हृदय अत्यन्त व्यथित हो गया। हमारे परिवार में सबसे बड़ी वे ही थीं।

आपने संसार की मोह-माया से विरक्ति लेकर जब से संयम का मार्ग अपनाया है, तभी से हम आपके श्रीचरणों में वन्दन-नमन-दर्शन के लिए सदैव आती रही हैं। जब-जब आप से वार्तालाप हुआ। आपने धर्म-मार्ग पर चलने की हमें प्रेरणा दी। उसी के फलस्वरूप हम

गृहस्थजीवन में रहती हुई सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा-पाठ, पौषध, प्रत्याख्यान आदि धर्माराधना की ओर अग्रसर हैं।

आपके अन्तिम दर्शनों की लालसा हृदय में सँजोए हुए जब हम धाणसा आयीं और ज्योंही आपके पार्थिव शरीर के दर्शन किए। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे एक महान् ज्योति यहाँ से अन्यत्र मार्गदर्शन करने हेतु प्रस्थान कर गयी हों!

आपने हमें जीवन के सत्य स्वरूप को समझाया। यह संसार असार है, धर्म ही अमृत है और संयम ही जीवन है। **'सत्यं शिवं सुन्दरं'** का ज्ञान आपने हमें दिया। नवकार महामंत्र की महिमा समझायी। बहन महाराज! आपका जीवन धन्य है! इतनी वृद्धावस्था में भी आप अपना कार्य स्वयं करती थीं। बड़ी स्वावलंबी थीं आप। वास्तव में, मृत्यु-महोत्सव ऐसी त्यागी आत्माओं का ही मनाया जाना सार्थक है।

धाणसा श्रीसंघ ने जो महाप्रयाण महोत्सव किया, वह दर्शनीय एवं अद्वितीय था। जीवन में अनेक साधु-साध्वी भगवंतों की महाप्रयाण की यात्राएँ हमने देखी हैं, किन्तु धाणसा श्रीसंघ ने जो नौखंडीय देवविमान बनाया, वह अनूठा था।

हे धर्मनिष्ठ दिव्यात्मा ! आप जहाँ भी विराज रही हों, वहीं से हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहें। इन्हीं भावों के साथ सश्रद्धा श्रद्धांजलि समर्पित! एवं श्रीचरणों में कोटि-कोटि वन्दना।

67. श्रद्धा सुमन

- कैलाशचंद संघवी, इन्दौर

प.पू. वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी श्रीमहाप्रभाजी मौसीजी महाराज साहब के स्वर्गगमन का समाचार सुना तो हृदय को गहरा आघात लगा। मैं शोकसागर में डूब गया। कुछ समझ ही नहीं पा रहा था कि यह सब एकाएक कैसे हो गया? काफी समय तक मैं विवेकशून्य बना रहा। जब कुछ चेतना जागृत हुई तो पूज्याश्री के सम्बन्ध में ही चिंतन करता रहा। वे आजीवन नियमों के पालन में सुदृढ बनी रहीं। विषम से विषम परिस्थिति में भी उन्होंने जरा-सी शिथिलता को भी स्वीकार नहीं किया। इतना ही नहीं, वे अपनी शिष्याओं तथा अनुयायियों को भी नियम में सुदृढ़ रहने की शिक्षाएँ दिया करती थीं।

दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये यहाँ श्रीसंघ ने सामूहिक देववंदन किये।

वे जहाँ भी हों मेरे श्रद्धा-सुमनों को स्वीकारें, यही उनके प्रति मेरी श्रद्धांजलि है।

68. उत्कृष्ट चारित्रपालिका

- सुजानमल एम. जैन, अध्यक्ष - राणापुर (म.प्र.)

पूज्या साध्वीजी श्रीमहाप्रभाश्रीजी के दर्शन मैंने विभिन्न प्रसंगों पर किये। उनके अंतिम दर्शन मुझे भीनमाल चातुर्मास में हुए। भीनमाल में उन्होंने मुझे बताया था कि वृद्धावस्था के कारण मैं अब लम्बा विहार नहीं कर सकती। अब तक किसी भी प्रकार के वाहन का उपयोग नहीं किया है। पैदल विहार करके ही विचरण किया है। वे शरीर से अशक्त होते हुए भी नित्य के साध्वी जीवन के आचार-विचार एवं क्रियाओं के प्रति दृढ़तापूर्वक पालन करने में सदैव समर्पित रहीं। यही कारण है कि अन्त समय तक साध्वीजीवन की दैनिक क्रियाओं के पालन में उन्होंने कभी शिथिलता नहीं बरतीं। उन्होंने मुझे बताया था कि-"**वे अपने साध्वाचार के पालन से बहुत ही संतुष्ट हैं।**"

वृद्धावस्था एवं शारीरिक अशक्यता के कारण चार-पाँच किलोमीटर की यात्रा पैदल करके वे जहाँ भी विश्राम हेतु ठहरतीं, वहाँ पूर्ण सुविधा न होने पर भी उन्होंने कभी संयम व्रत के विपरीत आचरण नहीं किया। चारित्रधर्म के पालन में पू. दादीजी महाराज साहब ने जिस दृढ़ता का परिचय दिया, वह सदैव अनुकरणीय रहेगा। गुरु के प्रति आस्था, नित्य की सभी क्रियाओं का पालन करते हुए आदर्श जीवन जीकर उन्होंने त्रिस्तुतिक जगत् में गौरवमयी छाप छोड़ी है।

परम विदुषी साध्वीजीद्वय डॉक्टर-प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉक्टर श्रीसुदर्शनाश्रीजी म. ने उनके उत्कृष्ट चारित्र पालन में जो सहयोग दिया, उससे वे उच्चकोटि का चारित्रपालन कर सकीं। उनके नियम, प्रतिज्ञा व दृढ़ता में ये दोनों कभी बाधक नहीं बनीं। यह एक अद्‌भुत संयोग परस्पर बना रहा। ऐसा पूर्व पुण्योदय एवं दृढ़निश्चयी भावों से ही संभव हुआ है।

सांसारिक रिश्ते में 'दादी पौत्री' का नाता, दीक्षित जीवन में सर्वोत्तम सेवा के रूप में सेवा-प्राप्ति एवं सेवा-लाभ के अनुपम उदाहरण विरले ही पुण्यशाली आत्माओं को प्राप्त होते हैं। इस दृष्टि से ये **'दादी-पौत्री' के नाम से जाने पहचाने जाते हैं। आपका जीवन आदर्श एवं उत्कृष्ट चारित्र का साक्षात् प्रमाण हैं।**

पू. दादीजी महाराज साहब का जीवन आदर्शपूर्ण एवं दृढ़ साध्वाचार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उत्कृष्ट साध्वाचार का पालन करनेवाली पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. को मैं अपनी आत्मीय श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। डॉक्टर साध्वीद्वय के सेवाभाव तथा उत्कृष्ट चारित्रपालन के प्रति अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ अर्पित करता हूँ।

अपने प्रत्येक विचार, शब्द और कार्य
को मधुर एवं शुद्ध बनाओ।

69. करुणा से ओतप्रोत व्यक्तित्व

- **प्रकाशचन्द्र गादिया, उज्जैन (म.प्र.)**

धाणसा (राजस्थान) में चातुर्मास के पश्चात् पूजनीया सुसाध्वीजीश्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब सकारण वहीं विराज रही थीं। दिनांक 1-3-2000 को देवलोकगमन का समाचार जैसे ही सुना, स्थानीय गुरुभक्तों में शोक की लहर व्याप्त हो गई। जिसने भी यह हृदय विदारक समाचार सुना, गहरा आघात लगा। पू. दादीजी महाराज साहब श्रीसौधर्म बृहत्तपोगच्छीय जैन श्वेताम्बर संघ की वरिष्ठा साध्वीजी महाराज साहब थीं।

नब्बे वर्ष की आयु में भीनमाल से पैदल विहारकर वि.संवत् २०५६ के चातुर्मास हेतु वे अपनी परम विदुषी शिष्याओं के साथ धाणसा पधारी थीं। श्रीसंघ धाणसा ने तन-मन एवं धन से उनकी सेवा की, जो प्रशंसनीय एवं अनुमोदनीय है। उनकी शिष्याओं ने जिस समर्पणभाव से अपनी गुरुणीमैया की सेवा की, वह एक आदर्श उदाहरण है।

पूज्या सुसाध्वीजी महाराज साहब सरल, सहज एवं निरभिमानिनी स्वभाव की थीं। उनका हृदय दया एवं करुणा से ओत-प्रोत था। आज के समाज में हम कई प्रकार के ऐशो आराम की जिन्दगी बितानेवाले साधु-साध्वी भगवन्तों को देख रहे हैं, किन्तु पूज्या सुसाध्वीजी इनसे कोसों दूर थीं। वो हमारे लिए आदर्श रुप में एक उदाहरण थीं। इनकी पूर्ति इनकी शिष्याओं से ही संभव है। आपने आत्म-साधना के साथ-साथ जिनशासन की प्रभावना के उल्लेखनीय कार्य किये हैं, जो सदैव स्मरणीय रहेंगे। ज्ञानोपासना के प्रति भी उनकी विशेष लगन थी। वे स्वयं भी सदैव स्वाध्याय, चिंतन, मनन और ध्यान में लीन रहा करती थीं। उसीका परिणाम है उनकी शिष्याओं में परम विदुषी उच्च शिक्षा प्राप्त साध्वीजी भगवन्त विद्यमान हैं। वे वर्तमान में भी अच्छी श्रुतसेवा का कार्य सम्पादित कर रही हैं।

पूजनीया सुसाध्वीजी महाराज साहब के देवलोक गमन से पुरानी पीढ़ी की वरिष्ठा साध्वीजी महाराज का अभाव हो गया है। इससे संघ को अपूरणीय क्षति हुई है। जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में होना असंभव है। उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए उनके छोड़े गये अधूरे कार्यों को उनकी भावना के अनुसार पूर्ण करें और उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कोई स्थायी कार्य करें।

त्रिस्तुतिक श्रीसंघ नयापुरा उज्जैन द्वारा गुणानुवाद सभा का आयोजन अध्यक्षश्री सुशीलजी गिरिया की अध्यक्षता में हुआ, जिसमें विभिन्न वक्ताओं ने महाराजश्री के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए अपनी ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की।

70. कठोर अनुशासन की जीवंत प्रतिमा थी

- महेन्द्रकुमार खीमावत, मुंबई

कठोर संयमसाधिका प.पू. श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के देवलोकगमन के दुःखद समाचार सुनकर मेरे अन्तरतम में गहरा आघात लगा। जिसे मैं शब्दों में व्यक्त करने में असमर्थ हूँ। पू.दादीजी महाराज साहब के वियोग का सदमा न केवल मुझ पर, अपितु आज मेरे समस्त परिवार पर छाया हुआ है। जिनशासन में जो क्षति हुई है, उसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती। उनकी आत्मा को शांति प्राप्त हो, इस निमित्त ठाकुरद्वार रोड़ पर पूजा रखी गई। उनकी अमर आत्मा की चिरशांति के लिए मैं जिनेश्वर परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ।

पू.दादीजी.महाराज साहब की पावन प्रेरणा से ही मेरे जीवन में धर्म-भावना जागृत हुई। उनके दर्शन-वंदन का लाभ सर्वप्रथम मुझे सन् 1989 में खिमेल वर्षावास में मिला। उनकी सौम्य मुखमुद्रा के दर्शन से अमृत पान का पुण्य-लाभ मिलता था। निश्छलता, निर्मलता सहजता, समता, सहिष्णुता व स्वावलंबितादि उनके जीवन की अनेक ऐसी विशिष्टताएँ थीं, जिससे हर कोई व्यक्ति उनके प्रति नतमस्तक हो जाता था। इतना ही नहीं, उनकी वाणी में मिश्री-सी मिठास व माधुर्य भरा हुआ था। तप-त्याग एवं कठोर अनुशासन की वे एक जीती-जागती मूर्ति थीं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो भी उनके पद-चिन्हों का अनुसरण करेगा, उसका निश्चित ही कल्याण होगा। ऐसी महान् चारित्रात्मा का वियोग असहनीय है। हम सब उनके बताए मार्ग का अनुसरण करें, यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि है। उनके चरण सरोजों में कोटि-कोटि वन्दन-नमन !

71. सौम्यमूर्ति

- पृथ्वीराज, मूलचंद, मुकेशकुमार कावेड़ी, भीनमाल

सहजता, सौम्यता की प्रतिमूर्ति पू.दादीजी महाराज साहब ने अनेक अनगढ़ पत्थरों को मूर्तिरूप प्रदान कर व जिनशासन के अनेक प्रभावी कार्य कर एक नया इतिहास बनाया। **'कम खाओ, गम खाओ और नम जाओ' का जिन्होंने संदेश दिया**। आपकी सरल-सहज भाषा में समझाने की शैली अनूठी थी, जो सबको आकर्षित कर लेती थी।

आपने विगत तेरह वर्षों से विभिन्न स्थलों पर विशाल पैमाने पर इक्कीस धार्मिक कन्या शिविरों का शानदार आयोजन करवाकर एक नया आलोक प्रदान किया था और आज भी आपका वह कार्य सतत जारी है।

ऐसी महान् उपकारिणी दिव्य विभूति को हम कोटि-कोटि वंदन करते हैं, जिनके असीम उपकारों को हम जन्म-जन्मान्तर तक भूल नहीं सकते। **'दादीपौत्री'** के रूप में आप सदा

सम्मान के साथ याद किये जाएँगे।

हे दिव्यात्मा दादीमाँ ! आप जहाँ भी हों, वहाँ से हम सभी पर कृपा-रस की अमृत-वृष्टि सदैव करती रहें। इसी के साथ हम सादर, सभक्ति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

72. "दादीमाँ तो दादीमाँ" ही थीं

- राजेन्द्रकुमार धारीवाल, पाली-मारवाड़ (राज.)

हृदय व्यथित हो उठा। नयनों से आँसुओं की धारा बह चली। यह जानकर कि मेरी परमोपकारिणी प्रिय दादीमाँ धाणसा में स्वर्गस्थ हो गईं।

मेरे जीवन में धर्मसाधना के संस्कारों का बीज-वपन करने में पूज्या दादीजी महाराज साहब का ही योगदान रहा। मैं उन्हें अपनी पथ-प्रदर्शिका के रूप में मानता रहा हूँ।

मुझ पर जो आपकी स्नेह-वात्सल्यमयी दृष्टि थी, इसे मैं अपने असीम पुण्य का उदय मानता हूँ। जो माधुर्य उनके एक-एक शब्द में था, वह मिश्री में भी नहीं। उनके उपकार मेरी हर धड़कन के साथ जुड़े हैं।

मैंने पू. दादी मातेश्वरी के जीवन में जो समता-सहिष्णुता व कठोर संयम का त्रिवेणी संगम देखा, वह मुझे अन्यत्र कहीं भी नजर नहीं आया। यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण कथन नहीं, बल्कि मैंने जो अनुभव किया, देखा, परखा वही यहाँ लेखनीबद्ध किया है।

धैर्य, क्षमा, करुणा और विनम्रता का तो इतना सुंदर स्वर्ण संयोग उनमें था कि बस, **'दादीमाँ तो दादीमाँ' ही थीं।**

मैं उन कठोर अनुशासन की जीती जागती प्रतिमूर्ति दिव्यात्मा को स्मरण करते हुए सादर, सभक्ति श्रद्धा के कुछ पुष्प अर्पित-समर्पित करता हूँ।

73. संसार सूना हो गया

- महेन्द्रकुमार, कांकरिया - बैंग्लोर

फोन से हृदयभेदी दु:खद समाचार ज्ञात हुआ कि मेरी परम पूज्या दादीजी महराज साहब दिवंगत हो गईं तो आँखें बरस पड़ीं, लगा कि सारा संसार सूना हो गया।

अब तो पूज्याश्री की मधुर यादें एवं सूरा वर्षावास व सूरा में हुए दो-दो कन्या-शिविर के दौरान उनका मंगल सान्निध्य सतत स्मृति-पथ में घूमता रहता है।

जब पहली बार मैंने उनके दर्शन किए तो उनके दिव्य व्यक्तित्व को देखकर आनंदित हो उठा ! **उनके जीवन में मैंने सहजता-सरलता व सादगी देखी और देखा कठोर अनुशासन!**

पूज्या दादीजी महाराज साहब ने मुझे एक नई प्रेरणा, एक नई दिशा व एक नई ऊर्जा प्रदान की। जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता हूँ। अतीत की उन स्मृतियों को स्मरण करते हुए मन का कण-कण आपश्री के चरण-कमलों में असीम आस्था-श्रद्धा से नम्र हो उठता है।

ऐसी उस दिव्य विभूति को शत-शत नमन !

74. गुणों की खान

- रमणलाल-भाग्यवंती जैन, कुक्षी (म.प्र.)

परमश्रद्धेया पूज्या साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी)महाराज साहब का सौम्य चेहरा, सरल स्वभाव, शांतप्रकृति तथा मधुरवाणी का अनूठा प्रभाव सदा स्मरणीय है।

उनका स्वभाव बहुत ही विनम्र तथा कोमल था। छल-कपट तो उनसे कोसों दूर था। इतना ही नहीं, उनका शांत हृदय सांसारिक प्रपंचों से सदैव अलग-थलग था। **उनका तप-त्याग और संयम साधना तो इतनी कठोरतम थी कि बाप रे बाप ! आज तक हमें ऐसी कहीं देखने को नहीं मिली। यह बात मात्र औपचारिक दृष्टि से नहीं, बल्कि हमने अपने अनुभव के आधार पर कही है।** सन् 1979 के चातुर्मास से लेकर निरंतर आठ माह तक हमें उनका सान्निध्य मिला।

उनके दिव्य और भव्य व्यक्तित्व की छाप हम पर पड़ी तो हृदय और मस्तक दोनों ही श्रद्धावनत हो गये। उनके निश्छल, निर्मल व ममतापूर्ण व्यवहार ने तो हमारे मन को ही जीत लिया था।

कुक्षी वर्षावास के पश्चात् प्रतिवर्ष हम उनके दर्शनार्थ जाते थे, तो वे बड़ी आत्मीयता से बात करती थीं। उनके श्रीचरणों में बैठने के बाद उठने का मन ही नहीं होता था। ऐसा लगता था मानो हमें अपनी माँ मिल गई हो। उनकी अमिट स्मृतियाँ आज भी हमारे दिल-दिमाग पर अंकित हैं। हम '**गुणों की खान**' उस पुण्यात्मा को सभक्ति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

75. वात्सल्यभरी शिक्षा

- अविनाशकुमार भीमाणी, भीनमाल

परम श्रद्धेया पूज्या दादीजी महाराज साहब के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे बाल्यकाल में हुआ था और वह भी भीनमाल के सन् 1992 के चातुर्मास में। उस वक्त मैं बहुत छोटा था। बचपन से ही मैं आपके दिव्य व भव्य जीवन के बारे में अपने दादा-दादी के मुँह से सुनता रहा। स्कूल की वजह से मैं रोज आपके दर्शन-लाभ नहीं ले पाता था। अवकाश के क्षणों में जरूर

आपके श्रीचरणों में पहुँच जाता था।

आपके सहज शांत जीवन, सरल-सौम्य व्यक्तित्व, सात्त्विक स्वभाव एवं स्नेह-वात्सल्यपूर्ण व्यवहार की अमिट छाप मेरे जीवन पर पड़ी, जिसे मैं कभी भी भूल नहीं सकता!

मुझे भलीभाँति याद है कि आप बड़ी मधुर भाषा में हितशिक्षाओं का सुधापान कराती थीं। उन सभी प्रेरणाओं को आज भी मैं अपने स्मृतिकोश में संजोये हुए हूँ।

मेरे हृदय के कण-कण में आपकी ये पंक्तियाँ गूँज रही है :

"अविनाश ! ये दोनों (दादा-दादी) तुझे कुछ भी कहें, पर कभी भी इन्हें छोड़ना मत। मेरी यह बात हमेशा ध्यान में रखना"। मन-मस्तिष्क में विराजमान ऐसी पूज्याश्री के श्रीचरणों में मेरा शत-शत वन्दन और नमन।

76. समाज गौरवान्वित है

- *श्रीमती कमलाबहन भंडारी* - जोधपुर

परम पूजनीया दादीजी महाराज साहब आत्मसाधना के पवित्र पथ पर स्वयं चलती हुई सम्पर्क में आनेवाले जिज्ञासुजनों को भी सत्पथ की शिक्षा प्रदान करती थीं। आपका स्वभाव बहुत ही सरल था। क्षमा, मृदुता, सादगी, सहिष्णुता, समतादि साधु-गुण आपके अंदर विशेष रूप में विद्यमान थे। इन विशेषताओं के कारण सुयोग्य साध्वियों में आप '**दादीपौत्री**' के रूप में प्रख्यात हुईं। प्रत्यक्ष दर्शन करने से आपके विशिष्ट स्वभाव का परिचय प्राप्त कर अन्त:करण में प्रमोद भावना जागृत होती थी।

आपकी छाप आपकी सुयोग्य शिष्याओं डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी म. पर भी स्पष्टत: दिखाई देती हैं।

आज आप अपने पार्थिव देह में विराजमान नहीं हैं, तथापि आपका यश:शरीर आज भी समाज की अन्तर्दृष्टि का विषय बना हुआ है। ऐसी महान् विभूति के सद्‌गुणों की पुष्पवाटिका से समाज गौरवान्वित है।

मैं पू. दादीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

जो परिमित खाता है, वह बहुत खाता है अर्थात् स्वास्थ्य की दृष्टि से कम खाना ज्यादा हितकारी है।

•

भयभीत साधक स्वीकृत कार्यभार का भलीभाँति निर्वाह नहीं कर सकता।

77. शांति की सजीव प्रतिमा

- रतनलाल कांकरिया, जमखंडी

परमश्रद्धेया पूज्या दादीजी महाराज साहब हृदय से निर्मल, कोमल और करुणामूर्ति थीं। सूरा चातुर्मास में प्रथमबार जब मुझे आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो हृदय गदगद हो गया। मैंने प्रथमबार ही पाया कि आप शांति की सजीव प्रतिमा थीं। आपकी वाणी में मृदुता और व्यवहार में कुशलता थी।

आपके जीवन की एक महती विशेषता यह थी कि आप प्रंशसा से हर्षित और निंदा से क्षुब्ध नहीं होती थीं। उनपचास वर्षोंतक निरंतर स्व-पर कल्याण में लीन रहीं। कठोर तप-त्याग की निर्मलता के साथ-साथ उनका अन्तर्जगत् बाहर से भी अधिक सुंदर था, समुज्ज्वल था। चमत्कारपूर्ण था। संयम साधना का पवित्र अनुराग उनके कण-कण में व्याप्त था। उनके जीवन में संयम अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच चुका था। वैराग्य, जप-तप, ज्ञान-ध्यान-स्वाध्यायादि के विशाल सरोवर में वे गहरी डुबकी लगाती रहती थीं।

पू.दादीजी महाराज साहब अपने आत्म-चिंतन में हमेशा आनंद विभोर रहा करती थीं। ऐसी उस महान् विभूति के प्रति मैं अपनी अश्रु-सिक्त श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

78. विरल व्यक्तित्व की धनी

- अमीचंद दाणी, धाणसा (राज.)

चन्द्रमा के समान शीतलता प्रदान करनेवाली, स्नेह-वात्सल्य, करुणा की साकारमूर्ति प.पू. श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब का हमारे नगर धाणसा में अंतिम वर्षावास होने से मुझे उनके दर्शन एवं सत्संग का सौभाग्य कईबार प्राप्त हुआ।

पू. दादीजी महाराज साहब विरल व्यक्तित्व की धनी थीं। उन्होंने स्व कल्याण के साथ-साथ पर कल्याण को भी अपने जीवन में विशिष्ट स्थान दिया। सभी के साथ समानता का व्यवहार उनके दिव्य-गुणों में चार चाँद लगाता था। जो भी एकबार उनके संपर्क में आता, सदैव उन्हीं का बन जाता। सचमुच आपश्री सरलता-सहजता व पावनता की एक दिव्यमूर्ति थीं।

यद्यपि आज इस विश्व में वे नहीं है, किंतु उनका दिव्य व्यक्तित्व आज भी प्रत्येक जन-मन में समाया हुआ है। ऐसी दिव्य आत्मा को सभक्ति, सादर मैं कोटि-कोटि वन्दन करता हूँ।

79. उत्कृष्ट क्रियापालिका

- बहादुरमल करनावट (मन्दसौरवाले), बड़नगर (म.प्र.)

रत्नत्रय आराधिका परम श्रद्धेया श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के स्वर्गारोहण के समाचार बड़नगर पहुँचे तो समस्त श्रद्धालु भक्तजन घोर विषाद की अवस्था का अनुभव करने लगे। मुझे व्यक्तिश: बड़ा आघात लगा, क्योंकि मन्दसौर में मुझे अनेकबार आपश्री के सान्निध्य व सत्संग के अवसर मिले; जिसके फलस्वरूप उनके प्रति मेरे आत्मभाव विशेषतया जागृत हुए।

आप उत्कृष्ट क्रियापालिका थीं। सतत ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय एवं तपस्या में रत रहती थीं। इसतरह वे अनेक आत्मगुणों का धन-कोष थीं। आपने श्रीमद् राजेन्द्रसूरि-गुरुजन्मभूमि-भरतपुर, श्रीमद् विजय धनचन्द्रसूरि-जन्मभूमि मदनगंज-किशनगढ़ आदि कई गाँवों के श्रावक-श्राविकाओं को नए गुरुभक्त बनाकर उन्हें गुरु आम्नाय दिलवायीं और उनके हृदय में धार्मिक सुसंस्कारों का बीजारोपण किया।

महावीरप्रभु की वाणी को घर-घर पहुँचानेवाली, महामंत्र नवकार के बारे में आत्मबोध देनेवाली, अपना भरा-पूरा परिवार त्यागकर, मन-वचन-काया से अपनी आत्मा को तारनेवाली एवं पीछे अपने परिवार को सत्यमार्ग दर्शानेवाली पू.दादीजी महाराज साहब की प्रेरणा से ही प्रेरित होकर आपकी चारों पौत्रियों ने भागवती प्रव्रज्या अंगीकार की। आपने उन्हें संयमजीवन की ही ट्रेनिंग नहीं दी, अपितु उनके अध्ययन की ओर भी विशेष ध्यान दिया।

आपने मन्दसौर में विराजकर अपनी दोनों पौत्रियों-साध्वी डो. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं साध्वी डो. सुदर्शनाश्रीजी म. को हायर सैकेन्ड्री से लेकर बी.ए., एम.ए. तक का अध्ययन करवाया। यह मन्दसौर श्रीसंघ का परम सौभाग्य था। तत्पश्चात् आपने दोनों को विशेष ज्ञानार्जन हेतु (पी-एच.डी. के अध्ययन हेतु) बनारस-पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान भेजा। वहाँ करीब सालभर रहकर दोनों पी-एच.डी. की उपाधि से अलंकृत होकर पुन: वे पू. दादीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में पहुँचीं, जो आज समाज के एक रत्नदीपक हैं।

धन्य है पू.दादीजी महाराज साहब की शिक्षा के प्रति तीव्र लगन व निष्ठा को !
धन्य है इनकी प्रबल प्रेरणा व आत्मीयतापूर्ण सहयोग को !
और धन्य है इनके अदम्य साहस व आत्मविश्वास को !

ऐसी संयमनिष्ठ, तपोनिधि गुरुवर्याश्री के पावन चरणों में स्मृतिवंदन करते हुए दिवंगत दिव्य आत्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित कर अपने को कृतज्ञ अनुभव कर रहा हूँ।

मेरी यही मंगलकामना है कि परम पूज्या श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब की दिव्य आत्मा पथ-भ्रमित भव्यात्माओं को सद्मार्ग का बोध कराती रहें।

80. नि:शब्द गगन का विस्तार

- सोमदत्त पुरोहित 'जालिमबाबू', किशनगढ़

जिनकी पग-धूली लेने पर हाथों को ऐसी अनुभूति हो जैसे सुरभित चन्दन को स्पर्श किया हो। जिनके दर्शन से आप शान्ति के ऐसे दिव्य लोक में अवस्थित हो जाएँ कि मन की सारी प्रगल्भता, सारी चंचलता तिरोहित हो जाए। जिनके सान्निध्य में कामनाएँ अपने उत्स की ओर प्रवाहित होने लगे। ऐसे स्थविर सामीप्य-क्षण पूर्व पुण्य क्षेत्रों के उदय से अथवा वर्तमान की लक्ष्य समर्पित साधना से यदा-कदा उपलब्ध होते हैं।

संयोग से स्थविरा तप:मूर्ति साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब अपनी सुशिष्याओं के साथ कुछ वर्षों पूर्व किशनगढ़ पधारीं। श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन मन्दिर के स्वच्छ-सुन्दर प्रांगण और आध्यात्मिक वातावरण में मुझे आपश्री के दर्शन और वार्तालाप का अवसर प्राप्त हुआ। प्रथम दर्शन में ही हिमालय-सी दृढ़ता और शान्त ओज के प्रबल प्रवाह ने मुझे मेरे अन्तस् के आलोक में निमग्न कर दिया। वे एक शान्त, स्फटिक-सी पारदर्शिता लिए-मेरे सम्मुख खड़ी थीं-और मैं अभिभूत, श्रद्धावनत !

साध्वीजी सद्गुणों और साधना का ऐसा अविनाभावी सम्बन्ध थीं कि मैंने सहज ही सेवा का अवसर माँगा। उदारमना ने कृपा की और मुझे उनकी सुशिष्याओं को अंग्रेजी भाषा के अध्ययन हेतु सहयोग के लिए कहा। इसप्रकार मुझे मन्दिरमार्गी साध्वियों का सान्निध्य प्रथम बार प्राप्त हुआ।

पूरे चातुर्मास काल में पूज्या साध्वीश्री एवं उनकी शिष्याओं का सान्निध्य मुझे यूं सहज ही प्राप्त हुआ। साध्वीश्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब अपनी साधना में अत्यन्त नियमित थीं। वे शरीर को इतना ही पथ्य और विश्राम प्रदान करतीं जितना शरीर के संचालन हेतु आवश्यक था। वे नित्य एकसमय ही भोजन करती थीं। पूर्ण उपवास उनके लिए अतिरिक्त आवश्यकता थी। वे मिताहारी तो थीं ही, मितभाषी भी थीं। उनकी तपस्या की उर्जा, वे जब बोलतीं, तो श्रोता के अन्तर्मन को सीधे बेधती। जैनधर्म में साधु-साध्वी जीवन अंगीकृत करनेवाले साधकों को कठोर जीवन जीना होता है। जैनधर्म के अंग-उपांग, आचार-व्यवहार की जीवन्त प्रतिमूर्ति महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब इस कठोर जीवन की इतनी अभ्यस्त थीं कि वे हर समय स्थितप्रज्ञ स्थविर सी ही दिखाई देतीं। स्नेह और ओज जैसे उनके श्वास और प्रश्वास थे। स्वाध्याय हो अथवा धर्मगत अर्चना के आयाम-वे सहज और सम दिखाई देतीं। हरसमय वे अपनी शिष्याओं के लिए और जैन/अजैन श्रावकों/साधकों के लिए प्रेरणा की निर्धूम- ज्योतित-ज्योति थीं।

संयम, शान्ति और साधना की यह त्रिवेणी समगति से प्रवहमान हो कर सृष्टि के असंयम को समरसता के अडोल आसन पर स्थापित होने का निमन्त्रण देती दिखाई देतीं।

एकदिन अनायास ही महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब से वार्तालाप के समय मुझे साधना और दैनिक व्यवहार की असंतुलित प्रक्रिया को समता पर लाने का सूत्र हाथ लगा –

वे कह रहीं थीं-"हम सभी बहुत कुछ व्यर्थ करते हैं, निरर्थक करते हैं, कितना कुछ खो देते हैं। जिसे बाँट देना चाहिए उसे एकत्र कर लेते हैं। जिसे बचाकर, सहेजकर रखना चाहिए, उसे मूढ़तापूर्वक व्यय कर देते हैं। साधना सतत जागरूकता का नाम है। हम इन्द्रियों के उपयोग में तो अतिवादी हैं ही, किन्तु दुर्लभ मनुष्य जन्म की प्राप्ति के मूल्य तक को नहीं पहचान पा रहे हैं।"

वे कह रहीं थीं-"अनावश्यक संचय तो अनुचित है ही, अनावश्यक व्यय तो अपराध ही है। देखिए। कितना जल यूं ही वृथा नालियों में बह जाता है, हम यूं ही कितना अनर्गल बोलते हैं। सोचते हैं। कितनी श्वासें यूं ही गवाँ देते हैं।"

और फिर अचानक ही उनकी वाग्धारा रुक गई। मैं उन्हें अवाक् देख रहा था-सब कुछ इतना सहज था-मुझे लगा जैसे जब वे बोल रही थीं तब भी इतनी ही मौन बैठी थीं।

मैं समझ पा रहा था कि वे कैसे भौतिक संसाधनों के समुचित उपयोग के साथ-साथ वाणी के संयम की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित कर रही थीं। उन्होंने बिना किसी विस्तृत प्रवचन के अपने सीमित साधना-सिंचित शब्दों के माध्यम से मौन की महत्ता को बोधगम्य बना दिया था।

सत्य के समक्ष आडम्बर कैसे टिक सकता है ! सत्य है ! साधना के सुदीर्घ मार्ग पर अग्रेषित महाभाग के लिए शब्द पीछे छूट जाते हैं। शब्दाडम्बर के व्यवधान को तोड़कर एक मुक्त विहारी स्वयं कितना निस्सीम हो जाता है-गगन के विस्तृत विस्तार के समान। देह की सीमा से परे खड़ी साध्वीश्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब की इस स्मृति को मैं प्रणाम करता हूँ।

साध्वी डॉ. श्रीप्रियदर्शनाश्रीजी महाराज, साध्वी डॉ. श्रीसुदर्शनाश्रीजी महाराज साहब सहित शिष्या परिवार के निरन्तर उत्कर्ष हेतु मैं अपनी शुभकामनाएँ अर्पित करता हूँ।

81. चुम्बकीय व्यक्तित्व व वात्सल्यभरा आंचल

- भागचन्द जैन, किशनगढ

परम श्रद्धेया दादीमाँ, के व्यक्तित्व को शब्दों में बाँधना अत्यन्त कठिन सा प्रतीत होता है। उनका सौम्यता लिए व्यक्तित्व, उच्चता, निर्मलता व निश्छलता जैसे अनुपम गुण सदा-सर्वदा प्रेरणा का स्रोत रहते हैं। बार बार नमन है उस अद्वितीय व्यक्तित्व को, श्रद्धांजलि अर्पित है देदीप्यमान साध्वी की महान् आत्मा को। उनके जीवन-प्रांगण में अन्यान्य गुण आलोक बन बिखरे थे, चुम्बकीय तत्त्वों से थे भरपूर। फल स्वरुप कीर्ति-सौरभ व्याप्त था, सब दूर। उनके

जीवन का एक रेखाचित्र प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ, यद्यपि यह कार्य असाध्य को साधना है।

वात्सल्य की प्रतिमूर्ति - 'दादीमाँ' से सम्बोधित साध्वी निर्विवाद रूप से वात्सल्य की प्रतिमूर्ति थीं। इनके विशाल हृदय सागर में दया, उदारता व क्षमा की अक्षय उर्मियाँ उठती रहती थीं। सभी धर्म-प्रेमी बंधुओं एवं बहिनों के लिए उनका अन्तर्मन खुला रहता था। उनके प्रशान्त व सौम्य चेहरे पर कभी नाराजगी, क्षुब्धता व क्रोध दृष्टिगत नहीं होता था। सच तो यह है कि वो दिव्यरूपा थीं मानवीय स्वरूप में। साधना व आराधना ही जिनका अभीष्ट पथ था। दिव्यस्वरूपा, वात्सल्य की प्रतिमा विशाल हृदया थीं वे। दर्शन होते ही स्वत: ही सिर झुकजाता था, जिनके चरणों में शरणागत हो जाते थे धर्मयात्री, सुख व संतुष्टि का अनुभव करते थे, मन प्रफुल्लित हो उठता था।

साधना की सशक्त साधिका - माननीया के जीवन में अनवरत रूप से साधना का दीप प्रज्वलित रहता था, सम्पूर्ण माहौल आलोकित रहता था जिनकी ज्ञान-रश्मियों से। सच तो यह है कि साधना की मौन सशक्त आराधिका थीं वे। वहाँ प्रदर्शन नहीं, पालना थीं जीवन के दिव्य मूल्यों की जो उनकी प्रत्येक गतिविधि से द्रष्टव्य था। जैन-जगत् की चमचमाती चन्द्रिका थीं वे, अमृत की वृष्टि ही लक्ष्य था उनका। जीवन के हर क्षण को साधनामंत्र बना दिया उनके जाप-ध्यान ने। फलत: गर्वोन्नत हो गया उनका व्यक्तित्व। नाज है हम सभी को उनके विराट् स्वरूप पर।

मौन तपस्विनी - मौन के माहात्म्य को उन्होंने अपने जीवन से आदर्शरूप में प्रदर्शित किया। उनकी कथनी व करनी में एकरूपता थी, सुन्दर समन्वय व सामंजस्य था उनमें। उन्होंने जीवन आदर्शों को साकार रूप दिया, अपने जीवन के हर क्रिया-कलाप से। उन्होंने मूर्तरूप दिया इस कहावत को, "Example is better than Precept"। उनके मौन-संकेत अत्यन्त अर्थपूर्ण व महत्त्वपूर्ण हुआ करते थे। उनका मौन भी मुखरित था। यह सब उनकी निरन्तर साधना व आराधना का सुपरिणाम है। दैवीय अलौकिक गुण जब जीवन के अभिन्न अंग बन जाय वहाँ स्वर्ग की सृष्टि में संदेह नहीं किया जा सकता। मूल्यों की महत्ता को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने के स्थान पर जीवन में व्यवहृत किया जो अनुकरणीय रहेगा।

उदारमना व सरलता की प्रतिमूर्ति - इसमें कहीं भी किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि वे उदारहृदया व सरलता की साक्षात् प्रतिमा थीं। उनके शांत व प्रशांत मुख-मण्डल पर इन द्वय गुणों की आभा दीप्त थी। जीवन के व्यावहारिक पहलू में उदारता व सरलता का जिस बखूबी के साथ समाविष्ट किया था उन्होंने, अत्यन्त श्लाघनीय कहा जायगा। उन्हें अपने शरीर व वेशभूषा की तरफ कोई ध्यान व मान नहीं था। उनका उदार हृदयी व्यवहार व सरलतापूर्ण आचरण सभी का मन मोह लेते थे। उनको त्यागी, तपस्विनी व विदुषी सुशिष्याओं पर भी किसी प्रकार गर्व नहीं छू पाया है। वे अपनी ही धार्मिक साधना की क्रियाओं में तन-मन से लीन थीं। उनका लक्ष्य तो आत्मा का कल्याण व भटकों का मार्गदर्शन, वो भी इतना सहजभाव से कि भक्तगण

अभिभूत हुए बिना नहीं रहते थे। इन दैवीय गुणों ने उनके जीवन को उन्नत शिखर पर पहुँचा दिया, जिन्हें विस्मृत करना अत्यन्त कठिन है।

हँसमुख व्यक्तित्व-आपके बहुमुखी व्यक्तित्व की यह भी एक अद्वितीय विशेषता थी कि मुस्कराहट हरक्षण आपके चेहरे की शोभा में अभिवृद्धि करती रहती थी। हर समय चेहरे पर प्रसन्नता भक्तों के मन में, जीवन में आशा व विश्वास का संचार करती थी। सच तो यह है कि चेहरे पर खिलनेवाली मुस्कान हर प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम होती थी तथा हर समस्या का समाधान। जहाँ धैर्य व सहनशीलता हो, वहाँ मुस्कान व हँसी का आगमन होता है जो जीवन में शक्ति का संचार करता है। मुस्कराता चेहरा व्यक्तित्व में एक अनूठा व असाधारण आकर्षण पैदा करता है। यह संतुलित जीवन का परिचायक है। वर्तमान अशांत व असंतुष्टि के परिप्रेक्ष्य में इनके चेहरे पर मुस्कान खेलती रहती थी तथा सबका स्वागत करती थी, विश्वास का दीप जलाती थी, जिसका आलोक नवजीवन, नवउत्साह व उमंग का संचार करता रहता था। ये जीने के सशक्त सहारे हैं।

लक्ष्य की ओर बढ़ती निरन्तर शक्ति का स्रोत - जीवन की प्रत्येक स्थिति व अवस्था में भी अपने लक्ष्य का संधान करने के लिए बढ़ती निरन्तर शक्ति का स्रोत स्तुत्य था। आज भी उनका मौन चित्र हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। आपके आंतरिक मूल्यों व शक्तियों के कारण चित्र भी सजीव हो उठा है। उन्होंने जीवन के हर क्षण व पल का सदुपयोग सही दिशा में बढ़कर, साधना की आराधना में डूबकर किया है।

चिन्तनशीला - सतत चिन्तन ही उनके जीवन का स्वभाव बन गया था। उनकी मुखरित वाणी इस गुण का स्पष्ट परिचय कराती थी। उनके द्वारा सरल भाषा में दी गई अभिव्यक्ति चिन्तन के मुक्ताओं से परिचय कराती थी। जैनदर्शन व जन-जन के व्यवहार दर्शन पर सदा उनका चिन्तन चलता रहता था। यह उनके जीवन की बहुत ऊँचाई थी, जहाँ से प्रकाश-स्तम्भ के रूप में जन-सामान्य का मार्ग प्रशस्त करती थी। सतत पुस्तक व ग्रन्थ पठन ने भी उन्हें चिन्तनशीला बना दिया था। उनकी चिन्तन की प्रक्रिया कभी विराम नहीं लेती थी। उनकी जीवन-धारा का चिन्तन व मनन एक अभिन्न अंग बन चुका था।

बहुमुखी प्रतिभा की धनी - उनके सरल व सादगीपूर्ण जीवन से उनकी बहुमुखी प्रतिभा का कोई आसानी से अनुमान नहीं लगा सकता था। परन्तु वे मौन व शांत साधिका थीं जिनकी पैठ हरक्षेत्र में गहरी थी। यह सब उनसे बातचीत के दौरान ही जाना जा सकता था। **उनके द्वारा उद्धृत पंक्तियाँ प्रमाणरूप में साक्षी थीं। यही मौनसाधना का प्रसाद विरासत के रूप में उनकी प्रिय-सुशिष्याओं को भी प्राप्त है जिनके प्रभाव व चमत्कार से सभी धर्मप्रेमीबंधु व बहिनें सुपरिचित हैं। गुरुवर्या का आदर्श जीवन शिष्याओं के लिए अनुकरणीय बना, जो सतत रूप से पल्लवित व पुष्पित होकर सौरभ बिखेर रहा है।**

सतत जलती मशाल - उनका जीवन प्रकाश स्तम्भ के रूप में था। वे सतत जलती मशाल थी जो श्रावक-श्राविकाओं का मार्गदर्शन करती थी। सतत जलकर गुरुपद की महिमा

को साकार रूप से उजागर किया था उन्होंने। चेतना व जागृति का सशक्त आदर्श थीं वो। वृद्धावस्था की थकान नहीं परिपक्वता थी उनमें। साधना व आराधना का यौवन था उनमें। हरक्षण का सदुपयोग कर प्रदीप्त रखती थीं जीवन को। उनका हृदय नवनीत के सदृश था जो सहज रूप से द्रवित हो जाती थीं। **नमन है बार-बार, हे प्रकाशपुंज ! तुम्हें।**

अनुकरणीय जीवन - उनके आदर्श जीवन में, अनेक गुण मणि-माणिक्य के रूप में बिखरे थे जो सभी के लिए सद्प्रेरणा स्वरूप अनुकरणीय थे। सहजता से सधा उनका जीवन हम सब के लिए आदर्श व अनुकरणीय हो गया है। आडम्बर व दिखावे से दूर, जीवन की सत्यता के निकट अनुपम विशेषताओं से युक्त हो गया था उनका जीवन। सौरभमय जीवन था उनका, जीवन बगिया में खिले थे साधना के रंग बिरंगे प्रसून, जगमग था वो सैलाब। प्रेरणास्पद जीवन-स्वरूप, कई गुणों से युक्त व्यक्तित्व, अनुकरणीय व श्लाघनीय था। असाधारण रूप से प्रभावित करनेवाला विराट् व्यक्तित्व जो सदा-सदा स्तुत्य रहेगा।

सादा जीवन व उच्च विचार का पर्याय - आपका जीवन, सादा जीवन व उच्च विचार का पर्याय बन चुका था। जो चाहते थे हम सबसे, उसे वे उतारती थीं अपने जीवन प्रांगण में। आदर्शों का कोश थीं वो। उनका सुरम्य सौरभ व्याप्त था उनकी हर गतिविधि में, अंग-प्रत्यंग में, वाणी और व्यवहार में।

सजगता - आपके व्यक्तित्व की बहुत बड़ी विशेषता थी सजगता। आप हरक्षण अपने दायित्व व जीवन उद्देश्य के प्रति सजग थीं तथा निष्ठा के साथ उत्तरोत्तर प्रगति-पथ पर आरुढ़ थीं।

अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित, हर क्रिया-कलाप के प्रति जाग्रत, चैतन्य थीं आप। जीवन में विचलन का तो कोई स्थान व प्रवेश ही नहीं। दृढ़ता के साथ जीवन-पथ पर अग्रसर होना ही परम लक्ष्य था आपका। सजग रूप से धर्म-संस्कारों के प्रचार-प्रसार में जी-जान से लगी थीं आप। धर्म साधना में रत बंधुओं एवं बहिनों से उन्हें विशेष लगाव था। वे इसे ही जीवन तथा परम लक्ष्य व सर्वस्व समझती थीं। आंतरिक शक्ति व शांति ही सब कुछ था उनकी दृष्टि में। सभी का मूल्यांकन था उनके मानस-पटल पर।

सागर सी गहराई - उनके मुख की आभा में सागर सी गहराई व अथाह शांति थी। उनके सम्पर्क में आने के बाद व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष व अशांति बिल्कुल अदृश्य से हो जाते थे। उनके व्यक्तित्व के अलौकिक गुणों का प्रभाव अमिट व स्थायी होता था। जीवन की विशालता व जटिलता सागर की गहराई में खो जाते, ऐसा था उनका उत्कृष्ट जीवन, सरलता व सादगी के रूप में अवतरित। उनके मुखमंडल पर कभी उतार चढ़ाव देखने को नहीं मिलते, वहाँ था ठहराव व संतुलन। यह उनकी चिर मौन-साधना का ही सुपरिणाम था। जीवन की उत्कृष्टता में निखार आता ही चला गया।

निष्कर्ष रूप से मैं यह कहना चाहूँगा कि ऐसी अभूतपूर्व सरलता, सादगी का सुसमन्वय,

साधना व आराधना में सतत चिरशांत साधक के रूप में लीन, ऐसे जीवन्त व्यक्तित्व विरले ही होते हैं जो प्रकाश स्तम्भ की तरह मार्गदर्शन व पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं। इनके सागर से गहरे जीवन-स्वरूप को समझना व नापना इतना आसान कार्य नहीं है, फिर भी मैंने साहस जुटाकर लेखनी चलाने का प्रयास किया है। **मेरे द्वारा रेखांकित चित्र किसी भी व्यक्ति को प्रेरणा, जीवन चैतन्य का मंत्र, सतत जीवन-पथ पर आगे बढ़ने का सूत्र मिल सके तो धन्य समझूँगा अपने आप को... ! अंततः दादीमाँ के चरणों में वन्दन और विनम्र विनती है कि हमें सुकृत्यों को जीवन का अभिन्न अंग बनाने की शक्ति व सामर्थ्य दें।**

82. आत्म साधना के शिखर पर

- रुचिका धारीवाल, पाली

वात्सल्य सागर पूज्य गुरुवर्या, दीर्घद्रष्टा आप थीं।
सिद्धि पथ की सच्ची साधिका, मार्ग स्त्रष्टा आप थीं ॥
स्वावलम्बन, विनय व विवेक, आपका पैगाम है।
ऐसी महाप्रभाश्री के चरणों में भक्ति भाव प्रणाम है ॥

विश्व में कई आत्माएँ मनुष्य के रूप में जन्म लेती हुई भी भवसागर में डूब जाती हैं, परन्तु कुछ भव्य आत्माएँ मनुष्य जीवन को पाकर आत्मसाधना के शिखर पर चढ़ती हैं। स्वयं आत्मज्ञान का प्रकाश प्राप्त करती हैं और उसे फैलाकर समस्त जीवों का कल्याण करती हैं। **जैन शासन के विस्तृत आकाश पट्ट पर सूर्य-चन्द्र की भाँति एक नाम आज ध्रुव तारे की तरह चमक रहा है और वह है -**

"वात्सल्यमयी, मधुरभाषिणी शान्त, प्रशान्त, परमोपकारिणी परम पूज्या श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब"।

"गुलाब के फूल जैसा, जिनका दिल कोमल था,
गोक्षीर की धारा जैसा, जिनका यश उज्ज्वल था,
मेरे लिये अमरत्व है, जिनका विराट् व्यक्तित्व,
गंगा के सलिल सम, जिनका जीवन निर्मल था।"

ऐसी थी "**महाप्रभाश्रीजी**" अर्थात्

एक ऐसी दिव्य ज्योति जिसके सामने लाखों करोड़ों सूर्यों का प्रकाश भी कम पड़े, क्योंकि सूर्य भी कुछ समय के लिये अपनी तेजस्विता छोड़कर अस्ताचल में चला जाता है; लेकिन जिनके नाम की देदीप्यमान प्रभा लाखों लोगों के हृदय में हर घड़ी प्रज्वलित है। उनका गुणानुवाद करने के लिये हम सभी असमर्थ हैं। जिसप्रकार गागर में सागर व बिन्दु में सिंधु

समाहित नहीं हो सकता, जैसे पर्वत की ऊँचाई व सागर की गहराई को फुटपट्टी से नहीं मापा जा सकता। उसीप्रकार अपने अल्प क्षयोपशम से उस दिव्यात्मा के अमाप गुणों को नहीं मापा जा सकता है, लेकिन फिर भी एक प्रयास :—

पू. दादीजी महाराज साहब से हमारा परिचय आज से लगभग ग्यारह वर्ष पूर्व पाली नगर में श्री वासुपूज्य मंदिर के उपाश्रय में हुआ था और सामने ही हमारा घर था। प्रथम बार ही उनके दर्शन से मानों ऐसे आनन्द का अनुभव हुआ, जैसे गर्मी से संतप्त को शीतल लहरियों का स्पर्श मिला हो। पूज्या दादीजी महाराज साहब की तेजस्वी व गम्भीर मुखमुद्रा और उतनी ही ओजपूर्ण व मधुरवाणी मानो कलकल करता कोई झरना बह रहा हो, ऐसी दिव्यात्मा के दर्शन, वंदन से पहली बार ऐसा लगा कि आज मेरा जीवन धन्य हुआ और पू. साहेबजी से धीरे-धीरे मेरा परिचय व सम्पर्क बढ़ने लगा। कुछ समय पश्चात् दुन्दाड़ा श्रीसंघ का आग्रह ही नहीं, अत्याग्रह होने से ओलीजी-आराधना करवाने हेतु पू. दादीजी महाराज साहब को, उनकी शिष्या-साध्वीजी डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी, डॉ. सुदर्शनाश्रीजी द्वय को वहाँ भेजना पड़ा।

वयोवृद्ध अवस्था, व प्रतिदिन एकासना होते हुये भी पूज्याश्री प्रतिदिन की दैनिक क्रियाएँ इतनी निष्ठा, श्रद्धा, आत्मलगन, शुद्धि व यतनापूर्वक करतीं कि आश्चर्य होता! यहाँ तक कि पानी का घड़ा भी भरकर ले आतीं। उनको देखकर ऐसा लगता मानो वे समस्त मानव जाति को संदेश दे रही हों कि **"स्वावलंबी बनो।"** उनकी क्रिया ज्ञानमय, शुद्ध, सात्त्विक व अनुमोदनीय थी। उनका सान्निध्य नास्तिक को भी आस्तिक बना देने वाला व उनका समता भीना स्वभाव हर किसी के लिये चुम्बक समान बन जाता था। बस! हम भी उनके आकर्षन से बच नहीं सकीं और खिंची चली गयीं। रात को भी घर नहीं जातीं और साहेबजी के पाट के नीचे सो जातीं थीं। मेरी व मेरी तीन बहनों की उम्र लगभग चौदह, तेरह, बारह एवं आठ साल की थी, पर साहेबजी की रात में भी जागृति अनुमोदनीय थी। परोपकारी व निस्वार्थ भावना से हमें सदैव हितोपदेश देतीं, सामान्यज्ञान जो दैनिक जीवन में उपयोगी है, ऐसी विनय-विवेक आदि की बातें समझातीं। आज भी उनके वे प्रेरणामयी वाक्य हमारे जीवन का सच्चा मार्गदर्शन करते हैं। धन्य है उनकी उदारता, आत्मीयता जो सभी पर सदैव समान रूप से बरसती थी।

पू. दादीजी महाराज साहब के गुणों पर एक नजर :

पूज्या साहेबजी की वाणी वात्सल्य से परिपूर्ण बहती हुई नदी की भाँति थी। उनके अन्तर में अरिहन्त का वास था। उनके हृदय में विश्व वात्सल्य का विकास था। उनके नयनों में निर्विकारिता और आँखों में अमृत का अंजन था। उनका मन मैत्री और महामंत्र के मनन से मँजा हुआ था। उनका तन तप की ताजगी का सतत अनुभव कराता था। उनका चित्त चिंतन की चाँदनी एवं चारित्र से समुज्जवल था। जहाँ उनकी वाणी में बेधकता थी, तो उनका मौन भी कम असरकारक नहीं था।

आज भी केवल "पूज्या श्री महाप्रभाजी" मात्र इतने ही अल्प शब्दों का स्पर्श होने

के साथ ही आँखों के सामने अनेक विशेषताओं से युक्त उनकी आकृति, प्रकृति व कृति का त्रिवेणी संगम खड़ा हो जाता है और उस आकृति में नख से शिख तक दिव्यात्मा के चिन्हों से पवित्र देहाकार के दर्शन होते हैं। उनकी प्रकृति में आग को बाग में पलटानेवाली, विरोधी को विनय में रूपान्तरित करनेवाली, वातावरण को वात्सल्य की सुगन्ध से भरनेवाली, उनके हिमशिला जैसे शीतल स्वभाव के प्रभाव की स्मृति आज भी ताजा हो जाती है और उनकी कृति में अनुप्रेक्षा का प्रकाश फैलाती, मनन की माधुरी बरसाती एवं चिन्तन की चांदनी फैलाती आँखों के सामने खड़ी हो जाती है।

इसतरह आकृति के अनोखे, प्रकृति से प्रभावशाली और कृति से कामणगारे पूज्या साहेबजी अपनी अनेक और अनगिनत विशेषताओं के कारण जैन जगत् के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित होने योग्य अनेक प्रकरणों को जोड़कर इतिहास को गौरव प्रदान कर गयी। ऐसी इतिहास सर्जक इस दिव्यात्मा के पुन:दर्शन के लिये तो अब युगों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी न ?

महकते पुष्पों की भाँति उनके जीवन-सागर में निरभिमान, '**शिवमस्तु सर्वजगत:**' का आशीर्वाद प्रदान करती मुखमुद्रा, गहन चिन्तन व मनन की अनुपेक्षा-प्रियता आदि एवं सद्‌गुण रूपी सरिताओं का संगम दिखाई देता था। ऐसे गुणों के धनी, धैर्य के मेरुमणि का हमारे सम्पूर्ण परिवार पर अत्यन्त उपकार है जिनसे उऋण होना नामुमकिन है। अत: इनके ऋण को कुछ कम करने व उनकी कृपा एवं सान्निध्य पाने के लिए उनके द्वारा लगाये गये लगभग पन्द्रह शिविरों में मैं गई। जहाँ उनका निराला व्यक्तित्व, मौन की साधना व कड़क अनुशासन देखने को मिला। अपने जीवन द्वारा जागृति का शंखनाद करने वाली पू. साहेबजी स्वयं साक्षात् संयम, विशुद्ध महाव्रत, सुविशुद्ध समिति-गुप्ति एवं ज्ञान का अगाध महासागर थीं। किसी भी व्यक्ति को प्रश्नोत्तर के द्वारा निरूत्तर करना सरल है, परन्तु उनका ह्रदय जीतना अत्यन्त ही कठोर कार्य है, पर साहेबजी की इसी विशेषता के परिणाम स्वरूप छोटे-छोटे गाँवों में भी लगनेवाले शिविरों में शिविरार्थिनियों की संख्या दो सौ-ढ़ाईसौ तक पहुँच जाती थीं। अल्प एवं आवश्यक शब्द ही मुँह से निकालना, उनके जीवन व शिविर का मूल मंत्र था। इतनी दीर्घायु तक जीवित रहना, उनके मौन गुण का ही प्रभाव था।

पूज्या साहेबजी की आयंबिल और विशेषकर उड़द के आयंबिल पर बहुत श्रद्धा थी। प्रतिवर्ष चातुर्मास प्रवेश पर आयंबिल और किसी भी प्रकार की समस्या या विघ्न आने पर भी वे स्वयं आयंबिल करतीं और अपनी सुशिष्याओं एवं सम्पूर्ण संघ को भी सदैव ऐसी ही प्रेरणा देतीं।

पूज्या साहेबजी जिनशासन के नभोमंडल में चन्द्र सी शीतल चाँदनी व सूर्य सी तेजस्वी प्रतिभा फैलाने वाली तारिका थीं, लेकिन उनका ध्यान सदैव नींव की मजबूती पर रहता था। यही कारण था कि उन्होंने बड़े-बड़े शहरों की चकाचौंध, आडम्बर को छोड़ छोटे-छोटे गाँव व

ढाणियों को चुना। जैसे किसी भी अच्छे कार्य की शुरूआत सबसे पहले स्वयं के घर से की जाती है, उसीतरह पू. साहेबजी ने इन छोटे-छोटे गाँवों को अपना घर मानकर अपने शिविर रूपी ज्ञान गंगोत्री द्वारा अपनी वात्सल्य व करुणामयी वाणी द्वारा, अपनी तप, जप, संयम की आराधना-साधना के द्वारा अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकने वाली, चर्मचक्षुओं के होते हुये भी अन्तर्चक्षुओं से अन्धी बनी आत्माओं के हृदय में धर्म को संस्थापित करने का माँगलिक कार्य प्रारम्भ किया था। आज आकोली, पांथेड़ी, सियाणा, उम्मेदपुर, जालोर, भीनमाल, सूरा आदि के वातावरण व धरती की महक से ही पूज्या साहेबजी की संयम साधना की सुवास का अनुमान कर सकते हैं, क्योंकि अपने संयम-जीवन के दस-बारह वर्ष उन्होंने इस पश्चिमी राजस्थान की धरती को दिये थे।

समत्व योग की महान् उपासिका : पूज्या साहेबजी समतारस की सजीव मूर्ति थीं। समता रस को उन्होंने अपने जीवन में सुन्दर ढंग से पचा लिया था। शास्त्रों में कहा है कि **"समयाए समणो होइ"-समता से ही सच्चा श्रमण या श्रमणी बना जा सकता है, पर साहेब जी तो समता की महासागर थीं।** इस संदर्भ में एक प्रसंग याद आ रहा है। जब हम साहेबजी के दर्शनार्थ भीनमाल गये थे। साहेबजी अपनी आत्म-मस्ती में खोयी हुई माला गिन रही थीं। साहेबजी ने धर्म आराधना आदि के बारे में पूछा। तभी बातों ही बातों में पता चला कि साहेबजी को तो गाय ने मार दी व वे नीचे गिर गयी थीं। यह जानकर तो जैसे हम सब कि दृष्टि खुली की खुली रह गयी। इतनी वयोवृद्ध अवस्था में भी वे कितनी शान्त व समताधारी थीं। ऐसी अस्वस्थता में भी उनकी आत्म-समाधि व समता गजब की थी। ऐसी समत्व साधिका के श्रीचरणों में शत-शत प्रणाम।

वात्सल्य के महासागर : आश्रित और पास में आये हुये को क्षण में शान्त कर दे, वात्सल्य का ऐसा अमृत उनकी आँखों से निरन्तर बहता था। उनके मुखारविन्द से बहती हुयी वचन-सुधा संसार के ताप से संतप्त जीवों को चन्दन-सी शीतलता देनेवाली थी और इन सबका मूल कारण उनकी अन्तरात्मा में रही हुयी सर्व जीवों के कल्याण की भावना से युक्त मैत्री व अरिहंत परमात्मा के प्रति रही हुई अनोखी भक्ति का भाव था। ऐसे मनमोहक मस्ती के मालिक इस दिव्यात्मा ने अपने जीवन को सद्गुणों के संग से समुज्जवल बना दिया था। सरलता, संतोष, क्षमा, नम्रता, अरिहन्त-भक्ति, आत्म-ध्यान, सुख-दुःख में समाधि जैसे सद्गुण उनकी सेवा में सदैव तत्पर रहते थे और वे सदैव दूसरों के कल्याण के लिये तत्पर रहती थीं। ऐसे वात्सल्य के महासागर के चरणों में कोटि कोटि वन्दन।

मधुर वाणी का प्रभाव : पूज्या साहेबजी की वाणी समतोल थी। उनकी भाषा में न आवेश था और न ही कर्कशता; बल्कि वाणी में ऐसी सौम्यता व भावुकता थी, जिसमें शान्ति की एक ऐसी सुगन्ध बहती थी कि क्रोध की आग से भड़कता हुआ व्यक्ति भी उनके मुखदर्शन व सान्निध्य से हिमगिरि जैसी शीतलता का अनुभव किये बिना नहीं रहता, और उसका प्रत्यक्ष

चमत्कार हमारे घर में हुआ। मेरे पिताजी चाय, व सिगरेट जैसे दुर्व्यसनों में फँसे हुये थे और हमारा सम्पूर्ण परिवार यहाँ तक कि वे स्वयं परेशान थे; पर इन्हें छोड़ने में असमर्थता जताने लगे। तब हम सब साहेबजी के दर्शनार्थ गये और उन्हें अपनी व्यथा बताई। बस, साहेबजी ने तुरन्त पूज्य दादा गुरुदेव की तस्वीर के सम्मुख पिताजी को जिंदगीभर के लिए इन वस्तुओं का पच्चक्खाण करा दिया। पापा ने कहा - साहेबजी कृपा कर पूर्ण रूपेण पच्चक्खाण न करवाकर कुछ छूट दे दीजिये, पर साहेबजी ने मुस्करा कर आशीर्वाद स्वरूप वासक्षेप प्रदान किया और चमत्कार हो गया। एक दिन में बीस चाय तथा तीस-तीस सिगरेट पीने वाले श्रावक स्वयं मेरे पापा को उन व्यसनों की याद आना तो दूर स्वयं सामने से पच्चक्खाण माँगने जाते और आज वे नवकारसी, आयम्बिल, उपवास, अट्ठाइयाँ आदि करते हैं। यहाँ तक कि रात्रि भोजन का भी त्याग कर चुके हैं। ऐसा था उनकी मधुर वाणी का प्रभाव, जो केवल कानों तक नहीं, बल्कि हृदय तक पहुँचकर हृदय को झकझोर कर रख देती और उस वाणी के पीछे करुणा का प्रवाह, सात्त्विकता का बल व त्याग का तपोबल था। जिसका प्रभाव पत्थर की लकीर की तरह अटल था। धन्य है आपकी मंगल कामना, मंगलजीवन व आत्म गुण।

"जबतक रहेगा चांद गगन में, दरिया में रहेगा पानी।
जिन्दा रहेगी गुरुवर्या आपकी, वात्सल्यमयी वाणी।"

मैत्री-भावना की मूर्त योगीश्वर्या - पूज्या साहेबजी के दिल में विश्व के प्राणिमात्र के कल्याण की भावना थी। उन्होंने अपने जीवन में मैत्रीभावना को आत्मसात् किया था। एक बार मेरे बड़े भाई के आफिस के मुहूर्त करने से पहले पूज्या साहेबजी का आशीर्वाद लेने हेतु हम सब भीनमाल गये तो हितोपदेश की विनती करने पर साहेबजी ने कहा-"भाग्यशाली! चाहे कितना ही वैरी, हमारा दुश्मन हमारे घर आये तो उसका सम्मान करना, अपने हृदय में उसके प्रति मैत्री व स्नेह भाव रखना। क्योंकि हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज ने धर्मबिन्दु ग्रन्थ में कहा है :-

"वचनाद् यद् अनुष्ठानं, अविरूद्धात् यथोदितं।
मैत्र्यादिभाव संयुक्तं, तद्धर्म इति कीर्त्यते॥"

-सर्वज्ञवचन के अनुसार तथा मैत्री, प्रमोद, करुणादि भावना से युक्त जो अनुष्ठान किया जाता है, वही धर्म है। मैत्री अर्थात् "**सकलसत्त्वेषु स्नेहपरिणामो मैत्री**"-समस्त जीवों के प्रति अपने दिल में प्रवर्तमान स्नेहभाव मैत्री है।"

वास्तव में आज समझ में आता है कि उनकी छोटी सी लगने वाली बातें कितनी भावभरी व गम्भीर होती थीं और ये वाक्य आज भी सम्पूर्ण जगत् को वैर-विस्मृतता व मैत्री का सन्देश देते हैं। लेकिन वर्तमान जैन संघ-समाज में रही मैत्रीभाव की न्यूनता का उन्हें अत्यन्त दुःख था। वे अपने सम्पर्क में आने वाले को मैत्रीभाव का महत्त्व समझाने का यथाशक्ति प्रयत्न करतीं। जिनभक्ति और जीव मैत्री की उत्कृष्ट साधना के फलस्वरूप ही उनकी कीर्ति सम्प्रदायों एवं उसकी सीमाओं को लांघकर चारों और फैली थी। यहाँ तक कि विपक्षी दल के लोग भी

उनके सदगुणों की प्रशंसा करते। यह उनके अन्तर की विश्व मैत्री व विश्व वात्सल्य का प्रतिघोष ही था। मैत्री भावना की ऐसी मूर्त योगीश्वर्या के श्रीचरणों में कोटि-कोटि वंदन !

कोमलता की मूर्ति :- जैसे बीज बोने के लिये किसान के पास बीज का होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके लिये कोमल धरती की भी आवश्यकता पड़ती है। जैसे घड़ा बनाने के लिये कुम्हार मिट्टी को इच्छित आकार देने के लिये पहले पानी डालकर उसे कोमल बनाता है। उसीतरह गुणों का वपन करने के लिये पहले आत्मा को सुकोमल बनाना पड़ता है। धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिये पहले मन सरल व कोमल चाहिये और **ऐसी ही सरलता-कोमलता की मूर्ति थीं "पूज्या श्री महाप्रभाश्रीजी"।**

पाप से भीति और मोक्ष से प्रीति उनके जीवन का अभिन्न अंग था। यही कारण था कि उन्होंने अपने अंतिम श्वास तक कोई अंग्रेजी दवाई का सेवन नहीं किया और इतनी वयोवृद्ध अवस्था होने पर भी कभी डोली या व्हीलचेयर का प्रयोग नहीं किया। अपने इन्हीं गुणों के कारण पूज्या साहेबजी अपनी साधना के शिखर पर पहुँचीं और कैसी भी परिस्थिति में उन्होंने अपनी मानसिक स्वस्थता, चित्त की शान्ति व हृदय की प्रसन्नता नहीं खोई। 'आयंबिल का तप, महामंत्र का जप और ब्रह्मव्रत का खप' - इस त्रिसूत्र की उन्होंने सिंह गर्जना की थी। ऐसे अनेक हृदय की धड़कन बने साहेबजी जहाँ भी चातुर्मास करती वहाँ अपने ज्ञान, ध्यान, तप, जप, मैत्री की ऐसी गंगोत्री का प्रवाह करतीं कि उसमें नहानेवाले स्वयं को धन्य समझने लगते और उनका अनुयायी तक बनने को तैयार हो जाते, लेकिन साहेबजी की कैसी निरीहता ? कैसी निस्पृहता ? शिष्या बनाने की उनमें कोई लालसा ही नहीं थी। वे तो जगत् से निराली थीं।

"गुरुवर्या मुज मन मंदिरे पारस बनी छाई गया,
गुरुवर्या मुज मन मंदिरे आरस बनी छाई गया,
गुरुवर्या तुज मन मंगल नो वारस मने बनावजो,
तुझ भक्ति थी मुक्ति मले, आशीष एवी आपजो ॥"

ऐसी निराली कोमल व्यक्तित्व की धनी साहेबजी को धन्य है ! धन्य है उनकी उच्च कोटि की साधना !!

नम्रता / क्षमा : ये दोनों विषय उनके बहुत प्रिय थे, क्योंकि क्षमा नम्रता का प्रतीक है और नम्रता प्रभु-भक्ति का। इन दोनों को उन्होंने अपने जीवन में आत्मसात् किया था। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है उनकी समाधि मृत्यु। अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक भी वे अपनी संयम साधना व नियमों के पालन में जागरूक रहीं। सर्व जीवों के कल्याण के लिये व जिनशासन के उत्थान के लिये जो मशाल उन्होंने जलाई। उनके द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर हमें सदैव उसे प्रज्वलित रखना है। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है।

परोपकार व निस्वार्थः सेवा-भावना - परोपकार उनके जीवन का सहज श्वासोच्छवास था। उनकी करुणा परायणता इतनी अद्‌भुत थी कि लोगों को देने में वे कभी थकती नहीं थीं।

जिज्ञासुओं को देने में उन्हें अविरल आनन्द की अनुभूति होती थी। यही कारण था कि अजैन भी उनसे सीखने को आते थे। जब-जब उनके सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त होता, तब-तब वे शासन की उन्नति की ही चर्चा करतीं और दूसरों को भी परोपकार व नि:स्वार्थ सेवा के रस में ऐसा सराबोर कर देतीं कि आज भी हृदय उनके अलौकिक ध्यान व गुण सौन्दर्य के प्रति नतमस्तक हो जाता है। सचमुच उनकी आत्मा उच्च कोटि की थी। एकबार उन्होंने मुझ से धार्मिक अध्ययन के बारे में पूछा तो मैंने कहा कि पंच प्रतिक्रमण सीख लिया है और अब चार प्रकरण सीखने की भावना है तो साहेबजी बोले-"तुम पहले प्रतिक्रमण करवाने की विधि सीखो" ताकि जरूरतमंद श्राविकाओं को प्रतिक्रमण करवा सको और वास्तव में सामने उपाश्रय होने की वजह से आज यह मेरे लिये बहुत जरूरी था। पू. दादीजी महाराज साहब दीर्घद्रष्टा थीं और उनके सही मार्गदर्शन ने ही मेरे जीवन को सच्ची राह प्रदान की है। "ऐसे मम उपकारी, परोपकारी, नि:स्वार्थ सेवाभावी विरल योगी के श्रीचरणों में मेरा कोटि-कोटि वंदन"।

धाणसा नगर की सच्ची उद्धारिका : उसे घोर अंधकार में प्रकाश की एक किरण से भी मार्ग भूले हुये को मार्ग मिलने पर जितना हर्ष होता है और जैसे अंधे को आँखें मिलने पर जितने आनन्द की अनुभूति होती है। वैसे ही उतने ही आनन्द का वह क्षण आया जब पू. दादीजी महाराज साहब ने धाणसा संघ की विनती स्वीकार कर प्रतिदिन चार-पाँच किलोमीटर का विहार कर धाणसा की धरती पर कदम रखा। यह जानते हुये भी कि वहाँ का माहौल कुछ ठीक नहीं है। धार्मिक कट्टरता व पारस्परिक रुढ़िवादिता के कारण वहाँ कुछ मनमुटाव चल रहा था, लेकिन **पूज्या साहेबजी तो अपने धुन के पक्के व धैर्य के मेरुमणि थे।** अपने मार्ग से जरा भी विचलित हुये बिना उन्होंने अपनी ध्यान-साधना-आराधना, माँगलिक, उपदेश, जाप, धार्मिक चर्चा, धार्मिक क्रियाएँ वहाँ प्रारम्भ करवायीं। लोगों के हृदय में पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, हेय-ज्ञेय की विवेक दृष्टि उत्पन्न की। अपने त्याग, निस्पृह, निर्मोह, निरभिमान व्यक्तित्व से सबको इतना प्रभावित किया कि गुमराही राह पर आ गये। बिल्कुल बंजर भूमि को सुविचार रूपी हल से जोतने का उन्होंने महापुरुषार्थ किया। कुविचार रूपी घास प्रतिदिन कटवा कर जनमानस की भूमि साफ सुथरी कर दी और फिर उसमें धर्म के बीज बोये। सिर्फ बीज ही नहीं बोये। बल्कि उनको अमृत जैसी वाणी के मीठे जल से सींचा। कौन करेगा इतनी मेहनत? कौन उठाएगा इतनी जहमत? करुणा के भण्डार इस परोपकारिणी पू. दादीजी महाराज साहब के चातुर्मास से सभी के जीवन में नया मोड़ आया। अग्नि में तप कर शुद्ध हुये सुवर्ण की तरह अशुद्ध विचार शुद्ध हो गये। सभी के भावों में परिवर्तन आया और चातुर्मास समाप्त हुआ। चातुर्मास की सफलता का प्रतीक वहाँ के लोगों द्वारा रात्रिभोजन-त्याग, नवकारसी, जमीनकन्द-त्याग के पच्चक्खाण, प्रभु-पूजा का नियम आदि हैं तथा साहेबजी के स्वर्गारोहण पर चन्द मिनटों में पैंतीस-चालीस लाख के चढ़ावे हुए और **यादगार स्वरूप उनका सुन्दर स्मारक (दादीवाड़ी) बनाने का निश्चय किया। अरे! निश्चय ही नहीं किया, अपितु अल्प समय**

में भव्य 'दादीवाड़ी' का निर्माण किया। यह कहूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि त्रिस्तुतिक श्रमणी परम्परा में मेरी पूज्या दादीजी महाराज साहब का यह पहला सुन्दर स्मारक (दादीवाड़ी) निर्मित हुआ है। यह सब हृदय में श्रद्धा बिना सम्भव नहीं।

इसप्रकार अपनी जीवन पुस्तिका के अन्तिम पन्ने को सार्थक बनाने हेतु वे धाणसा पधारीं और जो जाजम बरमंडल पर बिछाई थी, वह धाणसा नगरी में सिमट गयी तथा पू.दादीजी महाराज साहब अपने माता-पिता, गाँव, नगर, गुरु-गुरुणी, शिष्या, संघ-समाज, शासन सभी को उज्ज्वल बना कर फाल्गुन वदि एकादशी के शुभ दिन, शुभ घड़ी, शुभ मुहूर्त में स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गयीं।

जीवन भर वे अकलुष, निर्धूम दीपशिखा की तरह प्रज्वलित होकर अंधकार में भटकते हुये मनुष्यों को सम्यक्ज्ञान का प्रकाश दिखाती रहीं। वयोवृद्ध अवस्था भी उनको विवश नहीं कर सकीं, क्योंकि उनकी आत्म-शक्ति अदम्य थी। उनका पुरूषार्थ महान् था। ज्यों-ज्यों शरीर रूपी मोमबत्ती पिघलती जाती थी, त्यों-त्यों उनकी आत्मा का प्रकाश प्रखर और दिव्य बन रहा था। तभी तो मृत्यु को समाधिमय बनाने की उन्हें पहले ही अनुभूति हो गयी थीं। ऐसी दिव्यात्मा की केवल यह एक जन्म की साधना नहीं हो सकती। यह तो युगों से निरन्तर मोक्ष रूपी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ रही है। परमपिता परमात्मा उन्हें उनके लक्ष्य में शीघ्र कामयाब करें।

मगर हे गुरुवर्या !

**"महाप्रभा ऐवो नाम मुज कान माँ अथड़ाई जता,
तन मन अने क्रोड़ो रुवाटा, उल्लसित थई जता,
कहेवाय तुज मंगल नामे, जंगल, मंगल थई जता,
तारो गुरुवर्या मने हवे, तुझ शिष्या केम भूली जता।"**

लेकिन वे अपनी प्रिय-सु शिष्या को कभी नहीं भूल सकतीं और मुझ पर तो उनका इतना उपकार है कि जब कभी मैं उनका ध्यान करती हूँ वे मुस्कराती हुई, शब्दामृत पिलाती हुयी मेरे मानस मन्दिर में विराजमान हो जाती हैं और मैं उस विशाल कल्पतरु की छाया तले अपने समस्त क्लेश व दुःख को भूल कर अनिर्वचनीय आनन्द सागर में क्रीडारत हो जाती हूँ।

ऐसी दिव्यात्मा पू. दादीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में शत-शत वंदन।

83. संयम-वयःतपःस्थविरा श्री महाप्रभाश्रीजी

- मनोहरलाल पुराणिक, एडवोकेट कुक्षी

**वृक्षस्य छेदमानस्य, भूष्यमाणस्यवाजिनः।
यथा न रोषः तोषश्च, भवेदयोगी समस्तथा॥
"कटने से वृक्ष रुष्ट नहीं, सजने से अश्व तुष्ट नहीं"**
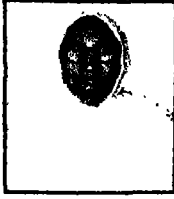
ऐसे स्वभाव के समभावधारी योगियों की श्रेणी में रखने के लिये वर्तमानकाल में हम यदि निर्मल स्वभाविनी संयम-वय:तप: स्थविरा साध्वीजी महाराज साहब श्री महाप्रभाश्रीजी को चुनें तो हमारा चुनाव उपयुक्त ही होगा।

विक्रम सं. 1966 ई.सन्. 1910 की कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को जड़ावचन्दजी-वजीबाई की कोंख / कुल को उज्ज्वल करने जन्मी लीलावती का जीवन पूनम के चाँद से अधिक निर्मल, धवल अमल होगा; यह बात लीला के ललाट में लिखे लेख का अंग थी।

मनोहर मालवा क्षेत्र का छोटा-सा अनजान गाँव 'वरमण्डल' लीलावती के जन्म व बचपन की लीलाओं का साक्षी है।

कर्मों का बन्धन तोड़ने के लिये संसार के बन्धन भी कभी उपादेय बन जाते हैं। लीलावती के माता-पिता ने गृहस्थाश्रम में अल्पायु में प्रवेश करवा दिया था, किन्तु **मोहनखेड़ातीर्थ संस्थापक संघवी लूणाजी दाक्षजी के वंश की कुलवधू मात्र बयालीस वर्ष की आयु तक परिवार में रही।** अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित श्री मोहनखेड़ा तीर्थ के परिसर में मुनिप्रवर प.पू.श्री वल्लभविजयजी म.सा. व प.पू.श्री कल्याणविजयजी म. सा. के करकमलों से वैशाख शुक्ला दशमी को वि.सं. २००८ में दीक्षा ग्रहण कर सांसारिक लीला साध्वी महाप्रभाश्री बनीं।

प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी महाराज साहब व प.पू.गु. श्री मुक्तिश्रीजी म.सा. के चरणों में जीवन को संघ-शासन हेतु अर्पण करने बढ़ा कदम तभी रूका, जब सं. २०५६ दिनांक 1-3-2000 के फाल्गुन मास की कृष्णा एकादशी श्रीआदीश्वर प्रभु के केवलज्ञान कल्याणक दिवस को अन्तिम श्वास ली धाणसा में।

अपनी चार पौत्रियों को संसार की असारता का ध्यान दिलवाकर जिनमार्ग की राही बनाया - ऐसा अनन्य उदाहरण अलभ्य नहीं तो दुर्लभ अवश्य है।

संयमी जीवन में भी संयम रख पाना आज की महत्त्वाकांक्षाओं की परिस्थितियों में असम्भव होता जा रहा है, किन्तु अपनी अप्रमत्तता व अद्भुत दृढ़ता से वे सदा स्वयं को संयमी बनाए रखने में सफल रहीं। जीवन में असंयमितता को कभी स्थान नहीं बनाने दिया।

साध्वाचार का स्वगच्छीय मर्यादा में दृढ़ता से पालन करके भावना के वशीभूत कभी एलोपेथिक दवाइयों का उपभोग नहीं किया। कभी वाहन पर सवार नहीं हुईं।

गुरुदेव श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के प्रति आस्था-श्रद्धा-समर्पण तो परिवार व कुल परम्परा से लेकर ही संयम पथ पर बढी थीं। अपने पू. गुरुजनों की सेवा-समर्पण, सहवर्तिनी गुरुबहनों का सहयोग, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी की वैयावच्च अपने तपव्रत के साथ सर्वदा करने की भावना रखी।

मान-अपमान से परे अप्रमत्तसाधिका श्रीमहाप्रभाश्रीजी ने सिद्धान्तों पर प्रहार सहन नहीं किया। प्रतिदिन की अपनी क्रियाओं में कभी शिथिलता को प्रवेश नहीं करने दिया। न अपनी

शिष्याओं को उस रास्ते चलने दिया।

यद्यपि वे स्वयं शालायी शिक्षा अधिक प्राप्त नहीं कर पाई थीं, किन्तु अपनी पौत्री-शिष्याओं को श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान-बनारस से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त करवाने में पूर्ण सहायक-प्रेरिका-सहयोगी बनीं। त्रिस्तुतिक संघ में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त करनेवाली प्रथम साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी व डॉ. सुदर्शनाश्रीजी आपका ही प्रसाद संघ को हैं। ये दोनों ही महाप्रभामय हो चुकी हैं। जालोर दुर्ग जैसे निर्जन स्थान पर अखण्ड मौन-साधनामय चातुर्मास इन दोनों प्रभापुंज के उज्ज्वल भविष्य का संदेश देता है।

मनोहर मालवमाटी से उपजी लीला मालव में ही महाप्रभा बनी, मरुधरमाटी में पंचतत्त्व में विलीन होकर अपने तप, त्याग, संयम, अप्रमतता के परमाणु छोड़ गई हैं। ये परमाणु उनकी प्रभा को अनन्तकाल तक प्रसारित करते रहेंगे।

"शाश्वत संसारतामभीष्ट फलदंपादारविन्दद्वयम्।
नामं नाममनारतम सुमतिभिस्तोष्टूयमानं गुरोः॥"

उक्त शब्दांजलि उनके चरण-कमल युगल में।

84. जीवनवृत्त का मात्र रेखांकन

- कानसिंह करनावट, किशनगढ़

"हम उन्हें याद किया करते हैं।
जो औरों के लिए जिया करते हैं॥
अगरबत्ती की तरह जलकर।
जो औरों को खुशबू दिया करते हैं॥"

मरूस्थल पर गुजरे राहगीर के चरण-चिह्न उस भूले-भटके कारवाँ के लिए मार्गदर्शक बन जाते हैं, जो उस मरूस्थलीय निर्जन सागर के बीच अकेला टापू बनकर खड़ा रहता है। महापुरुष भी मानव मन के मरूस्थल पर अपने चरणचिह्नों की स्मृति छोड़कर युग-युगान्तरों को क्षण-क्षण आलोक प्रदान करते हैं।

पृथ्वी के चारों तरफ फैले हुए विराट् महा-समुद्र में से सूर्य का ताप पाकर पानी की चंद बूँदें भाप बनकर आकाश में उठती हैं, बादल के रूप में परिणत होकर जब हवाओं का सम्पर्क पाती हैं, तब ठण्डी होकर पुनः बूँद के रूप में धरती पर अथवा समुद्र में समा जाती हैं। धरती पर गिरनेवाली बूँदें अपने साथ की अनेक बूँदों के साथ जो नव जीवन, नई उमंग, नई लहर प्रदान करती हुई पुनः किसी न किसी रूप में समुद्र में समा जाती हैं।

इसीप्रकार संसाररूपी समुद्र से अनन्तपुण्य रूप सूर्य की उष्णता पाकर एक आत्मा रूपी बूँद उठी तथा मालवा क्षेत्र की धरती के एक छोटे से गाँव 'वरमण्डल' पर अवतरित हुई । 'वरमण्डल' की धरती धन्य-धन्य हो गयी । वह नन्ही सी बूँद 'वरमण्डल' के श्रेष्ठीकुल की जननी 'वजीबाई' के गर्भ से अवतरित हुई । उसी नन्ही सी बूँद का नन्हा सा नाम था 'लीलावती' ।

ऐसी रत्नकुक्षिणी माता के गर्भ से अवतरित हुई नन्ही सी बालिका लीलावती बचपन से ही शान्त, दांत एवं धर्मपरायणा स्वभाव की थी । जो बूँद जीवन के नानाविध शाश्वत सत्यों को नाना आयामों में विश्व चेतना को जागृत करने के लिए अवतरित हुई, वह किसीप्रकार कब तक छिपी रहती । समय आने पर ज्ञानी संतजनों का समागम एवं सान्निध्य पाकर वैराग्य वासित बनी तथा मोहनखेड़ा तीर्थ के पावन परिसर में दीक्षा ग्रहण कर सांसारिक 'लीला' असंसारी अध्यात्म जगत् की महाप्रभा साध्वी बनी । अब इस छोटी सी बूँद में विराट् शक्ति समाहित हो गई । **सद्भाग्य था इनका, इन्हें गुरुवर्या भी मिलीं तो शान्ति-क्रान्ति की जन्मदातृ प.पू. श्री हेत-मुक्तिश्रीजी महाराज साहब ।**

कालक्रम की अनवरतता के साथ साध्वीश्री महाप्रभाजी के जीवन में ज्ञान, ध्यान, संयम-साधना की उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गई, पर किसी को भी यहाँ तक कि समाज के वरिष्ठतम श्रावकवर्ग को भी इस आत्मा में छिपी शक्तियों का आभास तक नहीं हुआ ।

मानवजीवन में पवित्रता, सर्वोच्चता, समता, शान्ति और प्रेम की भावना के आदर्शों का प्रशिक्षण देना महापुरुषों के जीवन का परम लक्ष्य होता है । इसी लक्ष्य को सामने रख पूज्या साध्वी श्रीमहाप्रभाजी अपना सम्पूर्ण जीवन प्रभु महावीर के अक्षरांत अनुशासन अर्थात् प्रभु महावीर के सिद्धांतों की आन, बान, शान के लिए तथा संयमी जीवन की उच्चतम गरिमा को कायम रखते हुए, मानवमात्र को आध्यात्मिक समता, सह-अस्तित्त्व, क्षमाशीलता और विश्वमैत्री के आदर्शों का पालन करने की प्रेरणा देने में ही समर्पित कर दिया ।

महापुरुषों के पास शस्त्र नहीं, शास्त्र होते हैं । परम श्रद्धेया साध्वी श्री महाप्रभाजी ने भले ही पाठशालायी शिक्षा प्राप्त न की हो, पर गुरुसेवा में तल्लीन रह कर आपने ज्ञान-ध्यान की निपट एकान्त में एकाग्रचित हो ऐसी साधना की, कि कुछ समय में ही उस बूँद ने पंचविधस्वाध्याय ज्ञान-सिन्धु का गहन एवं विराट् रूप धारण कर लिया । समता और सहिष्णुता का उनके व्यक्तित्व में दूध-पानी सा मिश्रण था । उनके हृदय में गंगा सी निर्मलता एवं चन्द्र सी शीतलता थी । इसी आधार को लेकर महापुरूष आत्मविश्वास के साथ जन-जन के मध्य आगे बढ़ते हैं और अपने निश्छल सरल प्रेम से सदा-सदा के लिए स्मरणीय हो जाते हैं । पूज्या साध्वीश्री का सान्निध्य पाकर क्लान्त मन भी पूर्णतया शान्त हो जाता था । उनके हृदय से वात्सल्य की अविरल आभा झलकती थी जिसमें लोकोत्तर निराकुलता समाई हुई थी ।

साध्वीप्रवराश्री की ज्ञान-साधना (अध्यापन की ललक) और चारित्र-साधना में कोई सानी नहीं था। इस पक्ष में आप जितनी बढ़ी-चढ़ी थीं, उतनी ही सरल भद्र, **आचार में भी 'वज्रादपि कठोराणि' और व्यवहार से 'मृदुनिकुसुमादपि' की उक्तियों को चरितार्थ करती थीं।** उनके समक्ष न तो धनी का सम्मान और न निर्धन का अपमान, किन्तु सब पर समान रूप से कृपारस की वर्षा करती थीं, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य की किरणें राजमहल पर भी पड़ती हैं और कुटिया पर भी।

यद्यपि मुझे दादीजी महराज साहब के दर्शन व सान्निध्य का लाभ यदा कदा ही मिल पाया। अत: मुझे उनके व्यक्तित्व को निकट से परखने और समझने का अधिक समय नहीं मिला। किन्तु उनकी एक झलक मात्र से प्रथम दर्शन के साथ ही उस महाविभूति के चारित्रिक चुम्बक का ऐसा प्रभाव पड़ा मानो मेरे आत्मप्रदेश पर लगी लोहजंग की कालिमा स्वर्ण आभा में परिवर्तित हो गई, जैसे पारस के स्पर्शमात्र से लोहे की कालिमा स्वर्ण आभा में परिवर्तित हो जाती है।

समय निकलता गया, पूज्या गुरुवर्याश्री की अमृतवाणी का सत्य प्रकाशित होता चला गया। कल की बालिका 'लीला' ज्ञान रूपी प्रकाश की महाप्रभा बन गई। जिनके संयमीय विशुद्ध व्यक्तित्व की गूँज सारे भारत में आज भी गूँज रही है। जीवन का चामत्कारिक प्रभाव समझिये कि सुदीर्घ आयुष की दहलीज पर पहुँचकर भी आप सदैव संयम मार्ग के अभिलाषी सम ज्ञान-ध्यान में अन्तिम समय तक लीन रहीं।

वह दिव्य आत्मा हमारे मध्य विद्यमान नहीं हैं, किन्तु आज उनके चरण-चिह्न, स्मृति-पथ के पाथेय बन कर जन-जन को सद्मार्ग की ओर अग्रसर होने की सद् प्रेरणा दे रहे हैं। **मालवा की हरित आभा में खिला वह पुष्प अन्त में मारवाड़ की शुष्कता को सहन न कर सका और पुण्यभूमि धाणसा (मारवाड़) में अन्ततोगत्वा मुरझा गया। किन्तु जैसे मिट्टी में फूल की महक शेष रह जाती है, ठीक उसीप्रकार वह पीछे अपनी पौत्रियों को अपनी महक के रूप में छोड़ गई हैं, जो आज भी उस दिव्य आत्मा के ज्ञान, दर्शन, चारित्र की महक, इसी त्रिरत्न की अटल साधना करती हुई जन जन तक पहुँचा कर प्राणिमात्र के जीवन को महका रही है।**

जैसे असीम को सीमा में बाँधना, अनन्त को अन्त की परिधि में लाना तथा सागर को गागर में भरना कठिन है, वैसे ही उस महान् आत्मा के विराट् स्वरूप को शब्दों की परिधि में बाँधना उतना ही कठिन है। यदि कोई ऐसा प्रयास करता है, तो समझिए कि वह प्राणी सीपी की अंजुलियों से समुद्र को उँडेलने जैसा भगीरथ प्रयास कर रहा है।

वह नन्ही सी बूँद 'लीला' अन्त में अपनी नानाविध लीलाओं से जनमानस को वैसे ही आकर्षित कर गईं, जैसे लीलाधर श्रीकृष्ण भी अपनी अनेक लीलाओं का प्रदर्शन कर जन-जन के हृदय सम्राट् बन गये।

धन्य है उस महाप्रभा साध्वी का जीवन, जो जन-जन को धन्य कर गया तथा जिस सागर से उठी बूँद अन्त में उसी सागर में समा गई पुन: भाँप बन कर उठने के लिए ।

शत-सहस्त्र नमन ! इस मंगल कामना के साथ कि आपश्री की पावन स्मृति सदैव हमारे हृदय में बनी रहे तथा हमारे कदम भी आपश्री की जीवन प्रेरणा से आत्म कल्याण की दिशा में निर्बाध बढ़ते रहें ।

85. ज्ञानपिपासु थीं

- नरेश महेता - जयपुर (राज.)

सद्‌गुणों की पुँज पूज्या दादीजी महाराज साहब हमारे बीच नहीं रहीं, लेकिन ऐसा लगता है कि वे आज भी हमारे साथ दोनों साध्वीजी महाराज साहब के रूप में उपस्थित हैं । आपका जीवन हम सभी के लिए प्रेरणासूत्र है । उनकी वचन-गरिमा बड़ी अद्‌भुत थी । उन्होंने तप-त्याग एवं कठोर चारित्र-साधना के द्वारा न केवल स्वयं के जीवन का ही निर्माण किया, किन्तु सैंकड़ों श्रद्धालुओं के जीवन में भी धर्म के बीज अंकुरित-पुष्पित व पल्लवित किए ।

आपका सहज-सरल स्वभाव हमेशा याद रहेगा । उन्होंने सदा हमें माँ के रूप में प्यार दिया था । स्वाध्याय तो मानो उनका प्राण था । जब भी मैं दर्शनार्थ जाता, उन्हें स्वाध्याय, जाप, ज्ञान-ध्यान में तल्लीन पाता । वे बड़ी ज्ञानपिपासु थीं । पू.दादीजी महाराज साहब में एक महान् विशेषता थी कि आपने अपनी दोनों पौत्रियों को अध्ययन के क्षेत्र में आगे बढ़ाने का भगीरथ प्रयास किया था । इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें पी-एच.डी. करने हेतु वाराणसी तक भेजा था ।

अस्वस्थ होने पर उन्हें कई बार मैंने दवाई लेने के लिए अनुरोध किया, लेकिन कभी कोई दवाई नहीं ली और न एलोपेथिक उपचार करवाया । हम उन्हें कभी भी भूल नहीं सकेंगे । अरिहंत परमात्मा से यही प्रार्थना है कि उस पुनीत आत्मा को सुखशान्ति प्रदान करें।

86. त्रिवेणी संगम थीं

- पदमचंद मायादेवी, आर्यसमाज रोड़, भरतपुर

परम पूज्या दादीजी महाराज साहब का दिव्य व्यक्तित्व इतना पावन एवं कल्याणकारी था । जैसे सुधा सरोवर में स्नान । आप सरलता की पावन गंगा, सहिष्णुता की जमना एवं समता की सरस्वती-इन तीनों का मानो त्रिवेणी संगम थीं । आपके जहाँ-जहाँ चरण पड़ते, वहाँ का वातावरण एकदम बदल जाता। जंगल मंगल बन जाता ।

आपका व्यक्तित्व चुम्बक की तरह प्रभावशाली था । यही कारण था कि आपके पास आनेवाले सहज ही श्रद्धानत हो जाते थे । आप सागर के समान शांत और गंभीर थीं । उनपर

प्रतिकूल परिस्थितियों के ज्वार भाटे का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। आपकी मधुर वाणी जब-जब भी सुनने को मिलती थी, हमारा मन आनंद विभोर हो जाता था। आपके संपर्क में आने के बाद हमारा जीवन ही बदल गया। भरतपुर वर्षावास के दौरान आपने हमें कई जीवनोपयोगी शिक्षाएँ दी थीं और धर्मभावना का बीजारोपण किया था। जिसे हम कभी भी भूल नहीं सकते।

पू. दादीजी महाराज साहब आज हमारे बीच नहीं रहीं, फिर भी उनका आदर्श जीवन हमारे मध्य उपस्थित है, जो हमारा पथ प्रदर्शित करता रहेगा। हमारी ओर से दिवंगत आत्मा को कोटि-कोटि वंदन।

87. निंदा-बुराई से दूर

- भंवरलाल दिनेशकुमार पृथ्वीराज मुथा, जयपुर

सरलता, सहजता व समता की प्रतिमूर्ति पू. साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब का नाम बड़े श्रद्धा व आदर से लिया जाता है। उनका जीवन तपे हुए स्वर्ण के समान तप-त्याग व कठोर संयम साधना के तेज से चमक-दमक उठा था।

वस्तुतः उनका व्यक्तित्व इतना महान् और प्रभावशाली था कि जो भी उनके संपर्क में आया उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

कई बार मुझे आपका सान्निध्य-लाभ हुआ। आपका हृदय स्फटिक के समान निर्मल था। आपका संयम सरिता के समान प्रवाहित था। आपका अन्तर् और बाह्य जीवन पुस्तक के खुले पृष्ठ के समान सभी के लिए प्रेरणास्रोत था। आप बाह्य में श्रीफल के समान कठोर दिखती हुई भी अन्तरंग में द्राक्षावत् मृदु थीं। प्रमाद, आलस्य और निद्रारूपी तस्करों से सावधान रहते हुए आप निरंतर ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय में लयलीन रहती थीं। इतना ही नहीं, मैंने देखा है कि आप कभी भी किसी की निंदा-बुराई नहीं करती थीं। यदि कोई भाई-बहन उनके समक्ष किसी की निंदा करता तो वे उन्हें बड़े प्रेम से समझाती हुई कहतीं-**"भाई ! क्यों किसी की निंदा करके अपने कर्मबंध करना। निंदा यदि करनी है तो आत्म-निंदा करो। दूसरों की निंदा करने से अपने को क्या मिलेगा ? दूसरों की निंदा-बुराई या चुगली करना मानो उसके पीठ के माँस को खाने के समान है।" जैसा कि जैनागमों में बताया है-"पिट्ठि मंसं न खाइज्जा"**। उनके हृदय में निंदा-स्तुति को कोई स्थान नहीं था। उनके सान्निध्य में बैठनेवाला कभी उबता नहीं था।

उनकी वाणी का प्रभाव मैंने अपने जीवन में अनुभूत किया है। दैहिक दृष्टि से आप भले ही आज हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु उनके अनुभव एवं महान् आदर्श हमारे मध्य ही हैं, जो सदा हमारा पथ आलोकित करते रहेंगे। उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके द्वारा बताये मार्ग पर चलते रहें और उनके द्वारा छोड़े गये अधूरे कार्यों को पूर्ण करें।

88. देवत्व को प्राप्त महान् आत्मा

- फतेहसिंह लोढ़ा भीलवाड़ा

पत्रिका के माध्यम से मुझे ज्ञात हुआ कि परम श्रद्धेया वयोवृद्धा सद्गुणानुरागिणी त्रिस्तुतिक संघ की साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब देवलोक गमन कर गयी हैं। देवत्व को प्राप्त उस महान् आत्मा के प्रति हम सब नतमस्तक हैं तथा वीरप्रभु से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को अलौकिक शान्ति प्रदान करें।

89. पूज्या दादीजी महाराज : एक मार्गदर्शिका के रूप में

- डॉ. पिंकी जैन, भरतपुर

रत्नत्रयी रूपी आतम को
खोजा जिसने निजमन में
सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चारित्र को !
पाया जिसने स्वातम में
धर्मवाणी का सार जानकर
संयमता का पाठ पढ़ाया
अमर बनाया स्वजीवन को !!

भाग्यशाली हैं हम कि हमें अपने जीवनकाल में ऐसी पुण्यात्मा का सान्निध्य मिला। जिनकी समझाने की शैली विलक्षण थी। जो मौन रहकर आत्मसाधना में सदा लीन रहती थीं। जिनका तप, त्याग व साधनामयी जीवन आज भी एक जीवन्त उदाहरण बनकर हमारे साथ है। अपने द्वारा प्रस्तुत इस प्रसंग में उनके द्वारा दिये गये उपदेश रूपी सागर की कुछ बूँदें प्रस्तुत करने जा रही हूँ। उनके द्वारा दिये गये उपदेश सदैव हमारा मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे।

जैसे माँ अपने बच्चें को बड़े प्यार से दूध पिलाती है, वही मनोदशा होती है एक धर्मपालक की। अपने पास आनेवालों को वे संसार की प्रक्रिया से दूर रहने का ढंग बताते हैं और उनका प्रभाव भी पड़ता है; क्योंकि वे स्वयं उस प्रक्रिया की साक्षात् प्रतिमूर्ति होते हैं। यही मनोदशा थीं पू. दादीजी महाराज की। अपने सान्निध्य में आनेवाले हर प्राणी की समस्याओं को वे निष्पक्ष भाव से सुनती थीं तथा तत्काल समाधान करती थीं। कई बार मुझे उनके सुवचनों को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ, जिसमें वे सदैव मनुष्य को स्वस्थ व सादा जीवन जीने का उपदेश देते हुए कहती थीं कि -"अपने सान्निध्य में आनेवाले मनुष्य को जब मैं अशांत, दुःखी और परेशान देखती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है जैसे मनुष्य हँसना ही भूल गया है। आज मनुष्य भौतिक सुखों में इतना लीन हो गया है कि आत्म-सुख और प्रसन्नता उसे नजर ही नहीं आती।" प्रसन्न रहने के लिए वे सदा प्रकृति का उदाहरण देते हुए कहतीं-"प्रकृति को देखो जिसका हर

कण हमेशा प्रसन्नता से नाचता है और यही मुस्कराहट, प्रसन्नता तथा स्वस्थ जीवन का राज है।"

मुझे आज भी याद है मैं जब भी पू. दादीजी महाराज साहब के दर्शन के लिए जाती थी। वे हमेशा किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहती थीं। कभी आध्यात्मिक कार्यों में, कभी साहित्यवाचन में, कभी जप-तप में तो, कभी वे मौन रख ध्यान में बैठी रहती थीं। इतनी वृद्धावस्था होते हुए भी इतनी सक्रियता आज भी मुझे हैरान कर देती है। मैंने पू. दादीजी महाराज को सदैव बहुत ही शान्त मुद्रा में, प्रसन्नचित्त तथा मुस्कराते हुए ही देखा था। उदासी अथवा परेशानी कभी पलभर के लिए भी उनके मस्तिष्क पटल पर नजर नहीं आती थी। उन्हें देखकर मुझे हमेशा यही दो पंक्तियाँ याद आती हैं :

**"जिनका जीवन कण्टकों में हैं,
उनका जीवन सुमन खिला।"**

अर्थात् जिसप्रकार फूल सदैव कांटों में मुस्कराता है, उसीप्रकार जिनका जीवन संघर्षों में बीतता है उनका ही जीवन सुमन के समान सुरभित होता हुआ मुस्कान बिखेरता है। धर्म की परिभाषा समझाते हुए पू. दादीजी महाराज हमेशा यही कहती थीं कि धर्म जिसके जीवन में, जिसकी आत्मा में जागृत हो जाता है वह सदैव प्रसन्न रहता है। इस आध्यात्मिक प्रसन्नता को मैंने पू. दादीजी महाराज साहब के जीवन में हमेशा देखा था। हमारे परम्पराचार्यों ने कुछ सुन्दर वचन कहे हैं "**धर्मस्य मूलं दया**" अर्थात् धर्म का मूल दया है। "**कर्तव्यमेव धर्म**"-कर्तव्यपालन ही धर्म है।' "**धम्मोदया विशुद्धो**" अर्थात् दया से विशुद्ध परिणाम ही धर्म है। "**चारित्तं खलु धम्मो**" चारित्र ही धर्म है। पू. दादीजी महाराज इन सभी गुणों की प्रतिमूर्ति थीं।

समय की पाबन्दी, अन्तसमय तक भी उनकी स्वावलम्बिता तथा हर क्षण का सदुपयोग जैसी उनकी विशेषताएँ आज भी मेरे जीवन में प्रेरणा स्रोत हैं। अपने समीप आने वाले हर प्राणी को वे हमेशा सुख-शांति का संदेश देती हुई मौन रखने के लिए प्रेरित करती थीं तथा कहती थीं कि **"यह जुबान ही वैर दिलाती है तथा प्रेम का कारण भी यही है।'प्रकृति ने भी दाँत रूपी पहरेदारों से इसे कैद किया है। अत: हर मनुष्य को मौन अवश्य रखना चाहिये।"**

ध्यान भी एक कला है। जीवन की स्वर्णिम नींव धर्म होनी चाहिये। हमें वीरप्रभु की शरण लेनी चाहिये। कर्म का कर्ता आत्मा होता है, शरीर नहीं। भगवान् की भक्ति से ही आत्मा का अनुभव होता है। धर्म सबके लिए सुखकर एवं हितकारी होता है। उपर्युक्त सभी विषयों का पू. दादीजी महाराज बखूबी वर्णन कर सदा हमें धर्म का मार्ग दिखाती रहीं। आज के समाज में जहाँ सत्-साहित्य का अभाव हो रहा है। उपन्यासों के रूप में दूषित मनोरंजक एवं विषय-कषाय के पोषक साहित्य का सृजन हो रहा है। समाज में फैला विष-वमन जिसके कारण समाज विकृत हो रहा है, ऐसे विषम समय में जैन साधु संतों की कल्याणमयी वाणी ही भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में सक्षम हो सकती है। इसी कड़ी में पू. दादीजी महाराज साहब द्वारा

दिये गये सदुपदेशों को मैं अपने इस प्रसंग में जनहित तक पहुँचाने का प्रयत्न कर रही हूँ। उनके द्वारा कथित सुवचन ही हमें दूरदर्शन की विकृति से बचाकर देवदर्शन की संस्कृति में ढाल सकते हैं।

अंत में इतना कहते हुए ही मैं इस प्रसंग को विराम देना चाहूँगी कि ऐसी पुण्यात्माएँ इस धरा पर कभी-कभी जन्म लेती हैं। अपने भाग्य पर मुझे गौरव होता है कि मुझे परम पू. वात्सल्यमयी, शील तथा संयम की प्रतिमूर्ति, शान्तचित्त, मौनप्रिय दादीजी महाराज साहब का सामीप्य मिला। उनका जीवन हमें प्रेरणा देता है।

हम गुण अनुराग जगाएँ।
देख उनके सद्गुण हम
हृदय कमल विकसाएँ
और मुदित मन बन जाएँ !!

प.पू. दादीजी महाराज साहब के पादमूल में मैं करबद्ध शत-शत वंदन करते हुए अपनी विनयांजलि समर्पित करती हूँ।

"इस पुण्यात्मा को हम शीश झुकाएँगे
लूटेंगे मोती ज्ञान के, जग में लुटाएँगे
हो कर्मों का नाश तथा धर्म का वास हो
यह वादा है हमारा, ज्ञान-दीप हर मन में जलाएँगे !!"

मेरी अभिलाषा है कि दादीजी महाराज साहब जिस लोक में भी हों, वहीं से मेरा मार्ग प्रशस्त करती रहेंगी।

90. श्री महाप्रभाश्रीजी की विमल कीर्ति

- विमलचंद जैन, मण्डी अटलबंद-भरतपुर

भरतपुररत्न विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब की गच्छपरम्परा में परम पूज्या सरलस्वभाविनी, भरतपुर स्नेही, विशुद्ध संयम-साधिका साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब हुई हैं। जिन्होंने आज से चौदह वर्ष पूर्व अपनी प्रिय शिष्याओं के साथ वीरभूमि लोहागढ़ गुरु- जन्मभूमि भरतपुर में पधार कर अपने जीवन को गौरवमयी बनाया।

आप व आपकी परम विदुषी शिष्याएँ डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी त्रय के सहज स्नेह एवं अंतरंग अनुराग से भरतपुर का जैन श्रीसंघ अत्यन्त लाभान्वित हुआ। आपने अपने दादागुरुदेव विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब की जन्मस्थली भरतपुर होने के कारण भरतपुर शहर में दो चातुर्मास किये (सन् 1987-88)। **जैन श्रीसंघ के श्रावक-श्राविकाओं को अपनी अमृतोपम मधुरवाणी द्वारा धर्माराधना की ओर विशेष**

अग्रसर किया, जिससे श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के गच्छ में आशातीत वृद्धि हुई। पहले यहाँ गुरुदेवश्री को माननेवाले केवल एक दो घर थे, किंतु बाद में आपश्री के यहाँ चातुर्मास करने पर उनके तप-त्याग व कठोर चारित्र पालन से प्रभावित होकर प्रथम चातुर्मास में ही चालीस परिवार के सदस्यों ने विश्वपूज्य गुरुदेव के प्रति श्रद्धान्वित होकर पूज्या दादीजी म. सा. से विधिवत् गुरुआम्नाय स्वीकार की थी।

चातुर्मास पूर्णाहूति के पश्चात् गुरुसप्तमी मनाने हेतु एवं डॉ. प्रिय-सुदर्शनाश्रीजी म.सा. द्वय का गुरुजन्मभूमि हेतु जमीन क्रय करने का अभिग्रह पूरा होने पर प.पू. राष्ट्रसंत साहित्यमनीषी वर्तमानाचार्यदेवेश श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरिजी महाराज साहब का भरतपुर पदार्पण हुआ।

उस वक्त पूज्यपाद आचार्यश्री के मुखारविन्द से पुनः सभी गुरुभक्तों को गुरु आम्नाय दिलवायी गयीं। गुरुसप्तमी के भव्य कार्यक्रम का प्रभाव भरतपुरवासियों के हृदय पर छा गया और प.पू. आचार्य भगवन्तश्री से पू.दादीजी म. का द्वितीय चातुर्मास सन् 1988 का पुनः यहीं करवाने हेतु विनती की गयी। आज्ञा प्रदान करने पर पू. साध्वीजी ने द्वितीय चातुर्मास भी यशस्वी व शानदार ढंग से संपन्न किया। आपश्री की सुप्रेरणा से व आपकी ही निश्रा में भरतपुर से सिरसतीर्थ का प्रथमबार पाँच दिवसीय छःरीपालित पदयात्रा संघ का आयोजन अतिसुंदरतम ढंग से किया गया। जैन त्रिस्तुतिक संघ भरतपुर आपके गुणों को चिरस्मरणीय रखेगा।

हम भरतपुरवासियों का यह भाग्योदय ही था कि हमारे यहाँ आप पधारीं और अपने तप-त्याग के बल से "श्री राजेन्द्रसूरि जैन कीर्तिमंदिर तीर्थ ट्रस्ट" के इतिहास में चार चाँद लगायें। इतना ही नहीं, हम सभी के हृदय में धर्मसंस्कारों का बीजारोपण भी आपने ही किया। ज्ञान की सुंदर गंगा बहाकर हमारे जीवन की दिशा ही बदल दी।

आपके उपकारों को हम जन्म-जन्माँतर तक नहीं भुला पायेंगे। इसी भावना के साथ पूज्या विमल विभूति के श्रीचरणों में शत-शत वंदन।

91. अध्यात्म पथ की महान् साधिका

- तलेश ओरा, बड़नगर (म.प्र.)

सभी देहधारी प्राणियों को जन्म, जीवन और मरण इन तीन स्थितियों में से गुजरना होता है। यह एक अनादिकालीन चक्र है और आत्मा इसमें युगों से घूम रही है। जन्म व मरण दोनों ही दुःख रूप है। दुःख की इस परम्परा से मुक्ति पाने के लिए जीवन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यूं तो सभी जीवन जीते हैं, पर वही जीवन सार्थक होता है, जिसमें तप-त्याग की तेजस्विता हो, सज्जनता की मधुर सुवास हो; जिसका एक-एक क्षण जन्म-मरण की श्रृंखलाओं को तोड़ने का परम पुरूषार्थ लिए हो।

ऐसा ही एक जीवन इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में उभरा है। जिनका नाम है-परम पूज्या मोक्षपथानुगामिनी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी (पूज्या दादीजी) महाराज साहब।

आपश्री की प्रतिभा अतिसुन्दर थी। समता, सहनशीलता, स्वावलंबिता, अप्रमत्तता, अद्भुत दृढ़ता, आत्मबल, नित्यप्रति स्वाध्याय, नवस्मरणादि पाठ, माला, जप-तप, अपने गुरुजनों के प्रति अंतरंगभक्ति व समर्पण भाव, अन्तिम समय तक पैदल विहार, अंतिम श्वास तक कोई अंग्रेजी दवाई का उपयोग नहीं करना आदि-आदि अनेकानेक आपके सहज आत्मगुण थे।

आप संयम की जीवन्त प्रतिमूर्ति थीं। ज्ञान के प्रति आपकी विशेष रूचि थी। मारवाड़ी, राजस्थानी, हिन्दी-गुजराती भाषा का ज्ञान था। आप में, अपनी शिष्याओं को पढ़ा-लिखाकर तैयार करने की विशेष लगन थी, तमन्ना थी। आपने अपनी शिष्याओं को मात्र पढ़ा-लिखाकर ग्रेज्युएट ही नहीं बनाया, वरन् उन्हें समय-समय पर सदा अनुशासन, मौन, जाप-ध्यान, गुरुजनों के प्रति विनय, विवेक व कठोर संयम जीवन जीने की प्रेरणा एवं तालीम देना, आपकी दिनचर्या का अविभाज्य अंग था।

आपश्री को जब भी अपनी वृद्धावस्था की ओर इंगित करते हुए निवेदन किया जाता कि अब इस उम्र में आपको अधिक परिश्रम नहीं करना चाहिए। यह उम्र काम करने की नहीं है। अब तो आपके पूर्ण विश्राम करने का समय है। आप क्यों व्यर्थ में शरीर को इतना कष्ट दे रही है ? तब वे बड़े प्रेम से मीठी भाषा में समझातीं-"**भाई ! कैसा कष्ट ? तुम इसे कष्ट समझते हो ? यह तो अपना काम है। इस शरीर से जितना काम लिया जाय, उतना ही अच्छा है। पड़े हुए लोहे को जंग लग जाता है। देह से भी सदैव काम लेते रहना चाहिए। अन्यथा इस देह की क्या सार्थकता है ?**"

वे सरलता और निश्छलता की तो मानो जीती जागती ज्योति थीं। क्रोध की रेखा तो हमने उनके मुख पर कभी देखी ही नहीं। उनका हिमगिरिवत् अत्यधिक शान्त जीवन था। इतना ही नहीं, उनकी जीभ कम बोलती थी, लेकिन जीवन अधिक बोलता था।

मध्यप्रदेश, मालवा, निमाड़, राजस्थान, गुजरात, उत्तरप्रदेश आदि विभिन्न प्रान्तों / गाँव / नगरों में उन्होंने विचरण किया। जहाँ भी जातीं, उस क्षेत्र में रहनेवाले छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी व्यक्तियों से बिना भेदभाव के इतना आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करती थीं कि सामनेवाले के दिल-दिमाग पर एक अमिट छाप अंकित हो जाती। **वास्तव में, उनका समग्र जीवन तो एक गुलाब के फूल जैसा सुगन्धित और सुन्दरतम रहा। 'लड्डु कहीं से भी खाओ मीठा लगेगा'-इस उक्ति के अनुसार पू. दादीजी महाराज साहब के जीवन का प्रत्येक क्षेत्र उत्तम, मधुर और आदरणीय था, अनुमोदनीय था और था सराहनीय।**

वे अध्यात्म-पथ की एक महान् साधिका थीं। जो समत्व के पथ पर अड़िग, अडोल व निश्चल बनी रहीं। आप जीवन के अन्तिम समय में दो-चार दिन अस्वस्थ रहीं, पर किसी ने भी

कभी उनकी आह-कराह नहीं सुनी। अस्वस्थता के क्षणों में भी नवस्मरणादि पाठ, अनानुपूर्वी-पठन, नवकारमंत्र व गुरुदेव का जाप तथा अपनी साध्वाचार की क्रियाओं में शिथिलता नहीं आने दी। माला तो अन्तिम दिनों तक हाथ में थामे रहीं। माला न होती तो अंगुलियों पर ही जप चलता रहता था।

पू. दादीजी महाराज साहब करुणामूर्ति थीं। दूसरों का दुःख नहीं देख पाती थीं, पर अपने दुःख की तनिक भी वे परवाह नहीं करती थीं। वाणी में इतना आकर्षण और माधुर्य था कि जो भी एकबार उनके संपर्क में आया, वह उन्हें जीवनभर नहीं भुला सका। दीन-दुःखियों के लिए उनकी वाणी जादू का काम करती थी। सहानुभूति एवं सान्त्वना पाकर उनके हृदय का दुःख हल्का हो जाता था। वाणी में एक ऐसा सहज आकर्षण था, जो सभी को अपनी ओर खींच लेता था। जीवन के अन्तिम समय में बस, आपकी एकमात्र अन्तिम इच्छा थी-परम पूज्या परम उपकारिणी शासनदीपिका प्रवर्तिनी गुरुवर्या श्री मुक्ति श्रीजी महाराज साहब के दर्शन-वन्दन करने की। वह भी पूर्ण हुई। अन्तिम समय में पू. गुरुणीजीश्री मुक्तिश्रीजी महाराज साहब अपनी शिष्यामण्डली के साथ आपको अपनी प्रबल भावनानुसार दर्शन देने पधार गईं। आपने अन्तिम शब्द 'अरिहंत-अरिहंत' बोलकर देह त्याग किया।

हमारा परम सौभाग्य रहा, जो हमें ऐसी महान् पू. गुरुवर्याश्री का सान्निध्य मिला।

देह से आज हमारे बीच नहीं है, पर उनकी सज्जनता का प्रकाश जीवन के अंतिम सांस तक हमें मार्गदर्शन देता रहेगा। उनकी शिक्षाप्रद बातें आज भी याद आती हैं और मन श्रद्धा से अभिभूत हो जाता है। परम पूज्या दादीजी महाराज साहब की पावन स्मृति हमारे साथ है। उस महान् दिव्य आत्मा के पुनीत चरणों में भावपूर्ण श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

"हे महानता के सुखद धाम
कर पाए तुझ से सफल काम
नित रहे गूँजता मधुर नाम
तव चरणों में सेवक प्रणाम"।

92. गुणों की अनुपम खान

- श्रीमतीदेवी जैन - भरतपुर

करीब पन्द्रह वर्ष पूर्व पूज्या दादीजी महाराज साहब का चातुर्मास हमारी भरतपुर नगरी में था, तभी मुझे उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा मैं उनके सान्निध्य में आई। आज भी मुझे याद है। पूज्या दादीजी महाराज के सामीप्य में आने से पूर्व मैं भक्तामर, माला आदि थोड़ी बहुत क्रियाएँ तो करती थी, मगर मुझे जैनधर्म के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं था। मैं धर्म के मामले में 'क' 'ख' भी नहीं जानती थी।

परन्तु पूज्या दादीजी महाराज मुझे मार्गदर्शिका के रूप में मिलीं। उनकी वाक्शैली, उनकी दिनचर्या तथा उनकी मौनप्रियता, अनुशासनबद्धता सदैव मुझे प्रभावित करती थी। मैं करीब दो वर्ष तक उनके सम्पर्क में रही। मैंने कभी पूज्या दादीजी महाराज को विश्रामावस्था में नहीं देखा ! सदैव किसी न किसी कार्य में उन्हें व्यस्त देखा। उन्होंने ही मुझे धार्मिक क्षेत्र में संपूर्ण मार्गदर्शन दिया। आज मुझे जो कुछ ज्ञान हैं उन्हीं की देन है।

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुआपकी, गोविन्द दियो बताय" ॥

प्रभु-दर्शन-प्रभु-पूजा के बारे में जानकारी देनेवाली, पूज्य गुरुदेवश्री का परिचय करानेवाली मेरी पूज्या दादीजी महाराज सदैव मेरे जीवन में पूजनीया रहेंगी। अगर कभी कोई चिन्ता अथवा अशान्ति मुझे बेचैन करती तो मैं पूज्या दादीजी महाराज के पास जाती। उनके श्रीचरणों में बैठने से मेरा मन शान्त हो जाता। उनकी वात्सल्यमयी बातें मुझे हमेशा प्रभावित करती थीं। पूज्या दादीजी महाराज से अप्रमत्त जीवन जीने की शिक्षा प्राप्त कर मैं अपने आपको भाग्यशालिनी मानती हूँ। एक दिन पूज्या दादीजी महाराज ने मुझे एक बात कही, जो मेरे अन्त: पटल पर छाप छोड़ गई। आज भी वह बात मुझे ऐसे याद है मानो अभी-अभी उनके मुख से नि:सृत होकर मेरे कर्णकुहरों में पहुँची हो ! वह बात थी –

"इन्सान सब कुछ कर सकता है।" प्रस्तुत प्रसंग उन दिनों का है जब पूज्या दादीजी महाराज ने हमारे यहाँ कन्या शिविर / महिला शिविर का आयोजन किया था। शिविर में हमें प्रश्नोत्तरी तथा अन्य कई आध्यात्मिक विधियाँ मुख जबानी याद करनी थीं। कण्ठस्थ करने में मुझे सब कुछ असंभव सा लगता था। पूज्या दादीजी महाराज के इसी वाक्य ने मुझे प्रेरणा दी तथा मैं अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हुई।

मौन तथा ध्यान को बहुत महत्त्व देनेवाली दादी महाराज साहब सदैव यही शिक्षा देतीं कि मन वचन व काया की प्रवृत्ति को अपने अधीन बनाकर आत्मा में लयलीन हो जाना ही ध्यान है। एकाग्रता का दूसरा नाम ही ध्यान है। धन, यश व काम का ध्यान तो सांसारिक सुख देने वाला है। जब कि धर्म का ध्यान करनेवाला प्राणी आत्मा से परमात्मा बन जाता है। अपने इन सुवचनों से हमें धर्म का मार्ग आप इसतरह प्रशस्त करती थीं, जैसे कोई माँ अपने बालक को सदैव सही दिशा पर चलने को प्रेरित करती हो।

स्वावलम्बिता की तो मानो साक्षात् प्रतीक थीं। प्रत्येक कार्य को वे अपने अन्तिमकाल तक स्वयं करती रहीं। जिनप्रभु व नवकार मंत्र में उनकी अटूट आस्था, उनके लिए किसी औषधि से कम नहीं थी। जब भी मैं कभी दादीजी महाराज के पास जाकर उनसे विनती करती कि आपश्री मुझे सेवा का मौका दें, मैं आपकी सेवा-भक्ति करना चाहती हूँ। तब पू. दादीजी महाराज मुझे यह उपदेश देकर समझातीं कि जो खुद को जानेगा वह अर्हत् को जानेगा और जो अर्हत् को जानेगा वह खुद को जानेगा। पूज्य कौन है ? मैं स्वयं पूज्य हूँ। मैं स्वयं उपास्य हूँ।

अतः हम सभी को स्वयं की पूजा करनी चाहिये। स्वंय की सेवा-भक्ति करनी चाहिए। स्वयं (अपनी आत्मा) की उपासना करनी चाहिये। तभी हमें अपनी आत्मा में परमात्मा का दर्शन हो सकता हैं। **"अप्पा सो परमप्पा"। आत्मा ही परमात्मा है!** इसतरह वे आध्यात्मिक उपदेशों का अमृतपान कराती थीं।
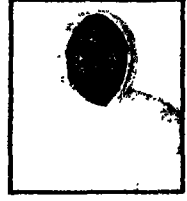
मैं पू. दादीजी महाराज साहब को सदैव प्रसन्नचित्त व शान्तभाव में देखती थी। कईबार तो मेरा जिज्ञासु मन उनसे सवाल करता कि महाराजजी! आपश्री इतनी प्रसन्नचित्त कैसे रहती हैं? तथा अपने सम्पर्क में आनेवालों को भी आप प्रसन्नता से कैसे भर देती हैं? मेरे जिज्ञासु मन की शंका का समाधान करते हुए पू. दादी महाराज मुझे समझातीं-**"प्रातःकाल (प्रत्यूषकाल) वेला में जब हम सोकर जागते हैं, तब हमें संकल्प करना चाहिये कि आज हर परिस्थिति में मैं प्रसन्न रहूँगी और अपने सम्पर्क में आनेवाले को भी प्रसन्न रखूँगी। जब नन्हा सा फूल भी सहस्त्रों संघर्षों को झेल कर प्रसन्न रह सकता हैं तो हम इंसान होकर भी प्रसन्न क्यों नहीं रह सकते? प्रसन्नता तो मन का भाव है। वह खरीदने से या किसी प्रयत्न से प्राप्त नहीं की जा सकती।"** आज भी उनके ये शब्द मेरे कानों में गूँजते हैं, परन्तु यही तो अन्तर होता है एक संत में तथा हम सामाजिक आम प्राणियों में। हमारा मन सदैव असंतुष्ट ही रहता है। जो कुछ प्राप्त है, उसे खो जाने का डर, तथा जो प्राप्त नहीं है उसे प्राप्त करने की लालसा करता है, परन्तु पू. दादीजी महाराज को मैंने सदैव इसप्रकार के असंतोष से परे ही पाया। इतना संयम, संतोष तथा बहुत ही सात्त्विक जीवन था उनका। कई बार तो हमें आश्चर्यचकित सा कर देता था।

धर्म का महत्त्व समझाते हुए पू. दादीजी महाराज ने सदैव यही उपदेश दिया-"धर्म जिसके जीवन में, जिसकी आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है, उसके जीवन में, उसकी आत्मा में यह विशेषता आ जाती है कि वह सदैव प्रसन्न चित्त रहता है। वह घर, परिवार में रहता हुआ भी संत जैसा जीवन जीता है।" पू. दादीजी महाराज द्वारा मुझ पर किये गये उपकार एवं उनके प्रति मेरी निष्ठा सदा अविस्मरणीय रहेगी।

मैं अपनी पूज्या दादीजी महाराज को कदापि नहीं भूला सकती! उनकी प्रसन्नचित्त मुद्रा सदैव मेरे मन-मंदिर में विराजित रहेगी। धन्य है मेरा जीवन कि मुझे ऐसी धर्मप्रिया सद्‌गुरुवर्या का सान्निध्य / सामीप्य व दर्शनों का सुअवसर प्राप्त हुआ।

अंत में मैं अपने श्रद्धा-सुमन पू. दादीजी महाराज साहब के चरण-कमलों में समर्पित करते हुए अपने इस प्रसंग को विराम देना चाहती हूँ।

"बड़े भाग्य से ही ऐसे संतों के
दर्शन का सुख मिलता है।
ज्ञान दिवाकर की किरणों से
ह्रदय कमल खिल जाता है॥

संत न होते गर दुनिया में
अग्नि बरसती तब नभ से
जल जाता संसार यह सारा
भव-जीवन के दु:खों से
गुरु उपदेश घनचातक बनकर
ज्ञान की प्यास बुझायेंगे
मन में जागे धर्मभाव से
निज अंधकार मिट जायेंगे ।

पू. दादीजी महाराज साहब का जीवन धन्य है ! अपनी ओर से उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि एवं शत शत वन्दन ।

93. अमिट स्मृतियाँ

- कन्हैयालाल बाँठिया - कानपुर (उ.प्र.)

परम पूज्या मोक्षपथानुगामिनी, शुद्ध, सरल, चारित्रवान्, जैन जगत् की अनुपम शान श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के महाप्रयाण के दु:खद समाचारों से मैं स्तब्ध हो गया । संयत होकर सोचा उनके दर्शन अब एक संस्मरण बन कर रह गये । शुभकर्म का उदय, सौभाग्य, सुअवसर, सुयोग जो भी कहें ! उनका सान्निध्य, उनका दर्शन, उनका मांगलिक, मेरे जीवन की अमिट स्मृतियाँ हैं । उनकी दिवंगत आत्मा की चिरशान्ति के लिए नवकार महामंत्र गिनते हुए मैं धाणसा पहुँचना चाहता था, किन्तु मेरी सहधर्मिणी की अस्वस्थता बाधक बन रही थी, परन्तु इसके एक माह पूर्व मुझे पूज्या साध्वीद्वय के डी. लिट् से सम्बन्धित अभिधान राजेन्द्र कोश पर चर्चा करने हेतु निमन्त्रित किया गया तो मैं इस सुअवसर को खोना नहीं चाहता था । अत: 28 जनवरी 2000 को मैंने परम पूज्या श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के दर्शन-वन्दन करके जब डॉ. साध्वीजी द्वय महाराज साहब के चरणों में पहुँचा तो मेरा रोम रोम पुलकित हो उठा । उनकी वाणी में अमृत बरस रहा था जिसे दादीमाँ का प्रभाव समझना चाहिए । पूज्याश्री दादीमाँ से वार्तालाप हुई । उनके एक-एक शब्द आज भी मेरे कानों में अंकित हैं । मैं धर्मपत्नी की बीमारी के कारण प्रात:काल दिल्ली प्रस्थान करनेवाला था, किन्तु दादीमाँ के पुण्य प्रताप से मुझे अपनी पत्नी के स्वास्थ्य-लाभ का समाचार प्राप्त हो गया तो तत्काल मैंने दिल्ली जाने का कार्यक्रम स्थगित किया एवं उनके श्रीचरणों में नतमस्तक हो बैठ गया । कैसा अद्‌भुत आकर्षण था उनमें, इसका वर्णन मैं कर नहीं सकता । 30 जनवरी को भी धाणसा रूक कर पूज्याश्री से तत्सम्बन्धी चर्चा की । 31 जनवरी को प्रात: पू. दादीजी महाराज साहब के मुखारविन्द से मांगलिक सुना, वासक्षेप प्राप्त किया । आशीर्वाद ले वहाँ से प्रस्थान किया । यात्रा सुखद सफल रही ।

संस्मरण लिखते-लिखते समय की परतें खुलती गईं । मेरे हृदय में लगभग दो दशक पूर्व

की स्मृतियाँ आज भी अंकित हैं। परम पूज्या डा. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी महाराज साहब एवं डा. श्रीसुदर्शनाश्रीजी महाराज साहब पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान वाराणसी (उ.प्र.) से अपने शोधकार्य को पूर्णकर मई 1982 में पुनः अविलम्ब पूज्या दादीजी महाराज साहब के पास पहुँचने के लिए उग्र विहार करती हुई कानपुर पधारीं। वहाँ श्री धर्मनाथ श्वेताम्बर जैन मन्दिर, जो कि काँचमन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें उत्कृष्ट कोटि की मीनाकारी है। महीन बेलबूँटों से अनेक चित्रांकन के कारण यह स्थान कानपुर में दर्शनीय बन चुका है। समीप ही उपाश्रय में साध्वीजी द्वय रात्रि-विश्राम हेतु विराज रही थीं। हम दोनों ने वहाँ पहुँचकर वन्दन-नमन किया। हमारे काँचमंदिर के वर्तमान संरक्षक श्रीविजयचंदजी सा. भण्डारी एवं गणमान्य व्यक्तियों ने उनसे कानपुर में रूकने हेतु विनती की।

हमारी हार्दिक इच्छा थी कि दोनों साध्वीजी भगवन्त के प्रवचन का लाभ प्राप्त हो, किन्तु हमें सफलता प्राप्त नहीं हुई; क्योंकि उनके हृदय में पू. दादीमाँ की सेवा में शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने की उत्कृष्ट अभिलाषा लगी हुई थी। अतः उन्होंने विनती को अस्वीकृत करते हुए उसी दिन वहाँ से विहार कर दिया। बनारस लगभग एक वर्ष पर्यन्त शोध-कार्य के कारण के अन्तराल के पश्चात् पू. दादीजी महाराज साहब की छत्रछाया में अविलंब पहुँचने की ललक, उनके प्रति सच्ची श्रद्धा, स्नेह, उनके स्वास्थ्य की चिंता एवं सेवा ही उनके जीवन का लक्ष्य प्रतीत हो रहा था। उनके हृदय के कण-कण में पू. दादीमाँ के प्रति भक्ति-भावना (अपूर्व गुरुभक्ति) का आभास मुझे उस वक्त हुआ। यही मेरा डॉ. साध्वीद्वय से प्रथम परिचय था।

मेरी धर्मपत्नी पूज्या दादीमाँ एवं उनके पूर्वज संघवी सेठ लूणाजी के बारे में (जिन्होंने गुरुदेवश्री राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब के आशीर्वचन स्वरूप श्री मोहनखेड़ा तीर्थ की स्थापना की) भलीभाँति परिचित थी। इसके पश्चात् परम पू. श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब, डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी महाराज साहब एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी महाराज से भाण्डवपुर तीर्थ, भरतपुर, रानी, फालना, खिमेल आदि स्थानों पर दर्शन-वन्दन का एवं अपनी जिज्ञासाएँ तृप्त करने का लाभ मिलता रहा।

परम पूज्या दादीजी महाराज साहब का संयमी जीवन प्रत्येक मानव के लिए प्रेरणा स्त्रोत है। आपके पुण्य-प्रताप एवं आशीर्वचन का फल है कि आपकी चारों सांसारिक पौत्रियों ने संयम ग्रहण कर स्वर्णाक्षरों में अपना नाम अंकित कराया। आज दादीमाँ हमारें मध्य नहीं हैं, किन्तु उनकी मधुरवाणी, संयमी जीवन, स्वावलम्बन के प्रति निष्ठा, वात्सल्य भावना, कर्तव्य परायणता, आत्मीयता, पढ़ाने की तीव्र लगन आदि को स्मरण कर आज भी मेरे नेत्रों से अश्रु छलक आते हैं। उनके श्रीचरणों में मेरी एवं मेरे परिवार की भावभरी वन्दना !

94. वे जीवंत आचारांग थीं

- अशोक मोदी, सिरोही (राज.)

मैं अत्यन्त सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे एक ऐसी विशुद्ध चारित्र-संपन्न पुण्यात्मा की अन्तर्मन से अनुमोदना करने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। जिनका नाम था परम श्रद्धेया परम **पूज्या साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी. यानि आचारांग की जीवंतमूर्ति। उनका संपूर्ण चारित्रजीवन देदीप्यमान कांतियुक्त रहा।**

यह अकाट्य सत्य है कि पूज्या दादीजी महाराज साहब ने चारित्र जीवन की आचारसंहिता का मुस्तैदी से पालन किया। तभी तो उनका जीवन चरित्र उनके श्वेत वस्त्र की तरह बेदाग रहा, निर्मल रहा।

इतना ही नहीं, जैसा कि ज्ञानियों ने बताया है कि "यदि चारित्र जीवन में कष्ट न भी आवे, फिरभी अपनी कर्म-निर्जरा के लिए, परिषह सहने के लिए उचित संयोग स्वयं तुम बनाओ; क्योंकि कष्ट सहन किये बिना कभी इष्ट नहीं मिलता तथा सहन किये बिना कोई सिद्ध नहीं बनता।"

शायद उपर्युक्त सत्य से प्रेरित होकर ही उन्होंने विशेष परिस्थिति को छोड़कर वृद्धावस्था में एकाशने से कम पच्चक्खाण नहीं किया। न लिया जीवनपर्यन्त डोली, व्हीलचेअर आदि किसी भी वाहन का सहारा, न लिया जीवन में कभी दीवार का सहारा और ना ही ली कभी अंग्रेजी दवाई।

यह संयम-वय:तपोवृद्धा साध्वीरत्ना तो शायद रत्नत्रयी की विशिष्ट आराधना-साधना के लिए ही आई थीं। हाँ, अध्यात्म-ज्ञान पाने के लिए और बाँटने के लिए ही वे आई थीं।

कृत्रिमता से कोसों दूर, आलोचना या समालोचना के चक्रव्यूह में उलझे बिना जिनाज्ञा का पालन करते हुए वे अपना जीवन सफर तय करती रहीं। भारतवर्ष के भू-भाग (जैसे मालवा, मारवाड़, मेवाड़, निमाड़, गुजरात व उत्तरप्रदेश आदि) को सामर्थ्य पर्यन्त अपने कदमों से मापा तथा असंख्य श्रावक-श्राविकाओं को जिनवाणी से लाभान्वित किया। इतना होते हुए भी नित्य स्वाध्याय, जप-तपादि तो कभी छोड़ा ही नहीं।

उनके जीवन की कुछ विशिष्टताएँ तो नितान्त उल्लेखनीय एवं अनुकरणीय ही थीं। इसीकारण तो मुझे प्रारंभ में ही उन्हें 'जीवंत आचारांग' कहना पड़ा।

वत्सलता, समता, अप्रमत्तता, दृढ़मनोबल, सहनशीलता क्षमा, नम्रतादि की तो वे मानो पर्याय थीं। स्वावलंबन तो उनके चारित्र जीवन का विशेष अलंकार था। अपने पूज्य गुरुवर्यों के प्रति समर्पण भाव की तो वे एक मिसाल थीं। यह सब उनकी उत्तम दैनन्दिनी का आवश्यक अंग था। पू. दादीजी महाराज साहब की शिशु तुल्य सरलता, अमृत-वर्षिणी वाणी एवं करुणा जन-जन को परम शान्ति प्रदान करती थी।

निःसंदेह-जिनकी सराहना एवं बार-बार भूरि-भूरि अनुमोदना करने का मन करे,

ऐसी कांतियुक्त दीक्षा जीवनी का अर्धशतक (अर्धशताब्दी) पूर्ण किया था पू. साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब ने । वर्तमान में वे त्रिस्तुतिक संघ के महान् जैनाचार्यप्रवर राष्ट्रसंत प.पू. साहित्यमनीषी श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब की आज्ञानुवर्तिनी थीं ।

ऐसी सुयोग्य पूज्या साध्वीप्रवरा ने अपनी सुशिष्याओं डॉ. प्रिय-सुदर्शनाश्रीजी को भी इतना ही सुयोग्य बनाया । उनकी यह जैन समाज को विशिष्ट भेंट हैं-विदुषी साध्वी डॉ. द्वय ।

दिव्य व्यक्तित्व की धनी पूज्या दादीजी महाराज का आकस्मिक देवलोक प्रस्थान करना ऐसा प्रतीत हुआ, मानो त्रिस्तुतिक संघ का जगमगाता सितारा अंतरिक्ष में विलीन हो गया । दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी ओर से हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके श्रीचरणों में कोटिशः वंदन ।

95. कठोर अनुशासन के लिए जानी जाती थीं दादीजी म.

- कन्हैयालाल खण्डेलवाल,
सम्पादक : मारवाड़ चेतना, भीनमाल (राज.)

प.पूज्या दादीजी महाराज साहब के स्वर्गारोहण के समाचार मिलने से मन अत्यन्त दुःखी हो गया। जिनकी अपूरणीय क्षति सदैव अखरती रहेगी । मैंने उन्हें भीनमाल में देखा, परखा और वार्तालाप का अवसर भी मिला है । उनके जीवन का हरक्षण अनुमोदनीय, अनुकरणीय और सराहनीय था ।

अनुशासन का अर्थ है-स्वयं पर शासन यानि अपने उपर स्वयं का पूरा नियंत्रण और इस अनुशासन का कठोरता से स्वयं पालन करने व अपनी शिष्याओं से पालन करवाने के लिए साध्वी महाप्रभाश्रीजी जानी जाती थीं । नब्बे वर्ष की अवस्था होने के बावजूद वे सारा कार्य अपने हाथ से ही करती थीं । दूसरों पर बिल्कुल निर्भर नहीं थीं । अन्तिम समय तक दवाइयों से परहेज रखा । जैनशासन में साध्वी के क्या कर्तव्य होते हैं ? कैसे आचार-विचार होते हैं ? इस संबंध में दादीजी ने अपने साध्वी जीवन में गंभीरतापूर्वक ध्यान दिया । **यही कारण है कि समाज के किसी भी व्यक्ति के मुँह से बरबस ही ये शब्द निकल जाते हैं कि इतनी कठोरता से संयमजीवन का पालन करनेवाली दादीजी महाराज साहब ही थीं । जो जिनशासन के उच्च मानदण्डों पर खरी उतरती थीं ।**

कितना धन्य और सौभाग्यशाली है वह परिवार जिसके घर से दादी और उनकी चारों पौत्रियों तक ने दीक्षा लेकर श्रीमोहनखेड़ातीर्थ के निर्माता संघवी सेठ लूणाजी की वंश परंपरा को उज्ज्वल कर दिया ।

ये चारों पौत्रियाँ डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी, डॉ. सुदर्शनाश्रीजी, आत्मदर्शनाश्रीजी और सम्यग्दर्शनाश्रीजी के नाम से जानी जाती हैं। प्रियदर्शनाश्रीजी व सुदर्शनाश्रीजी तो दादीजी के ही सान्निध्य में रहीं अन्तिम क्षण तक तथा उन्हीं की प्रेरणा एवं पूर्ण सहयोग से कइयों के विरोध करने के बावजूद उच्च शिक्षा प्राप्त की और डॉक्टरेट की उपाधि भी प्राप्त की। इन दोनों पौत्रियों (साध्वी)ने दादीजी के मार्गदर्शन में अभिधान राजेन्द्र कोष से सम्बन्धित व अन्य कई पुस्तकें लिखी हैं तथा अभी भी स्वाध्याय लेखन का कार्य अनवरत रूप से चलता रहता है। इसके साथ ही जैन समाज की बालिकाओं को आध्यात्मिक संस्कारों से ओतप्रोत करने के लिए पू. दादीजी महाराज की निश्रा में कई आध्यात्मिक कन्याशिविर आयोजित किए जा चुके हैं। **उनके जीवन का एक ही लक्ष्य था और वह था सृजन....। पूज्य दादाजी महाराज साहब की सुप्रेरणा, कुशल मार्गदर्शन, आत्मीयतापूर्ण सहयोग एवं उनकी पावन निश्रा में डो. प्रिय-सुदर्शनाश्रीजी ने निम्नांकित कृतियों का प्रणयन किया है :**

महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१. आचाराङ्ग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन (शोध प्रबन्ध)
   लेखिका : डो. प्रियदर्शनाश्री, एम.ए. पी-एच.डी.
२. आनन्दघन का रहस्यवाद (शोध प्रबन्ध) लेखिका : डो. सुदर्शनाश्री, एम.ए. पी-एच.डी.
३. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (प्रथम खण्ड)
४. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (द्वितीय खण्ड)
५. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (तृतीय खण्ड)
६. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (चतुर्थ खण्ड)
७. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (पंचम खण्ड)
८. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (षष्ठम खण्ड)
९. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (सप्तम खण्ड)
१०. **'विश्वपूज्य'** : (श्रीमद्राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ) (अष्टम खण्ड)
११. अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका (नवम खण्ड)
१२. जिन खोजा तिन पाइयाँ (प्रथम महापुष्प)
१३. जीवन की मुस्कान (द्वितीय महापुष्प)
१४. सुगन्धित-सुमन (:RAGRANT-FLOWERS) (तृतीय महापुष्प)

उनपचास वर्षों के अपने संयमीजीवन में दादीजी ने प्राय: एकासणा, नवस्मरण पाठ, प्रतिदिन माला, पैदल विहार, स्वावलम्बी जीवन, स्वाध्याय, सरलता आदि गुणों व नियमों को धारण करके एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। आपके श्रमणी जीवन की गुण-सौरभ दूर-दूरतक आज भी महक रहा है, जो सभी के लिए प्रेरणादायक है।

आज के वातावरण में ऐसे साधु-संत विरले ही होते हैं ! दादीजी और उनकी पौत्रियों पर जैन समाज को गर्व है।

ऐसी महान् विभूति परमश्रद्धेया पूज्या दादीजी महाराज साहब के चरणों में हार्दिक श्रद्धांजलिपूर्वक शत-शत प्रणाम।
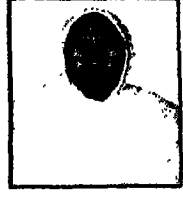
९६. अपूरणीय क्षति

– નરપતલાલ રામચંદજી બલુ (થરાદવાળા)

પરમ પૂજ્યા સરળસ્વભાવિની સાધ્વીરત્ના શ્રીમહાપ્રભાશ્રીજી (પૂ.દાદીજી) મહારાજ સાહેબના સમાચારથી ખૂબ જ આઘાત લાગ્યો. જેમની દીર્ઘકાલીન ઉષ્માભરી નિશ્રા-છત્રછાયામાં નિશ્ચિંત હુંફ અનુભવી હોય, પૂ. દાદીજી મ.ના દર્શન માત્રથી અમારા અંતરમાં અણુએ અણુઓમાં આનંદભર્યો ઉલ્લાસ વ્યાપી જતો હતો. તેમની વિદાયથી અનુભવાતી છત્રહીનતા અને વ્યાપી જતી ઠંડી નિરાશા કેટલી કાતિલ હૃદયદ્રાવક અને સંતપ્ત હોય એ માત્ર સમજવાની જ વાત રહે છે. શબ્દો તેમના વર્ણન માટે સમર્થ ન બની શકે. સમસ્ત ત્રિસ્તુતિક જૈનસંઘમાં પૂજ્યાશ્રીના કાળધર્મથી જે ખોટ પડી છે, એ માત્ર આપશ્રીના તત્રવર્તી સાધ્વીઓ માટે જ નહીં, પણ સમસ્ત જૈનસંઘ માટે અપૂરણીય ખોટ છે.

પૂજ્યા વયોવૃદ્ધા સાધ્વીરત્ના વિરલ વિભૂતિની વિદાય સ્વીકારવા હજીય મન માનવા તૈયાર થતું નથી. પૂજ્યા સાધ્વીરત્ના ક્ષમતા, સરળતા, સહનશીલતા, વિશુદ્ધ સંયમ જીવનની જીવન્ત મૂર્તિ હતા. તેઓશ્રીએ પોતાના જીવનમાં તપ અને ત્યાગને અતિ મહત્ત્વ આપીને તેમણે તેમનું સંયમજીવન ઉજ્જ્વળ બનાવ્યું હતું.

નવસ્મરણાદિ પાઠ, માળા, જપ-તપ, નિત્યપ્રતિ સ્વાધ્યાયમાં હંમેશા તલ્લીન રહેતા. વીસર્યા ના વિસરાય અવિસ્મરણીય ગુણ-દર્શન, ધર્મના મર્મદર્શક રત્નગર્ભા પૃથ્વીનું રત્ન પૂજ્યા સાધ્વીરત્ના દાદી ગુરુવર્યા ને ગીતાંજલિ - ભાવાંજલિ સમર્પિત કરતાં અમારું હૈયુ ગદ ગદ થાય છે.

'આદેશ નહિ, પણ ઉપદેશ.' આ સિદ્ધાંતને જીવનપર્યંત વળગી રહીને ઓગણપચાસ વર્ષના સંયમ જીવનને મઘમઘતો રાખીને તેની સુવાસ ચારે બાજુ ફેલાવી હતી. તેઓશ્રીના દરેક સંઘ ઉપર, પ્રત્યેક શ્રાવક-શ્રાવિકા ઉપર હંમેશા કૃપાદૃષ્ટિ રહેતી હતી. પૂજ્યાશ્રીનું જ્યાં પણ ચાતુર્માસ હોય ત્યાં અમીદૃષ્ટિ રહેતી. પૂજ્યાશ્રીની તબિયત ક્યારેક નરમ-ગરમ હોય, તોય આશીર્વાદથી નવડાવી દીધા વિના રહેતા નહિ. તેમણે જીવનની અંત ઘડી સુધી આ ગુણને દીપાવ્યો.

એકદમ નમ્ર સ્વભાવથી તેઓશ્રી સર્વના દિલ જીતી લેતા હતા. તેમના જીવનમાંથી દરેક વ્યક્તિ જો બોધ લે તોય દરેકનું જીવન સુંદર નંદનવન જેવું બની જાય. સ્વયં ઇતિહાસ બની જાય. પૂજ્યા સાધ્વીરત્ના શાસનના શણગાર હતા. સમસ્ત ત્રિસ્તુતિક સાધ્વીજી મંડળના રાહબર
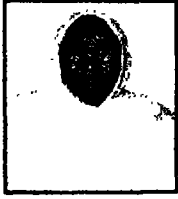
હતા, આધારસ્તંભ હતા, સંઘનું સૌભાગ્ય હતા. અનેકના તારણહાર હતા. તેઓશ્રી સરળ સ્વભાવી વિનયી તો એવા હતા કે તેમની વાણીએ અનેકને ધર્મ માર્ગે જોડ્યા હતા. અને કેટલાકને સંસાર સાગરમાંથી તાર્યા, એવા સાધ્વીરત્નાના સ્વર્ગવાસના સમાચારથી જગતમાં કોને દુઃખ ન થાય ? આ સમાચાર સાંભળનાર કયો આત્મા રુદન ન કરે ? એમણે એમના જીવનમાં એકાસણા ઘણા ટાઈમ સુધી કર્યા છે. જીવનના અંતિમ સમય સુધી પગયાત્રા કરી છે. અંતિમ શ્વાસ સુધી કોઈ અંગ્રેજી દવાનો ઉપયોગ નથી કર્યો. તેઓશ્રીએ શાસન પ્રભાવના અનેકાઅનેક કાર્યો કર્યા છે. પૂજ્યાશ્રી ખરેખર મારી નજરે મહાન વિભૂતિ હતા. એમનો પુરુષાર્થ, એમની પ્રતિમા, એમની શ્રદ્ધા, એમની કરુણા ખરેખર એમના ગુણો તો એમના જ હતા. પૂજ્યાશ્રી સાધ્વીરત્નાની વિદાયને 'ખોટ' શબ્દથી નહિ પણ 'શૂન્યાવકાશ' શબ્દથી જ આલેખી શકાય. આ શૂન્યાવકાશને પૂરવાની તાકાત નજીકના કોઈમાં જોવા મળવી સંભવિત જણાતી નથી. બસ હવે તો એમની આગવી યાદથી જ સંતોષ માનવો રહ્યો. એમનો ઉપકાર જૈનશાસન ક્યારેય નહિ ભૂલે. તેમની નજીક જનારને તેઓશ્રી વાત્સલ્યથી નવડાવી દેતા. એવી અદ્દ્ભુત આત્મીયતા તેમનામાં હતી. પૂજ્યાશ્રીએ સંયમ જીવન એવું જીવ્યા કે આજે આદર્શરૂપે, પ્રેરણારૂપે જીવંત છે. આપણે તો હવે તેઓશ્રીનું નામ અને ગુણનું સ્મરણ તથા યથાશક્તિ અનુસરણ એ બે જ હવે તરવાના ઉપાય છે.

पोंछ दो ये आंसू आँखों के, धारा बनके जो बहे जा रहे हैं,
हम रोयें क्युं भला, जब मोत खुद रोये जा रही है ।
सिर्फ बिछडे हैं वो हमसे, असल में नया जन्म हुआ है उनका,
इसीलिये तो आज स्वर्ग में खुशियाँ मनाई जा रही है ।
तारीफ क्या करूँ उनके गुणों की, अेक नहीं जो अनेक हैं,
खुद करें तो क्या ? दुनिया की जबान से सुनाई जा रही है ।

તેઓશ્રીનો દીર્ઘ આત્મા તપ આરાધનાથી પવિત્ર બન્યો છે. તેમનો પવિત્ર આત્મા જ્યાં હશે ત્યાં પવિત્રતાનો પ્રકાશપુંજ ફેલાવતો હશે ને ધર્મ સાધનાથી સ્વ-પર ને સિદ્ધિ માર્ગ તરફ દોરી જવા તત્પર બન્યો હશે. એમનું દેવત્વ પણ સમ્યક્ત્વની નિર્મળતાથી દીપતું હશે, તેમ જ બીજાઓ માટે માર્ગદર્શક બનતું હશે, તેમ સુનિશ્ચિત લાગે છે.

શાસનનો દરેક ધર્મીજન પ્રાર્થના કરે કે આવા સરળસ્વભાવિની સાધ્વીરત્ના વહેલામાં વહેલી તકે ફરીવાર આપણી વચ્ચે આવી, શાસનની જ્યોત જળહળતી રાખે. અત્યારે તો પૂજ્યાશ્રીનો આત્મા શીઘ્ર પરમપદનો ભોક્તા બને એ જ પ્રાર્થના. પૂજ્યાશ્રીના દિવગંત દિવ્ય આત્માને શ્રદ્ધા-સુમન અને શ્રદ્ધાંજલિ સમર્પિત કરીએ છીએ.

આવા જ્ઞાની, સમતાધારી, સરળસ્વભાવિની સાધ્વીરત્ના શ્રીમહાપ્રભાશ્રીજીને અમારા કોટિ કોટિ વન્દન, નમન.

97. फूल मुरझा गया, सुवास रह गई

- श्रीमती दीपाली चौधरी - अजमेर

दादीमाँ तुमको पाकर, धन्य हुआ युग का इतिहास ।
आज तुम्हारा वर्तमान ही जग की आश ।।
जिस पथ पर चित्रित तुम्हारी छाया का अवकाश ।
वही पथ होगा मानव का मंगल द्वार ।।

संसार में अनेक जीव जन्म लेते हैं, लेकिन उसी का जीवन सफल व सार्थक होता है जिसका आकर्षक व्यक्तित्व सदैव दूसरों के जीवन को नयी और सही राह दिखाते हैं । जो सत्य-अहिंसा, प्रेम-स्नेह, संयम-सदाचार, क्षमा-दया जैसे उच्चतम सद्गुणों का खजाना जगत् के समक्ष रखते हुए जीवन जीने की कला का अपूर्व बोध प्रदान करते हैं । जो अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने के साथ ही दूसरों का जीवन भी समुज्ज्वल करते हैं । ऐसे शासनरत्नों में जैनशासन की यह महान् विभूति साध्वीरत्ना पूज्या श्री महाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) महाराज साहब थीं ।

वह मालवमाटी धन्य है जहाँ समता व संयम-साधना की प्रतिमूर्ति, तप-त्याग और संयम मार्ग की दृढ़ उपासिका का जन्म हुआ । पूज्या दादीजी महाराज साहब अनेक अमूल्य गुणों से सजी हुई थीं । उनके असीम गुणों का वर्णन करना मेरी शक्ति से परे है, फिरभी गुरुभक्ति की शक्ति से प्रेरित होकर मैंने यह बाल प्रयास किया है ।

पूज्या दादीजी महाराज साहब के जीवन में सरलता, सहिष्णुता, नम्रता, लघुता, गुणानुरागिता, क्षमा व करुणा आदि गुण तो रचे बसे थे । अपने इन गुणों के प्रभाव से उन्होंने अनेक लोगों को धर्म-मार्ग की ओर मोड़ा । उनके हृदय में निरन्तर सभी जीवों के प्रति स्नेह-वात्सल्य बहता रहता था।

पूज्या दादीजी महाराज साहब का जीवन सदा शक्कर जैसा मधुर तथा गुण रूपी पुष्पों की सुवास से महकता हुआ था । आपने जीवन पर्यन्त कभी किसी वाहन का उपयोग नहीं किया । जीवन के अन्तिम क्षण तक पैदल ही विहार किया ।

"दीप बुझा प्रकाश अर्पित कर ।
फूल मुरझाया सुवास समर्पित कर ।।
टूटे तार पर सुर बहाकर ।
गुरुवर्याजी चली नूर फैलाकर ।।"

लेकिन एकदिन ऐसा अशुभ दिन आया, जब हमारी पूज्या दादीजी महराज साहब हम सबको निराश्रित छोड़कर चली गयीं । जिनशासन का अनमोल कोहिनूर रत्न क्रूर कालराज ने हम से छीन लिया । सोलह कलायुक्त खिला हुआ चाँद जगत् में अन्धेरा करके विलीन हो गया। यह दुःखद समाचार वायुवेग से सर्वत्र प्रसारित हो गया । जब हमलोगों ने भी सुना तो स्तम्भित रह गये । क्या यह सत्य है ? इस दुःखद समाचार के मिलते ही श्रद्धालुओं की भीड़ अन्तिम दर्शन हेतु धाणसा नगर की ओर उमड़ पड़ी । इस भीड़ में मैं भी अपने पापा के साथ शामिल थी । मेरे

मन में एक उदासी थी। पूज्या दादीजी महाराज साहब आज हमारे समक्ष प्रत्यक्ष रूप से नहीं रहीं, पर उनके सद्गुणों की सुवास आज भी हमारे जीवन को सुवासित कर रही है।

म – महान् ममतामयी माँ थी जो।
हा – हार थी सभी के हृदय का जो।
प्र – प्रभावशाली व्यक्तित्व था जिनका।
भा – भाव उज्ज्वल व निर्मल थे जिनके।

ऐसी पू. दादीमाँ के श्रीचरणों में सादर श्रद्धा सुमन समर्पित।

98. माता ने 'दादीमाता' स्वर्ग से बड़ी है

– श्रीमती प्रतिभा आर. भंसाली–दाहोद (म.प्र.)

विश्व में और विशेष रूप से जैन श्रमणसंस्कृति में आत्मकल्याण की बात सर्वोपरि है। प.पूज्या साध्वीजी श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब विरले व्यक्तित्व की धनी थीं, जिन्होंने स्व कल्याण के साथ-साथ पर कल्याण को भी अपने जीवन में अधिक महत्त्व दिया। अपने गुरु **"विश्वपूज्य दादा राजेन्द्रगुरु"** के प्रति भक्ति का इससे अच्छा उदाहरण हमें कहाँ मिल सकता है। गुरुदेव ने भी सर्वप्रथम तप-त्याग, साधना की कसौटी पर स्वयं को खरा साबित किया। उसके बाद ही अपनी दिव्यदृष्टि से विश्व में जन-जन को जैनशासन की अच्छाइयों से परिचित करवाया। वैसे ही पू. 'दादीजी' महाराज साहब ने भी स्वयं के जीवन को सन्मार्ग की ओर मोड़कर महावीर के संघ-शासन में एक नहीं, चार-चार पुष्पों को सजाया, सँवारा, उन्हें स्वाध्याय, तप, त्याग, मौन- साधना का पाठ पढ़ाकर जैनशासन को ही नहीं वरन्, विश्व को एक अद्भुत रत्नजटित पुष्पों की श्रृंखला प्रदान की। **मेरी राय में तो ऐसी वात्सल्यमयी 'दादीजी' महाराज साहब का नाम "गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड" में अंकित होना चाहिए।** वैसे हमें तो इनका सान्निध्य केवल **"दूर से आती भीनी सुगन्ध"** जैसा ही प्राप्त था, लेकिन जिन्हें भी इनका सान्निध्य प्राप्त हुआ, वास्तव में उनका जीवन धन्य हो गया। **ऐसी सरलहृदया पू. 'दादीजी' महाराज साहब ने अपनी बगिया के पुष्पों को खिलने से लगाकर शिखर पर पहुँचने तक कई मुश्किलों का सामना किया। तभी तो जैनशासन में इनका नाम सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। हमें किसी से दुराग्रह एवं द्वेष नहीं हैं, लेकिन इस कटुसत्य से भी नकारा नहीं जा सकता कि वर्तमान आचार्यदेवश्री के विशाल बाग में (शिष्य-शिष्या वृन्द में) भी ऐसे 'खिलते उज्ज्वल' पुष्पों की सौरभ पाना मुश्किल है।**

हमारी सकारात्मक सोच यही कहती है कि "इस देश में, प्रत्येक घर में जब तक "आध्यात्मिकता" विद्यमान रहेगी, हमें युग-युग तक ऐसी ही "दादीजी" प्राप्त होती

रहेगी।

मालवाँचल की माटी में जन्मी इस "महान् आत्मा" को "मालवी" बोली की निम्नांकित मधुर चंद पंक्तियों द्वारा हृदय से श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ :-

"माता" ने "दादीमाता" स्वर्ग से बड़ी है,
मारा पे तो दोई माँ की ममता झड़ी है,
ममता झड़ी है।
इक माँ ये "जनम" द्यो ने,
दूजी ये "मनन" द्यो,
"जनम" ने "मनन" दोई मिलने
जनम है सुधार्‌यो²
माता ने "दादीमाता".....

ऐसी दिव्यात्मा को कोटि-कोटि वन्दन करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

99. गुरुणीमैया के जीवन की अनुपम विशेषताएँ

- हुकमीचंद टिकल्या - मदनगंज, किशनगढ़ (राज.)

आपका हृदय स्फटिक सा उज्ज्वल था। जैसे माली नाना प्रकार के पुष्पों से गुलदस्तों को संजोता है। वैसे ही आपने अपने जीवन रूपी गुलदस्तें को अनेक सद्‌गुण रूपी सुमनों से सुसज्जित किया था। आपका जीवन फूलों सा कोमल व गंगा सा निर्मल था।

स्मरणशक्ति का यह नजारा था कि जो भी भक्त एकबार आपसे मिलता, उसे आप वर्षों के बाद भी पहचान जाती थीं। आपकी यशोगाथा आकाश की भाँति असीम है। आप वात्सल्य, करुणा दया, व क्षमा की साक्षात् प्रतिमा थीं। आपकी वाणी अन्तर को स्पर्श करनेवाली थी। आप आगन्तुक को वन्दना करने के पश्चात् शीघ्र ही वात्सल्यभाव से "धर्मलाभ" देती थीं। उनके मीठे शब्द सुनकर श्रावक गद गद हो जाता था। वे शीघ्र ही उनसे बातचीत करने लग जातीं तथा धर्माराधना के बारे में उनसे पूछताछ करती थीं।

साधना के सजग प्रहरी -

आपकी जागरूकता व अप्रमत्तता की क्या प्रशंसा करूँ ? मेरे पास कोई शब्द नहीं है। आप निरन्तर अपनी साधना-आराधना के प्रति जागरूक रहकर नित्यप्रति स्वाध्याय, नवकारमंत्र का जाप, प्रतिदिन एकासना, अन्तिम समय तक पैदल विहार करना, अन्तिम श्वास तक अंग्रेजी दवाइयों का उपयोग नहीं करना तथा नब्बे वर्ष की आयु परिपूर्ण करके धर्मनगरी धाणसा (जि. जालोर) में देवलोक सिधारीं।

वाणी में अलौकिक शक्ति -

आपकी वाणी में अलौकिक शक्ति थी। सुनकर सभी प्रभावित हो जाते थे। मैंने अपने परिवार व स्व. श्वसुरजी श्रीमदनलालजी मेहता के साथ भरतपुर, पाली, जोधपुर, सियाणा, जालोर, भीनमाल, धाणसा आदि शहरों में आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त किया है। तब आपश्री बड़ी भावपूर्ण मुद्रा में हम से ज्ञान-ध्यान, आराधना के बारे में पूछती थीं तथा तत्त्वत्रयी-देवगुरुधर्म पर ही चर्चा किया करती थीं। विहार में आपके साथ एक-दो बार पैदल चलने का भी सुअवसर मिला। उसवक्त आपश्री ने अपने अनुभूत जीवन के मार्मिक प्रसंग भी सुनाये थे, जो मुझे आज भी याद है।

करुणा-वात्सल्य की साक्षात्मूर्ति -

पूज्या गुरुणीमैया के चरणसरोजों में जो भक्तजन जाते, तो एकदम ऐसा महसूस होता कि जैसे-हम अपनी मातेश्वरी की गोद में बैठे हों। वे करुणा और वात्सल्य से ओतप्रोत होकर हमारे सुख-दुःख की बात भी सुनती थीं। सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति थीं वे। जिन्दगी के हर पड़ाव पर, चाहे वह सुखद हो या दुःखद हो, सदा जीवन्त बनी रहीं। हर वक्त प्रेरणा देती हुई वही मधुर मुस्कान, जिसे देखते ही हर थके मन को राहत की अनुभूति होती थी। मन को गहरा सुकून मिलता था।

**"सरल स्वभाव जीवन जानो गुण की क्यारी।
विनयभाव, संयम अनुशासन, ज्ञानतत्त्व फुलवारी॥
जिनशासन की दिव्य चंद्रिका, मैं तुझपर बलिहारी।
गुरुमैया के चरणों में, अर्पित हो श्रद्धांजलि हमारी॥"**

शिक्षा के प्रति लगन -

आप पूर्व से पश्चिम अर्थात् भरतपुर से जालोर एवं मध्यप्रदेश तक '**दादीपौत्री**' के नाम से विख्यात थीं। आपने अपनी दोनों पौत्रियों डॉ.प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी महाराज साहब को प्रेरित करके डॉक्टरेट की उपाधि तक की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करवायीं। आपकी दोनों पौत्रियों ने आपश्री के कुशल नेतृत्व में रहकर जैनदर्शन के अध्ययन के साथ-साथ ज्ञान-ध्यान, तप-जप व आराधना के क्षेत्र में भी विशेष ख्याति प्राप्त की है। जालोर-दुर्ग पर चार माह तक तप-जप ज्ञान-ध्यान एवं अखण्ड मौन में रहकर साधना की है। आज भी हम इनकी ज्ञान-ध्यान-साधना की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। अपनी पौत्रियों को ऐसे शिक्षित किया है कि वे गाँवों-नगरों में जैनेतरों को भी धर्म से आप्लावित कर रही हैं और किया है। **हमारे यहाँ भी जैन संघ-समाज को एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया है। चाहे वे स्थानकवासी हो, चाहे तेरापंथी हो, चाहे मूर्तिपूजक संघ हो, सभी को मोतियों की एकमाला में पिरो दिया। यही कारण है कि आज संघ-समाज के सभी घटक इनके गुणों की मुक्तहृदय से प्रशंसा करते हैं। आपके द्वारा प्रदत्त शिक्षा-दीक्षा का ही यह प्रचुर प्रचार-प्रसार है।**

जिनशासन की इस विभूति ने अपने मनोरथ पूर्ण करके अपनी साधना-आराधना एवं तप-त्याग एवं संयम का सार प्राप्त कर लिया।

पूज्या दादीजी महाराज साहब का वरद आशीर्वाद हम पर सदा रहा है। उस दिव्यात्मा ने संयम सोपानों पर अपने कदम दृढ़तापूर्वक बढ़ाते हुए संलेखना के शिखर पर पहुँचकर मृत्यु को भी भव्य महोत्सव में रूपान्तरित कर दिया। दैहिक दृष्टि से भले ही आप हमारे मध्य नहीं है, किन्तु उनके अनुभव एवं आदर्श हमारे मध्य में ही है, जो सदा हमारा पथ आलोकित करते रहेंगे।

गुरुणी मैया को ध्यायेंगे, जीवन को सफल बनायेंगे।
वे नाना गुणों की भंडार थीं, वे सहज शांति की आधार थीं
हम उनको भूला न पायेंगे॥
माधुर्य झलकता नयनों में, अमृत रस बहता वचनों में,
चरणों में बलि बलि जायेंगे॥
गुरुणी मैया सबकी सांसो में, जीवित निज विश्वासों में,
श्रद्धा के सुमन चढायेंगे॥

इन्हीं भावों के साथ सादर श्रद्धा-सुमन सर्मपित है।

100. मौन तपस्विनी

- तनसुखलाल बाफना, मदनगंज-किशनगढ़ (राज.)

श्रद्धा, वात्सल्य व सरलता की प्रतिमूर्ति, संयम-साधना की सशक्त साधिका, श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के दर्शनों का सौभाग्य तो मुझे नहीं मिल पाया। यह मेरा दुर्भाग्य ही रहा, किंतु मदनगंज निवासी गुरुभक्तों के द्वारा उनके जीवन की विशिष्टताओं के बारे में सुना तो मन सहसा उनके श्रीचरणों में श्रद्धान्वित हो गया और उनके सम्बन्ध में श्रद्धा-सुमन रूप दो शब्द लिखने के भाव उभर आए।

पूज्या साध्वीप्रवराश्री के जीवन में तप-जप, ज्ञान-ध्यान एवं कठोर संयम-साधना के साथ कथनी व करनी में एकरूपता थी। आपने अन्तिम समय तक नब्बे वर्ष की आयु में जालोर जिले के छोटे-छोटे ग्रामों में पैदल विहार कर वहाँ की जनता को लाभान्वित किया और अपनी सीधी-सरल भाषा में उन्हें उपदेशामृत पिलाया।

स्वावलंबिता की मूर्ति, मौन तपस्विनी साध्वीरत्नाश्री ने अपनी दोनों पौत्रियों को संयम जीवन की सुंदर ट्रेनिंग दी और जैन जगत् में '**दादीपौत्री**' के नाम से पहचान बना दी। यद्यपि स्वयं दादीजी महाराज साहब ने शालायी शिक्षा प्राप्त नहीं की थीं, फिरभी आपने अपनी दोनों

पौत्रियों को स्नेह-वात्सल्य का दूध पिलाकर उन्हें विशेष अध्ययन की ओर प्रेरित किया तथा दोनों के अध्ययन में आत्मीयतापूर्ण सहयोग-सहकार देकर धार्मिक शिक्षण के साथ ही उच्चस्तरीय व्यावहारिक शिक्षण भी करवाया। जिसके फलस्वरूप दोनों ने एम.ए., पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर त्रिस्तुतिक समाज में सर्वप्रथम कीर्तिमान स्थापित किया।

पू. साध्वीरत्नाश्री ने अपने जीवनकाल में अंतिम श्वास तक कोई एलोपेथिक दवाई का उपयोग नहीं किया और नित्यप्रति स्वाध्याय, माला, नवस्मरणादि पाठ आदि के साथ नब्बे वर्ष की आयु में फाल्गुन वदि एकादशी वि.सं. २०५६ को सायं आठ बजे इस संसार सागर को छोड़कर धर्मनगरी धाणसा में देवलोक पधारीं। दिवंगत आत्मा को भावभरी श्रद्धांजलि।

101. देदीप्यमान सितारा

- प्रेमचंद रतनबहन मेहता, दांतरी

ये तन विष की वेलड़ी, गुरु अमृत की खाण।
शीष दिए जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जाण॥

मुझे यह लिखते हुए सात्त्विक गौरव हो रहा है कि परम श्रद्धेया बहुमुखी प्रतिभा की धनी पू. दादीजी महाराज साहब हमारे संघ-समाज की एक देदीप्यमान सितारा थीं। पू. दादीजी म. के महान् व्यक्तित्व के विषय में मैं क्या लिखूँ ? फिर भी हृदय चाहता है कि आपके श्रीचरणों में अपने हार्दिक श्रद्धा-सुमन समर्पित करूँ ?

सन् 1987 में गुरुजन्मभूमि-भरतपुर पधारते समय एवं वापस 1988 में वहाँ से लौटते समय दोनों बार मेरे गाँव दांतरी (राज.) में आपश्री का पदार्पण हुआ था। तत्पश्चात् जालोर वर्षावास में भी आपके दर्शनों का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ, किंतु आपकी सेवा, सान्निध्य व वार्तालाप का सुअवसर बहुत ही थोड़ा मिला।

आप तप-त्याग की एक जीती-जागती प्रतिमा थीं। आपके विचार पवित्र थे, आचार निर्मल था और हृदय बहुत ही विशुद्ध था। हिमालय के समान विराट् जीवन था आपका। इस विराट् हिमगिरि से ज्ञान-ध्यान, स्वाध्यायादि की गंगा सतत प्रवहमान थी, जो श्रद्धालु भक्तों को शीतलता प्रदान करती थी। उनका जीवन अनेक गुणरत्नों से भरपूर होते हुए भी निराभिमानिता, स्वावलंबिता व सरलता से परिपूर्ण था।

पू. दादीजी महाराज साहब के असीम उपकारों को हम कभी नहीं भूल सकते। मैं अपनी तथा अपने परिवार की ओर से ऐसी दिव्य आत्मा के श्रीचरणों में शत-शत हार्दिक वंदन करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। वे जहाँ भी हों, हमारा सदा पथ-प्रदर्शन करती रहें।

102. दादीमाँ ! तेरे चरणों में कोटि-कोटि नमन

- ज्ञानचंद करनावट - मदनगंज (राज.)

दादीमाँ के महान् व्यक्तित्व को शब्दों में बाँधना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। उनमें अनेकानेक गुणों का समावेश था। उनके व्यवहार के प्रत्येक चरण में आकर्षण के बिन्दु समाविष्ट थे। वे सरलता व सादगी की अवतार थीं। उनके होठों पर खेलती निश्छल मुस्कराहट आकर्षण का केन्द्र थी। नाराजगी व क्रोध तो उनसे बहुत दूर थे। जब भी उनसे चर्चा का सौभाग्य प्राप्त होता था, आत्मीयता व सरलतापूर्ण व्यवहार के दर्शन होते थे। आपके लिए धर्म दिखावे की वस्तु न होकर जीवन में धारण करने की शक्ति थी।

उस महान् व्यक्तित्व की यह एक असाधारण विशेषता थी कि वे कथनी व करनी में समरूपता रखती थीं। आदर्श उनके जीवन के अभिन्न अंग थे। उनके व्यवहार का हर पहलू व आचरण स्वयं बोलता था। उनके यहाँ बात कम और काम अधिक होता था। वे सरलता व उच्चता की प्रतिमूर्ति थीं। यह सब उनके चेहरे से पढ़ा जा सकता था, जहाँ निश्छल शांति व सागर-सी गहराई थी।

जन-जन का कल्याण हो तथा वे धर्माचरण में प्रवृत्त हो-यह थी उनकी भावना व मनोकामना। उनकी सहज व सटीक बात कहने की आदत थी। फलत: सभी उनकी ओर आकर्षित होते थे। उनके साथ चर्चा करने से कभी मन नहीं भरता था। ऐसी होती थी उनकी मर्मभेदी सरस धर्माचरण की बातें।

उनके जीवन का प्रतिक्षण साधना व आराधना के रंग में डूबा होता था। माला के मनके भी अनवरत स्पर्श पा माँ के हाथों से सुरम्य व सुडौल हो चुके थे। उनकी आँखों से निरन्तर चिन्तन की रश्मियाँ बिखरा करती थीं और आलोकित करती थीं हमारे समग्रजीवन के पथ को।

मैं तो मौन होकर उनकी अमृतमयी वाणी से, अप्रतिम व्यक्तित्व व आचरण के सौन्दर्य से आनन्द के सागर में आकण्ठ डूबा रहता था। मेरी क्षमता से परे है उन सब का वर्णन करना, जो कुछ मैंने देखा, पाया.....।

सच है, अत्यन्त कठिन है ऐसे उन्नत व्यक्तित्व के दर्शन, ऐसा साधनामय जीवन, जिसमें थी सागर सी गहराइयाँ, गतिशीलता की चमक थी जिनके चरणों में। जिनकी वाणी में मोहकता का जादू था। मुखमण्डल में चिरशान्ति के दर्शन, धैर्य की प्रतिमूर्ति थीं वो। समता, सहनशीलता व निरन्तर क्रियाशीलता की त्रिवेणी प्रवाहित थी जिनके जीवन में। नमन, अभिनन्दन व वन्दन है जिनके चरणों में...। उनकी स्मृति अमिट रूप से हृदय-स्थल पर सदा-सदा अंकित रहेगी।

जिसे किसी से कोई भय नहीं है, ऐसा चारित्र जिसके चित्त में परिणत है उस अखण्ड ज्ञानरूपी राज्य के अधिपति मुनि को भला भय कहाँ से ?

103. अंतिम श्रद्धांजलि स्वरूप समर्पित दो आँसू

- वीरेन्द्रबहादुरसिंह भंडारी - मदनगंज-किशनगढ़

प्रात:स्मरणीय विश्वपूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरिजी महाराज साहब के दर्शाये हुए मार्ग पर सतत विचरण करनेवाली, हिमालय पर्वत की भाँति क्रिया में अटल रहनेवाली, धर्म संघ में दिव्य रोशनी प्रज्वलित करनेवाली जालोर जिले में **'दादीपौत्री' के नाम से विख्यात दादीमाँ !** आप इस संसार से विदा ले चुकी हों। जिन-जिन भाग्यशाली श्रावक-श्राविकाओं ने आपका सान्निध्य प्राप्त किया। वे सदैव आपके ऋणी रहेंगे।

हे मृदुभाषिणी ! वचनसिद्धि की दात्री ! मुझ में इतनी सामर्थ्य कहाँ कि मैं आपको श्रद्धांजलि अर्पित कर सकूँ ? आपका माँगलिक एवं आशीर्वाद हर संकट की घड़ी में मेरे कष्टों का निवारण करता था। आप अपने संयम-नियम में इतनी दृढ़ थीं कि अपने सिद्धान्तों से कभी विचलित नहीं हुई।

धन्य है आपको व आपकी त्याग-तपस्या को ! यह अमिट छाप आप जैन संघ पर छोड़ गई हैं तथा ऐसे ही संस्कार आपके सान्निध्य में रहनेवाली अपनी सांसारिक पौत्रियों-डॉ. प्रियसुदर्शनाश्रीजी म. सा. पर छोड़ गई हैं, जो संघ-शासन की सेवा के साथ-साथ अपने आत्मकल्याण में लीन हैं।

हे दादीमाँ ! आपकी पौत्रियों ने भी आपके नाम को रोशन किया है। आपके देवलोक होने पर समाधिस्थल पर जाते समय जब मुझे कंधा लगाने का पुण्य प्राप्त हुआ था, तब मेरे नेत्रों से टप-टप आँसू बहने लगे। हे मातेश्वरी ! आप धन्य हैं ! स्वीकार करें मेरा शत-शत नमन।

104. दिव्य व्यक्तित्व की धनी

- रतनलाल धूपिया, मदनगंज - किशनगढ़ (राज.)

परम श्रद्धेया पूजनीया श्री महाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) महाराज साहब की सहज भद्रता, सहिष्णुता, समता, आत्मीयता, विनम्रता, गंभीरता आदि आज भी जनमानस में सम्मान पा रही हैं और उनकी सौम्याकृति नयनों में नाच रही है।

सर्वप्रथम मैंने आपके दर्शन आहोर में किये। तत्पश्चात् यहाँ 1985 के वर्षावास में आपकी सेवा, सान्निध्य व वार्तालाप का विशेष अवसर मुझे प्राप्त हुआ। तब निकट से देखा तो पाया कि आप मान-सम्मान, पूजा-प्रतिष्ठादि से सर्वथा परे थीं।

सचमुच दादीमाँ के जीवन में **'समयाए समणो होइ' समता से साधु होता है -इस सूत्र का साक्षात्कार होता था और 'समोनिंदापसंसासु' निंदा-प्रशंसा में समदृष्टि सूत्र का अन्तर्नाद गूँजता रहता था।**

वे अपने आप में जो कुछ थीं, उससे अन्यथा प्रदर्शित करने की वृत्ति-प्रवृत्ति उनमें नहीं थी। सादगी, सरलता एवं शिशु की-सी शुचिता उनके जीवन की सर्वोपरि विशेषता थी।

इसलिए उनके दिव्य एव भव्य व्यक्तित्व का कुछ ऐसा प्रभाव मेरे मन पर पड़ा कि वह विस्मृत नहीं किया जा सकता। आपश्री द्वारा दी जानेवाली मांगलिक -

"गौतम नाम प्रभात जपो
नित रिद्धि-समृद्धि बढ़े बहुतेरी..."

आज भी स्मरण हो आती है। मेरी धर्मपत्नी तो विभिन्न स्थानों पर आपके सान्निध्य-संपर्क में खूब आती रहीं।

मैं उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। साथ ही उस दिव्य विभूति के चरणारविंद में हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

105. नहीं भूल सकता उपकार

- माणकचंद कोठारी, मदनगंज

गंगा में स्नान करने से पाप दूर होता है,
वृक्ष की शीतल छाया में ताप दूर होता है।
चाँद के शीतल प्रकाश में संताप दूर होता है,
जबकि साधु-संतों की सेवा से त्रिताप दूर होते हैं॥

परम पूजनीया सरलहृदया दादीजी महाराज साहब के दर्शन-वंदन करने का सर्वप्रथम सौभाग्य मुझे आहोर (राज.) में मिला। तत्पश्चात् सन् 1985 में पू. दादीजी महाराज साहब का वर्षावास अपनी दोनों पौत्रियों के साथ किशनगढ़ शहर में हुआ। तब से लेकर निरंतर प्रतिवर्ष चातुर्मास में उनका सम्पर्क, सान्निध्य व दर्शनों का लाभ मुझे मिलता रहा।

पू. दादीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में बैठने पर ऐसा महसूस होता था, जैसे भूखे को घेवर, प्यासे को पानी व भीषण गर्मी में लू के थपेड़ो को सहते हुए पथिक को शीतल लहरों का आनंद। उन्हीं की पावन प्रेरणा से मुझे तपश्चर्या करने का संबल मिला। इतना ही नहीं, उन्हीं की शुभाशीर्वाद एवं परम पुनीत सान्निध्य में मैं प्रतिवर्ष पर्यूषण पर्व में अट्ठाई की तपश्चर्या आपश्री के मुखारविंद से पच्चक्खाण लेकर अक्षुण्ण रूप से करता रहा। जालोर चातुर्मास सन् 1993 में तो आपकी निश्रा में कर्म-निर्जरा करनेवाली सोलभत्ता जैसी महान् तपस्या भी मेरी खूब सुख-शान्तिपूर्वक हुई। सचमुच पू. दादीजी महाराज साहब के तप-त्याग, कठोर संयम-साधना एवं वाणी का ऐसा चमत्कार था कि मुझे कभी महसूस ही नहीं हुआ कि मैंने अट्ठाई, ग्यारह या सोलभत्तादि कोई तपश्चर्या की है।

पू. दादीजी महाराज साहब मुझे समय-समय पर जीवनोपयोगी कई हितशिक्षाएँ भी देती थीं। जिनका मेरे जीवन पर काफी प्रभाव पड़ा। उन्होंने मुझ पर जो उपकार किया उसे मैं जन्म-जन्मान्तर में भी नहीं भूल सकता। ऐसी चिंतामणिरत्न समान प्रभावशाली महान् आत्मा के दर्शन

व सान्निध्य से मेरा जीवन धन्य-धन्य हो गया। उनके चरण कमलों में सश्रद्धा हार्दिक श्रद्धांजलि के साथ शत-शत वन्दन !

106. समाज का गौरव

- श्रीचंद कोठारी, मदनगंज (राज.)

धैर्य के मेरूमणि प.पूजनीया दादीजी महाराज साहब के आकस्मिक निधन से अतीव दु:ख हुआ। दादीजी महाराज साहब इतनी जल्दी हम सब को छोड़ जाएँगी, यह हमने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। मुझे भलीभाँति ज्ञात है कि उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक कठिनाईयाँ सहकर भी अनेक क्षेत्रों में (जैसे-दुंदाड़ा, किशनगढ़, महुवा, भरतपुर, आगरा आदि) विचरण करके जो ख्याति प्राप्त की है, वह हमारे संघ-समाज के लिए एक गौरव की बात है।

मैं कईबार आपके संपर्क में आया हूँ। उन्होंने जो स्नेह-वात्सल्य व आत्मीयता मुझे दी है। उसे मैं कभी भी नहीं भूल सकता। उनके जीवन के आदर्शों से मैं अच्छीतरह परिचित हूँ। मैं यह कह सकता हूँ कि भारत में आज भी साधु-संतों की कमी नहीं है, किंतु साधुत्व एवं साधना की ज्योति बहुत कम दिखाई देगी। आपके जैसी कठोर संयम-साधिका विमल विभूतियाँ बहुत ही कम हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो वे संयम पथ पर आरुढ़ होकर संसार रूपी चक्रव्यूह को तोड़ती हुई मुक्ति महल के निकट पहुँचती जा रही हो।

अन्त में असीम आस्था के साथ उस स्नेहमूर्ति के पावन चरणों में अनन्तशः वन्दन।

107. खुली पुस्तक थीं वे

- शांतिलाल कोठारी, मदनगंज

कोमलता की मूर्ति परम श्रद्धेया पूज्या दादीजी महाराज साहब का मन इतना निर्मल था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने दोष, उनके स्वच्छ आदर्शरूप दर्पण में देख सकता था। उनके मन की स्वच्छता को देखकर मन कह उठता है -

"कैसा मन पाया था उन्होंने चाँदनी-सा"।

उनके जीवन में गोपनीय तो कुछ था ही नहीं। जो कुछ था, वह एक खुली पुस्तक की तरह स्पष्ट था। कवि बच्चन के शब्दों में कहें, तो यों कह सकते हैं :-

**हम अपना जीवन अंकित कर,
फैंक चुके हैं राजमार्ग पर,
जिसका जी चाहे सो पढ़ ले,
पथ पर आते जाते।
हम कब अपनी बात छुपाते ॥**

सच है प्रारंभ से अन्त तक उन्होंने कभी कुछ छिपाया ही नहीं था अपने जीवन में। वे स्व और पर के भेद-रहित बालक की तरह ही स्वच्छमना बनी रहीं।

पू.दादीजी महाराज साहब की जीवन-चर्या की ओर हम नजर दौड़ाते हैं, तो हमें वहाँ बहुत ही कठोर मर्यादाओं से आबद्ध जीवन के दर्शन होते हैं। उनके समान कठोर चारित्र एवं निर्दोष चारित्र का पालन करनेवाले साधु-संत आज बहुत ही कम दिखाई देते हैं। ऐसी विरल विभूति को मेरा शत-शत वंदन।

108. असाधारण गुणों की खदान

- तेजसिंह करनावट, मदनगंज

परमश्रद्धेया पूजनीया साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब एक 'असाधारण' गुणों की खदान थीं। सरलता की साक्षात्मूर्ति रूप पू. दादीजी महाराज का स्वभाव आबाल वृद्ध सभी के लिए आकर्षक था। आज से लगभग अट्ठारह साल पूर्व दादीजी महाराज हमारे यहाँ वर्षावास करने अपनी शिष्याओं के साथ पधारी थीं। तब से उनके साथ पूर्ण लगाव रहा है। इतना ही नहीं, प्रतिवर्ष उनके दर्शनार्थ जाता रहा। पिछले कई वर्षों से वे अपनी शिष्याओं के साथ जालोर जिले में विचरण करती रहीं।

पू. दादीजी महाराज ने नब्बे वर्ष की अंतिम अवस्था तक निर्मल परिणाम तथा विशुद्ध चारित्र का पालन कर हमारे सामने एक अनूठा आदर्श रखा।

प्राय: सभी आपको अपने नाम से न पहचान कर आबालवृद्ध "दादीपौत्री" महाराज के नाम से ही जानते हैं। सचमुच अद्‌भुत था पू. दादीमाँ का प्रभाव। ऐसी महान् आत्मा के श्रीचरणों में हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

109. संजीवनी शक्ति

- चन्द्रकेशर करनावट - मदनगंज

धन्य-धन्य आदर्श तुम्हारा, आत्मा का श्रृंगार किया।
आत्म शुद्धि के महायज्ञ में, तन-मन जीवन वार दिया॥
व्यक्ति व्यक्ति को नहीं देखता, उसकी सरलता को देखता है।
व्यक्ति व्यक्ति से प्रभावित नहीं होता, उसके गुणों से प्रभावित होता है॥
व्यक्ति व्यक्ति से आकर्षित नहीं होता, उसकी वाणी से आकर्षित होता है।
व्यक्ति व्यक्ति का अभिनन्दन नहीं करता, उसके व्यक्तित्व का अभिनंदन करता है॥

बगिया में विविधता लिए वृक्ष की टहनियों पर रंग-बिरंगे अनेक पुष्प खिलते हैं। देखने में रंग-बिरंगे होते हुए भी वे महकते नहीं हैं। इसलिए उनका कोई महत्त्व नहीं हैं। उनमें से कुछेक पुष्प सम्पूर्ण बगिया को सुवासित कर देते हैं। जिसने खूशबू फैला दी है उसी का महत्त्व होता है।

यही स्थिति संसार बगिया की है, जिसमें अनेकानेक मनुष्य जन्म लेते हैं और कुछ दिन रैनबसेरा करके चले जाते हैं। उनमें से कुछ मनुष्य अपने तप-त्याग, पुरूषार्थ, संयम, सत्य-अहिंसा, समता, सहिष्णुता आदि सद्गुणों की सुवास फैलाकर पार्थिव देह को छोड़कर परलोकवासी हो जाते हैं, किन्तु संसार में अपने सत्कार्यों के द्वारा वे महिमावन्त बन जाते हैं।

उन्हीं महान् आत्माओं में स्वनाम धन्या पूज्या दादीजी महाराज साहब इस संसार बगिया की एक महान् आत्मा थीं। जिन्होंने अपनी कठोर संयम-साधना की गरिमा चारों ओर फैलायी। अपने आत्मबल के द्वारा ज्ञान-दीप प्रज्वलित किया। संयम रूपी काँटों की राह पर चलते हुए अपने जीवन को गुलाब की तरह सुरभित किया।

आपके स्वभाव में सरलता, व्यवहार में नम्रता, नयनों में तेजस्विता, हृदय में पवित्रता, वाणी में मधुरता, मुखपर सौम्यता, और सेवा में समर्पण के भाव कूट-कूट कर भरे हुए थे।

मैंने आपश्री के दर्शन सर्वप्रथम आहोर नगर में किए थे। प्रथम दर्शन मात्र से ही मेरा मन आपश्री के प्रति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। अनिमेष दृष्टि से सौम्य आकृति को देखता ही रह गया। आप जैसी ममतामयी मूर्ति एवं दिव्य विभूति के दर्शन-पाकर मेरा हृदय गद गद हो गया।

दादीमाँ में एक ऐसी संजीवनी शक्ति थी, जिसमें प्रण व स्वत्त्व का बल था। वास्तव में ऐसी ही साध्वियाँ समाज संघ एवं राष्ट्र के प्राण हो सकती हैं। ऐसी ही प्राणवान् साधिका परम श्रद्धेया पूज्या दादीजी महाराज साहब थीं।

आपश्री सदैव ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय, जाप व आत्मचिन्तन में ही तल्लीन रहती थीं। जीवन के हरक्षण को आपने खेल की तरह खेला था। समता व स्वावलंबिता की तो मानो आप प्रतिमूर्ति थीं। मुख मण्डलपर सदैव मुस्कराहट बनी रहती थी। कषायों की गन्दगी तो आपके हृदय को किंचित् भी स्पर्श नहीं कर सकी।

ऐसी गुणरत्नों की खदान गुरुवर्या पूज्या दादीमाँ को शत-शत वन्दन अभिनन्दन। मुझ पर आपश्री का वरदहस्त सदा रहें। आपश्री के बताए हुए मार्ग पर चलता रहूँ।

इन्हीं श्रद्धा-सुमनों के साथ।

110. दिव्य रश्मियों से ओतप्रोत जीवन
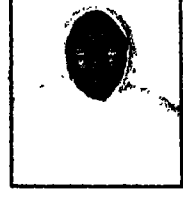
- रतनलाल तांतेड - मदनगंज

मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ कि ज्ञान, दर्शन-संयम और तप की साकार प्रतिमा परम पूज्या श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के संबंध में कुछ लिखूँ। पर मेरे मन में प्रश्न तरंगित हो रहा है कि इस महान् विभूति के सम्बन्ध में क्या लिखूँ ?

आप हमारे संघ-समाज की गौरव थीं। उत्कृष्ट चारित्र की धनी थीं। आपका जीवन सौम्यता, वत्सलता, मधुरता व सरसता जैसी दिव्य रश्मियों से ओतप्रोत था।

आपके असीम गुणों का वर्णन करना, यद्यपि मेरी शक्ति से बाहर की बात है; फिरभी नम्रता, समता, सहिष्णुता, स्वावलंबिता आदि गुण तो उनके जीवन में भरे पड़े थे। आपका दिव्य व्यक्तित्व युग-युगों तक इतिहास के पन्नों पर स्वर्णांकित रहेगा।

ऐसी महान् विभूति पूज्या दादीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में कोटि-कोटि वन्दन करते हुए हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

111. जिनशासन की श्रृंगार थीं

- लादूसिंह करनावट, मदनगंज

प.पू. सरलहृदया साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब का मन सरोवर के समान शांत, गंभीर और विशाल था। नब्बे वर्ष की वृद्धावस्था में भी बच्चों-सा उत्साह और अपार आत्मबल-मनोबल था।

आपश्री के जीवन के कण-कण में स्नेह-प्रेम व वात्सल्य भरा हुआ था।

आप हम जैसे संसारियों की डूबती नैया को स्थिर बनाने के लिए बहुत बड़ी आधारस्तंभ थीं। जिनशासन की आप सच्ची श्रृंगार थीं और आपके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता थी कि अमीर-गरीब सभी के साथ मधुर-मृदुल, सरल व्यवहार करना। मैं आपके इस व्यवहार को देखकर गद गद हो गया। अधिक क्या लिखूँ ?

पू. दादीजी महाराज के चरणों में सभक्ति, सादर वन्दन। हार्दिक श्रद्धांजलि।

112. संयमनिष्ठ जीवन

- कपिलकुमार (कीर्तिवर्धनकुमार) करनावट, मदनगंज

असीम आस्था के केन्द्र पूज्या दादीजी महाराज साहब के व्यक्तित्व से मैं अत्यधिक प्रभावित हूँ। पापा-मम्मी के साथ अनेकबार मुझे आपश्री के दर्शनों का सुअवसर प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया-आपश्री का जीवन निर्मल, विचार उदार एवं प्रकृति सरल और सरस थी।

आपका जीवन बहुत शांतिप्रिय तथा संयमनिष्ठ था। आपश्री प्रारंभ से ही उज्ज्वल चारित्रनिष्ठा की पक्षधर रहीं। आपने शारीरिक सुख-सुविधाओं को महत्त्व न देकर सदा ही कठोरता की नींव को सुदृढ़ किया।

आपने अपने तप-त्याग, ज्ञान-ध्यान एवं संयम-साधना के द्वारा न केवल स्वयं के जीवन का ही निर्माण किया, बल्कि हजारों हजार श्रद्धालुओं के जीवन में भी धर्म-भावनाओं का बीजारोपण किया था।

आपके ऐसे असीम गुणों का वर्णन मेरी लेखनी के लिए संभव नहीं है। आप जैसी महान विभूतियों से संघ-समाज सदा आलोकित रहा है। आपके जीवन से हम इतने प्रभावित हुए कि उनकी यादें हरसमय आती रहेंगी। मैं ऐसी दिव्य विभूति को कभी मन से भूल नहीं सकता।

पुन: एकबार पू. दादीजी महाराज के पावन स्मरण के साथ श्रद्धा के अक्षत भेंट अर्पित-समर्पित करता हूँ।

113. संस्कारों का बीजारोपण

- बदामबाई बरडिया, मदनगंज

परम वंदनीया गुरुणीमैया पू. दादीजी महाराज साहब ने गाँव-गाँव में भ्रमण कर जैन-जैनेतर समाज में धर्म के प्रति गहरा रूझान पैदा किया व जिनशासन के प्रति अनेक व्यक्तियों को दृढ़ तथा आस्थावान् बनाया। इतना ही नहीं, उनमें प्रात:स्मरणीय विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरि गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति जागृत की। यह कहूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आपके पारसमय स्पर्श से अनेक क्षेत्र जैसे-मदनगंज-किशनगढ़, भरतपुर आदि नगर कंचनमय हो उठे, दीप्त हो उठे।

आपने मदनगंज-किशनगढ़ निवासियों को सद्शिक्षाओं का जो उपदेशामृत पिलाया और उनमें धार्मिक संस्कारों का जो बीजारोपण किया, उसे यहाँ का समाज कभी भी भूला नहीं सकता।

मुझे दादीमाँ के श्रीचरणों में बैठने का सौभाग्य सन् 1985 के वर्षावास में मिला। उनका मातृ तुल्य वात्सल्य पाकर उठने का मन भी नहीं होता था।

कठोर संयम जीवन की घड़ियों में भी आप तनिक विचलित नहीं होती थीं। आपकी मीठी-मधुरी भाषा व स्नेह-वात्सल्य ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया। **आप मुझे मीठे शब्दों में संबोधन करतीं -''बदामबाई ! अपने को तो धर्माराधना करना और मस्त रहना। दुनियादारी के प्रपंच में नहीं पड़ना !''**

पूज्या दादीमाँ के प्रति मेरी अनन्य श्रद्धा-निष्ठा है। अन्त में इतना ही चाहती हूँ कि आपके आशीर्वाद से मेरी आराधना सुंदर ढंग से चलती रहे और अन्त समय में समाधि बनी रहें। इसी भावना के साथ मेरी प्रिय दादीमाँ के श्रीचरणों में शत-शत वंदनपूर्वक हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पण।

114. जीवन सार्थक किया

- चित्रकार - धन्नालाल कुमावत - मदनगंज, किशनगढ़ (राज.)

यह जानकर अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता हुई कि परम श्रद्धेया परम पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) महाराज साहब का स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है।

हर्ष का विषय मेरे लिए इसलिए भी है कि मेरा बचपन, पू.दादीजी महाराज साहब के सद्गृहस्थ पारिवारिक जीवन में राजगढ़ एवं वरमण्डल (म.प्र.) में कुछ वर्षों के लिए व्यतीत हुआ। आप धर्मपरायणा, देवगुरुधर्मानुरागिणी महिला थीं।

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' वाली कहावत यहाँ चरितार्थ हुई और एकदिन मोह-माया, घर-गृहस्थी का परित्याग कर अपने जीवन को सार्थक बनाने हेतु आपने श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ में भागवती प्रव्रज्या ग्रहण की। तत्पश्चात् मुझे किशनगढ़-मदनगंज (राज.) आदि अनेक स्थानों पर भी आपके श्रीचरणों में बैठकर उपदेशामृत एवं धर्मलाभ प्राप्त करने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आप में एक अनुपम आध्यात्मिक शक्ति विद्यमान थी।

हम आपके जीवन से प्रेरणा लेकर उनके बताए हुए मार्ग पर चलकर ही आपके प्रति सच्ची श्रद्धा-भक्ति प्रकट कर सकते हैं।

पुनः एकबार परम पूजनीया साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के चरणों में सश्रद्धा शत-शत वन्दन-नमन !

115. जन-जन की कण्ठहार

- उमरावसिंह मेहता-ओसवाल, मदनगंज

पू. दादीजी महाराज साहब का जीवन सर्वोच्च कोटि का था। यद्यपि उनके पावन सान्निध्य में रहने का मुझे अत्यल्प समय मिला, फिरभी मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि जो क्षण उनके सान्निध्य में बीते हैं। उन्हें मैं कभी भूला नहीं सकता। मैं आपके स्नेहपूर्ण व्यवहार को देखकर गदगद हो गया। आप जन-जन की कण्ठहार थीं।

पू. दादीजी महाराज भौतिक दृष्टि से भले ही आज हमारे बीच नहीं हैं, किंतु उनकी प्रेरणाएँ हमारा पथ प्रदर्शन करती रहेंगी।

धन्य है ऐसी महान् आत्मा पू. दादीजी महाराज को। उस महान् विभूति के चरणों में सश्रद्धा भाव-सुमन अर्पित करता हूँ।

देह भले ही छोड़ गए हैं, छोड़ न सकते यूँ ही अन्तर्मन।
विनम्र प्रणाम है दिव्यात्मा को, स्वीकार करो श्रद्धासुमन ॥

116. अलौकिक विभूति

- डॉ. राकेश भण्डारी, उदयपुर

जीवन अथाह समुद्र है। भारत की वसुन्धरा पर जीवन जीने की विभिन्न प्रकार की कला और आयाम है। कर्म है तो कर्तव्य पालन भी। सिसकती पीड़ा है तो दुर्लभ और वैभव-भरा जीवन भी है। नाथ भी है तो अनाथ भी है। बढ़ते कदम भी है तो विराम भी है। सूक्ष्म है तो विराट् भी। सब तरह के पहलू सोचने समझने के लिये इस संसार में धूप ओर छाँव के बीच विद्यमान है।

हमें समझना होगा जीवन जीने की कला और धर्म का स्वरूप। ढेरों पत्रों वाली पुस्तकों में क्या है? एक ही पहलू दर्शन और मुक्ति का मार्ग। अमिट छाप छोड़नेवाले साहित्यकार शब्दों का मायाजाल बिछाकर भले ही मोहपाश में बाँधने की क्षमता रखते हों, लेकिन वे श्रद्धा-पूजा के पात्र नहीं हो सकते। श्रद्धा के लिये चाहिये निश्छल भाव-सी सरलता। हम कैसे जी रहे हैं? अन्य कैसे जीना चाहते हैं? इसकी समीक्षा करना बहुत कठिन है। जीना तो है पर कैसे? एक ही तो बात है जीवन कैसा हो? सुन्दर हो या असुन्दर।

इसकी व्याख्या में समय की सुई बढ़ती रहती है और एकदिन स्वयं के जीवन की इहलीला ही समाप्त हो चलती है। और इस सत्य को पहचान ही नहीं पाते। इसलिये हमें सोचना होगा कि जीवन कैसा होना चाहिए?

मेरे मन में एक विचार तूफान की तरह दौड़ चला कि पूज्या भगवती दादीमाँ श्री क्या है? एक रूप देखा पूज्यवर्या दादीमाँ श्री का धीर-गम्भीर। सरलता की पराकाष्ठा थी उनमें। दादीमाँ श्री आधुनिक भौतिक युग की चकाचौंध में एक संबल, प्रेरणा के रूप में विद्यमान थी। बहुत बार दर्शनों का सुअवसर प्राप्त हुआ। बरबस यही बात मन में हिचकोले खाने लगती कि इस महामयी भद्रिक साधिका का तपोवन कैसा विचित्र और वटवृक्ष की तरह विशाल है। उनके अविरल नेत्र चलते रहते स्तुति में। कभी-कभी तो उनको देखने मात्र से ही आँसू टपक पड़ते थे। कितना सत्य भरा कठोर संकल्प। आज के युग का जीता जागता सपना। इतना नियंत्रण स्वयं पर।

सत्य यह है कि भगवती माँश्री के मन में पीड़ित मानव समाज के उद्धार के लिये बहुत से आयाम थे और उन्होंने बहुतायत रूप से बहुत कुछ किया, जिसका ब्योरा देना संभव नहीं है। उनकी सांसों में स्वर के रूप में सुनाई देता दादा गुरुदेव का स्मरण! समर्पण और इच्छाशक्ति! ये दोनों भाव हृदयस्पर्शी बने रहते दादीमाँ के श्री चरणों में। दिग्दर्शन कराती रहती थीं पीड़ित मानव सेवा के लिये। वर्तमान युग में ऐसे साधक महापुरुष विद्यमान हैं, जिन्हें पहचान पाना अत्यधिक कठिन है। जिनमें एक दिव्य विभूति परम उपकारिणी पूज्या साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी (दादीमाँ श्री) महाराज साहब थीं। जिन्होंने अपने निर्मल चारित्र से, स्वयं के आलोक से संसार को आलोकित किया। परम पूज्याश्री ने जिस दिव्यज्योति से साक्षात्कार किया है, वह आपके जीवन की साधना-आराधना एवं सहृदयता का सजीव प्रतीक है। आपश्री की सरलता असीम

शान्ति प्रदान करनेवाली थी।

ऐसी प्रज्ञा, महान् आत्मा को बार-बार नमन, श्रद्धासुमन।

कवि की कल्पना है –

"चन्दमाँ हूँ जिन्दगी की रमक छोड़ जाऊँगी।"

117. वे सम्प्रदायवाद से दूर थीं

- श्रीमती आनंद मेहता, जयपुर

परमश्रद्धेया प.पूज्या दादीजी महाराज साहब और उनकी विदुषी शिष्याओं से मेरा परिचय सर्वप्रथम करीब अट्ठारह वर्ष पूर्व किशनगढ़ की धन्य धरा पर हुआ। वहाँ आपने सन् 1985 में चातुर्मास किया था। पूरे चातुर्मास काल में मुझे सेवा, धर्माराधना, ज्ञान-तपश्चर्यादि का खूब लाभ मिला।

आपके जीवन की महत्ता के बारे में जितना सुना था, उससे भी कहीं अधिक आप में विशिष्टताएँ देखीं। आपके स्वभाव में जितनी सरलता थी, उतनी ही गंभीरता थी। आपका जीवन दिव्य एवं भव्य अलंकारों से अलंकृत था। आपके दिव्य और भव्य व्यक्तित्व से समाज सुगन्धित है। जैसे वृक्ष की शीतल छाँव में विश्राम करनेवाले राहगीर को अपूर्व शांति का अनुभव होता है, वैसे ही पूज्या दादीजी महाराज साहब के सान्निध्य में आत्मशांति मिलती थी। उनकी वाणी बड़ी मीठी थी और सदा खिलता हुआ मुखकमल था।

आपके जीवन में मृदुता, सौम्यता, सादगी आदि अनेक सद्गुण झलकते थे। संप्रदायवाद से तो आप कोसों दूर रहती थीं।

पू. दादीजी महाराज के स्वर्गवास से संघ-समाज में एक बहुत बड़ी क्षति हुई है, किंतु मुझे विश्वास है कि उनकी प्रिय पौत्रियाँ डॉ. प्रिय-सुदर्शनाश्रीजी महाराज साहब द्वय अपने सदुपदेश, शांत स्वभाव, सरल व्यवहार से समाज और धार्मिक प्रवृत्तियों में चार चाँद लगाकर उनकी मधुर स्मृतियों को हमेशा-हमेशा के लिए चिरस्थायी रखेंगी।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं दिवंगत परमश्रद्धेया पू. दादीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में श्रद्धानत होकर श्रद्धापुष्प अर्पित करती हूँ।

118. सुरम्य वाटिका का एक महकता पुष्प

- (राणु-प्रिंस) पूर्ण नाम अभिनव-अभिषेक करनावट, नई दिल्ली

हे गुरुवर्या ! तेरे गुण की गौरवगाथा,
धरती का हर जन गायेगा।
अन्य भले ही भूल जाए,
पर तुम्हें मेरा मन भूला न पायेगा॥

इस विश्व की सुन्दर और सुरम्य वाटिका में कुछ विशिष्ट आत्माएँ महकते पुष्प के रूप में अवतरित होती हैं। पू. दादीजी महाराज साहब भी उस सुरम्य वाटिका का एक महकता फूल थीं। आपकी जीवन-वाटिका में सद्गुणों के अनेक पुष्प खिले थे। उनके तप-जप, ज्ञान-ध्यान, मौन एवं स्वाध्यायादि सद्गुणों के पुष्प की सुवास चारों ओर महक उठी।

आपकी वाणी में माधुर्य था, हृदय में कोमलता थी और आपके व्यवहार में भीतर तथा बाहर किंचित् मात्र भी दुराव-छिपाव नहीं था। आप एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व की स्वामिनी थीं।

हे गुरुवर्या ! आपके काल कवलित हो जाने पर भी जन-जन के मन में आज भी आपके प्रति असीम आस्था एवं श्रद्धा की सरिता प्रवाहित हो रही है, किन्तु इस क्रूर काल ने हमारी असीम श्रद्धा की केन्द्र पू. दादीमाँ को सदा-सदा के लिए हम से विलग कर दिया।

आज भी आपके स्नेहमय आशीर्वचन हमारे मानस पटल पर उभर आते हैं तो हमारा मन पुलकित हो उठता है।

शब्दों की सीमा में मैं कैसे गीत गा पाऊँगा,
गुणगान करके केवल जिह्वा को पवित्र बनाऊँगा।
चाँदनी सी धवल कीर्ति, मिश्री सी वाणी जिनकी,
भाव-पुष्प चढ़ाकर तुम्हें मैं श्रद्धा दीप जलाऊँगा ॥

119. साधना के सजग प्रहरी

- श्रीमती प्रेमलता गोठी, मदनगंज-किशनगढ़

करुणा-वात्सल्य की साक्षात् मूर्ति, साधना के सजग प्रहरी पू. श्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के प्रथमबार पावन दर्शन का सुअवसर मुझे गुरुजन्मभूमि-भरतपुर में मिला। उस समय आपके सान्निध्य में आने का और धार्मिकज्ञान-प्रतिक्रमण सीखने आदि का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया कि पूज्याश्री बहुत ही कोमल व सरलमना थीं। उनकी सर्वाधिक विशिष्टता यह थी कि वे स्वावलंबिनी थीं। दैनिक जीवनचर्या के प्रति उनकी जो जागरूकता थी, वह अनुपम है। उनके जीवन की मधुर सुवास मेरे मन के कण-कण को आज भी सुवासित कर रही है।

आज वे हमारे मध्य नहीं रहीं, किंतु उनके तप-त्याग व संयम का उज्ज्वल प्रकाश हमारे अन्तर्चक्षुओं के सामने चमक रहा है।

मैं विश्वास करती हूँ कि उनकी मधुर स्मृति मुझे युगों तक पावन प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

120. दिव्य व्यक्तित्व की स्वामिनी

- गौतम करनावट, पटेलनगर, नयी दिल्ली

व्यक्ति का व्यक्तित्व बोलता है। जिव्हा जो नहीं कह पाती, वह सहसा कईबार व्यक्तित्व ही कह देता है। मुँह के शब्द तो सिर्फ कान ही सुनते हैं। वे हृदय तक पहुँचे या न पहुँचे, किंतु व्यक्तित्व की भाषा सीधी हृदय तक पहुँचती है। शब्द जो जिव्हा से प्रकट होते हैं, वे कृत्रिम भी हो सकते हैं; किंतु व्यक्ति का व्यक्तित्व कभी कृत्रिम नहीं होता।

सरलमना पूज्या साध्वीजी श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब का भी एक ऐसा ही भव्य व्यक्तित्व था। जिसकी भाषा बिना बोले ही हृदय को छूती थी। उनके व्यक्तित्व में एक ऐसा चुम्बकीय आकर्षण था, जो व्यक्ति को अपनी तरफ सहज ही खींच लेता था।

पू. साध्वीजी के व्यक्तित्व के साथ केवल दैहिक भव्यता का महत्त्व ही जुड़ा हुआ नहीं था, बल्कि अनेक ऐसी विशिष्टताएँ थीं, जो श्रद्धालु भक्तों को प्रभावित करके ही रहतीं। अपने पारम्परिक आदर्श के प्रति आस्था उनके व्यक्तित्व से बिन बोले ही प्रकट होती थी। आत्म-विश्वास तो उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। निराशा, उत्साहहीनता व संयमजीवन में शिथिलता तो उन्हें छू भी नहीं पाई थी। वे अपने आस-पास के वातावरण में उल्लास-उत्साह व आत्मशक्ति की महक भर दिया करती थीं।

पूज्या साध्वीजी ने जहाँ-जहाँ भी वर्षावास किया, विचरण किया, वहाँ की जनता उन्हें कभी भूला नहीं पायेंगी। वे जीवनभर अपने संयम-पथ पर अडिग आस्था के साथ बढ़ती रहीं। किसी के खुश और नाराज होने की उन्होंने कभी परवाह ही नहीं की।

यह कल्पना भी नहीं थी कि पू. साध्वीजी इसतरह अनायास ही दिवंगत हो जाएँगी। जिनशासन में एक महती क्षति हुई है, जिसकी पूर्ति संभव नहीं है। घनघोर घटाओं के बीच चमक उठी बिजली की तरह उनकी याद मन-मस्तिष्क में सदा कौंधती रहेगी।

ऐसी महान् विभूति के श्रीचरणों में सश्रद्धा नमन।

121. उऋण नहीं हो सकतीं

- सुषमा, सीमा व कविता, सूरा (राज.)

परम श्रद्धेया पू. दादीजी महराज साहब!

हम तुम्हें कैसे श्रद्धा सुमन अर्पित करें?

कलम उठाते ही आपश्री के साथ बितायी अतीत की सारी स्मृतियाँ उभर आईं एक चलचित्र की भाँति। उनका सान्निध्य इतना सुखद, सरस व मधुर रहा जो बरबस ही याद आता

रहता है आज भी। वे हमारी श्वास-श्वास में समायी हुई हैं। उनका हमारे पूरे परिवार के ऊपर काफी स्नेह व आशीर्वाद रहा। सन् 1994 में पूज्या दादीजी महाराज साहब का हमारे गाँव सूरा (राज.) में ऐतिहासिक, शानदार एवं यशस्वी वर्षावास हुआ।

चातुर्मास के वे क्षण कितने मधुर थे। काश ! एकबार पुनः हमें चातुर्मास का मौका मिलता। आपकी प्रेरणा से व आपकी ही निश्रा में हमारे साधनविहीन छोटे से गाँव में एक नहीं, दो-दो सुसंस्कार कन्या-शिविर व्यापक स्तर पर बड़े शानदार ढंग से निर्विघ्न सम्पन्न हुए। यह हमारा बहुत बड़ा सौभाग्य रहा।

परम उपकारिणी पू. दादीजी महाराज साहब के सान्निध्य में हमने बहुत कुछ सीखा है, हर दृष्टि से सीखा है। सचमुच चातुर्मास के पूर्व हम जैनाचार, श्रावकाचार, श्रमणाचार आदि धार्मिक दृष्टि से 'क' 'ख' भी नहीं जानती थीं।

पू. दादीजी महाराज साहब संध्या प्रतिक्रमण के पश्चात् काफी कुछ जीवनोपयोगी शिक्षाएँ भी देती थीं। हम पर उनका अनगिनत उपकार है। हम उस ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं।

आपके एक-एक गुण का स्मरण कर हृदय प्रसन्नता से भर जाता है। हमारे गाँव का प्रत्येक सदस्य पू. दादीजी महाराज साहब के प्रति सर्वतोभावेन श्रद्धा से समर्पित है।

अन्त में उस महान् दिव्यात्मा के श्रीचरणों में शत-शत नमन-वंदन !

122. पहाड़ टूट पड़ा

- श्रीमती विनीता अशोककुमार जैन - राजमहेन्द्री

टेलीफोन क्या मिला ? मानो सिरपर पहाड़ टूट पड़ा। मेरी तो पुण्य की डोरी ही टूट गई। सच्चाई यह है कि शायद पिताजी के जाने से भी मुझे इतना दुःख नहीं हुआ, जितना मेरी प्यारी स्नेह-वात्सल्यमयी दादीमाँ (पू. श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.) के चले जाने से हुआ। क्योंकि दादीमाँ ने मुझ पर असीम स्नेह बरसाया था। मुझे उनका बहुत सान्निध्य व सामीप्य मिला। कन्या-शिविरों के दौरान वे मुझे बहुत-बहुत हितशिक्षाएँ देती थीं। जिन्हें मैं आजीवन नहीं भूला सकती। अब ऐसी हितशिक्षाएँ कौन देगा मुझे ?

काश ! एकबार मिल लेती दादीमाँ से। अब तो इच्छा भी नहीं होती राजस्थान आने की। जब भी निराश होती तो दादीमाँ मेरे लिए रोशनी थी। उदासी के समय सुनहरी धूप थी और हर मुश्किल के लिए कुदरत की सबसे अच्छी दवा थी। अब तो वह दवा ही नहीं है तो किसके पास जाऊँ ? जालोर वर्षावास में आपके श्रीचरणों में एक-दो नहीं, पूरे पाँच-पाँच माह गुजारे ! वे कैसे भूलूँ ? इतने साल तक उनका आशीर्वाद रहा। अब किससे लूँ ? उनके स्वर्गवास से मैं मर्माहत हूँ। मैं उन्हें अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

123. बीते क्षण !

- **अजय जैन, भरतपुर**

मेरी जिन्दगी का वह सुनहरा दिन था, जिसदिन (ई. सन् 1987) परम श्रद्धेया पूज्या दादीजी महाराज साहब अपनी पद-रज से गुरु-जन्मभूमि भरतपुर नगर की धन्य धरा को पावन करने पधारी थीं । मैंने इससे पहले कभी उनके दर्शन नहीं किए थे । पता नहीं क्यों, प्रथमबार दर्शन करते ही मेरा मन स्वतः ही उनके प्रति आकर्षित हो गया ।

उनके जीवन की सर्वोपरि विशेषता थी-समता, मधुरता और सरलता । उन्होंने जैन-जैनेतर जगत् के सामने अपने सरल जीवन की जो छाप छोड़ी है, वह अमिट है ।

उन्हें न यश-प्रतिष्ठा की कामना थी, न नाम की बुभुक्षा थी और न था किसीतरह का अहंकार । उनके जीवन के कण-कण में, मन के अणु-अणु में भरा हुआ था स्नेह-प्रेम-वात्सल्य । माँ के पास हमें जो स्नेह और प्यार प्राप्त होता है, वही स्नेह और वात्सल्य हमें पूज्या दादीजी महाराज से मिलता था । आजतक हमने ऐसी गुरुवर्या को नहीं देखा ।

वास्तव में, हम सभी लोगों में धर्म-संस्कारों का बीजारोपण आपकी ही देन है । इसके पूर्व हम सभी धार्मिक क्षेत्र में एकदम अनभिज्ञ थे । यह हमारा परम सौभाग्य था कि सर्वप्रथम त्रिस्तुतिक संप्रदाय की आप ही एक ऐसी साध्वीवर्या थीं, जिन्होंने हमारे यहाँ एक नहीं, अपितु दो-दो यशस्वी व शानदार चातुर्मास सम्पन्न किए । उसके पश्चात् प्रथमबार आपकी पावन निश्रा में सिरसतीर्थ का छःरीपालित पदयात्रा संघ का भी सुंदरतम आयोजन हुआ ।

हमारे नगर के अनेकानेक व्यक्ति आपकी अमृतोपम वाणी श्रवणकर सदा के लिए आपके प्रति आस्थावान् हो गए । इतना ही नहीं, प्रथम चातुर्मास में ही (सन् 1987) पैंतीस-चालीस परिवार गुरुभक्त बन गए और उन्होंने सर्वप्रथम आपश्री के मुखारविंद से ही गुरु आम्नाय स्वीकार की । यह चातुर्मास की सबसे बड़ी उपलब्धि रही ।

मुझे भी इन दोनों चातुर्मास में आपके सान्निध्य व सामीप्य में रहने का बहुत अधिक सुअवसर मिला । जिसे मैं कभी भी भूला नहीं सकता । इन शब्दों के साथ उस महान् विभूति के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ ।

124. प्रेरणामूर्ति दादीमाँ !

- **भंवरलाल सोनमलजी कानूँगा, जालोरवाले (हैदराबाद)**

मुझे यह सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ कि प.पूज्या **"मेरी दादीमाँ"** का स्वर्गगमन हो गया । परम श्रद्धेया दादीजी महराज साहब की कठोर-संयम-साधना के कारण मैं उनसे अत्यधिक प्रभावित था । वे दिखने में बड़ी कठोर थीं, पर भीतर से बड़ी मुलायम थीं । उनकी

कथनी-करनी में कोई अन्तर नहीं था। मैं उनके अधिक संपर्क में रहा। कारण हमारे यहाँ उनके एक नहीं, दो-दो चातुर्मास हुए। मैंने उनके सारे क्रिया-कलापों को बड़ी बारीकी से देखा। उनका आत्मबल-मनोबल काफी मजबूत था। उनकी श्रमणी-जीवन की चर्या निर्दोष और निराली थी। **मेरी दादीमाँ का एक ही सिद्धान्त था 'समाज को अधिक से अधिक देना और उनसे कम-से-कम लेना'।** निरन्तर तप-जप, ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय में लीन रहना, उनकी सहज प्रवृत्ति थी। आने-जानेवाले श्रावक-श्राविकाओं को मांगलिक प्रदान करना, आत्मिक विकास के लिए प्रेरणा देना, क्रिया के प्रति अत्यन्त जागरूक रहना और स्वयं का कार्य स्वयं करना आदि उनके जीवन के विशिष्ट गुण रहे हैं। उनकी वाणी में भी अनोखा जादू था। जो भी एकबार उनके सान्निध्य में आ जाता और उनकी मीठी मिश्री-सी मधुर-मृदुल वाणी सुन लेता, तो उसके जीवन में एक विलक्षण परिवर्तन हुए बिना नहीं रहता। यह बिल्कुल यथार्थ है। चूँकि मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा, परखा और पाया है। उनका मातृवत् स्नेह-वात्सल्य स्मरण होते ही मेरा अन्तर् हृदय गद गद हो जाता है। मैं कभी उनका आदेश टाल नहीं पाता था। धन्य है उस महान् दिव्यात्मा को! मैं उस महान् विभूति के संयममय जीवन के प्रति श्रद्धान्वित हूँ और उनके श्रीचरणों में सश्रद्धा कोटि-कोटि वंदन करता हुआ हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

125. मेरी प्रिय दादीमाँ

- हस्तीमल फूलाजी कांकरिया, सूरा

बहुत दिनों से '**दादीपौत्री**' का नाम सुन रखा था। आँखें उनके दर्शनों की प्यासी थी। सूरा गाँव (राज.) में सर्वप्रथम मैंने उन सरलमति, सरलगति और सरल हृदया के दर्शन किए। आँखें अभी तक अतृप्त थीं। चाहता था कि उनके साथ वार्तालाप करके उनके वचन और हृदय की थाह ली जाय। बातचीत की शुरूआत मैंने ही की-"**दादीमाँ ! आप सुखशाता में हैं ?**" उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक प्रत्युत्तर में कहा-"**हाँ, देवगुरु धर्म की कृपा से शाता है। आपकी आराधना-साधना भी ठीक तो चल रही है न ?**" बस, फिर तो लगभग बीस-पच्चीस मिनट तक धार्मिक चर्चा होती रही। सूरा में जितने दिन विराजीं, कुछ-न-कुछ चर्चा सहजभाव से चलती रहती। इसके बाद मैं कईबार उनके दर्शन करने गया।

मेरी दादीमाँ की सरलता दिखावटी या बनावटी नहीं थी, प्रदर्शन करना तो उन्हें पसन्द ही नहीं था। उनकी सरलता हृदय के आचरण से, नम्रवाचा से भी प्रकट होती थी। ऐसा मालूम होता था कि उनकी समता, सरलता व सहिष्णुता मानो त्रिवेणी का संगम है।

ऐसी महान् विभूति के श्रीचरणों में अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

126. साधुता की सहज मस्ती

- भुवनेशकुमार जैन, भरतपुर

साधना की सशक्त साधिका, मौन तपस्विनी एवं संयम की साक्षात् प्रतिमूर्ति पू. दादीजी महाराज साहब के भरतपुर में प्रथमबार दर्शन कर मैं कृतकृत्य हुआ था। वह दिन याद आ रहा है। वह समय था सन् 1987-88 के वर्षावास का।

मेरी मम्मी के मुँह से पू. दादीमाँ की स्वभावगत विशेषताओं को सुनकर मैं श्रद्धाभिभूत हो भक्तिनत हो गया था। उनके पावन दर्शन कर मैंने यह अनुभव किया था कि आज मेरे अखण्ड सौभाग्य का दिन है, जिस परम पावन दिव्यात्मा के दर्शन कर रहा हूँ। उनके जीवन में सहज मधुरता, मृदुता और दृष्टि में वात्सल्यभाव था। उनके जीवन में विवेक की संजीदगी थी। उनमें साधुता की सहज मस्ती थी। श्रावक-श्राविका समाज पर उनका प्रभाव पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था। नब्बे वर्ष की आयु में भी आपकी वाणी में जो ओजस्विता-प्रभावोत्पादकता थी, उसके पीछे विशुद्ध साधुत्व का बल बोलता दिखाई देता था। इन सब विशिष्ट गुणों के कारण ही वे जन-जन के मन में बस गयीं। जन-जन की जिह्वा पर बस गयीं। इतना ही नहीं, **वे सारे जहाँ में 'दादीपौत्री' के नाम से प्रसिद्ध हो गईं।**

पर मेरा यह दुर्भाग्य रहा कि मैं पुनः उनके दर्शन का लाभ नहीं ले सका। भरतपुर के दर्शन ही मेरे प्रथम और अंतिम दर्शन सिद्ध हुए, किंतु मेरे हृदय के कण-कण में आज भी पू. दादीजी महाराज साहब के प्रति अपार श्रद्धा है। वे जहाँ भी हो, मेरी इस श्रद्धांजलि को स्वीकृत करें।

127. सागर सम गम्भीर जीवन

- वच्छराज मेघराज भंसाली, धाणसा

परम श्रद्धेया, परम पूज्या मोक्षपथानुगामिनी, जैन-जगत् की अनुपम शान, चिंतामणिरत्न समान दादीजी महाराज साहब के महाप्रयाण के दुःखद समाचारों से हम स्तब्ध हो गये। उनका सान्निध्य, उनका दर्शन, उनका मांगलिक व आशीर्वाद हमारे जीवन की अमिट स्मृतियाँ हैं।

मैं (मेघराज) देवलोकगमन करनेवाली पुण्यात्मा के दर्शनों के इस स्वर्णिम अवसर को खोना नहीं चाहता था। अतः बैंग्लोर से शीघ्र आकर 3 मार्च को मैंने पू. दादीजी महाराज के दर्शन-वन्दन का लाभ लिया।

पू. दादीजी महाराज साहब से चातुर्मास में कईबार वार्तालाप का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके एक-एक शब्द आज भी हमारे कानों में गूँज रहे हैं। उनकी प्रबल प्रेरणा ने मुझे (मेघराज) प्रभु-पूजा करने के लिए प्रेरित किया। उनके पुण्य प्रताप से मेरे जीवन में काफी कुछ बदलाव आया।

कैसा अद्भुत आकर्षण था उनमें। इसका वर्णन हम नहीं कर सकते। हमारे हृदय-मंदिर
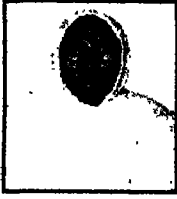
में चातुर्मास की स्मृतियाँ आज भी तरोताजा है।

धन्य है इनकी जननी !
धन्य है वह जन्मभूमि !
धन्य है इनका संयमजीवन !
धन्य है इनकी दोनों पौत्रियाँ !!

और धन्य है हमारा धाणसा श्रीसंघ जिन्हें ऐसी उत्कृष्ट चारित्रपालिका, परम तपस्विनी पूज्या दादीमाँ का पावन सान्निध्य मिला !!!

सचमुच आपका जीवन गंगा-सा निर्मल, मेरुसा उच्च, समुद्र सा गंभीर, चंद्र सा शीतल, सूर्य सा तेजस्वी, मक्खन सा कोमल और मोती सा उज्ज्वल था। इन्हीं गुणों से प्रेरित होकर पू. दादीजी महाराज साहब के बारे में दो शब्द लिखने का प्रयत्न किया है।

उस सौम्यमूर्ति ने हमारे यहाँ अन्तिम चातुर्मास कर धाणसा संघ पर महान् उपकार किया था। ऐसी उस दिव्य आत्मा के चरण-कमलों में हमारा समस्त भंसाली परिवार भावभीनी श्रद्धांजलि सर्मपित करता है।

128. निर्मल हृदय

- कांतिलाल चुन्नीलाल संघवी, धाणसा

मुझे प.पूज्या दादीजी महाराज साहब के दर्शनों का सौभाग्य सर्वप्रथम भीनमाल नगरी में प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् धाणसा वर्षावास में बहुत निकट से उन्हें देखने-परखने का अवसर मिला। मैनें उन्हें सदैव ज्ञान-ध्यान, माला-जाप, स्वाध्याय/पुस्तक वाचन में ही संलग्न पाया। उनके पास धर्म-चर्चा, नियम-संकल्प के अलावा दुनियादारी-घर-गृहस्थी की कोई बातचीत नहीं थी। उनका मधुर व्यक्तित्व, सहज, सरस, सरल वाणी सदा हम जैसे व्यक्तियों पर जादू जैसा प्रभाव डालती थी। यही कारण था कि उनके समग्र जीवन में हमें छल-कपट, छिद्रान्वेषण नहीं, अपितु निश्छल, निर्मल स्वभाव, गुणग्राहकता व समता-सहिष्णुता के दर्शन होते थे। उनके जीवन में प्राणिमात्र के प्रति कल्याण की भावना इतनी तीव्र थी कि कहीं किसी के अनिष्ट चिंतन का स्थान नहीं था।

वास्तव में इसप्रकार की महान् आत्मा संसार में विरली ही मिलेंगी। जिससे प्रेरणा पाकर हजारों नर-नारी धर्माराधना के पथ पर अग्रसर होते थे। अरे! दूसरों की क्या कहूँ? मुझे स्वयं भी दादीजी महाराज ने चातुर्मास में व चातुर्मास की पूर्णाहूति के पश्चात् दो-तीन नियम/संकल्प दिये थे, जिनका मैं पूरी दृढ़ता के साथ अद्यावधि पालन कर रहा हूँ।

इसीतरह हमारे गाँव के अनेक भाग्यशाली भाई-बहनों को जबतक वे वहाँ विराजित रहीं, अन्तिम समय तक कुछ-न-कुछ प्रतिज्ञा/संकल्प देती रहीं।

इसीलिए उर्दू में कहा गया है –

"हजारों साल नरगिस अपनी बै नूरी पर रोती है।
तब कहीं होता है एक दीदावर पैदा ॥"

यदि हम पू. दादीमाँ के संपूर्ण जीवनवृत्त को गौर से देखें तो हमें लगेगा कि उनमें संयम-पालन के प्रति कठोरता थी। साधना के प्रति अदम्य उत्साह तथा दृढ़ मनोबल था।

उन्होंने नब्बे वर्ष की अंतिम अवस्था तक कठोर संयम साधना में चुस्त रहकर चतुर्विध संघ को एक आदर्श दर्शाया था। उनका शरीर थक जाना स्वाभाविक था, किंतु उनका आत्मबल, चेहरे की प्रसन्नता, स्वावलंबिता, कार्यकुशलता व क्षमता हमें सोचने को बाध्य कर रही थी। आजतक मैंने अपने जीवन में ऐसी कठोरव्रती साध्वी को नहीं देखा। वैसे तो अनेक साधु-संतों का सान्निध्य मुझे और मेरे परिवार को प्राप्त हुआ है, किन्तु पू. दादीजी महाराज साहब में जो विशिष्टताएँ देखने को मिलीं। वे अन्यत्र दुर्लभ हैं।

अधिक क्या कहूँ ? वस्तुतः पूज्या दादीमाँ एक शिशु के समान शुद्ध और निर्मल हृदया थीं। उनके पावन दर्शन और सान्निध्य से ही परमसुख की अनुभूति होती थी।

अन्त में यही प्रार्थना करता हूँ कि स्वर्ग से भी मुझे और मेरे परिवार को आपश्री का वरद आशीर्वाद मिलता रहे और हम धर्म-क्षेत्र में सदैव अग्रसर होते रहें। इन्हीं श्रद्धा-भावों के साथ मेरी तथा वन्दना की भावभरी वन्दना स्वीकार करें।

129. रेगिस्तान वृन्दावन बन जाता था

- देशमल सांकलचंदजी भंसाली, धाणसा

परम श्रद्धेया परम पूज्या दादीजी महाराज साहब के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे धाणसा चातुर्मास में ही प्राप्त हुआ। इस अत्यल्प समय में उनके इन्द्रधनुषी बहुमुखी व्यक्तित्व की जो छाप मेरे मन पर पड़ी, वह यावज्जीवन शाश्वत रहेगी।

उन्होंने अपने संयम जीवन में निर्मल व कठोर साध्वाचार पालन को सर्वोच्च महत्त्व दिया। इसीलिए उनकी संयम-निष्ठा तथा कठोर चारित्र पालन का डंका चिहुँ दिशाओं में गूँज उठा था।

नब्बे वर्ष की आयु में भीनमाल से भीषण गर्मी में प्रस्थान कर बिना किसी वाहन/व्यवस्था के मार्ग स्थित धीरे-धीरे छोटे-छोटे गाँवों में चार-छः किलोमीटर का विहार करती हुई धाणसा पधारीं। चातुर्मास काल बड़ी प्रसन्नता एवं संतुष्टि के साथ सम्पन्न हुआ। बड़ी धूमधाम रहीं। दर्शनार्थियों का आवागमन बना रहा।

पू. दादीजी महाराज साहब ने जो व्यसनों में फंसे हुए थे, उन्हें व्यसनों से मुक्त होने का मंत्र दिया। जो अशांति और तनाव से ग्रस्त थे, उन्हें शांति और सौहार्द्र का पाठ पढ़ाया। जो निंदा-

विकथा में जीवन व्यर्थ कर रहे थे, उन्हें धर्माराधना, पूजा-पाठ, व्रत-नियम ग्रहण करने की प्रेरणाएँ दीं। उनके द्वारा प्रदत्त सामायिक-प्रतिक्रमण, प्रभुदर्शन-प्रभुपूजा, रात्रिभोजन व कंदमूल त्याग आदि की प्रेरणाएँ बेमिसाल थीं।

सचमुच पू. दादीमाँ के जहाँ कदम पड़ते थे, वहाँ तीर्थ का माहौल बन जाता था। वहाँ जंगल में भी मंगल हो जाता था। वहाँ रेगिस्तान भी वृंदावन में बदल जाता था। उनका ऐसा पुण्य प्रभाव तो अनुभव करनेवाले ही जान पाते। वास्तव में उनके जीवन का प्रत्येक कोना हीरे की तरह चमक रहा था।

पू. दादीजी महाराज के संपर्क-सान्निध्य व दर्शन से मेरे जीवन में धर्म के प्रति लगन पैदा हुई और मेरे जीवन में एक नया मोड़ आया। जहाँ मैं मंदिर की सीढियाँ भी नहीं चढ़ता था, वहाँ उनकी पावन प्रेरणा से प्रभु-पूजा का नित्यक्रम सा बन गया।

आपका जीवन मेरे लिए प्रेरणा स्रोत था, है और रहेगा। आपश्री के पुण्य प्रताप से ही मैं धर्म-मार्ग पर आगे बढ़ा और अब यही चाहता हूँ कि आप जहाँ कहीं भी हों, वहाँ से मेरा पथ-प्रशस्त करती रहें।

अन्त में मैं व मेरा परिवार उस प्रेरणापुंज दादीमाँ के श्रीचरणों में सश्रद्धा भाव-पुष्प समर्पित करता है।

130. आडम्बररहित जीवन

- सोमतमल सुरेशकुमार दोसी, भीनमाल

प.पू. सरलहृदया साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब ने अपने यशस्वी व गरिमामय जीवन के नब्बे वर्ष, तीनमाह और ग्यारह दिन पूर्ण किए। शताब्दी वर्ष में प्रवेश किया ही था अभी।

एक तो जन सामान्य का दीर्घायु को स्पर्श कर पाना ही सहज संभव नहीं है। कदाचित् कोई भाग्यशाली इतनी लम्बी उम्र प्राप्त भी कर ले, तथापि इस आयु में इतनी सक्रियता, जागरूकता, शारीरिक एवं मानसिक रूप से ऐसी पूर्ण आरोग्यता-निरोगता की उपलब्धि असंभव नहीं, तो दुर्लभ अवश्य है, किंतु यह महान् उपलब्धि पू. दादीजी महाराज साहब में अंतिम समय तक पाई गयी।

मुझे आपका सान्निध्य बहुत मिला। वृद्धावस्था के कारण भीनमाल श्रीसंघ के अत्याग्रह से आप हमारे यहाँ सन् 1996 से 1998 तक तीन वर्ष विराजमान रहीं। इसके पूर्व सन् 1992 में भी आपका यहाँ ऐतिहासिक तथा गरिमापूर्ण चातुर्मास हुआ। इतना ही नहीं, हमारे यहाँ आपकी प्रेरणा व पावन निश्रा में श्री शंखेश्वरजी, गोड़ीजी व महावीरजी मंदिर के विशाल प्रांगण में व्यापक स्तर पर लगभग पाँच-छः धार्मिक सम्यग्ज्ञान कन्या-शिविरों का अति सुन्दर आयोजन हुआ। यह भीनमाल श्रीसंघ का परम सौभाग्य रहा।

आपकी सरलता, निरभिमानिता व सादगी का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। आप में आडम्बर का सर्वथा अभाव था। न कभी तपश्चर्या का प्रदर्शन किया, न कभी त्याग का और न किया कभी चर्या का दिखावा।

मैं जब-जब आपके श्रीचरणों में पहुँचा। हरपल, हरक्षण प्रसन्न मुद्रा में ही पाया। व्यर्थ बात नहीं, निरर्थक बकवाद नहीं और समय की बर्बादी नहीं। जब भी देखा स्वाध्याय, माला, स्तोत्र वांचन, माँगलिक प्रदान आदि अपनी श्रमणी जीवनोचित दैनन्दिनी चर्या में व्यस्त! मस्त और स्वस्थ! उनपचास वर्ष की सुदीर्घ कठोर संयम अवधि में निरंतर अप्रमत्तदशा में विचरण करती हुई स्व एवं परमार्थ के कार्यों में प्रवृत्त रहीं।

आपका पथ-प्रदर्शन मेरे लिए सदा प्रेरणादायी बना रहे और अधिकाधिक धर्म-मार्ग पर आगे बढ़ता रहूँ। इन्हीं भावों के साथ आपके श्रीचरणों में मेरा और मेरे परिवार का कोटि-कोटि वंदन-नमन।

131. सरल प्रकृति उत्तम चरित्र

- अनिलकुमार जैन, भरतपुर

परम पूज्या दादीजी महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब ने दो चातुर्मास भरतपुर शहर में किये थे। पूज्या साध्वीजी महाराज साहब की सरल प्रकृति उत्तम चरित्र की अनूठी साधना के बारे में जितना लिखा जाये उतना कम है। ऐसे सच्चे साधु-साध्वी संसार में विरले ही होते हैं। जो कुछ मुँह से कहती थीं, उसे कहने से पहले अपने आप पर अमल में लाती थीं। वृद्धावस्था में ऐसा साहस, दृढ़निश्चय, शान्त स्वभाव, हमेशा स्वाध्याय में लीन रहना, उनकी विशेषताएँ थीं। उनके जीवन की विशेषताएँ देखकर ऐसा लगता था कि वे कोई साधारण आत्मा नहीं, बल्कि वे एक महान् आत्मा थीं। आप हमें समय-समय पर दोहों के माध्यम से उपदेश का पीयूषपान कराती थीं। यथा –

सत्ता, संस्था, सम्पदा, आफत की जड़ तीन।
साधु अगर इन से बचे, होगा निज में लीन॥
कर लो मंगल आचरण, छोड़ स्वार्थ अरु अर्थ।
यही मंगलाचरण है, शेष सभी है व्यर्थ॥
पूजा मानव की नहीं, मानवता की होय।
मानवता ही महान् है, मानी मानव रोय॥
सुगुरुचरण तो छू लिया, तू ने कई बार।
एकबार आचरण को, छू लो तो भव-पार॥

संयम के बिन कर्म का-बंधन बंद न होय ।
याते संयम को धरो, जीवन कुंदन होय ॥
संयम ही मम अन्न हो, संयम ही मम पान ।
संयम ही मम प्राण हो, दो प्रभु यह वरदान ॥
पागल को अरु साधु को, धन-तृण एक समान।
गोठी मूरख ही करे, धन का मोह महान ॥
संत बिना भव-अंत और नहीं मिले सत पंथ ।
संत समागम सब करो, पाओ पद अरिहंत ॥
निर्मल चारित्र के बिना, पूज्य न होता कोय ।
भले काग बैठे शिखर, पूज्य कभी ना होय ॥
कथनी बिन करनी करे, ज्ञानीजन दिन-रात ।
निज बढ़ाई नहीं करें, जैसे मुँह के दांत ॥

आप हमें यह भी समझाती थीं कि –

"संयम का पालन कठिन जरूर है, पर असम्भव नहीं ।"

प्राय: हम यह मजबूरी जाहिर करते हैं कि काफी कोशिश करने के बाद भी नियम/संयम का पालन नहीं कर पाते हैं। बात उनकी गलत नहीं है। नियम/संयम का पालन करना, वास्तव में आसान काम नहीं है।

लेकिन यदि हम एकबार मन में ठान लें कि नियम/संयम का पालन करना ही है। इसमें कोई समझौता नहीं करना है, आलस्य या लापरवाही नहीं करना है; क्योंकि यह हमारे ही भले के लिए है। दरअसल मन में चाह हो तो राह भी मिल ही जाती है। हम चाहे तो क्या नहीं कर सकते हैं ? यदि हम चाहे ही नहीं और यह बहाना बनाएँ कि क्या करें नियम-संयम निभ ही नहीं पाता तो यह बात पक्की है कि आप चाहते ही नहीं है। यदि हम मन पर विवेक का नियन्त्रण रखें तो निश्चित रूप से हम जो चाहें सो कर सकते हैं, किन्तु हमने अपने मन की अधीनता स्वीकार कर ली; विवेक से काम न लेकर मन के गुलाम हो गये तो फिर वह नहीं कर सकेंगे जो हम करना चाहते हैं, बल्कि वही करेंगे जो हमारा मन करना चाहेगा। फिर हम अपने मालिक नहीं, बल्कि मन हमारा मालिक हो गया और हम मन के गुलाम हो गये हैं। गुलाम हो कर कोई सुखी नहीं हो सकता, फिर भले ही यह गुलामी मन की ही क्यों न हो ? इसलिए हमें विवेक, धैर्य और साहस से काम ले कर मन को अपने वश में रखकर और मन से चाहे कि नियम-संयम का पालन हर हालत में करना ही है तो हमें यह अनुभव हो जाएगा कि यह काम कठिन जरूर है, पर असम्भव कदापि नहीं है।"

मैं उस महान् की दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

132. संयम साधना में समर्पित जीवन

- सुखराज कबदी (धाणसा निवासी), बम्बई

स्वर्गीया परम पूज्या श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) महाराज साहब ! वैसे आपके दर्शन-वंदन का लाभ मुझे समय समय पर मिलता रहा, लेकिन आपको निकटता से जानने-देखने का मौका धाणसा चातुर्मास के दरम्यान मुझे मिला।

संयम-साधना समर्पित !

आप तप, त्याग, ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय, संयम-साधना में पूर्णरूप से समर्पित थीं। धाणसा से हम ससंघ चातुर्मास विनती के लिए भीनमाल आए और प.पू. आचार्यदेवेश राष्ट्रसंत श्रीमद् विजय जयंतसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब की आज्ञा से चातुर्मास की जय बुलाई गयी। भीनमाल से धाणसा के लिए विहार की तैयारी हुई तो **आपकी शारीरिक स्थिति देखते हुए मैंने कहा-"साहेबजी ! आपकी उम्र अधिक है और शरीर बहुत कमजोर है। विहार में बहुत तकलीफ होगी। मैं पू. आचार्यदेवेशश्री से मिलकर आपके लिए डोली की अनुमति ले आऊँ ?" मगर दादीजी महाराज साहब ने साफ कह दिया-"सुखराजजी ! यदि रोज दो-तीन किलो मीटर का भी विहार होगा, मैं करूँगी, लेकिन जीवन-पर्यंत डोली में नहीं बैठूँगी।"**

गुरु के प्रति समर्पित भाव एवं त्याग !

आपने संयम-जीवन के दौरान कैसी भी बीमारी में दवाई का सेवन नहीं किया। धाणसा चातुर्मास पूर्णाहूति के बाद आपकी शारीरिक स्थिति को देखकर मैंने कहा-दादीजी ! आप और कोई दवाई नहीं लेवें, मगर यहाँ वैद्यराजजी हैं और आयुर्वेदिक दवाई के अच्छे जानकार हैं। मैं उनको बुलाऊँ। वे शक्तिवर्धक दवाई देंगे, ताकि उसके सेवन से आपके शरीर में कुछ ताकत रहेगी। **मगर दादीजी ने साफ शब्दों में अपनी शिष्या को बुलाकर कह दिया-"मुझे कितनी भी तकलीफ हो, चाहे कुछ भी हो जाये, सुखराजजी ! आप भी सुन लो ! मुझे किसी तरह की कोई दवाई नहीं दी जाये, यह मेरा आदेश है।" उनपचास वर्ष संयमी-जीवन के और नब्बे साल की उम्र, कितना आत्म विश्वास ! "मेरी अन्तिम एक इच्छा है-मेरे गुरु के दर्शन हो जावे" । "जैसी गुरुवर्या थी वैसी शिष्या थी"।** आपकी गुरुणीजी शासनदीपिका पू. श्रीमुक्तिश्रीजी महाराज साहब को समाचार भेजा गया। शिष्या के प्रति प्रेम-भाव उमड़ पड़ा और पचहत्तर साल की उम्र में भी उग्र विहार कर आप धाणसा पहुँचीं। दर्शन-वंदन लिए। पूरा दिन साथ रहें। वार्तालाप हुआ और शाम आठ बजते-बजते आप नवकार-स्मरण करती हुई देवलोक सिधार गयीं। **यह था उनका संयम, गुरु और जिनशासन के प्रति समर्पित भाव एवं त्याग !**

पूज्या गुरुवर्याश्री के जीवन से प्रेरणा लेकर हम अपने जीवन में कुछ उतारें, यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। वे प्रेरणा-स्रोत थीं। ऐसी महान् आत्मा को शत-शत वन्दन।

133. व्यसनमुक्ति की प्रेरिका

- चेलमल भलाजी बंदामुथा-गंटूर

प. श्रद्धेया परम पूज्या दादीजी महाराज साहब के विशेष सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे धाणसा चातुर्मास में ही प्राप्त हुआ। **पू. दादीमाँ ! मैं आपके बारे में क्या लिखूँ ? आप तो अमूल्य गुणों का भण्डार थीं।** अत्यल्प समय में आपके महान् व्यक्तित्व की जो छाप मेरे मानस पर पड़ी, वह '**यावच्चन्द्र दिवाकरौ**' शाश्वत रहेगी। आपकी स्मृतियाँ, आपके प्रत्येक शब्द बरबस ही दिल को झकझोर देते हैं।

आपकी वाणी में गजब का जादू था। आपकी छोटी-से-छोटी हितशिक्षा भी खूब असर करती थी। चातुर्मास प्रवेश से लेकर आपने महाप्रयाण करने के तीन दिन पूर्व तक प्रेरणा देकर धाणसा के कई व्यक्तियों की जीवन दिशा ही बदल दी। जिन्होंने अपने जीवन में न किये कभी परमात्मा के दर्शन ! न की कभी प्रभु-पूजा। ना गिनी माला, न की सामायिक, न ही छोड़ा रात्रिभोजन और ना ही छोड़ा प्याज-लहसुन ? ऐसे व्यक्तियों को नियम दिलवा कर सन्मार्ग पर लगाया।

इतना ही नहीं, आपने अपनी मधुर वाणी के द्वारा अनेक व्यक्तियों की बीड़ी-सिगरेट तम्बाखू आदि व्यसनात्मक चीजें भी छुड़वा दीं। इसतरह आपश्री हम सभी भूले-भटकें जीवनराहियों को मार्गदर्शन देती रहीं।

अन्त में यही विनती है कि मुझे व मेरे परिवार को ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि धर्म-पथ पर उत्तरोत्तर हमारी श्रद्धा बढ़ती रहें। पूज्या दादीमाँ के श्रीचरणों में भावपूर्वक नमन करते हुए असीम आस्था के साथ श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ।

134. यथा नाम तथा गुण

- मुथा घेवरचंद लादाजी, हैदराबाद

परम श्रद्धेया परम पूजनीया दादीजी महाराज साहब का संपूर्ण व्यक्तित्व गुणों से ओतप्रोत था। आपके जीवन का हर क्षेत्र ज्ञान की रोशनी से जगमगा रहा था। जहाँ तक मैंने देखा व अनुभव किया है-आप निरभिमानिनी थीं। आपके जीवन में छल-प्रपंच-दंभ व लोभ-लालच को कहीं कोई स्थान नहीं था। **'आए उसका भी भला और नहीं आए उसका भी भला', 'दे उसका भी भला और न दे उसका भी भला'**। इससे प्रतीत होता है कि उनका अन्तर्हृदय कितना निश्छल-निर्मल व पवित्र था। उनके अन्तर्मानस में सभी के प्रति हित की मंगलकामना थी।

'यथा नाम तथा गुण' की उक्ति के अनुसार ही आप महान् प्रभावशालिनी थीं। **जालोर जिले का बच्चा-बच्चा आपको 'दादीपौत्री' के नाम से ही जानता था और आज भी**

यही पहचान बनी हुई है। कठोर संयम-साधना की तो आप साक्षात् मूर्ति थीं। वृद्धावस्था में भी इतना तप-त्याग, प्रतिदिन एकासना, स्वावलंबिता, अद्भुत दृढ़ता आदि गुण आपके अलावा मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखें ? आपश्री के गुणों के बारे में जितना कहा जाय, उतना कम है। आपके दर्शनों का सौभाग्य मुझे धाणसा चातुर्मास में मिला और तभी आपके सान्निध्य में रहकर कुछ सीखने-समझने को भी मिला। इतना ही नहीं, बल्कि आपश्री की प्रेरणा व प्रभाव से ही मैंने व मेरे परिवार के सदस्यों ने अट्ठाई जैसी तपश्चर्या भी निर्विघ्न सानंद-सोल्लास की। चातुर्मास के वे सुखद क्षण आज भी स्मृति-पटल पर अंकित हैं। आपश्री की कठोर संयम-साधना से मैं अत्यधिक प्रभावित हूँ।

मैं उस महान् विभूति के श्रीचरणों में सभक्ति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

135. गुण-निधि दादीमाँ

-जेठमल नेनमलजी बंदामुथा, बैंगलोर

परम श्रद्धेया गुरुवर्या श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब का समग्र जीवन गरिमामय रहा है। आप सद्गुणों की महासागर थीं। मुझ में इतनी शक्ति कहाँ कि मैं शब्दों द्वारा आपश्री का गुणगान कर सकूँ ?

विशेषरूप से आपश्री के दर्शनों का सौभाग्य मुझे धाणसा वर्षावास में मिला ! आपके गुणों का जितना उत्कीर्तन किया जाय, उतना ही कम है। जैसे रत्नाकर के रत्नों का पार नहीं पाया जा सकता, वैसे ही आपके सद्गुणों का पार नहीं पाया जा सकता।

आपश्री का व्यवहार बहुत ही शालीन था। आपश्री आत्मीयता और स्नेह की प्रतिमूर्ति थीं। **आपश्री का जीवन कैसा था ? यह तो एक उर्दू शायर के शब्दों से भलीभाँति जाना जा सकता है –**

"होके मायूस तेरे दरसे कोई खाली न गया।
मुरादें मिल गई कोई सवाली न गया ॥

देखता हूँ अब कहाँ है वह ममतामयी स्नेह-वात्सल्यमूर्ति दादीमाँ ? अन्त में उस स्वर्गस्थ महान् दिव्यात्मा के चरण सरोजों में सश्रद्धा शत-शत वन्दन-नमन !

जैसे बाँध (पूल) जल धाराओं को पार करने में सहायक बनता है। वैसे ही यम-नियम अपने को संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिये साधनभूत हैं।

136. विरल व्यक्तित्व की धनी

- मुथा चंपालाल हजारीमलजी, बैंगलोर

समता, सरलता व संयम की प्रतिमूर्ति प.पू. श्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब ने अपनी शिष्याओं के साथ धाणसानगर में वर्षावास में विराजकर तप-त्याग आदि विविध धार्मिक अनुष्ठानों का जो अनूठा वातावरण निर्मित किया था, वह सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।

राजस्थान की धन्य धरा भीनमाल नगरी से नब्बे वर्ष की आयु में बिना किसी वाहन और व्यवस्था के पदयात्रा कर आपका हमारे नगर में पदार्पण हुआ और यशस्वी वर्षावास पूर्ण करने के पश्चात् तीन माह ग्यारह दिन स्थिरता करके यहाँ से सदा-सदा के लिए विदा हो गईं।

पूरे वर्षावास में उन्होंने आध्यात्मिक पावन गंगा को प्रवाहित किया। वैसे तो यहाँ अनेक चातुर्मास हुए हैं, परन्तु पू. दादीमाँ ने जो धर्माराधना का अलख जगाया था, वह कुछ और ही था। धाणसा श्रीसंघ ने आपका वर्षावास करवाकर यह सुयश अर्जित किया।

विरल व्यक्तित्व की धनी साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज का जीवन समता, सरलता, सहिष्णुता और स्वावलम्बिता से ओत-प्रोत था।

जितने लोग उनके निकट सम्पर्क में आये, उन्हें पू. दादीमाँ के आत्मीयतापूर्ण चरित्र का परिचय प्राप्त हुआ। बाहर की तरह उनका अन्तर भी उतना ही धवल और पवित्र था।

मैं उस रत्नत्रय आराधिका पू. दादीमाँ को अपने आन्तरिक श्रद्धा-पुष्प अर्पित करते हुए शत-शत नमन करता हूँ।

137. मोहक व्यक्तित्व

- चंपालाल भूरमलजी संघवी - मुंबई

परम पूज्या दादीजी महाराज साहब ने बड़प्पन का कभी अभिमान नहीं किया था। उनके जीवन में जो कुछ था, वह सहज था। वहाँ दिखावे और प्रदर्शन के लिए कुछ नहीं था। मैंने जीवन के कुछ क्षण उनके सान्निध्य में व्यतीत किए हैं। उनके जीवन के अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जो मुझे प्रमाद और आलस्य के क्षणों में प्रेरणा तो प्रदान करते ही हैं, साथ ही जीवन को समुज्ज्वल बनाने का पाठ भी पढ़ाते हैं।

उनका व्यवहार प्रत्येक मनुष्य के साथ चाहे वह छोटा हो या बड़ा समान रहता था। इसीलिए युवा, वृद्ध, बाल-सभी उनके दर्शन-वंदन कर अपूर्व आनंद की अनुभूति करते थे।

उनमें बालक-सी निश्छलता, कर्मठ युवक-सी कार्यदृढ़ता और समुद्र-सी गंभीरता थी। अपने तप-त्याग वैराग्यमूलक व्यक्तित्व से आप बरबस ही सभी के मन को मोह लेती थीं। उनके तपःपूर्ण शरीर पर संयम का सौन्दर्य था। चेहरे पर निःसीम शांति थी और थी वात्सल्य व

मधुरता। अनर्गल बातचीत-गपशप, निंदा-विकथा उन्हें कत्तई पसंद नहीं थी। खुशामदियों के मीठे वचन उन्हें डिगा नहीं सकते थे। उनके जीवन में निःस्पृहता का सागर लहराता था। वे अपने संयमी-जीवन के प्रति पूर्ण वफादार थीं। पू. दादीजी महाराज साहब के ऐसे दिव्य व्यक्तित्व से संघ-समाज गौरवान्वित हैं। उस पावन व्यक्तित्व के प्रति मैं श्रद्धान्वित हूँ।
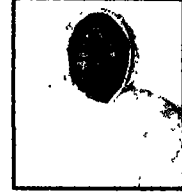
138. क्षमामूर्ति थीं

- भंवरलाल जामताजी बंदामुथा - मुंबई

अध्यात्म साधिका परम श्रद्धेया पू. श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब वास्तव में क्षमामूर्ति थीं। उनकी मुझ पर अपार कृपा रही। वे अपने हृदय की निर्मलता, मन की विराट्ता और स्नेह की सरसता के कारण जन-जन की प्रिय हो गयी थीं। आप जैसी महान् विभूति को पाकर मैं गौरवान्वित हो गया। आपके दर्शन मात्र से मुझे अपूर्व शांति मिलती थी।

आपकी मधुरवाणी में सुधा बरसती थी और आपका तेजस्वी मुखकमल सदैव खिला हुआ रहता था। आपके व्यक्तित्व के बारे में अधिक क्या कहूँ? फिर भी इतना जरूर कहूँगा कि आप मालवमाटी में जन्मीं। मोहनखेड़ातीर्थ में दीक्षित हुई और मरुधर माटी धाणसा में स्वर्ग सिधारीं, लेकिन मालवा से भी ज्यादा आप राजस्थान (पूर्वांचल व पश्चिमाँचल) में '**दादीपौत्री**' **के नाम से प्रसिद्ध हुईं।**

ऐसी महान् पुण्यात्मा के पुनीत चरण-कमलों में अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अन्तर्मन एक अमाप्य हर्ष की अनुभूति कर रहा है।

139. अर्पित श्रद्धा-सुमन

- नगराज तोलाजी बंदामुथा, थाने (महाराष्ट्र)

"**मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्**"-यह आदर्श परम श्रद्धेया प.पूज्या श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब का जीवन व्यवहार बन गया था। त्याग, तप, मौन, अनुशासन और क्षमा उनके प्रधान आभूषण थे। मैंने देखा उनके हृदय में अनुपम उदारता, भावों में गंभीरता और वाणी में मधुरता थी।

मैं उनकी सीधी-सरल-सहज सुमधुर वाणी से अत्यधिक प्रभावित था। उनके जीवन की मधुर सुवास मेरे मन के कण-कण को आज भी सुवासित कर रही है।

आज वे पार्थिव रूप में हमारे सम्मुख नहीं रही हैं, परंतु सद्गुणों के आदर्श के रूप में आज भी वे हमारे समक्ष ही हैं।

ऐसी महान् दिव्य विभूति के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रभु से यही प्रार्थना है कि मुझे एवं मेरे परिवार को उनके बताए हुए पथ पर चलते रहने की प्रेरणा मिलती रहें।

140. दिव्य श्रद्धा-मूर्ति

- जुगराज जामताजी बंदामुथा, चैन्नई

मेरे हृदय मंदिर की दिव्य श्रद्धामूर्ति परमश्रद्धेया पू. दादीजी महाराज साहब के प्रति मन में जो अनन्य आस्था समायी हुई है, उसे शब्दों में बाँध पाना बड़ा कठिन है।

पू. दादीजी महाराज अत्यन्त साधनाशील एवं अनुशासनप्रिय थीं। उनका व्यक्तित्व हिमगिरि से भी ऊँचा था तो उनका चिंतन सागर से भी अधिक गंभीर था। उनकी सरलता और असीम कृपादृष्टि को मैं कभी नहीं भूल सकता। पर्वाधिराज श्री पर्यूषण महापर्व के दरम्यान आपकी अमृतोपम प्रेरणा से प्रभावित होकर हमारे घर में बड़े भाई सा. के अतिरिक्त परिवार के सभी सदस्यों ने निर्विघ्न अट्ठाई की तपश्चर्या की थी। वह स्मृति आज भी दिल-दिमाग में तरोताजा है। आपके एक-एक गुण का स्मरण कर हृदय पुलकित हो उठता है। उस महान् दिव्यात्मा के श्रीचरणों में अन्तर्मन से श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

141. स्मरणीय बन गये चातुर्मास

- सुमेरचंद जैन, भरतपुर

पूज्या दादीजी महाराज साहब के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन करते हुए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें और उनके दिये हुए उपदेशों को समाज अपने जीवन में उतारें।

सर्वप्रथम मैं सियाणा (राज.) जिला जालोर में एक दीक्षार्थी बहिन की दीक्षा महोत्सव में एक दर्शनार्थी के रूप में भरतपुर से गया था। वहीं पर मैंने परम पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब के समक्ष पू. महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के दर्शन किये। बड़ा ही शान्त स्वभाव था। मेरे मन में उसी दिन से यह धारणा बनी कि इन '**दादीपौत्री महाराज साहब**' का भरतपुर में चातुर्मास कराया जाय। जबकि मैं स्वयं वर्षभर में कभी-कभार मंदिर जाकर दर्शन करता था। धर्म के प्रति इतनी लगन नहीं थी। मगर पूज्याश्री के दर्शन करने के बाद कुछ परिवर्तन आया। इतने लम्बे अर्से के बाद भावों में परिवर्तन होने से कुछ करने की मन में धारणा बन गई।

इसी क्रम में परम पूज्यपाद राष्ट्रसंत आचार्य भगवन्तश्री विहार करके झाबुआ (म.प्र.)

पधारे। मालूम होते ही भरतपुर श्रीसंघ की मीटिंग की गई। मैं स्वयं परम पूज्या दादीमाँ श्री के चातुर्मास की विनती व स्वीकृति लेने हेतु झाबुआ गया। प.पूज्यपाद आचार्य भगवंतश्री ने भरतपुर वर्षावास की स्वीकृति सहर्ष प्रदान कर हम भरतपुरवासियों पर महती कृपा की। प.पू. दादीमाँ ने सियाणा से भरतपुर की ओर प्रस्थान किया। भरतपुरवासियों का यह प्रबल पुण्योदय था कि पू. दादीजी महाराज का अपनी शिष्याओं के साथ प्रथम बार गुरु-जन्मभूमि भरतपुर की पावन धरा पर शुभ वेला में पदार्पण हुआ।
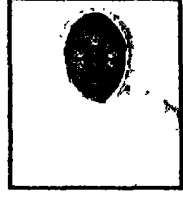
चातुर्मास बड़े ही हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। काफी धर्म-आराधनाएँ हुईं। पू. साध्वीजी महाराज साहब के सान्निध्य में काफी महिलाएँ धर्म के प्रति अग्रसर हुईं। भरतपुर में तीन सौ श्वेताम्बर परिवारों में से पैंतीस-चालीस परिवारों ने परम पूज्या दादीजी महाराज साहब से गुरु आम्नाय (श्री राजेन्द्रसूरि गुरुगच्छ के प्रति) विधिवत् ग्रहण की और चातुर्मास उपरान्त आसपास के क्षेत्र में विचरण किया। तत्पश्चात् उन्हीं की प्रेरणा व पावन निश्रा में भरतपुर से सिरस तीर्थ का प्रथमबार छ:रीपालित पैदल-यात्रा संघ का सुन्दर आयोजन हुआ था।

दूसरा चातुर्मास भी भरतपुर में होना तय हुआ। भरतपुर के इतिहास में इन दो वर्षों में इतनी धर्माराधनाएँ हुईं जो पहले कभी नहीं हुईं। **प.पू. राष्ट्रसंत आचार्य भगवन्तश्री की सुप्रेरणा से भरतपुर में गुरु-जन्मभूमि श्री राजेन्द्रसूरिकीर्तिमंदिरतीर्थ हेतु पूर्व में पाँच बीघा जमीन क्रय की गई थी। तत्पश्चात् पू. दादीजी महाराज साहब के ही प्रयास से गुरु-जन्मभूमि हेतु नौ बीघा और जमीन क्रय की गई। अधिक जमीन क्रय करने हेतु पू. दादीजी महाराज साहब की प्रेरणा से इनकी दोनों सुशिष्याओं डॉ. प्रियसुदर्शना श्रीजी म. ने उड़द के आयम्बिल करने का कड़ा अभिग्रह लिया और निरन्तर छह महीने तक आयंबिल करती रहीं। तत्पश्चात् पू. राष्ट्रसंत आचार्य भगवन्तश्री ने उनके अभिग्रह को समझकर जमीन ज्यादा क्रय करने का आदेश दिया।**

भरतपुर के भाई-बहिनों में धर्म के प्रति जो जिज्ञासा बढ़ी है, रूचि पैदा हुई है, यह सब आपकी ही महती कृपा का सुफल है।

मैं अल्पमति आपश्री के बारे में क्या लिखूँ? आपश्री के विषय में जितना भी लिखा जावे थोड़ा है। इस क्षेत्र में जो भी आपश्री के संपर्क में आया, उसके मानस पटल पर अमिट छाप पड़ी। मैं जीवन भर आपके उपकारों को नहीं भूल सकता।

इन्हीं पूज्याश्री की कृपा से सभी आनन्द है। इन्हीं की प्रेरणा से मैंने समस्त तीर्थों की वंदना की तथा अन्य को भी करवायी और इन्हीं का आशीर्वाद हमेशा रहा है और रहेगा।

अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अंतरा।

बिना पूछे व्यर्थ ही किसी के बीच में नहीं बोलना चाहिए।

142. प्रसन्नमना दादीमाँ

- राजेन्द्रकुमार जैन, कुक्षी

हमारे यहाँ ईस्वी सन् 1979 में परम श्रद्धेया प्रसन्नमना पूज्या दादीजी महाराज साहब का चातुर्मास हुआ था। उस समय आपको सन्निकटता से देखने-परखने का अवसर मिला था। उसके बाद अनेकबार आपके दर्शनों का सौभाग्य मिलता रहा।

आप समय-समय पर हमें सद्शिक्षा देती रहीं। वे बहुत कम बोलती थीं। मैंने कभी उन्हें उग्र होते नहीं देखा। आपश्री का व्यक्तित्व इन्द्रधनुष के विविध रंगों की तरह मनमोहक और दिलचस्प था। वे मन से पवित्र थीं। हृदय से सरल थीं। व्यवहार से मधुर थीं और आचार से दृढ़ थीं। सदा प्रसन्न रहना आपकी निजी विशिष्टता थी। मीठी वाणी बोलना और कोमल व्यवहार करना उनका सहज स्वभाव था। किसी की निन्दा करना और खुशामद करना उन्हें पसन्द नहीं था। जो भी उनके परिचय में आता वह उनका होकर लौटता। देव-गुरु के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। निःसन्देह वे महान् थीं। आपके सुंदर- सुगंधित जीवन-पुष्प की तरह मैं भी अपने को बना सकूँ। ऐसी शक्ति प्रदान करें।

मेरी ओर से उन्हें बार-बार नमन।

143. श्रद्धा-सुमन

- प्रेमचंद जैन अटारीवाले, सेवर-भरतपुर

परम श्रद्धेया परमपूज्या दादीजी महाराज के निधन का दुःखद समाचार मिला। मन को आघात लगा, पर प्रकृति के आगे हमारा कोई जोर नहीं।

परम कृपालु वीर परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें सद्गति एवं आत्म-शांति प्रदान करें।

प.पू. दादीमाँ के स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशन के स्वर्णिम अवसर पर हम सभी धर्मानुरागी गुरुभक्त श्रावकगण स्वर्गस्थ पुण्यात्मा श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के चरण-कमलों में श्रद्धावनत होकर श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं।

आक की रूइ की तरह हल्के और मूढ लोग भयरूपी वायु के प्रचण्ड झोंके के साथ आकाश में उड़ते हैं, जबकि ज्ञान की शक्ति से परिपुष्ट सशक्त महापुरुषों का एकाध रोंगटा भी नहीं फड़कता।

144. जिनशासन के अनुरूप व्यक्तित्व
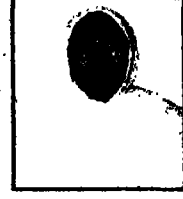
- माँगीलाल पेराजमलजी, गंटूर

साधु-साध्वी भगवन्त के जीवन का मूल लक्ष्य और मंजिल यही है कि जिनाज्ञा-अनुरूप संयम जीवन जीते हुये कर्मों की निर्जरा द्वारा परमपद की प्राप्ति। दुर्भाग्यवश, आज कुछ अपवादों को छोड़कर साधु-साध्वी भगवन्त के जीवन का यही ढर्रा बन गया है कि प्रभावशाली ढंग से व्याख्यान सुनाना एवं पड़िलेहन, प्रतिक्रमण, गौचरी आदि आवश्यक क्रियायें करना। कहीं-कहीं तो आवश्यक क्रियायें भी गौण होने लगी हैं। बस, मजेदार व्याख्यान प्रभावी ढंग से सुना दिया और संघ में चारों तरफ शाबाशी मिलने लगती है। करनी की तरफ कोई ध्यान नहीं और निर्जरा का तो कोई नामोनिशान नहीं। ज्यादातर भक्त साधु-साध्वी भगवन्त को सही बात सुनाने में हिचकते हैं और चापलूसी द्वारा अपना तुच्छ स्वार्थ साधने में लगे हुए हैं।

ऐसे वातावरण में पूज्या दादीजी महाराज साहब का संयमी जीवन अपने मूल लक्ष्य को समर्पित था। उनकी कथनी ओर करनी में कोई अंतर नहीं था। जीवन के अंतिम पल तक न कोई दवाई ली या न किसी साधन का सहारा लिया। मुझे याद आता है वह दिन जब आपने, मोदरा से भीमपुरा स्टेशन जो करीब सात किलोमीटर दूर है, जाने के लिये विहार किया, पर लगभग तीन-चार किलोमीटर जाते ही दादी महाराज साहब ने पाया कि वे आगे जाने में असमर्थ हैं। हमने साधन की व्यवस्था के लिये बहुत कहा, परन्तु दादीजी महाराज साहब नहीं मानी और जंगल में एक वृक्ष के नीचे शेष दिन-रात बिताई। उनका आत्म विश्वास, धैर्य देखते ही बनता था।

उनके निर्दोष संयमी जीवन का ही प्रभाव था कि संपर्क में आने वाले उनकी एक ही बात पर रात्रिभोजन, बीड़ी-सिगरेट, ताश-खेलने आदि का त्याग एवं नवकारशी आदि व्रत सहज रूप से ले लेते थे। मैंने तो जब भी देखा ध्यान में मगन रहते देखा। कभी कोई निंदा-विकथा, कोई आलतू-फालतू बात नहीं। आपके उत्कृष्ट चारित्रिक जीवन का ही प्रभाव था जो आपको समाधिमरण मिला। वह भी मन के अनुरूप, अपनी गुरुवर्या पूज्या प्रवर्तिनी श्रीमुक्तिश्रीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में। पूज्या मुक्तिश्रीजी म. सा. विहार करते हुये सुबह धाणसा पधारीं और शाम को दादीजी महाराज साहब स्वर्गगमन कर गयीं।

उनके प्रति हमारी सच्ची, श्रद्धांजलि यही होगी कि कथनी ओर करनी में समानता रखते हुए हम उनके द्वारा बताये मार्ग पर चलकर परम पद की तरफ कदम बढ़ायें! उस महान् आत्मा के चरणों में शत-शत नमन।

(आजकल साधु-साध्वी भगवन्तों की जीवन चर्या देख कर मेरे मन में जो भाव आये हैं वह मैंने व्यक्त किये हैं।)

145. श्रद्धा-पुष्प

- श्री जैन श्वेताम्बर सकल श्री संघ, कुक्षी (म.प्र.)

परम पूज्या दादीजी महाराज साहब के कालधर्म प्राप्ति के समाचार पाकर अतिवेदना हुई। सब कुछ कितना शीघ्र हुआ, कल्पना से परे था। उनके दोनों चातुर्मास की स्मृतियाँ परत दर परत खुलती सी चली गईं।

उनश्री का आचार-विचार एवं व्यवहार आदि निश्चित ही अनुमोदनीय था।

आप दोनों ने भी सेवा के क्षेत्र में जो कीर्तिमान बनाया, उसका सानी मिलना भी दुर्लभ है। उनश्री ने आप दोनों के रूप में संघ को एक थाती सौंपी है। उनकी कमी निश्चित रूप से सबको खलनेवाली है तथा संघ के लिए तो यह एक अपूरणीय क्षति है। स्वर्गारोहण पर दिव्य आत्मा की पावन स्मृति में कुक्षी श्रीसंघ ने स्मृति-समारोह व उत्सव का आयोजन रखा था।

धार्मिक पाठशाला व सामूहिक आरती कुक्षी नगर में उनकी पावन धरोहर के रूप में पहचानी जावेगी। श्रीसंघ कुक्षी की ओर से इस अवसर पर हार्दिक वेदना व्यक्त करते हुए जिनेश्वर प्रभु से हमारी मंगल प्रार्थना है कि उस महान् आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करें। हम उस दिव्य विभूति के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

146. तप-त्याग की साकार प्रतिमा

- महेशचंद जैन-प्राध्यापक, इन्दिरानगर, भरतपुर

प.पूजनीया साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब की चतुर्थ पुण्यतिथि पर हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके तप-त्याग के बारे में दो शब्द लिखने के लिए उद्यत हुआ हूँ। यद्यपि मेरा यह प्रयास सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा, क्योंकि पू. दादीजी महाराज साहब के तप-त्याग का बखान करना इतना आसान नहीं है; लेकिन मेरा उद्देश्य उनके त्याग-तपश्चर्या से प्रेरणा लेने का है। हम उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्तकर अपने जीवन को सफल एवं निर्मल बना सकते हैं।

न जाने कितने श्रद्धालु भक्तों एवं उनकी सुशिष्याओं को उनके तप-त्यागादि प्रवृत्ति से जीवन को निर्मल बनाने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। इसकी झलक परम विदुषी डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म.सा. एवं. डॉ. सुदर्शनाश्रीजी म.सा. में देखने को मिलती है। जिन्होंने उनके तप व त्याग की श्रृंखला को प्रज्वलित रखा है।

वास्तव में पू. दादीजी महाराज साहब ने आम जनता को भी '**सादा जीवन, उच्च विचार**' की भावना से ओतप्रोत किया।

अंत में मैं इतना ही कहूँगा कि आपके महान् गुणों को अभिव्यक्त करने में मेरी लेखनी असमर्थ है। सौरभ की तरह केवल अनुभूत किया जा सकता है। आपका पावन और यशस्वी

जीवन संघ-समाज एवं हमारे लिए प्रेरणा का अक्षय स्रोत था और है।

हमारी पूजनीया दादीजी महाराज साहब को सच्ची श्रद्धांजलि तभी होगी, जब हम उनके तप व त्याग की भावना को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करें।

उस महान् आत्मा के श्रीचरणों में शत-शत नमन !
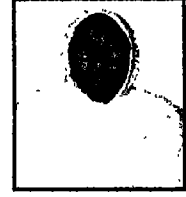
147. संयमी जीवन का सौरभ

- पुखराज करनावट, मदनगंज

किसी ने सच कहा है :

"गंगा पाय शशी ताप, दैन्य कल्पतरुस्तथा।
पाप ताप च दैव्यं च, हरेत् साधु समागमः॥"

पाप दूर करना हो तो गंगा है। ताप दूर करना हो तो चन्द्रमा है और निर्धनता दूर करनी हो तो कल्पतरू है, परन्तु यदि पाप-ताप व संताप इन त्रिविध को दूर करना हो तो साधु-संतों का समागम है। वास्तव में साधु-संतों का दर्शन व समागम मंगलकारक होता है। उनका दर्शन कल्याणकारी होता है।

विगत अनेक वर्षों से आपको समीप से देखने का अवसर मिला। आप में सहिष्णुता, सादगी, विनय-सेवा, ज्ञान-ध्यान, मधुरभाषिता आदि अनेक सद्गुण स्वाभाविक रूप में विद्यमान थे। अपनी सहजता के कारण आप समाज की प्रेरणास्रोत थीं। आप अध्यात्म साधिका थीं। साधनामय जीवन के कण्टकों को समताभाव से सहन करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते रहना आपके जीवन की मुख्य विशिष्टता थी।

आपने संघ, समाज को अपने संयम जीवन की सौरभ से लाभान्वित किया।

ऐसी महान् आत्मा के पावन चरणों में श्रद्धा सुमन समर्पण !

148. हमारी प्रेरणा थीं वो

- सतीश जैन मईवाले, भरतपुर-इन्दिरा नगर

आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने कहा है -

थोवाहारो थोवभणिओ, जो होइ थोवनिद्दो य।
थोवोवहि उवगरणो, तस्स हु देवा वि नमंसंति॥

जो साधक थोड़ा खाता है, थोड़ा बोलता है, थोड़ी नींद लेता है और थोड़े ही उपकरणादि सामग्री रखता है; उसे देवता भी नमन करते हैं।

पूज्या दादीजी महाराज साहब के जीवन में ये सारी बातें देखने को मिलती थीं।

मेरा यह दुर्भाग्य रहा है कि मुझे पूज्या दादीजी महाराज साहब का सान्निध्य व सम्पर्क नहीं मिल पाया, पर मैंने यहाँ सभी लोगों के मुँह से आपकी खूब महिमा सुनी है। सभी श्रावक-श्राविका गण कहते हैं कि वे काफी शिक्षाप्रद बातें बताती थीं। हमारे हृदय में उन्होंने धर्म एवं विवेक-ज्योति जलाई है। आप अपनी संयम साधना के प्रति सजग थीं। हमारे भरतपुर में आपके दो चातुर्मास हुए और श्रद्धालु गुरुभक्तों ने खूब धर्मलाभ लिया।

आप एक उच्चकोटि की साधिका थीं और साधना के उच्चतम आदर्शों को प्राप्त करना आपके जीवन का मुख्य लक्ष्य था।

उनके पावन चरणों में भावांजलि अर्पित करता हूँ।

"जानेवाले कभी नहीं आते, जानेवाले की याद आती है।
होती है चाह जिनकी धरापर, प्रभु भी उन्हें बुलाते हैं॥"

काश! मुझे भी आपका पावन सान्निध्य मिला होता। दादीमाँ! आप जहाँ भी विराजित हो, वहाँ से सदा हमें मार्ग-दर्शन प्रदान करती रहें।

149. सरसता का स्रोत

- अ.भा. श्री राजेन्द्र जैन महिला परिषद, कुक्षी (म.प्र.)

हमारी आस्था के केन्द्र परम श्रद्धेया साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पूज्या दादीजी) महाराज साहब संघ-समाज की महान् साधिका थीं। आपके जीवन में अनेक दुर्लभ विशिष्टताएँ थीं, जिसे हम लिपिबद्ध करने में अक्षम हैं। आपकी चारित्रनिष्ठा पर हम सभी को गौरव है।

आप 'यथा नाम तथा गुण' की धारिका थीं। आप आकृति व प्रकृति दोनों से सुन्दर थीं।

जैनधर्म तप-त्यागप्रधान धर्म है। अज्ञान से सम्यग्ज्ञान की ओर, भौतिकता से अध्यात्म की ओर तथा राग से त्याग की ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करता है। यही कारण है कि जैन श्रमण-श्रमणी भगवन्त अपने जीवन को तप-त्याग की सौरभ से महका रहे हैं।

स्थानांग सूत्र में चार प्रकार के पुष्पों का वर्णन आया है -

- **कुछ पुष्प दिखने में सुन्दर दिखाई देते हैं, परन्तु उनमें सौरभ का अभाव होता है।**
- **कुछ पुष्प दिखने में सुन्दर नहीं होते हैं, पर उनमें सुगन्ध विद्यमान होती है।**
- **कुछ पुष्पों में न तो सुगन्ध होती है, और न दिखने में ही सुन्दर होते हैं।**
- **इसके विपरीत कुछ पुष्प ऐसे भी होते हैं, जो दिखने में भी सुन्दर होते हैं और सौरभ से भरपूर होते हैं। हमारी पू. दादीजी महाराज साहब उस चतुर्थ पुष्प की भाँति थीं। आपका जीवन विविध गुणों से सम्पन्न था।**

सन् 1979 में आपने हमारे यहाँ चातुर्मास किया था। उसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है।

आपने कुक्षी वर्षावास में जो धर्म का बीज बोया था, वह फल-फूल गया। आपका आठ माह का सतत सान्निध्य हमें चातुर्मास के दौरान प्राप्त हुआ और आपके व्यक्तित्व से हम इतनी प्रभावित हुई कि आज भी वह स्नेहमूर्ति जब-जब भी हमारी आँखों के समक्ष तैरती है और हमारा मन श्रद्धा से नत हो उठता है।

आपने हमें सत्य-मार्ग पर चलना सिखाया। कुक्षी महिला परिषद, आपका ऋणी रहेगा।

आपके दिल में हमेशा मैत्रीभाव का झरना बहता था। जैसे मिष्टान्न में जितना गुड़ और घी डालो उतना ही वह मीठा और पौष्टिक बनता है। उसमें जितनी कमी रहेगी माल उतना ही कम स्वादिष्ट होगा। आपका जीवन भी माल-मिष्टान्न से किसीप्रकार कम नहीं था। आपके जीवन में शुद्ध-संयम का घी एवं मधुर वचनों का गुड़ इतनी अधिक मात्रा में था कि उनका जीवन सब तरह से समृद्ध विकसित और प्रिय बना, सभी के लिए आनंदप्रद बना।

आपका अन्तर्हृदय ममतामयी माँ के समान था। उनके पावन सान्निध्य को पाकर असीम शान्ति एवं वत्सलता का अनुभव होता था। इस वात्सल्य की धारा में अवगाहन कर हम अपने आपको धन्य मानती हैं।

2 मार्च 2004 को किशनगढ़-मदनगंज पहुँचने पर हमें (कुक्षी महिलापरिषद) पता लगा कि पूज्या श्रमणीद्वय डो. प्रियदर्शनाश्रीजी म.सा. एवं डो. सुदर्शनाश्रीजी म.सा. को प्रस्तुत स्मृति-ग्रन्थ का लेखन-कार्य शीघ्र पूर्ण करने हेतु चार माह से अखण्ड मौन-साधना चल रही है। साथ ही उनका यह कठोर अभिग्रह था कि यदि 1 मार्च 2004 तक स्मृति-ग्रन्थ का लेखन-कार्य पूर्ण नहीं होगा तो आयम्बिल प्रारंभ करेंगी। उसीके फलस्वरूप पूज्या गुरु वर्या दादीजी महाराज साहब के प्रति सर्वात्मना समर्पित होकर यह अनूठा उपहार पाठकों के सम्मुख रखा। अन्त में हम शासनदेव से प्रार्थना करती हैं कि पू. दादीमाँ हमें सन्मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा देती रहें और हमारे अणु-अणु में धर्म की भावना बढ़ती रहें।

इन्ही भावों के साथ शत-शत नमन।

150. समर्पित है श्रद्धा-सुमन

- मुमुक्षु कुमारी सविता जैन, कुक्षी (म.प्र.)

परम श्रद्धेया पूजनीया दादीजी महाराज साहब का उत्कृष्ट जीवन एक छाया चित्र की तरह से प्रतीत होता है। विनय, विवेक, अनुशासन, संयम-नियम एवं मौनव्रत उनके जीवन के अभिन्न अंग थे। जिसप्रकार रवि-रश्मियाँ अपने आलोक से सबको प्रकाशित कर देती है, उसीप्रकार उनकी तप-त्याग की ज्योति से हमारी आत्मा में एक अनूठा प्रकाश जगमगाता है।

आपका हृदय फूल-सा कोमल तथा साधना-पथ पर वज्र सा कठोर भी था। आपकी वाणी में जादू-सा चमत्कार था। आपकी दिव्यवाणी ने मुझ जैसी अबोध बाला को भी धर्म की

ओर प्रेरित किया। आपने मेरी मम्मी जैसी अज्ञान अबोध पर जो उपकार किया, उसे हम जन्म-जन्मान्तर में कभी भी नहीं भूल पाएँगी।

आपका हृदय विशाल था, जिसमें सब के लिए समान स्थान था। मुझे आपके साधनामय जीवन को निकटता से देखने का सौभाग्य मिला। आपका जीवन कृत्रिमता एवं औपचारिकता को छू नहीं पाया।

कष्ट सहिष्णुता, नम्रता, स्वावलंबिता आदि गुणों की निधि थीं आप। लगता है ये सद्‌गुण आपको माँ वजीदेवी ने जन्म घुट्टी के समय ही वसीयत में दे दिये हों ?

आपके द्वारा कुक्षी वर्षावास में जो धर्मप्रभावनाएँ सम्पन्न हुईं, उसे हम कभी भी भूला नहीं सकते। बड़ा ही प्रभावशाली वर्षावास रहा। मेरे मन में आपके प्रति जो हार्दिक श्रद्धाभाव है, वह न वाणी का विषय है और न लेखनी का।

ऐसी दिव्यात्मा के श्रीचरणों में श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए शत-शत नमन !

151. प्रभावी व्यक्तित्व

- देवीलाल भागचंद जैन, भरतपुर

हमारे भरतपुर संघ का परम सौभाग्य रहा कि सन् 1987-88 में परम श्रद्धेया पूज्या दादीजी महाराज साहब के दो चातुर्मास प्राप्त हुए। इन दोनों चातुर्मासों में धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। आपके ही प्रताप व प्रभाव से यहाँ के सभी लोग धर्म से जुड़े, धर्माराधना करना सीखें। पूज्यपाद दादागुरु श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी को जानने-पहचानने व मानने लगे।

इन चातुर्मासों में मुझे भी यथासमय सत्संग प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दो वर्षावासों के लम्बे समय तक सम्पर्क में रहकर मैंने पाया कि आप भीतर बाहर से एकदम सरल थीं। आपकी वाणी में ओज-तेज व माधुर्य था। यही कारण था कि आपके शब्द श्रोताओं के हृदय पर सीधा प्रभाव डालते थे।

आपका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। आत्मीयता से ओतप्रोत था। सभी के लिए पथ-प्रदर्शक था। आपका हृदय बहुत ही उदार, वात्सल्यमय, करुणा, प्रेम एवं सहानुभूति से सराबोर था।

आपका जीवन स्फटिकमणि के समान सदैव तेजस्वी व ओजस्वी बना रहा। आपकी संयम-साधना भी अनूठी थी, जिसमें कठोरता के साथ उज्ज्वलता भी बनी रहती थी।

आपने भौतिक देह को त्याग दिया है, किन्तु आपकी कठोर संयम-साधना की यादें स्मृति-पटल पर हरक्षण उभरती और हमें प्रेरित करती रहेंगी।

वीर-प्रसूता भूमि भरतपुर में प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद दादागुरुदेव श्रीमद राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. का जो भव्यतम तीर्थ बन रहा है, वह प.पूज्यपाद राष्ट्रसंत तीर्थप्रभावक वर्तमानाचार्यदेवेश श्रीमद विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब की सुप्रेरणा एवं साध्वीरत्ना पू. दादीजी महाराज साहब की तपस्या व सद्‌प्रयासों का ही परिणाम (मीठा फल) है। उससमय (चातुर्मास 1987-88 में) पू. दादीजी महाराज

साहब की प्रबल प्रेरणा से उनकी सुशिष्या साध्वीरत्ना डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी म. ने जो निरंतर छह माह तक उड़द के आयंबिल किये थे और हम लोगों (समाज) को बहुत ही बाद में मालूम हुआ था कि आपकी तपस्या इतनी कठोर किसलिए चल रही है ? कठोर अभिग्रह के फलस्वरूप गुरु-जन्मभूमि हेतु नव बीघा जमीन क्रय की गई ।

कुछ विभूतियाँ ऐसी होती हैं जो यहाँ से चले जाने के बाद भी अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ जाती हैं । उस पुण्यात्मा के प्रति श्रद्धा-सुमन सर्मर्पित करके मैं अपने आपको गौरवशाली मानता हूँ।

152. सादा जीवन, उच्च विचार

- श्रीमति कंचन-मूलचंद कावेड़ी, भीनमाल (राज.)

परम पूजनीया दादीजी महाराज साहब '**सादा जीवन एवं उच्च विचार**' की मूर्तिमन्त स्वरूप थी। कई बार आपके सान्निध्य में रहने का सुअवसर मिला। भीनमाल वर्षावास में अति निकट से आपको देखा। पाया कि आपके जीवन में तड़क-भड़क कुछ नहीं थी। न थी उनके पास विदेशी चीजें और न थीं कीमती वस्तुएँ। न सेलवाली घड़ी, न जापानी पेन, न कीमती वस्त्र और न धातु का कीमती चश्मा ! उनके पास थे - बस, सामान्य वस्त्र, साधारण फ्रेमवाला चश्मा, स्वाध्याय-वाचन के लिए कुछ पुस्तकें ।

खान-पान (गौचरी-पानी) ! खान-पान की क्या बात कहूँ ? जिन्होंने न कभी चटपटे मसालेदार पदार्थ चखे। ना लिए कोई फ्रुट्स एवं ड्राइफ्रुट्स और ना कभी लिया स्वाद ! रूखा-सूखा जो भी जैसा भी मिल गया रोटी-दाल, साग और दूध। बस, यही गौचरी थी पू. दादीजी महाराज साहब की और वह भी केवल एकसमय ।

वाणी ! वाणी के बारे में क्या कहूँ ? एकदम सीधी-सरल, निश्छल-निर्मल, मीठी और वह भी नपी-तुली साध्वाचार के अनुरूप बोलती थीं।

अपनी निर्मल संयम-साधना और पुरूषार्थ के बल पर आप जैनशासन की उज्ज्वल दीपिका बन गयीं। उन्हें पाकर मैंने धन्यता का अनुभव किया। जिन्होंने मुझे माँ के तुल्य वात्सल्य दिया। आपकी हमारे परिवार पर असीम कृपा रही है।

पाँच दशक तक उत्कृष्ट चारित्र का पालन करते हुए पू. दादीजी महाराज साहब ने ग्रामानुग्राम बिना किसी वाहन और व्यवस्था के पैदल विहार कर जन-जन तक प्रभु महावीर के संदेशों को पहुँचाया। भूली-भटकी जनता को धर्म की ओर प्रेरित किया।

वास्तव में उनका व्यक्तित्व आदर्श एवं अलौकिक था। संसार के समस्त अवरोधों को विजित करती हुई स्वाध्याय, तप-जप आदि की दैनन्दिनी चर्या में प्रतिदिन की भाँति लीन रहती हुई आपने वि.सं. २०५६ की फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन धर्मनगरी धाणसा (राज.) में चिरमौन धारणकर महाप्रयाण कर दिया।

आज पू. दादीजी महाराज साहब पार्थिव देह से इस जहाँ में नहीं हैं, पर उनका यशस्वी

जीवन तो सदैव जीवन्त रहनेवाला है। उनके व्यक्तित्व को कोई भी विस्मृत नहीं कर सकता है। उनका यशस्वी व्यक्तित्व हमारा संबल बनकर सदा मार्गदर्शन करता रहेगा। उनके निर्मल विचार एवं उन्नायक सद्कार्य सदैव हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। उनके आदर्शों पर चलकर हम उनकी स्मृतियों को चिरंजीव बनाएँ। यही हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि एवं सच्ची भक्ति होगी।

अंत में प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि दिवंगत आत्मा जहाँ भी हो, चिरशांति प्राप्त करें। इन शब्दों के साथ उस दिव्य ज्योति को शत-शत नमन !

153. शीतल व्यक्तित्व की धनी

- प्रेमचंद सतीशचंद्र जैन एवं श्यामलाल-सतीशचंद्र जैन, भरतपुर

चंदनं शीतलं लोके, चंदनादपि चन्द्रमा।
चंद्रचंदनयोर्मध्ये, शीतला साधु संगतिः॥

संसार में चंदन शीतल माना जाता है, परंतु चंद्रमा चंदन से भी अधिक शीतल होता है। चंदन और चंद्रमा की शीतलता से भी अधिक शीतल साधु संतों की संगति होती है। कबीर के शब्दों में साधु जीवन की गरिमा को देखिए –

तीर्थ में फल एक है, संत मिले फल चार।
सद्गुरु मिले अनेक फल, कहे कबीर विचार॥

शास्त्रों में साधु-संगति-को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। चंदन के समान शीतल व्यक्तित्व की धनी सरलमना पूजनीया साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब से हमारा प्रथम समागम सन् 1987 में भरतपुर हुआ। उस समय न हमें ज्ञान था, न हमें समझ थी, पर आपने हम जैसे अबोध को, अज्ञान-अंधकार में भटकते हुए को, सन्मार्ग बतलाया, सुसंस्कार दिए और धार्मिक भावना जगायी। यही नहीं, आपने भरतपुर, किशनगढ़ आदि ऐसे क्षेत्रों में विचरण किया, जो जैन होकर भी धर्म से बहुत दूर थे। वहाँ उन्होंने उनके हृदय में भी धर्म का बीजारोपण किया। आपका पूरा जीवन धर्म प्रभावना के लिए समर्पित था। अपने जीवन के अंतिम क्षण तक वे धर्मसाधना में प्रवृत्त रहीं।

आपकी चर्या का तो कहना ही क्या ? आपके कठोर चारित्र जीवन को निकटता से देखने का सौभाग्य मिला। ऐसी महान् दादीजी महाराज साहब के दर्शन कर हम कृतकृत्य हो गये। हम सोच भी नहीं सकते थे कि इतनी कठोर साधना करनेवाली एक महान् साध्वी हमारे बीच आएगी और जो हमारे जीवन में इतनी जागृति, चेतना और परिवर्तन लाएगी।

हमारे धन्य भाग्य कि हमने उनके दर्शन किए और उनके सान्निध्य में रहकर उपदेश सुनने का लाभ भी उठाया।

पू. दादीजी महाराज साहब ! आप जहाँ भी विराजमान हो, वहाँ से आशीर्वाद प्रदान

करती रहें। आपका वरद हस्त सदा-सर्वदा के लिए भरतपुर श्रीसंघ एवं हम पर बना रहे। इन्हीं भावों के साथ आपके श्रीचरणों में शत-शत वन्दन-नमन!
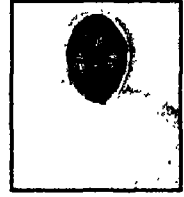
154. चुम्बकीय व्यक्तित्व

- माणकलाल पारिख, आलोट (म.प्र.)

साधु-संत किसी एक राष्ट्र, एक प्रान्त, एक जाति की सम्पत्ति नहीं, अपितु विश्व की अमूल्य सम्पदा होती है। साधु-संतों की दीर्घकालीन परम्परा की मणिमुक्ता की एक दिव्य कड़ी थी परम श्रद्धेया पूजनीया साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब।

करीब तेवीस वर्ष पूर्व आपका चातुर्मास हमारे यहाँ हुआ था। उससमय आपको निकट से देखने का अवसर मिला। प.पू. दादीजी महाराज साहब के साथ मेरा कई बार वार्तालाप हुआ। मैंने देखा है उनका समझाने का तरीका अति सरल था। उनकी भाषा एकदम सीधी, सरल और सहज थी। उसमें कृत्रिमता का कहीं नामोनिशान नहीं था। उनकी वाणी का इतना प्रभाव था कि जब कभी कोई बात कहतीं तो सीधे गले के नीचे उतर जाती थी।

फूलों-सी कोमलता, फलों-सी मिठास, हिमालय-सी ऊँचाई, समुद्र-सी गहराई, धरती-सी सहनशीलता, वज्र-सी कठोरता, बच्चे-सी निश्छलता, जल-सी निर्मलतादि यह सब एकसाथ प्रत्येक मानव में पाना महादुर्लभ है, किन्तु पू. दादीजी महाराज साहब के व्यक्तित्व में ये सब सद्गुण एक साथ देखने को मिलते थे।

कम शब्दों में अधिक कह देना आपका विशिष्ट गुण था। आपने अपने जीवन में दोहरे व्यक्तित्व को आश्रय न देकर बाहर और भीतर यथार्थ जीवन जिया। जिसमें न कहीं बनावट थी, न कहीं दिखावट थी। न कहीं सजावट थी, बल्कि आचारदृढ़ता की कसावट थी। यही कारण था कि आपके सम्पर्क में आनेवाला चुम्बक की भाँति प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित होकर आप से तरावट प्राप्त करता था। ऐसा था आपका दिव्य व भव्य व्यक्तित्व।

मैं धन्य हूँ कि मुझे ऐसी दृढ़ता की प्रतिमूर्ति दादीजी महाराज के दर्शन एवं सम्पर्क का लाभ मिला। वास्तव में दादीजी महाराज की संयम साधना इतनी उच्चकोटि की थी कि जिसपर हम सभी गर्व कर सकते हैं। आपके जीवन का प्रत्येक पृष्ठ इतना उज्ज्वल है कि प्रत्येक व्यक्ति आपके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो उठता है।

आपकी विदुषी दोनों पौत्रियाँ डॉ. प्रिय-सुदर्शनाश्रीजी म.सा. आपके संयम-पथ का अनुसरण कर जिनशासन की जाहोजलाली कर रही हैं। चातुर्मास में जालोर दुर्ग पर मैं साध्वी द्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्रीजी महाराज के दर्शनार्थ गया तो पाया कि आप दोनों चारमाह के लिए जप-तप, ध्यान-स्वाध्यायादि में तल्लीन रहती हुई अखण्ड मौन साधना में दत्तैक चित्त थीं।

आज आप भले ही हमारे मध्य नहीं हैं, किन्तु उनकी पावन दुआएँ, उनकी संघ हितैषी प्रेरणाएँ हमारे साथ हैं। उनकी दुआओं की शक्ति का संबल लेकर हम सभी धर्ममार्ग पर आगे बढ़ें। यही उस महान् विभूति के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। मेरा व मेरे परिवार का शत-शत नमन!

पद्य विभाग

1. सम्बोधन किन शब्दों में करूँ तुम्हें ?

- साध्वी डॉ. प्रियसुदर्शनाश्री द्वय

दादीमाँ कहूँ या तुम्हें गुरुणीमैया या वजीमाँ की दुलारी ।
कठोर कहूँ या फूल-सी कोमल या जिनशासन की उजियारी ॥
समता कहूँ या तुम्हें सरलता, या सहिष्णुता की गंगोत्री ।
तप-त्यागमूर्ति कहूँ या तुम्हें संयम-साधिका या रस विजेत्री ! ॥१॥

चाँद-सी शीतल कहूँ या तुम्हें धैर्यगिरि, या गुण-रत्नाकर ।
क्षमामूर्ति कहूँ या तुम्हें ज्ञान-ज्योति, या सुप्रेरक भास्कर ॥
उपकारिणी कहूँ या तुम्हें सौम्यमूर्ति, या रत्नत्रयदात्री ।
प्रेरणास्रोत कहूँ या तुम्हें तपोपुँज, या जीवननिर्मात्री ॥२॥

अप्रमत्त कहूँ या तुम्हें दृढ़संकल्पी, या मम तारणहार ।
गंगा-सी निर्मल कहूँ या तुम्हें मोती-सी उज्जवल या जीवनाधार ॥
हितैषिणी कहूँ या तुम्हें विवेकी, या सागर-सी गंभीर ।
गुण-निधि कहूँ या तुम्हें अनासक्त, या मेरुगिरि सम धीर ॥३॥

साहसी कहूँ या तुम्हें दृढ़ मनोबली, या जीवन-पथ-ज्योति ।
वात्सल्यमयी माँ ! क्यों छोड़ गयी, पौत्रियों को विलखती रोती ? ॥
ममतामयी गुरुणीमैया ! विरह-व्यथा तुम्हारी सताती ।
बार-बार करूँ सुमिरण, प्रतिपल याद तुम्हारी आती ॥४॥

मेरे जीवन-दीप की तुम ही थीं, स्नेह-करुणामय-बाती ।
ज्ञान-सुधारस पिलाकर, संयम के झूले में सदा झूलाती ॥
उपकार तेरे याद आते ही स्मृति-पटल पर छा जाती ।
सम्बोधन किन शब्दों में करूँ तुम्हें ? कुछ समझ न पाती ॥५॥

जो पढ़ने-पढ़ानेवाले हैं तथा जो शास्त्रों का केवल चिन्तन करनेवाले हैं। वे सब पठनव्यसनी एवं मूर्ख हैं। वास्तविक पण्डित तो वही है, जो पठन-पाठनादि के अनुसार क्रिया (आचरण) करता है।

साध्वीरत्ना प्रशांतभावरसिका
महाप्रभाश्रीजी स्मरणाञ्जलि

2. अष्टपदिका

- डॉ. सोहनलाल पटनी, सिरोही (राज.)

फाल्गुन वदि एकादशी,
पंचम पहर अभिराम ।
महाप्रभा मुगते गया,
महाविदेह विसराम ॥१॥

हेत श्री हित काम कियो,
कर पूरण मन काम ।
महाप्रभाजी विदा हुवा,
बैठ गोद गुरु धाम ॥२॥

फाल्गुन वदि द्वादशी दुजि,
शुक्रवार धाणसा नगर,
महाप्रभा ज्योति मिल्या,
सकल संघ सिणगार ॥३॥

सूरि जयन्त आज्ञा धरी,
माथे नित हित काम ।
सुप्रिय दर्शन दोय दिया,
गुरुराजेन्द्र धन नाम ॥४॥

पचास बरस पूरा किया,
संयम पथ धर पांव ।
नवति बरस शोभा करी,
जैन धरम री छांव ॥५॥

नगर धाणसे जगधणी,
शांतिनाथ दरबार ।
पूजाविधि पूरण करी,
सकल संघ श्रीकार ॥६॥

महाप्रभाजी ऊजला,
ऊजलो रख व्यवहार ।
सरलमना तप त्याग धन,
जिन शरणं जयकार ॥७॥

महाप्रभाजी अमर हुआ,
आतम नित्य उजास ।
याददाश्त, ओलख रहे,
दर्शन करो प्रयास ॥८॥

3. चिन्मय आराधिका

– भागचन्द जैन, किशनगढ़

वात्सल्यमयी दादीमाँ शत शत नमन
समता, सरलता की प्रतिमूर्ति
अर्पित है श्रद्धा सुमन ।
संयम वय: तप: स्थविरा साध्वीरत्ना
जप-तप में लीन प्रतिदिन
स्मृति-पटल पर रहेंगे अंकित स्नेह भरे नयन ।
संयम भरा व्यक्तित्व, अद्भुत थी सहनशीलता
भक्ति-सेवा व समर्पण की त्रिवेणी थी प्रवाहित
जीवन के प्रांगण में खिले थे रंग बिरंगे प्रसून ।
नियमितता में था अटूट विश्वास
जन-जन के मन-मन्दिर में दीप्त था
कथनी-करनी के साम्य का सकून ।
साधुत्व से परिभाषित था आपका जीवन
आस्था व दृढ़ता के जलते दीप
देते थे किरण नित नूतन नवीन ।
जिन शासन की सतत-जलती मशाल
अंधियारे गलियारों में करती प्रकाश
सचमुच माँ ! आप थीं महान् ।
आप प्रमुखा थीं शिष्याएँ बहुतेरी
नहीं बताया, नहीं जताया, स्वावलम्बन की चेरी
जितना गायें उतना कम है, ऊँची तेरी शान ।
मान नहीं मनुहार नहीं, मुस्कान रहती थी चेहरे पर
यही सौन्दर्य अनूठा, वाणी थी मिश्री समान
कामना यही दिनदूना रात चौगुना बढ़े आपका सम्मान ।

जहाँ बिराजे, छोड़ी छाप अनूठी
भूल कोई भी न सका आपकी शक्ति महान्
जीवनभर किये हैं नित नये सृजन।
अडिग, अटल अपने प्रण पालन में
अनुकरणीय सादगी का अवतार
दिन प्रतिदिन इतिहास रचा नूतन।
शिकवा शिकायत में भी पीछे नहीं थी-
आत्मीयता, धर्मचेतना का करती थी प्रहार
मधुर थी वो भी चुभन।
दु:खियों की अन्तर पीड़ा को अपनी बना लेती थी वो
उनके दामन में भर देती थी धैर्य, विवेक और मुस्कान
चले आते थे दौड़ सभी, प्रथम पाँव छुअन।
वाणी थीं मौन, जीवन मुखरित था
कुबेर सा, ढ़ेर सा, लुटाती थी आँचल से -
अनमोल रतन, जड़ भी हो जाता था चेतन।
माँ तुझे शत शत नमन
अभिवादन, अभिनन्दन।

4. जयन्तसेन वाटिका के फूल की सौरभ जन जन में बसी

- सुश्री रूचिका धारीवाल, पाली

प्रान्त धार की हैं रत्नगर्भा शस्य श्यामला मनोहर मालवा
गोद उनकी वरमण्डल ग्राम में उत्पन्न हुई गुरुवर्या
नभो मण्डल में उदित चन्दा, पुष्प मेघ में जा बसी
जयन्तसेन वाटिका के फूल की, सौरभ जन-जन में बसी।

मात जिनकी वजीबाई, जड़ावचंदजी धन्य हुये
रत्ना सुता लीलावती ने निज, आत्मार्थी को पल्लवित की
प्रशान्त निर्मल झरना सदा, सुहावनी मन में बसी
जयन्तसेन वाटिका के फूल की, सौरभ जन-जन में बसी।

सूरि राजेन्द्र गच्छ का पुण्योदय था, कि खिला ऐसा फूल था
उनके जीवन पराग से विकसित सारा उद्यान था
तप-त्याग की गरिमा, अनूठी श्रद्धा हृदय में जा बसी
जयन्तसेन वाटिका के फूल की, सौरभ जन-मन में बसी।

ग्राम-नगर में भ्रमण करके, पीयूषवाणी सिंचती
धर्म की फूल वाटिकों में, जिनवाणी बरसावती
अज्ञानतम को दूर कर, ज्ञान दीप जलावसी
जयन्तसेन वाटिका के फूल की, सौरभ जन-जन में बसी।

नहीं मोह, निंद्रा, आलस जिनमें सतत सजग रेवती
जीवन की अनमोल घड़िया, अनुष्ठान में ही बीतती
उनके पावन चरण कमलों में, सिर समर्पण हो बसी
जयन्तसेन वाटिका के फूल की, सौरभ जन-जन में बसी।

मन, वचन, कायिक शक्ति जिनकी स्थिर मन में विराजती
अप्रमत्त भावों से सदा अरिहंत जाप को जपती
आत्म वैभव को पा लिया, नमन सब का हो बसी
जयन्तसेन वाटिका के फूल की, सौरभ जन-जन में बसी।

पंक से उत्पन्न पंकज, जल पर सदा ज्यों नाचता
अपनी सदैव सुवास से, सर्व जन मन को भावता
तिम गुरुवर्या अरविंद की, महक पृथ्वी पर बसी
जयन्तसेन वाटिका के फूल की, सौरभ जन-जन में बसी।

फाल्गुन वदि एकादशी को, सूर्य अस्ताचल चला गया
सुवर्ण गगन का भानु भी, अस्ताचल में छिप गया,
श्रीमहाप्रभाजी की रश्मियाँ - "प्रियसु", श्रद्धा-सुमन चढ़ावसी
जयन्तसेन वाटिका के फूल की, सौरभ जन-जन में बसी ॥

परम श्रद्धेया परम पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी को समर्पित

5. श्रद्धा-सुमन

- बैनी प्रसाद जैन 'तरूण' भरतपुर

त्याग-तपस्या के दीपक जलते वर्षों तक,
शनैः शनैः पुण्यों का संचय होता रहता;
तब जाकर के महाप्रभा-सी एक शमाँ रोशन होती है।

महाज्योति वह-वरमण्डल से उद्दीप्त हो,
मोहनखेड़ा की धरती तक पहुँच गई थी;
मानो माँ वजीबाई के घर की शोभा,
दूर-दूर तक अलख जगाने, निकल गई थी।

कोई पिछला पुण्य-उदय था "जड़ावजी" का
सरल-संयमी "लीला" के वे जनक कहाए;
किन्तु नियति "लीला" की यह संसार नहीं था,
अतः प्रौढ़ वय में संयम के दीप जलाए ॥
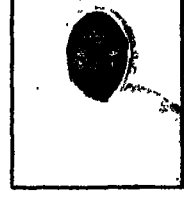
तोड़ दिया वह मकड़जाल दुनियादारी का
छोड़ दिया घर-द्वार, अलौकिक पा जाने को;
मोहनखेड़ा में उनको प्राप्तव्य मिल गया,
भद्र आत्मा व्याकुल थीं जिसको पाने को ।

मुनिद्वय "श्री वल्लभजी श्री कल्याणविजय" ने
मोहनखेडा में उनको पहचान लिया था ;
इसीलिये वैसाख शुक्ल की दसमी तिथि को,
दो हजार आठ सम्वत् में उनको दीक्षा दान किया था।

टूट गया भ्रमजाल, अंधेरा दूर हो गया,
रूपांतर हो गया राग, मन विरत हो गया;
मुनिवर की अनुकम्पा से "लीलावती" का,
"साध्वी रत्ना महाप्रभा" संस्करण हो गया ।

परिमार्जित हो गई वृत्तियाँ, क्रांति हो गई,
जप-तप-सेवा-भक्ति आपके लक्ष हो गए;
गुरुणी पूज्या हेतश्री का सान्निध्य मिल गया,
स्थिर चित्त हुई, अंतर के परत खुल गए ।

मालव, मारवाड़ से ले, गुजरात प्रांत तक,
त्याग-तपस्या का पैदल ही अलख जगाया;
हे तपस्विनी ! घूम-घूमकर श्रावक जन को,
उनसे ही उनका परिचय करवाया ।

गुरुवर जयंतसेन के निर्देशन में,
श्रीमद् के आदर्शों का पालन करवाया;
होम दिया, सारा जीवन तप-आराधन में,
औरों को दीपित कर जीवन सफल बनाया ।

यद्यपि, आप विदेह हो गई पर इससे क्या ?
मन-मानस में देवि ! तुम्हीं छाई रहती हो;
त्याग-तपस्या की चर्चा, जब-जब चलती है,
बीच-बीच में प्रकरण वश, तुम आ जाती हो ।

"पूज्या डॉक्टर प्रियदर्शना-सुदर्शनाश्री जैसे
प्रखर तपोधन दो-दो दीपक हमें थमाए;
जिनके देवोपम प्रकाश में मज्जन करके,
मैं ही क्या, सारा समाज भी भाग्य सराहे ॥

शब्द नहीं हैं मुझ पर, हे ! परलोकवासिनी !!
"आपश्री" की गुरुता का मूल्यांकन करते:
तप-स्थविरा ! देवीमाँ !! आशीष मुझे दो,
तेरे आदर्शों पर चलते, जीवन बीते ।

6. श्रद्धांजलि

- अशोक मोदी - चैन्नई

करना श्रद्धांजलि कबूल मेरी मुझे अपना जानकर ।
स्वर्ग से भी रखना ध्यान मेरा मुझे बेटा मानकर ॥
लो टूट गया एक सितारा टूट के बिखर गया ।
त्रिस्तुतिक संघ का तेज सितारा अस्त हो गया ॥
अनचाहा ये धड़ाका क्या हो गया ।
माँ महाप्रभाश्रीजी का महाप्रयाण हो गया ॥
एक दादीमाँ के प्यार से यह संघ महरुम हो गया ।
उन दोय विदुषी पौत्रियों के सर का छाया उठ गया ॥
शुद्ध चारित्र का सच्चा पर्याय कूच कर गया ।
हाय महाप्रभाश्री का महाप्रयाण हो गया ॥
एक ज्ञान गंगा की धारा लुप्त हो गया ।
गाँव धाणसा जाते जाते वो छुप गया ॥
इह लोक छूटा उनका देवलोक में वास हो गया ।
दादी महाप्रभाश्री का महाप्रयाण हो गया ॥
संघ सारा आज गहरा शोकाकुल हो गया ।
माँ महाप्रभाश्रीजी का महाप्रयाण हो गया ॥

: उपदेश के अयोग्य :

उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने ।
जैसे-तैसे व्यक्ति को उपदेश नहीं देना चाहिए ।

7. महाप्रभा गुण बेलडी

- डॉ. सोहनलाल पटनी - सिरोही

महाप्रभा गुण बेलड़ी,
रोपी मन हरषन्त ।
'**सुप्रिय**' दर्शन मंगला,
ज्ञान वान गुणवन्त ॥१॥

उनवीसो छासठ बरस,
विक्रम वरस मझार ।
कार्तिक सुदि पूनम दिने,
वरमण्डल अवतार ॥२॥

वज्जी कूख धन उजली,
लीला जग जसवन्त ।
जडावचंद धन धन हुआ,
जैन धरम जयवन्त ॥३॥

दो हजार अष्टम बरस,
सुदी वैशाख दशम ।
मोहन खेड़ा दीक्षा लई,
गुरु राजेन्द्र शरण ॥४॥

गुरु वल्लभ, वल्लभ हुआ,
कल्याण विजय गुरु नाम ।
हेत श्री गुरुणी हुआ,
ये तीनों शुभ नाम ॥५॥

महाप्रभा नामित हुआ,
समता सरल विचार ।
सहनशीलता मन धरी,
संयम धन आधार ॥६॥

दृढ़ता खिमता आचरी,
गिणता पद नवकार ।
जप तप एकासन किया,
जैन धरम जयकार ॥७॥

उत्तरधर विचरण कियो,
भेद पाट अरू मरू वाट

गुर्जर धर पद परसतां,
मालव धर विराट ॥८॥

जैन धरम जयवन्त कियो
भारत भौम विराट ।
फाल्गुन वदि एकादशी,
देह विलय मरूवाट ॥९॥

गांव धाणसो धन कियो,
शांति पार्श्व दरबार ।
महाप्रभा विदेह भया,
गया सीमन्धर द्वार ॥१०॥

महाप्रभा गुण बेलडी,
'प्रियसु' दर्शन मान ।
आतम दर्शन प्रेमे करि
सम्यग्दर्शन जान ॥११॥

महाप्रभा पद परम पर,
आतम धरन धरन्त ।
जो जन जस जयवन्त करे
दुःख दारिद्र हरन्त ॥१२॥

8. ऐसी थीं वो दादीमाँ

- सुश्री सविता सेठ, धाणसा

संग छोड़ दिया आपने हमारा हम आपको भूले नहीं ।
आप में थी ऐसी अद्‌भुत सहनशीलता हमने कभी देखी नहीं ॥
धैर्य, विवेक, क्षमता, सरलता, सादगी की थी अवतार ।
आत्मीयता धर्म चेतना का करती थी प्रहार ॥
आपकी वाणी की मिठास, अंधेरे में करती थी प्रकाश ।
आपके हृदय की कल्पना, लाती थी जग में बहार ॥
आप थे अटल प्रण पालन में, जप तप में लीन ।
हर किसी के मन की बात समझ जाते एक पल में छीन ॥
हर किसी के मन मंदिर में आपका मुख चमकता रहे ।
हमेशा उन दोनों पौत्रियों के सर पर आपका हाथ रहे ॥
सबके मन को घायल करदे ऐसे कई इतिहास रचे ।
हर कोई यही कहे दादीमाँ हमारे साथ रहे ॥

यही कामना करते हैं जन-जन में बढ़े आपका सम्मान ।
और हमेशा निकलता रहे हर किसी के मुख से आपका नाम ॥
आज हम करते हैं आपको नमन आपको शत अभिवंदन ।
आपका आशीर्वाद साथ रहे यही करते हैं रटन ॥

9. दादीमाँ

– श्रीमती विनीता अशोककुमार, राजमहेन्द्री

फूल मुरझा गया, सौरभ जगत में छोड़ गया ।
दुनिया से ले ली विदा, पर यादें आपकी ॥
हर घड़ी हर पल हमें, महसूस होती है ।
दीप आपने जलाया, रोशनी देगा हमें ॥
व्यक्ति चला जाता है, स्मृति रह जाती है ।
हर फूल की मिट्टी में, महक रह जाती है ॥
धन्य है वह जग में, जिनके बाद श्रद्धा व, ।
आस्था से भरी गाथा, सदा के लिए रह जाती है ॥
श्रद्धा के सुमन आपके श्रीचरणों में अर्पित हैं, ।
मुझे नहीं पता कि सही है या कल्पित है ॥
दिल का खिला हुआ फूल पूरा मुरझा गया है ।
उसे खिलाने के लिए अब आपको समर्पित है ॥

10. दादीजी का नाम लेता हूँ

– मुथा जुगराज कुन्दनमल, धाणसा

भक्ति कर तो ऐसी भक्ति कर, जो गुरु को रिझावे ।
अरे तू क्या मिलने को जाये, दादीजी खुद तुझसे मिलने को आये ॥
जिस बादल में बरसात नहीं, वह बादल बेकार है ।
जिसके दिल में दादीजी की याद नहीं, वह दिल भी बेकार है ॥
सुबह लेता हूँ शाम लेता हूँ, कभी कभी रात को भी ले लेता हूँ ।
बुरा मत मानना, दादीजी का नाम लेता हूँ ॥

11. सान्निध्य-सुमन

- रमेश औरा, बड़नगर (म.प्र.)

धन्य धरा हुई धाणसा, धन्य हुआ श्री संघ ।
योग प्रबल पुण्यशाली जन के उत्तम आयो प्रसंग ॥
चातुर्मास समापन सुन्दर, बहाई धर्म गंग ।
धर्मलाभ दीनो संघ माही, पाने को मच रहा जंग ॥
समय बीता घड़ियाँ बीती, बीत गये दिन चंद ।
जिन शिक्षा सुशिष्या के उर धर अति रम्यो अरि संग ॥
तन मन जीवन अर्पित सेवा में, समर्पित सब शिष्या वृंद ।
वात्सल्यमूर्ति जीवन निर्मात्री, बाज रहियो मन में मृदंग ॥
आतम निर्मल भक्ति निर्मल, गुरु उर पहुँची तरंग ।
भक्त घर भगवान पधारे, पायो परमानंद ॥
महा-मुक्ति योग मिल्या जस, गुरु शिष्य सुवर्ण सुगंध ।
दर्शन पा निज गुरुवर्या के धन्य हो गया सर्व संघ ॥
स्तब्ध रह गया सब श्रमणीवृंद जब हंस उड़्यो निशंक ।
शोक छायो संघ माही भारी, संदेश पहुँच्यो जन संग ॥
मुखाग्नि समर्पित कर सुत राजमलजी, शोकाकुल परिवृंद ।
हाथ जोड़ वंदन मातेश्री, अन्तिम विदाई मिच्छामिदुक्कडं ॥

12. पावन-स्मृतियाँ

- श्रीमती प्रेमलता औरा - बड़नगर (म.प्र.)

चन्द लम्हें गुजरे आपके साथ मगर
अब बिछुड़ना आपका बहुत सता रहा है ।
हमें छोड़ चली इस दुनिया से मगर,
फिर भी आपसे गहरा संबंध जुड़ता चला जा रहा है ।
मिलकर बिछुड़ना है दस्तूर दुनिया का माना,
पर मुश्किल बहुत है आपको भूल पाना ।
यादें हमेशा आपकी जलाती है ज्ञान-ज्योति,
बरसाती पलकों से सावन के मोती ।
आदर्श जीवन की स्मृतियाँ बनी है आपकी,
समय के डगर में दिशा चिन्हित होगी आपकी ॥

13. साधना-यात्रा

(आकोली (राज.) कन्या शिविर में सन् 1995 ग्रीष्मकालीन समापन के अवसर पर गाया गया गीत)

- ओमप्रकाश आचार्य, फालना (राज.)

महाप्रभाजी महासती हैं श्वेतवस्त्र के धारी
और हंसवाहिनी रूप आपका रत्नत्रयी अवतारी ॥ ओ रत्नत्रयी॰
महाप्रभाजी महासती हैं श्वेतवस्त्र के धारी
और हंसवाहिनी रूप आपका, लगे देशना प्यारी ॥ हमें लगे...
जन्म लिया है मीठे मालवा प्रान्त में
और चमकाया शासन राजस्थान में २
दूर अंधेरे करने को अज्ञान के
रूप दिखाया सरस्वती का आपने
देवशास्त्र और नारी चेतना गुरुवर ने विस्तारी ॥
और हंसवाहिनी रूप आपका, लगे देशना प्यारी॰
महाप्रभाजी महासती है श्वेतवस्त्र के धारी । ओ रत्नत्रयी॰
गांव नगर और ढाणी ढाणी छा गई
और शिविर साधना निमित्त आ गई
जयजय जयजय घोष करे सब आपका
प्रियसुदर्शन महाप्रभाजी आपका ॥ ओ प्रियसुदर्शन॰
शिबिर साधना अजब गजब की, नमन करे नरनारी
और हंसवाहिनी रूप आपका लगे देशना प्यारी॰
नमन करे सब इनके प्रबल प्रताप को
हर लेते हैं पाप ताप संताप को २
श्रद्धापूर्वक सारे शिबिर संभालने
संयम का उपदेशक माना आपको
वचनसिद्धि और वरदानसिद्धि ये वाणी के अधिकारी
और हंसवाहिनी रूप आपका लगे देशना प्यारी॰
इतिहास लिखा जब महाप्रभाजी का जाएगा ।
प्रियसुदर्शन नाम साथ में आएगा ।
इतिहासों में अमर बनेंगे पंचमहाव्रतधारी
और शूरवीर संयम के राही, कलम हाथ में धारी ॥ ओ कलम॰

महाप्रभाजी महासती में चमत्कार है भारी। ओ[?]
और ज्ञानयज्ञ के शिविर से जगमग करे दिशाएँ सारी। गुरुवर...
महाप्रभाजी महासती हैं श्वेतवस्त्र के धारी
और हंसवाहिनी रूप आपका, लगे देशना प्यारी॥ हमें लगे....

14. शिविर-शिखर

(सूरा कन्या शिविर में सन् 1996 ग्रीष्मकालीन उद्घाटन के अवसर पर गाया गया गीत)

- ओमप्रकाश आचार्य, फालना (राज.)

सूरा गाँव की धन्य धरा पर ज्ञान का सूरज छाया,
महाप्रभाजी ने आकर अज्ञान का मोह मिटाया
प्रियसुदर्शन सुनकर सब का मन हरषाया
ओम आचार्य भी दर्शन करने शिविर नगर में आया॥
नमन करे हम ज्ञानसूर्य से गाँव को
अज्ञान तिमिर हरनेवाले इस गाँव को
जयजय जयजय घोष करे इस धाम को
दो दो शिविर लगानेवाले गाँव को
श्रीसंघ भी करे वन्दना ऐसा अवसर आया
गाँव-गाँव की बहनों के उद्धार का अवसर आया
संस्कारों की माटी महकाने हेतु कन्या शिविर लगाया
शांत-प्रशान्त पयोनिधि आत्मा आयी है
महाप्रभाजी हमें जगाने आयी है
रत्नगर्भा जीवन से गुलशन महकेगा
एक नया इतिहास यहाँ पर चमकेगा
जबतक सूरज-चाँद-सितारे और दरिया में पानी
कन्या शिविर की सूरा में रहेगी ये कहानी
त्याग भावना बहनों में भी आएगी
और संयम का रंग जीवन में लाएगी
माता पिता भी धन्य हुए
जाऊँ गुरुचरणों में बलिहारी
मात शारदे रूप तुम्हारा इन बहनों में आया
ओम आचार्य भी दर्शन करने शिविर नगर में आया

दिनचर्या जब शिविर में इनकी पाओगे
सच कहता हूँ सभी दंग रह जाओगे
प्रियसुदर्शन वाणी सुन
गुरुचरणों में ली सब ने अंगड़ाई है
शिविर नहीं जीवन के भी उत्थान का अवसर आया। सूरा गाँव०....

15. संयम-रश्मियाँ

(सूरा कन्या शिविर में 1996 ग्रीष्मकालीन समापन के अवसर पर गाया गया गीत)

- श्री ओमप्रकाश आचार्य, फालना (राज.)

गुरुभक्तिभावों का मेला लगा,
जिन्दगी ना बने तो क्या करें।
देनेवाले गुरुवर ने दी देशना,
पानेवाला न पाए तो गुरु क्या करें!
शक्ल भी दी, अक्ल भी दी, दे दी ऐसी लगन,
अपने जीवन के पथपर रहेंगे मगन
दे दिया है समर्पण का ऐसा सिला
पानेवाला न पाए तो गुरु क्या करें॥ देने०
जीना आया है अब हमको दी जिन्दगी,
जिनशासन की करनी है अब बन्दगी
बन्दगी से अनुंबध भी होगा बड़ा
प्रभुबन्धन ना पाए तो गुरुवर क्या करें॥ देने०
तेरे हाथों से देखो समय जा रहा
गुरुवाणी का सन्देश चेता रहा
चेत जा प्यारे मन फिर तो पछताएगा
जिन्दगी की हकीकत को कब पाएगा
गुरुभक्ति की शक्ति का जादू जगा
जिन्दगी ना बनाए तो गुरु क्या करें॥ देने०
ये जमीं आसमाँ चाँद सूरज जहाँ
जिन्दगी को भी संयम का सूरज बना
तेरे जीवन से अंधियारा छट जाएगा
फिर भी संयम ना पाएँ तो गुरु क्या करें॥ देने०

गुरुचरणों में बीतेगी अब जिन्दगी
परिवर्तन की राहें हैं सबसे बड़ी
ओम आचार्य की ये दुआ हरघड़ी
गुरुचरणों में रहना है ता जिन्दगी
गुरु के गोद में आसरा मिल गया
फिरभी तू ना निभाए तो गुरु क्या करें ॥ देने०
देखकर सबके चेहरे का रंग भी
मेरे दिल से ये निकला सलामत रहे
गुरुभक्ति में दिल सबका तल्लीन रहे
और बहनों का जीवन सलामत रहे
प्रभुभक्ति का इतिहास ऐसा बना
दिखता रहे तुझको सारा जहाँ
श्री महाप्रभाजी गुरुवर्या आशीष दो
प्रियदर्शन सुदर्शनजी आशीष दो
सब को जीवन में संयम का एक रंग दो
मोक्ष के हर मुसाफिर का यम क्या करें ॥ देने०
मौत घबराएगी शूरवीरों से यूं
जिन्दगी देशना से बनाते रहो
गुरुभक्ति के गीतों को गाते रहो

16. शुचि-किरण

- रिखबचन्द पूनमचंद जैन, इन्दौर

"आत्म-शुद्धि सिद्धि हित, नित रहे जो स्वाध्याय में ।
सद्भावना शुचिपावना, रख रहत नित अध्यवसाय में ॥
अति मधुर निर्मल वचन जिनके, अटल वर अविराम है ।
ऐसी गुरुवर्या महाप्रभा को, नित कोटि-कोटि प्रणाम है ॥
हृदय में सदा छबि तुम्हारी, मम कण-कण में बसी रहे ।
ज्ञान-भानु समान तुम, सदा अवनि तल पर चमक रहे ॥
योगी सा परि पूज्या संयम, सदा पालती चाव से ।
ऐसी गुरुवर्या महाप्रभा को, वन्दन करूँ मैं भाव से ॥

17. हे माँ ! हे माँ !

- अर्जुनसिंह पवांर, मदनगंज-किशनगढ़

(तर्ज उठा ले जाऊंगा तुझे मैं डोली से)
महाप्रभा दादीमाँ, करुणामयी माँ रत्ना
याद करती है तुमको, ये दुनियां सारी
खेड़ावाली माँ ! हे माँ ! हे माँ !
खेड़ावाली माँ ! हे माँ ! हे माँ !

वल्लभ विजय गुरुदेव से
तुमने ली थी धर्म दीक्षा
हेत-मुक्तिश्रीजी महाराज साहब से
प्राप्त की थी सुंदर शिक्षा
खेड़ावाली माँ ! हे माँ ! हे माँ !

मोहनखेड़ा तीर्थ तुम्हारा
बना दीक्षा स्थल
प्रियदर्शना और सुदर्शना
बनी शिष्या वत्सल
खेड़ावाली माँ ! हे माँ ! हे माँ !

सरल-समता-संयम की मूर्ति
अद्‌भुत ममतामयी
स्वावलंबिता भक्ति-सेवा
जीवनभर करती गई
खेड़ावाली माँ ! हे माँ ! हे माँ !

18. चरणों में तेरे रहना

- अर्जुनसिंह पवांर, मदनगंज, किशनगढ़

(तर्ज - आये हो मेरी जिन्दगी में तुम बहार बनके)
दादीमाँ रत्ना हमतो टुकड़े तेरे जिगर के
चरणों में तेरे रहना माँ.....
चरणों में तेरे रहना है हमको तो बिखर के
करुणा की देवी रत्ना, हम चाहे तुमसे इतना।
देखा है हमने सपना अपना बना के रखना ॥

हो जायेगी चमन अब ये जिन्दगी संवर के - २
चरणों में तेरे रहना....
प्रियदर्शना तुम्हारे हर दम चरण पखारे
सुदर्शना निहारे अब ले लो शरण तिहारे
करते जो भक्त सेवा, उभरे हैं वो निखरके
चरणों में तेरे रहना....
है धाणसा वो नगरी माँ दादी की समाधि
आये जो आस लेकर मिट जाये रोग व्याधि
है धन्य रहनेवाले नरनारी उस नगर के
चरणों में तेरे रहना......
है तीर्थ मोहनखेड़ा रस्ता नहीं है टेड़ा
आये जो भक्त दरपे करते हो पार बेड़ा
"दर्शन" को आयेंगे हम, पन्छी तेरी डगर के
चरणों में तेरे रहना.....

19. पारदर्शी पुष्पांजलि

(परम पूज्याश्री महाप्रभाश्रीजी म.सा. के श्रीचरणों में सादर-समर्पित)

- छन्दराज ॐ पारदर्शी, उदयपुर

पूज्या महाप्रभाश्रीजी, महा दिव्यात्मा दादीजी,
मृदुल स्वभावी साध्वी, मधु समवाणी है ।
निर्दोष है साध्वाचार शुद्ध क्रिया व्यवहार
भौतिकता भाती नहीं, प्रेम की निशानी है ।
संयम-पथ पथिका, स्वाध्याय-प्रेमी अधिका,
युवा-पथ प्रदर्शिका, आध्यात्मिक ज्ञानी है ।
पारदर्शी का वन्दन, करते अभिनन्दन,
त्यागी-तपस्वी दादीजी, साध्वी स्वाभिमानी हैं ।

जो अजगर के समान सोया रहता है उसका अमृतस्वरूप श्रुत (ज्ञान) नष्ट हो जाता है और अमृत स्वरूप श्रुत के नष्ट हो जाने पर व्यक्ति एकतरह से निरा बैल हो जाता है ।

20. आप मेरी मार्गदर्शिका हैं

- श्रीमती देवी जैन कर्ईवाली, भरतपुर (राज.)

आपका आशीष बस मुझे मिलता रहे,
जिन्दगी का हर क्षण यूं ही जाता रहे,
जब भी पापों की आँधी चलने लगे,
आपका जीवन आदर्श बन याद आता रहे,
जब भी मैं अपने पथ से विचलित होने लगूँ,
आप ही का सहारा मुझे मिलता रहे,
मेरे जीवन की इस नदी में,
आपकी वाणी का अमृत बरसता रहे,
त्याग, अहिंसा-दया के रस से,
मेरा मन सदैव सुरभित रहे,
मागूँ सदा मैं गुरुदेव से यही,
मेरे सिर पर दादीमाँ का साया रहे,
आप मेरी गुरुवर्या हैं,
आप मेरी आदर्श हैं,
आप हो से मैंने पाया,
जीवन का सच्चा दर्शन है,
त्याग-तपस्या और स्नेह का,
आप एक प्रतिबिंब हैं,
ज्ञानी-ध्यानी, धीर-गंभीर,
आप मेरी मार्गदर्शिका हैं ।।

आणा निद्देस करे, गुरुणमुववाय कारए ।
इंगियागार सम्पन्ने, से विणीए ति वुच्चई ।।

गुर्वाज्ञा को यथोचित शिरोधार्य करना, उनके निकट रहना, इंगिताकार से उनके मनोभावों को समझना एवं तदनुकूल वर्तन करना अर्थात् उनके हर संकेत व चेष्टा के प्रति सजग रहना। यह सब एक प्रकार का अनुशासन है। पुनः उन्हें कहने का अवसर नहीं देना, यह भी अनुशासन है।

क्या तुम इतने व्यस्त हो कि रोज अपने साथ, अपने विचारों के साथ, अपनी आत्मा के साथ और अपने परमात्मा के साथ दस मिनिट का समय निकालकर एकान्त में बैठकर प्रार्थना नहीं कर सकते हो ? रोज प्रार्थना में श्रद्धापूर्वक निकाले हुए दस मिनिट भी तुम्हारें जीवन में बड़ा परिवर्तन लाएँगे ।

सद्‌गुण का आचरण करना पहले मुश्किल होता है, लेकिन वह आचरण बाद में बहुत आनन्ददायक होता है । प्रत्येक सद्‌गुण के लिए यह एक सनातम नियम है । उसके लिए प्रथम स्वयं को नियन्त्रण में रखना पड़ता है और प्रयास करना पड़ता है, परन्तु बाद में जब प्रयास आनन्द में परिणमित होता है, तब पुरस्कार की प्राप्ति होती है ।

द्वितीय खंड

अभिनन्दनीय व्यक्तित्व

परम श्रद्धेया साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के सरल व सहज, परन्तु ऊँचाइयों को स्पर्श करने वाले महान् व्यक्तित्व को परम विदुषी साध्वी द्वय डॉ. श्री प्रियसुदर्शनाश्रीजी ने अपनी प्रखर लेखनी से उनके अन्तर की गहराइयों को सरसता एवं रोचकता के साथ उकेरा है जो प्रकाश स्तम्भ की भाँति भूले-भटकों का पथ- प्रदर्शन-करेगा, ऐसी आशा ही नहीं; अपितु पूर्ण विश्वास है। ऐसा 'अभिनन्दनीय व्यक्तित्व' सम्पूर्ण वातावरण को सौरभमय व गरिमामय बना देगा, यह सुनिश्चित है।

* शुभ कामना *

परम पूजनीया वन्दनीया साध्वी श्री जी डॉ. प्रियदर्शना जी एवं साध्वी डॉ. सुदर्शना जी द्वारा अपनी गुरुवर्या दादीजी प.पू. श्री महाप्रभा श्री जी के जीवन चरित्र को कागज के सुनहरे पन्नों पर उतार कर मानव समाज को समर्पित करने का जो भागीरथी प्रयास चल रहा था आज परिपूर्ण होकर "महाप्रभा स्मृति ग्रन्थ" के रूप में आपके हाथों में है।

मैंने दादी गुरु माता को देखा तो नहीं, परन्तु यह मेरा सौभाग्य रहा कि उनकी दोनों विदुषी सुशिष्या डॉ. श्री प्रियदर्शना जी म.सा. एवं साध्वी डॉ. श्री सुदर्शना जी म.सा. के सम्पर्क में पिछले पांच माह से रहकर जितना जाना है - समझा है उससे सहज ही अन्दाज लग जाता है कि जिस गुरु की शिष्याएँ इतनी विदुषी और धर्म की मार्मिक ज्ञाता हैं तो उनकी गुरुवर्या दादीजी की आध्यात्मिकता की तो कोई सीमा ही नहीं होगी। साध्वीजी म.सा. से जितना कुछ सुना और जाना उससे पूजनीया दादी गुरुवर्याजी की सरलता, ममता और प्राणी मात्र के प्रति उनकी दया और स्नेह की सीमा की थाह पाना भी कठिन है।

श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर तीर्थ, हरिद्वार में पू. साध्वीजी म.सा. ने अपना चातुर्मास करके हम पर जो उपकार किया है, हम सब उनके आभारी हैं। आपके सान्निध्य में पिछले पांच माह में जो कुछ भी सीखा है वो हमारे जीवन के लिए अमूल्य हैं।

हमारी तो हार्दिक इच्छा है कि आपश्री का अगला चातुर्मास भी हरिद्वार की इस पावन भूमि पर हो, ताकि इनके सान्निध्य में रहकर हम भी अपने जीवन को इनके अनुरूप ढालने का प्रयास करते रहें।

आदरपूर्वक,
विनोद जैन
25.10.04

श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ
जैन श्वेताम्बर तीर्थ
हरिद्वार (उत्तरांचल)

1. पूज्याश्री : संक्षिप्त जीवन-रेखा

साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

पितृ पक्षीय परिवार

नाम	:	संयम वय:तप:स्थविरा पूज्याश्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब
जन्म दिन	:	कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा विक्रम संवत् १९६६, १३ नवम्बर सन् 1910
जन्म स्थान	:	वरमंडल, जिला-धार (म.प्र.)
मातुश्री	:	श्रीमती वजीबाई
पिताश्री	:	श्रेष्ठी जड़ावचंदजी जैन
लघुभ्राता	:	रिखबचंदजी एवं पूनमचंदजी
लघु बहनें	:	सुन्दरबाई एवं चंदूबाई
संसारी नाम	:	लीलावती

श्वसुर पक्षीय परिवार

विवाह स्थान	:	राजगढ, जिला-धार (म.प्र.)
विवाह संवत्	:	विक्रम संवत् १९७८, ईस्वी सन् - 1922
ददिया श्वसुरजी	:	श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ निर्माता संघवी सेठ लूणाजी पौरवाल
श्वसुरजी	:	शा. नेमचंदजी जमींदार
पतिदेव	:	शा. चम्पालालजी जमींदार
पुत्र	:	ज्येष्ठ पुत्र राजमल जमींदार एवं लघु पुत्र जवाहरमल
पुत्रवधुएँ	:	बड़ी पुत्रवधू श्रीमती पूनमदेवी, लघु पुत्रवधू श्रीमती कान्तादेवी
पौत्र	:	पुष्पेन्द्र, जिनेन्द्र, आनन्द
पौत्रियाँ	:	बड़े सुपुत्र की पाँच पौत्रियाँ - कु. पुष्पलता, कु. प्रेमलता, कु. साधना, कु. आशा, कु. सुधा।

वर्तमान में चार पौत्रियाँ जिनशासन और श्री दादागुरुगच्छ में सेवारत हैं। जिनके नाम इसप्रकार हैं -

१. साध्वी डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्री
२. साध्वी डॉ. श्री सुदर्शनाश्री
३. साध्वी श्री आत्मदर्शनाश्री
४. साध्वी श्री सम्यग्दर्शनाश्री

तृतीय नम्बर की पौत्री श्रीमती साधना गृहस्थ जीवन में है।

और लघु सुपुत्र की चार पौत्रियाँ और हैं जो गृहस्थ जीवन में हैं।

प्रपौत्र : मयंककुमार

प्रपौत्री : कु. नेहा जैन

वैधव्य : वि. संवत् १९९४, सन् 1937 वैशाख शुक्ला चतुर्थी

दीक्षा-तिथि : वैशाख शुक्ला दशमी विक्रम संवत् २००८, ई.सन् 1951

बड़ी दीक्षा : राजगढ़ (जि. धार, म.प्र.) वि. संवत् २०१२, सन् 1955 कार्तिक शुक्ला बारस

दीक्षास्थल : श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ (जि. धार, म.प्र.)

दीक्षाप्रदाता गुरु : प.पू. मुनिप्रवर श्री वल्लभविजयजी महाराज साहब एवं प.पू. मुनिप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब

दीक्षा गुरुवर्या : प.पू. गुरुणीजी श्री कमलश्रीजी म.सा., प.पू. प्रशांतमूर्ति गुरुणीजी श्रीहेतश्रीजी महाराज साहब एवं. प.पूज्या शासनदीपिका प्रवर्तिनी श्रीमुक्तिश्रीजी म.सा.

दीक्षा नाम : साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म.

वर्तमान आज्ञानुवर्तिनी : प.पू. राष्ट्रसंत, साहित्यमनीषी आचार्यदेवेश श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब

शिष्या-प्रशिष्याएँ : साध्वी डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्री, साध्वी डॉ. श्री सुदर्शनाश्री, श्री आत्मदर्शनाश्री, श्री सम्यग्दर्शनाश्री, श्री पुण्यदर्शनाश्री, श्री चारुदर्शनाश्री, श्री प्रीतिदर्शनाश्री आदि।

गृहस्थपर्याय : 42 वर्ष

कुल चारित्र पर्याय : 49 वर्ष

कुल आयुष्य : 90 वर्ष 3 महीना 11 दिन

प्रथम चातुर्मास : जावरा (म.प्र.) वि.सं. २००८, सन् 1951

अंतिम चातुर्मास : धाणसा, जि. जालोर (राज.) वि.सं. २०५६, सन् 1999

कुल चातुर्मास : उनपचास (मध्यप्रदेश 19-चातुर्मास, गुजरात 7-चातुर्मास एवं राजस्थान-23 चातुर्मास)।

प्रमुख विशिष्ट गुण : समता, सरलता, सहिष्णुता, निश्छलता, संयमशुद्धि, स्वावलंबिता, अप्रमत्तता, अद्भुत आत्मशक्ति, दृढ़ संकल्पशक्ति, त्याग-तितिक्षा नित्यप्रति स्वाध्याय, शिक्षा के प्रति अथाह अनुराग-लगाव, साहित्य सर्जन-प्रेरणा, बालिकाओं में सुसंस्कार हेतु शिविर-प्रेरणा, ज्ञान-

ध्यान, लेखन व स्वाध्यायादि करने की प्रबलतम प्रेरणा एवं आत्मीयतापूर्ण पूरा-पूरा सहयोग, जप-तप, प्रतिदिन एकासना, उपकारी के छोटे से छोटे उपकार को भी याद रखना (कृतज्ञतागुण), जीवन पर्यन्त किसी भी वाहनादि का कभी भी उपयोग नहीं करना, अन्तिम श्वास तक अंग्रेजी दवाई का उपयोग नहीं करना, मच्छरदानी, पंखा, हाथपंखा, कुलर, हीटर, ऊनी कंबल (गृहस्थ-कंबल) आदि का अंतिम समय तक उपयोग नहीं करना तथा अपने गुरुजनों के प्रति अन्तरंग सेवा-भक्ति, बहुमान व समर्पण-भाव।

सरल पहचान : **"दादीपौत्री महाराज"।**

विचरण क्षेत्र : मालवा, मारवाड़ (पश्चिमी राजस्थान, पूर्वी राजस्थान), मेवाड़, निमाड़, गुजरात, उत्तरप्रदेश आदि।

छ:री पालित पद-यात्रा संघ : अमलावद (म.प्र.) से बहिपार्श्वनाथ तीर्थ वि. संवत् २०३१, ई. सन् 1974। नागदा जंक्शन (म.प्र.) से नागेश्वरतीर्थ वि.संवत् २०३५, ई. सन् 1978। भोपाल (म.प्र.) से होशंगाबाद तीर्थ वि. संवत् २०३७ ई. सन् 1980 एवं भरतपुर (राज.) से सिरसतीर्थ वि. संवत् २०४४, ई. सन् 1987।

उद्यापन : भरतपुर चातुर्मास में वीशस्थानकतपादि वि.सं. २०४४ ई.सन् 1987 एवं दुंदाड़ा (राज.) चातुर्मास में ज्ञानपंचमी वि.सं. २०४३, ई.सन् 1986।

प्रथम शिविर : भरतपुर (राज.) वि.सं. २०४४, ई. सन् 1987

अंतिम शिविर : भीनमाल (राज.) वि.सं. २०५५, ई. सन् 1998

कुल शिविर : पूज्याश्री की निश्रा में 21

अतिप्रिय विषय : स्वाध्याय, पठन-पाठन, जयणा, परगुणप्रशंसा, आर्य-मर्यादा, साध्वाचार मर्यादा, गुर्वाज्ञापालन, मौन, अनुशासनादि।

आनंद का विषय : चारित्र जीवन की प्राप्ति, गुरु-सेवा, संघ की एकता-संगठन आदि।

आक्रोश का विषय : मंदिर आदि में भगवान् पर वालाकूँची वगैरह से आशातना, सर्दी में पुजारी द्वारा बिना स्नानादि किए छू जाना, साध्वाचार के विपरीत आचरण करना, सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा-प्रवचन, मन्दिर आदि में लड़कियों एवं बहनों द्वारा बातें करना, **श्रमणीजीवन में लड़कियों**

के बीच बैठकर अनर्गल बातें करना, ज्यादा हंसी-मजाक करना, शोरगुल करना, सिद्धान्त का अपलाप करना, स्वाध्यायादि में प्रमाद करना, अनुशासन व मान-मर्यादा का भंग करना आदि।

ज्ञानोपासना : साधु पंचप्रतिक्रमण, नवस्मरण, चारप्रकरण, तीन भाष्य, संस्कृतबुक, चरित्रग्रंथ, उपदेशग्रंथ आदि का अध्ययन-वाचन, सत्साहित्यवाचन, चैत्यवंदन, स्तुति, स्तवन-सज्झायादि कण्ठस्थ करना, कहानियों-कथाओं, लोकोक्तियों एवं दोहों आदि के माध्यम से अपनी देशी मालवी, मारवाड़ी भाषा में श्रोताओं को उनके उपयोगी हितोपदेश, श्रीपालरास-चरित्रादि पर व्याख्यान।

दर्शनोपासना : भावसभर प्रभुभक्ति, देववन्दन, जिनाज्ञा के प्रति अथाह अनुराग-बहुमान तथा उसका यथाशक्य पालन करना।

तपसाधना : सोलभत्ता, अट्ठाई, चत्तारिअट्ठदसतप, सिद्धि तप, वर्धमान तप की ओली, नवपद वर्ण की ओली, बेले[२], तेले[२] पारणे, गुरुदेवश्री के छत्तीस आयंबिल, छ मासी, चार मासी, दो मासी, डेढ़ मासी तप, एकासना-आयंबिल आदि विविध तपश्चर्याएँ।

वीर्याचार पालन : अल्पनिद्रा, अप्रमत्तभाव, दिनभर कुछ न कुछ पढ़ते रहना, बीमारी में भी विधिपूर्वक क्रियाएँ करना, दिन में विश्राम नहीं करना, दीवार का सहारा लेकर नहीं बैठना, एक आसन से बैठना आदि।

स्वर्गवास दिन : फाल्गुन कृष्णा एकादशी विक्रम संवत् २०५६ बुधवार तदनुसार दिनांक 1-3-2000

स्वर्गवास समय : सायं 8-00 बजे।

स्वर्गवास स्थल : श्री ओपोनी जैन धर्मशाला, धाणसानगर।

अग्नि-संस्कार दिन : फाल्गुन कृष्णा द्वितीय द्वादशी शुक्रवार वि.सं. २०५६, दिनांक 3-3-2000

अग्नि-संस्कार समय: अपराह्न 3-00 बजे।

अग्नि-संस्कार एवं समाधि स्थल : श्री गोड़ीजी पार्श्वनाथ मंदिर के पास धाणसा, जि. जालोर (राज.)।

मात्र ज्ञान प्राप्त कर लेने से ही कार्य की सिद्धि नहीं हो जाती है।

2. दादी हो तो ऐसी हो !

दीक्षा के प्रारम्भिक पाँच-दस वर्ष पर्यन्त रात्रि में प्रतिक्रमण से निवृत्त होने के बाद आप हमें श्रमणी जीवन से सम्बन्धित कई हितशिक्षाओं का पीयूषपान कराती रहती थीं । उनका एक-एक शब्द अनुभव की कसौटी पर कसा हुआ था । उनके वे शब्द कानों में आज भी गूँजते हैं । **वे कहती थीं-"मैं तुम्हें अभी नीम की तरह कड़वी जरूर लगूँगी और मेरी बातें भी कड़वी लगेंगी । मीठी-मीठी बोलनेवाली गुरुबहनें, मीठे-मीठे बोलनेवाले लोग ही अच्छे लगेंगे; पर तुम्हें जब खट्टे-मीठे हरतरह के अनुभव होंगे, तब मेरी बातें याद आयेंगी ।"** पुराने लोगों ने ठीक ही कहा है - '**कड़वी बोली मावड़ी । (मायत) मीठा बोल्या लोग**' वे मीठे बनकर ही पूछेंगे - तुम्हारी दादी कैसी है ? कितनी कठोर है ? किसी से भी नहीं बोलने देतीं और न किसी के पास बैठने ही देती हैं ? वे किसलिए बुरे बनेंगे ? और यह कहावत सच भी है '**दूर के डूंगर सुहावने लगते हैं**' । **पर बेटा ! यह ध्यान रखना-लोग तो लोग ही होते हैं।** कोई कुछ भी कहे, किन्तु उनकी बातों पर तुम्हें ध्यान नहीं देना है । मैं तुम्हारी दुश्मन नहीं हूँ जो गलत शिक्षा दूँगी । मैं तुम्हारे हित के लिए ही कह रही हूँ । यदि मेरी बातों पर ध्यान दोगी तो तुम्हारा जीवन बन जाएगा । फिर कोई भी अंगुली उठानेवाला नहीं है । ऐसी मीठी-मिश्री-सी अनेकानेक अति हितकारी बातें समय-समय पर कहा करती थीं । उन सबका वर्णन कर पाना यहाँ सम्भव नहीं है ।

आज भी अक्षरश: वे सारी हितशिक्षाएँ हमारे स्मृतिकोष में ज्यों-की-त्यों अंकित हैं । वही संबल आजतक चल रहा है । उसी संबल के सहारे अद्यावधि संयमरूपी यात्रा सुखपूर्वक चल रही है और पूर्ण आत्मविश्वास है कि आगे भी उनकी अदृश्य कृपा से वह यात्रा निराबाध गति से चलती रहेगी । उनके ऐसे अनेकानेक अनन्य उपकारों से जन्म-जन्मान्तर में भी कभी हम उऋण नहीं हो सकती हैं । दादी हो तो ऐसी हो ! गुरुमाता हो तो ऐसी हो !

बुजुर्गों से यह सुनते आये हैं कि जिसतरह साहुकार को मूलधन से भी ब्याज प्यारा होता है, उसीतरह दादा-दादी को अपने पुत्र-पुत्रियों से भी अधिक लगाव अपने पौत्र-पौत्रियों से होता है । इस कहावत को हमने अपने जीवन में सत्य घटित होते पाया । पू. दादीजी म. ने न केवल हमें माँ और दादीमाँ का प्यार दिया वरन् उन्होंने हमारे मानवभव को सार्थक करने का मार्ग भी प्रशस्त किया । उन्होंने हमें आत्मकल्याण का मार्ग बताया, उस पर चलने का मार्ग प्रशस्त किया । **धन्य हैं ऐसी दादीमाँ !**

3. हा.... दादीमाँ ! अब कौन ?
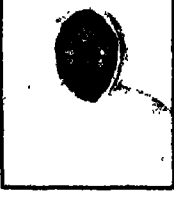
हे गुरुमैया ! आपके इस आकस्मिक महाप्रयाण से हमारा हृदय व्याकुल हो उठा है। यह जानते हुए भी कि जो कुछ होना था, सो हो चुका, इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए हृदय तैयार नहीं है।

ओ माँ ! आपने हमें आध्यात्मिक गूढ़ रहस्यों के साथ-साथ यह भी तो समझाया था कि "कोई किसी को समझा नहीं सकता। आत्मा स्वयं समझ तो सकती है, पर वह दूसरे को समझा नहीं सकती; क्योंकि समझना उसका स्वभावगत धर्म है" यह समझानेवाली आप जैसी दादी माँ अब कहाँ मिलेंगी ?

हे शिक्षादात्री माँ ! आपके अभाव में आज हम अनाथ हो गई हैं। हम यह आश लगाये बैठी थीं कि सर्दी का प्रकोप खत्म हो जाने पर डी. लिट् का कार्य द्रुतगति से करेंगी और यह कार्य शीघ्र सम्पन्न कर आपश्री के करकमलों में ग्रंथ अर्पित कर ऋण से उऋण होंगी। द्रुतगति से कार्य करने की मन की मुराद मन में ही रह गई माँ ! अब कौन प्रेरित करेगा इस कार्य के लिए ? अब कौन हमें आत्मीयतापूर्ण सहयोग-सहकार देगा हर कार्य में ?

ओ अनन्त उपकारिणी माँ ! काश ! आप अगर अपने जीवन की शताब्दी पूर्ण कर लेतीं !

ओ वात्सल्यमयी माँ ! आपको अन्तिम विदा करके हमने जो आँसू बहाये थे, हमें आज भी याद हैं; क्योंकि वर्षों का सान्निध्य और सहारा अचानक छूट गया था। आज आपको विदा देने के इस अवसर पर बचपन से विगत सैंतीस वर्षों की आपके, हमारे जीवन की घटनाएँ स्मृति पटल पर अनायास उभर आईं। हम दोनों इस लंबी अवधि में आपके सुख-दुःख की साक्षी रही हैं।

आपके श्रीचरणों में सैंतीस वर्ष गुजारें, वो कैसे भूलें ? इतने वर्षों तक आपका अन्तराशीष रहा। अब किससे लें ?

ओ मेरी प्रिय दादीमाँ ! आपके जीवन की कितनी घटनाएँ और प्रसंग चलचित्र की तरह प्रत्यक्ष हो रहे हैं, लिखते हुए भी आँखें छलछला रही हैं।

ओ जीवननिर्मात्री माँ ! ईश्वर ने चाहा तो शीघ्र मिलेंगी, कई जन्म मिलती रहेंगी, पर अभी तो तेरा कहीं अता-पता भी तो नहीं ! मिलना कहाँ, कैसे सम्भव है ?

काश ! एकबार पुनः दर्शन दे दें !

अपने चरणों में स्थान दे दें।

ओ माँ ! अब कौन देगा हमें मार्गदर्शन, कौन बंधावेगा धीरज ?

अब 'प्रियदर्शना', 'सुदर्शना' कहकर कौन बुलायेगा ?

अब आपके प्रिय शब्द सुनने को कहाँ मिलेंगे ?

अब हमें कौन सुनायेगा ऐसे मीठे-मधुर, जीवन का निर्माण करनेवाले आत्मीयतापूर्ण

शब्द ? अब किस जन्म में गुरुणीमैया पुन: मिलेंगी ?

हे संस्कारदात्री माँ ! आपने हमें घड़े जैसा गढ़ा है। जैसे कुंभकार कच्ची मिट्टी से घड़े को गढ़ता है, वैसे ही आपने हमें गढ़ा है। कुंभकार घड़े को गढ़ते समय ऊपर से धीमी-धीमी थाप मारता है, तो अन्दर से हाथ का सहारा भी दिये रहता है। इसीतरह आपकी मीठी फटकार और ह्दय से दिया गया सहारा न तो हमें विचलित होने देता था और न हमें प्रमादी ही।
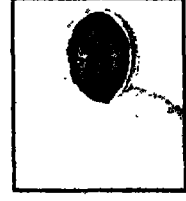
अब कौन देगा हमें सहारा ?

सम्यग्ज्ञान प्रचार-प्रसार की दिशा में किए गए प्रयत्नों को भी अब कौन सराहेगा ? कौन पीठ थपथपायेगा; मीनमेख निकालनेवाले तो बहुत मिलेंगे; पर सन्मार्ग दिखाकर प्रोत्साहित कौन करेगा ?

ओ गुरुमाँ ! अब किसकी दिनचर्या देखकर हम समयपर सब काम करेंगी ?

ओ गुरुमाता ! नई चेतना, नई दिशा, नई प्रेरणा, नया बोध और नूतन सर्जन की सद्शिक्षा देती-देती कहाँ विलुप्त हो गयीं ? मन अधीर है, दिल मार्मिक संवेदना का अनुभव कर रहा है।

वात्सल्यमयी शिक्षाएँ अब हमें कहाँ मिलेंगी ? हम विचारशून्य हैं।

ओ माँ ! हमारे संयमी जीवन के जो क्षण आपकी सुखद शीतल छाँव में व्यतीत हुए, वे कभी नहीं भुलाए जा सकते। वात्सल्य और ममता की साक्षात् प्रतिमा माँ के साये में गुजरे विशिष्ट क्षणों को स्मरण कर दिल पुकार उठता है हम निराधार को छोड़ इतनी जल्दी कहाँ ओझल हो गई ?

इस क्रूरकाल ने हमपर ऐसा वज्रपात किया कि हमारी प्राणाधार को ही हम से छीन लिया। ए काल ! तुझे जरा भी दया नहीं आई ! इन निराश्रितों पर क्या बीतेगी ? इस वज्रपात को हम कैसे सहेंगी ?

ओ माँ ! आप हमारे लिए क्या-क्या थीं ? इसका बयान करना मुमकिन नहीं है।

ओ वात्सल्यमयी स्नेह की अजस्त्रधार बरसानेवाली माँ ! तू आज पत्थर की बुत कैसे बन गई ? जिसे पाकर अपार शांति मिलती थी। अब कहाँ जाएँ ? कैसे पाएँ ? उस वात्सल्य के निर्झर को। हम उस वात्सल्यवारिधि, जीवननिर्मात्री, ज्योतिपुँज माँ को कहाँ पाएँगी ? दिल कहता है, **हे माँ !** क्या आप हम से आँख मिचौली का खेल तो नहीं कर रही हैं ? क्या आप हमें दर्शन नहीं देंगीं ?

पर आप इतनी निर्मोही हैं, हम जान न पाई ? हमने बहुतबार आवाजें लगाईं, रो-रोकर बुलाईं, पर नहीं आईं सो नहीं ही आईं। वह संध्या भी इतनी निष्ठुर-निर्मम बन गई। उसे हम पर जरा भी दया नहीं आई ?

हे माँ ! हम आपकी कहाँ खोज करें ?

ओ माँ ! तेरे बिना यह संसार सूना लगता है ! दुनिया कहती है तू रही नहीं, पर दिल

कहता है तू गई नहीं !

ओ दादीमाँ ! जीवन-सरिता के लिए आप ही किनारा थीं। अब कैसे बिताएँगी जीवन की घड़ियाँ ? किन से सुलझाएँगी मन की गुत्थियाँ ? यह मन बड़ा व्याकुल व बेचैन है माँ ? किसे मालूम वे सपने स्वाहा हो जाएँगे ? और अरमाँ अधूरे रह जाएँगे ?

गुरुमाता की चिरन्तन यादें मन को व्यथित-पीड़ित किये जा रही हैं !

हमारी गल्तियों की असलियत से भी अब हमें कौन परिचित करायेगा ?

हे संस्कारदात्री माँ ! प्रसंगोचित यह वाक्य भी अब हमें कौन कहेगा कि –

"मेरे मर जाने के बाद औरों के समान तुम भी दो आंसू बहाकर दो शब्द श्रद्धांजलि के समर्पित कर अपने कर्तव्य की इतिश्री मत समझ लेना ! अपनी साधु-मर्यादा का पूरा-पूरा खयाल रखना।"

हे ममतामयी माँ ! अब कौन टोंकेगा ? **"अब तो थोड़ी सो जाओ ! आँखें खराब हो जाएगी ? दिनरात पढ़ती-लिखती ही रहोगी या थोड़ा स्वास्थ्य का भी ध्यान रखोगी ?"**

माँ ! ओ माँ !! अब कौन समय-समय पर ये हितशिक्षाएँ देगा ? अब यह समझाईश कौन देगा ? प्रिय-सुदर्शना ? अपनी मान-मर्यादा अपने हाथ में है। अपने पद की गरिमा बनाए रखना अपने हाथ में है।

हे गुरुमैया ! अब यह कौन कहेगा ?

"जीव तू थारी संभाल, दूसरा ने मत देख।"

समझाईश देते हुए अब यह भी कौन कहेगा ?

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥

ओ उपकारिणी माँ ! आपका शुभ सान्निध्य... आपकी सुमधुर अमृतोपम वाणी का श्रवण, आपकी आत्महितशिक्षाएँ आदि की याद आती हैं और मुख से बरबस शब्द निकल पड़ते हैं -

'ते हि नो दिवसा गताः' ....
वे दिन बीत गए !

ओ माँ ! कैसे वे हमारे सुनहरे दिन थे ? जो समय-समय पर आपके मुखारविन्द से हर तरह की अनुभवगम्य शिक्षाप्रद बातें सुनने को मिलती थीं।

हे संयमदात्री माँ ! आपने रत्नत्रयी का दानकर हम पर जो असीम उपकार किया है, उसे हम कभी नहीं भूला सकतीं।

हे दादी माँ ! सचमुच आपके अनन्य श्रद्धालु भक्त आपके आकर्षण से ही खिंचे चले आते थे। अब वे कहाँ जायेंगे ?

हे माँ ! हमारी भी आश्रयदात्री तू चली गयी, अब हम किसका आश्रय पायेंगी ?

ओ गुरुमाँ ! प्रातःकाल वन्दन-पच्चक्खाण, दोपहर गौचरी और संध्या प्रतिक्रमण – ये

तीनों समय क्या अब हमें काटने को नहीं दौड़ेंगे ?

अब हम कहाँ जायेंगी ? यह प्रश्न भी हमारे सामने मुँह बाएँ खड़ा है ?
अब हम किसके व्यवहार को अपना आदर्श बनायेंगी ?

अब कौन देगा निरन्तर प्रेरणाएँ.....?

कौन पहुँचायेगा आप तक हमारा सन्देश ?

अब कौन ?

अब तो माँ की स्मृतियाँ ही शेष रह गई हैं ?

हे विशुद्ध शक्तिमय आत्मन् ! अब भी वैसे ही अनुग्रह का अनुदान कर अपनी ईश्वरीय ऊर्जा हम पर बरसाते रहना; ताकि हम आपके दर्शाये मार्ग पर चलने में सक्षम बन पाएँ !

गुरुणी मैया ! आप जहाँ भी हो, अन्तराशीष-दिव्याशीष बरसाएँ और आप हमारी सन्मार्गदर्शिका बनें । बस, आपसे यही माँगती हैं । यही विनम्र प्रार्थना है आपके श्रीचरणों में कि आप दिव्य शक्ति से हमारी सार-संभाल करती रहें ।

सूरज डूब गया, पर अब क्या हो सकता है ? वह तो डूब ही गया !

सूरज तो संध्या को डूबता है, प्रात:काल फिर उग आता है; किन्तु यह सूरज तो डूबा, सो डूबा । अब ऐसा प्रात:काल कभी न होगा क्या ? अब हमें इस महाप्रकाश पुँज रूपी सूरज के दर्शन कभी न हो सकेंगे ?

सूरज की प्रभा तो इस लौकिक अन्धेरे को ही दूर करती है, पर महाप्रभा की प्रभा तो हृदय के अज्ञानांधकार को दूर करती है ।

हे गुरुमैया ! अब आप हमारे जीवन-पथ पर अलौकिक प्रकाश किरणें बिखेरती रहें ताकि हमारे कदम सही दिशा में अनवरत रूप से प्रतिपल अग्रसर होते रहें और हम अपने लक्ष्य का संधान करने में भी सफल हो सकें । **विश्वास है आपका वरद हस्त हमें शक्ति, चेतना व नव-स्फूर्ति प्रदान करेगा ।**

4. अर्थ वैभव शब्द 'महाप्रभा' में....

'महाप्रभा' शब्द की व्याख्या एवं व्युत्पत्ति : - संस्कृत व्याकरण के अनुसार **'महाप्रभा'** शब्द की व्याख्या इसप्रकार है- 'महत्' शब्द से महान् बना, जो प्रथमा विभक्ति का रूप है । **'प्र'** उपसर्ग है और **'भा दीप्तौ'** धातु चमकने अर्थ में है । जिसका अर्थ होता है -(जो दीप्त करे) दीप्ति, कांति, आभा, तेज, प्रकाश आदि । जब हम 'महाप्रभा' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि 'महाप्रभा' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है । महा + प्रभा = महाप्रभा ।

महांश्चासौ प्रभा इति 'महाप्रभा' । यहाँ कर्मधारय समास होने से 'महाप्रभा' शब्द बना ।

प्रभा ही महान् है जिसकी, वह है महाप्रभा ।

'महा' यानी महान्

'**प्रभा**' यानी प्रकृष्ट रूप से जिसके चारों और चमक-प्रकाश-किरण, रोशनी, आभा, ओज व तेज बढ़ रहा हो, वह है प्रभा।

अर्थात् जिसकी ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी रत्नत्रयी की किरणें विस्तृत रूप से चारों दिशाओं (दिग्-दिगन्त) में व्याप्त हैं और यशःकीर्ति-पताकाओं की रोशनी दिन दूनी रात चौगुनी उत्तरोत्तर फैल रही है ऐसी है, महाप्रभा की प्रभा।

दूसरे शब्दों में कहें तो

म – मन
हा – हारिणी मूरति जिस किसी को
प्र – प्रकृष्ट रूप से प्रभावित करती है,
भा – भाती है, मनोहर लगती है
अर्थात् मनोहारिणी मूरत-सूरत जिस किसी को प्रकृष्ट रूप से प्रभावित करती है, मन को लुभाती हैं, वह है 'महाप्रभा'।

और.....

म – मणि-सी कांति है जिसकी
– मद-मत्सर, मोह-मायादि से कोसों दूर रहनेवाली दिव्य व्यक्तित्व की धनी।
हा – हार जिसने अपने जीवन में कभी मानी ही नहीं। सफलतादेवी ने जीवन में हमेशा विजयहार से सम्मानित किया था उन्हें।
प्र – प्रतिष्ठा-पूजा-पदादि से सदा-सर्वदा दूर रहनेवाली। प्रतिभा सम्पन्न आदित्य सम प्रकाश पुंज से युक्त थी जो।
भा – भास्कर सम प्रकाश-ज्ञान के प्रकाश में सदा लीन रहनेवाली, वह है महाप्रभा।

5. श्री महाप्रभा : अलौकिक-चिन्तन

श्रीमन्त बनो, भिखारी नहीं।
मन के उदार बनो, अनुदार नहीं।
हाजिरजवाबी बनो, बुद्धू नहीं।
प्रतिभावान् बनो, प्रज्ञाशून्य नहीं।
भाग्यशाली बनो, भाग्यहीन नहीं।
श्रीपाल बनो, 'धवल' नहीं।
जीवन्त बनो, मुर्दार नहीं।
महावीर बनो, कायर नहीं।

हाथी सम विशाल बनो, संकीर्ण नहीं।
राजेन्द्र बनो, रागी नहीं।
जयी-विजयी बनो, पराजयी नहीं।
अनुशासनप्रिय बनो, अनुशासनहीन नहीं।
मन - उत्साही बनो, अनुत्साही नहीं।
रत्नत्रय के आराधक बनो, विराधक नहीं।
रसविजेता बनो, रसासक्त नहीं।
होनहार बनो, हत्‌भागी नहीं।

6. 'महाप्रभा' की महिमा

('महाप्रभा' के अक्षरों का अद्‌भुत चमत्कार)

म - महाप्रभा की महिमा अपरंपार है।

- महकते सुगन्धित फूलों का एक सुन्दर गुलदस्ता है जिनका जीवन। जिसमें विनय, विवेक-विनम्रता, संयम-सदाचार-अनुशासन व सहिष्णुता आदि के रंग-बिरंगे फूल खिले हैं।

- मनोबल जिनका सुदृढ़ था। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत' इस कहावत को जिसने अपने जीवन में पूर्णरूप से चरितार्थ किया था। मन की दृढ़ संकल्प शक्ति ने सदा-सर्वदा विजयहार से अभिनन्दित किया जिसे।

- '**मन चंगा तो कठौती में गंगा**' इस कहावत के अनुसार पूज्याश्री 'मन-शुद्धि' पर अत्यधिक बल देती थीं। जिसका मन पवित्र है, शुद्ध, स्वच्छ व निर्मल है; उस शुद्ध सात्त्विक-हृदय में ही धर्म प्रतिष्ठित होता है। इसीलिए दशवैकालिक सूत्र में कहा है - "**धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ**"।

- '**मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः**'-मन ही मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण है। मन की धारा यदि ऊपर उठती है तो मानव को मोक्ष के निकट पहुँचा देती है और नीचे गिरती है तो सातवीं नरक की अंधेरी गुफा में धकेल देती है। मन जैसा सरल तत्त्व दुनिया में दूसरा कोई नहीं है।

- मन के भीतर ही न जाने कितने संकल्प-विकल्पों का खजाना भरा हुआ है। यदि मनोनिग्रह अथवा तप के द्वारा व्यक्ति इन संकल्प-विकल्पों पर विजय प्राप्त कर लें तो संसार की कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह सकती, लेकिन इसके लिए कठोर आत्मनियंत्रण होना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि जिसने मन को नियंत्रित कर लिया है, उसने विश्व की महान् विभूति

प्राप्त कर ली है। इसीलिए महापुरुषों ने मन को सारी शक्तियों का केन्द्र माना है। जैसे मुख्य जेनरेटिंग मशीन के फेल हो जाने पर सर्वत्र बिजली बंद हो जाती है, वैसे ही मन सारे शरीर का जेनरेटर है। इसको चालू रखना और साथ ही नियंत्रित भी रखना तेजस्वी महापुरुषों का ही काम है। सुख-सुविधाओं के बीच मन की लगाम ढ़ीली पड़ जाती है , किंतु पूज्याश्री ने सुख-सुविधाओं के बीच भी मन को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया और जिसने मन-मर्कट को अपने अधीन करने का प्रयास किया था।

- **मन साध्युं तेणे सघलु साध्यु,-एह वात नवि खोटी,**-संत आनन्दघन की ये पंक्तियाँ आपश्री के मन-मस्तिष्क में सदा गूँजती रहती थीं।

- "**मधुमती वाचमुदेयम्**"-अथर्ववेद में कहा है-मीठी बोली बोलना चाहिए। सत्य तो यह है कि वसन्त ऋतु की मधुर सुरभित बयार, शीतल जल और चंदन का लेप तथा वृक्ष की शीतल छाया भी मनुष्य के मन को वह आनंद नही दे सकती, जो आनंद मधुर-मीठी वाणी दे सकती है। इसीलिए मधुर-वाणी को संत तुलसीदास ने वशीकरण मंत्र कहा है -

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत-चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, तज दे वचन कठोर॥

पूज्याश्री कहती थीं-इस पृथ्वी पर मुख्य तीन ही रत्न हैं - अन्न, जल और मीठी बोली। संसार में अन्न और जल की उतनी कमी नहीं है, जितनी कि मीठी बोली की। मीठी वाणी आपका सहज स्वभाव था।

हाथी के दांत ऊपर से देखने में कितने लुभावने और आकर्षक होते हैं, किन्तु इन दांतों से हाथी बेचारा झाड़ की एक पत्ती भी नहीं खा सकता है। इसीलिए कहावत बनी कि "**हाथी के दांत खाने के और तथा दिखाने के और होते हैं।**" इसीतरह कुछ व्यक्तियों का स्वभाव होता है वे बोलते कुछ हैं और करते उसके प्रतिकूल हैं। उनकी कथनी और करनी में बड़ा अन्तर होता है। इसीलिए कबीरदासजी ने ठीक ही कहा है -

कथनी मीठी खांडसी, करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करे, तो विष अमृत होय॥

'**हाथी के दांत दिखाने के और खाने के और**' इस कहावत के अनुसार पूज्याश्री का जीवन जीने का तरीका नहीं था। प्रत्युत उनकी कथनी-करनी में एकरूपता थी। उनका बाह्याभ्यन्तर जीवन एक था।

- हार को जीत में बदलने की अदम्य शक्ति थी उनके अशक्त शरीर में, परन्तु कठोर अनुशासन के क्रम में।

- हास्य, रति-अरति, भय-शोकादि मोह-राजा की सेना को पछाड़ने के लिए पूज्याश्री ने सन् 1951 में वैशाख शुक्ला दशमी को मालवांचल राजगढ़ से महाभिनिष्क्रमण किया (प्रव्रज्या अंगीकार की)।

प्र-कृति (स्वभाव) में प्रतिभा थी
प्रकृति में नम्रता थी
प्रकृति में सरलता थी
प्रकृति में सहजता थी
प्रकृति में मधुरता थी
प्रकृति में जागरूकता थी
प्रकृति में प्रभावोत्पादकता थी
प्रकृति में गुणानुरागिता थी
प्रकृति में संघर्षशीलता थी
प्रकृति में धीरता थी
प्रकृति में स्वावलंबिता थी
प्रकृति में गंभीरता थी
प्रकृति में सहिष्णुता थी
प्रकृति में निर्मलता थी
प्रकृति में दूरदर्शिता थी
प्रकृति में परकातरता थी
प्रकृति में दृढ़ संकल्पी (निश्चयी) थी
प्रकृति में अप्रमत्तता थी
प्रकृति में स्नेहवत्सलता थी
प्रकृति में दृढ़ अनुशासनमयी थी

उपर्युक्त ये सारे गुण पूज्याश्री की प्रकृति में स्पष्टतः झलकते थे ।

वास्तव में आंतरिक गुण व्यक्ति की प्रकृति को बताते हैं । जैसा कि कहा है -

'आंतर परिणतिः कथयति प्रकृतिम्' । इस उक्ति के अनुसार पूज्याश्री की प्रकृति का कोई भी अंश लें तो प्रकर्षता को प्राप्त परिणति की अवश्य प्रतीति होगी । इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं ।

- **प्रभो** ! आपने मुझ पर महती कृपा की, जिससे मेरा सारा भव-मोह मिट गया । सांसारिक मोह-माया जाल से मुक्ति मिल गई । अब मैं आपकी सुखपूर्वक प्रार्थना-भक्ति कर सकूँगी । प्रभु-नाम, प्रभु-प्रार्थना मुझ अशान्त मन के लिए प्रशान्त मेघ है । अशान्त-सागर के लिए नौका भी है । संसार के अथाह सागर में दुःख और अशान्ति की शीतल आग में जब आत्मा डूब रही हो, तब प्रभु-नाम की नौका पर आरूढ हो जाए तो वह छोटी सी नौका भी हमें तटपर पहुँचा सकती है ।

- **प्रसिद्धि** से परे सिद्धिपथ की साधिका पूज्याश्री का चिन्तन था-"प्रभु का मुझ पर अनन्तानंत उपकार है । हे प्रभो ! घर के प्रति आसक्त न बनूँ, संसार की मोहमाया से निर्लिप्त रहूँ।

संभवतः इसीलिए मुझे वैधव्य मिला। हे करुणासागर प्रभो! मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगी। प्रभो! अब तो मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैं अन्तर्हृदय से आपकी भक्ति में, आपकी प्रार्थना में तल्लीन बन जाऊँ?

- प्रभो! मुझे ऐसा आत्मबल प्रदान करो कि मैं आपके धर्मशासन में सर्वात्मना समर्पित हो जाऊँ? वस्तुतः प्रार्थना अन्तःकरण का स्नान है, स्फूर्ति है और अतुल बल है। प्रभु-स्मरण जीवन के अज्ञान और मोह की राख हटाकर उसकी चमक में शत-गुणित वृद्धि करता है। प्रभु-प्रार्थना में जबर्दस्त शक्ति रही हुई है। प्रभु का उपकार किसी भी स्थिति में हमें नहीं भूलना चाहिए।

भा — भावना से सराबोर था जिनका जीवन। मैत्री, प्रमोद, करुणादि भावनाओं से प्रत्येक आराधना-साधना-क्रिया द्वारा पूज्याश्री अपने जीवन को खूब भावित किया करती थी। वास्तव में वे भावितात्मा थीं।

- **भाषा** समिति में वे पूर्ण उपयोगवंत थीं। कभी किसी भी गृहस्थ को आदेशात्मक वचन कहने में न आ जाय, सावद्य भाषा बोलने में न आ जाय और तुच्छ भाषा का प्रयोग न हो जाय, इसके प्रति वे पूर्ण जागरूक थीं। भाषा जिनकी हित-मित एवं संयमित थी। अन्य को भी वे भाषा पर संयम रखने का उपदेश देती थीं। जैसाकि उत्तराध्ययन सूत्र में निर्देश दिया है -

"असावज्जं मियं काले भासं भासिज्ज पण्णवं।"

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष समयानुसार, निर्वद्य एवं परिमित भाषा बोलें।

- **भा**—भारत को जिसदिन स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी। उस दिन एक अंग्रेज ने कहा था - **"भारत को अब जीभ छोटी बना लेनी चाहिए, क्योंकि भारत बोलता ज्यादा है और करता कम है।"** इसीलिए महापुरुषों ने वाचालता की निंदा की है। वाचालता और कर्मठता में सामंजस्य न होने पर मनुष्य की कीमत स्वयं घट जाती है। भगवान् महावीर का इसीलिए आदेश था-**"बहुयं माय आलवे"**-बहुत नहीं बोलना चाहिए। बड़ी-बड़ी बातें बनाना छोड़कर जो कर्मक्षेत्र में उतरता है, उसे ही सिद्द्धि प्राप्त होती है। पूज्याश्री ने भगवान् महावीर के उक्त सूत्र को जीवन में उतारा था। वाचालता उन्हें कत्तई पसन्द नहीं थी।

- **भा—'रण्ड पक्षीवत्'** अपनी आराधना-साधना में अप्रमत्त बनी रहीं।

- **भार**-बोझ नहीं बनना चाहती थीं वे किसी पर भी। स्वावलम्बन व आत्मनिर्भरता की साक्षात् देवी थीं वो।

श्री—श्रीमन्तों और गरीबों पर समान दृष्टि थी जिनकी।

- **श्रीमन्ताई** में वे कभी फूली नहीं और आपत्ति-विपत्ति में कभी घबरायी नहीं।

- **श्रीफल** के समान वे ऊपर से कठोर और भीतर से गिरी के समान मधुर व कोमल थी।

जी —जीवन जिनका नंदनवन जैसा था, जहाँ अनेक सुगन्धित गुण-पुष्प खिले हुए थे। जिनकी मधुर-मुस्कान निराश-हताश मनुष्यों को संजीवित करती थी।

- **जीवन** जिनका एक खुली किताब थी, जिसे हर कोई पढ़ सकता था। वहाँ न दंभ था, न छल था, न प्रपञ्च था। न किसीतरह का दुराव, बिखराव, अलगाव व छिपाव था। उनमें तप-त्याग था, पर त्याग के राग का गर्व नहीं था।

- **जीवन** जिनका एक चमकती पारसमणि के समान था।

- **जीवन** का एक भी अशुद्ध तथा पतित कार्य सारे जीवन की महत्ता के आगे प्रश्नचिह्न लगा देता है। अत: जीवन की चादर पर दाग न लगे, इसकी चिंता अनिवार्य है। एकबार भी यदि जीवन अथवा चरित्र पर कलंक लग गया तो उससे सारी साधना व्यर्थ हो जाती है। इसीलिए पूज्याश्री जीवन को शुद्ध-सात्त्विक रखने के लिए स्वयं सजग रहती थीं एवं अन्य को भी प्रेरणा देती थीं।

अ-हिंसा, अनेकान्त व अपरिग्रह का त्रिवेणी संगम जिनके जीवन में व्याप्त था।

- **अ**शांति के बीज हैं-क्रोध, मान, माया और लोभ। यह कषाय चतुष्क ही अशांति की जड़ हैं। इससे वे दूर थीं।

- **अनासक्ति सुख का कारण है और आसक्ति दुःख का कारण है**', इस शाश्वत सिद्धान्त को उन्होंने अपने जीवन में आत्मसात् करने का भरसक प्रयास किया था।

- **अ**संयम से हटकर जितना ही संयम की ओर आयेंगे, जीवन की सच्ची शांति हमारे निकट आती जाएगी। '**असंजमं परियाणामि संजमं उवसंपज्जामि**'—हे प्रभो ! मैं असंयम-पथ का पथ छोड़कर संयम की ओर जाऊँ ! ऐसा पूज्याश्री का चिन्तन था।

- **अ**नुशासनहीनता उन्हें जरा भी पसन्द नहीं थीं। वे स्वयं अनुशासन प्रिय थीं।

म —"**नसाधै सब सधै, सब साधै सब जाय**"-यह उनके जीवन का मूलमंत्र था। एक मन को जीत लेने पर (एक मन को साध लेने पर) पाँचों इन्द्रियों पर विजय हो जाती है। पाँचों इन्द्रियों पर विजय कर लेने के बाद पाँचों प्रमाद और पाँचों अव्रतों पर विजय पा सकते हैं और इसीतरह अपने अन्तर की दुनिया के तमाम शत्रुओं पर विजय कर लेते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में इसी बात पर प्रकाश डाला है —

"एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया पंच।
दसहाउ जिणित्ताणं, सव्व सत्तु जिणामहं॥" (उत्तरा. अ. २३, गाथा ३६)

मनोविजयी व्यक्ति ही इन्द्रियों और कषायों पर विजय प्राप्त कर सकता है।

पूज्याश्री जीवनभर मन को साधने में लगी रहीं।

— '**मरण समं नत्थिभयं**'- मरण के समान दूसरा कोई भय नहीं है, किंतु भगवान् महावीर की पवित्र वाणी तो कहती है-"**संत संति मरणंते शीलवंता बहुस्सुआ**"-चरित्रवान् बहुश्रुत महात्मा मरण के समय भयभीत नहीं होते। जिसने जीवन में सिंह के साथ युद्धकर विजय प्राप्त कर ली हो, वह भला गीदड़ से क्या डरेगा ? पूज्याश्री के मन में भी मृत्यु का भय नहीं था।

र —'**रसे जिते जितं सर्वम्**'-जो रस (स्वाद) विजेता हैं, वे सभी इन्द्रियों को जीत लेते हैं। पूज्याश्री ने रस-वृत्ति पर यानी रसना-जीभ पर विजय पा ली थीं। वे रसविजेत्री थीं।

- '**रसना में रस ना' तो कुछ ना**'। रसना अर्थात् जीभ में रस यानी मिठास-मधुरता नहीं तो कुछ भी नहीं। पूज्याश्री की रसना में रस था-मिश्री से भी अधिक मिठास थी, ईख से भी अधिक माधुर्य था। '**रस से मरे तो विष क्यों दें ?**' इस कहावत को चरितार्थ किया था उन्होंने।

र -रत्नत्रय एवं तत्त्वत्रय की आराधना-साधना में पूज्याश्री जीवन पर्यन्त मस्त रहीं। '**सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः**'-सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र ही मोक्ष-मार्ग की आराधना है। इस सूत्र को दृष्टिपथ में रखते हुए वे मोक्ष-मार्ग की ओर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती रहीं।

- रजोहरण पाकर तो पूज्याश्री कर्मरुपी रज-धूल को साफ करने में जीवन पर्यंत संलग्न रहीं।

हो —'**नहार बिरवान के होत चिकनेपात**' इस कहावत के अनुसार बचपन से ही वे विनय-विवेक-नम्रतादि की प्रतिमूर्ति थीं।

- **हो**म दिया जिन्होंने अपना समग्र जीवन संघ-समाज व शासन की सेवा के लिए।

7. अक्षर महिमा

श्री — श्री महावीर प्रभु के शासन में
म — मनोहर मालव माटी में हुई महाप्रभा
हा — हार बनी वो जन-जन के गले का
प्र — प्रमाद तज किया आत्मउद्धार
भा — भावना से भावित था मन जिसका
श्री — श्री राजेन्द्र-बगिया में खिला यह फूल
जी — जीवन की सद्गुण-सौरभ से सदा
म — महक उठा चहुँ दिशि का कण-कण
हा — हाथों से करती थीं सदा निज काम
रा — राही बन चल पड़ी मुक्ति-पथ की ओर
ज — जल कमलवत् रही जो जग में
सा — सात्त्विक था जीवन और उच्च विचार
हे — हेत के श्री चरणों में समर्पित हो....
ब — बनी तुम जिनशासन की शान

अ – अहनिश बढ़ता गया सुयश विस्तार
म – मरुधर माटी में सिधारीं स्वर्गधाम
र – रत्नत्रयी साधिके ! तुम्हें आराधूँ कैसे ?
र – रम्य बना दो तुम जीवन '**प्रियसु**' का
हे – हे, विनती यही आप से अब तो बारंबार ॥

8. सप्त मकार का सम्मिलन

यह योग संयोग ही है कि "**सप्त मकार**" मिल गए। मालव गौरव परम पूज्या संयम साधिका साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म.सा. के जीवन से जुड़े सप्त मकार इसप्रकार हैं :-

१. उनका जन्म मनोहर मालव माटी वरमण्डल ग्राम (मध्यप्रदेश) में हुआ।

२. उनका बचपन मनोहर मालव माटी वरमण्डल ग्राम (मध्यप्रदेश) में बीता।

३. उनका पाणिग्रहण मनोहर मालव माटी राजगढ़ (मध्यप्रदेश) में हुआ।

४. उनका महाभिनिष्क्रमण (दीक्षा) मनोहर मालव माटी राजगढ़-मोहनखेड़ा तीर्थ (मध्यप्रदेश) में हुआ।

५. उनकी बड़ी दीक्षा मनोहर मालव माटी राजगढ़ (मध्यप्रदेश) में हुई।

६. उनका महाप्रयाण मरुधर माटी धर्मनगरी धाणसा (राजस्थान) में हुआ।

७. और उनका कितना प्यारा नाम था महाप्रभा !

9. पूज्या दादीजी म. के जीवन के सूत्र

१. पर की आशा सदा निराशा।
२. आशा ओरन की क्या कीजे।
३. पराधीन सपने हुँ सुख नाँही।
४. संतोषी सदा सुखी।
५. अवधू सदा मगन में रहना।
६. एक साधै सब सधै।
७. परस्पृहा महादुःखं निस्पृहत्वं महासुखम्।

प्रायः विशिष्ट वस्तु से भी अतिपरिचय रखने से अवज्ञा या अवगणना होने लगती है। जैसे प्रयाग में रहनेवाले गंगा में नहीं नहाकर सदा कुएँ के जल से ही स्नान करते हैं।

10. संयमी जीवन की सुवास

(हमने पूज्याश्री के जीवन के बाह्य एवं आंतरिक पक्ष को अत्यन्त निकटता से देखा है, चूँकि हमने बचपन से ही उनके पावन सान्निध्य में जीवन के अमूल्य क्षण गुजारे हैं। इतने लंबे अनुभव के बाद इतना दावा अवश्य है कि वे चारित्रिक चुस्तता में काफी हद तक ऊँची थीं। साधना की जिन दुर्लभ ऊँचाइयों का आप स्पर्श कर चुकी थीं, सामान्य साधक उससे बहुत दूर है।

आप तप-त्याग, संयम, वैराग्य, स्वाध्याय, ज्ञान-ध्यान, सेवा-शुश्रूषा एवं कठोर चर्यादि की कट्टर पक्षधर थीं। इससे विपरीत प्रवृत्तियाँ और संयम-मार्ग में बाधक प्रवृत्तियाँ आपको तनिक भी पसन्द नहीं थीं।

प.पूजनीया श्रद्धेया दादीमाँ एक तेजोमय मणि थीं, जिनके व्यक्तित्व की कुछ ऐसी विरल विशिष्टताएँ थीं; जो आज भी जनमानस को अभिभूत कर रही हैं। आपके जीवन में सादगी, व्यवहार में संजीदगी, विचारों में विमलता, भावों में सरलता, आचार में अमलता और संयम में कठोरता आदि गुणों का अपूर्व संयोग देखने को मिलता था। उनकी यह विशिष्ट गुण-सुरभि आज भी सब के मन-मस्तिष्क को सुवासित कर रही है।

उच्चकोटि की चारित्रनिष्ठा आपके रोम-रोम में, अणु-अणु में रमी हुई थी। यही कारण था कि अन्तिम समय तक आपने चारित्र पालन में जरा भी शैथिल्य नहीं आने दिया। चारित्र के प्रति उनके हृदय में इतना अहोभाव और इतना बहुमान था कि जिसकी कोई सीमा नहीं।

आपके जीवन के गुलशन से कुछ अनमोल सद्गुण-सुमनों को चुन-चुन कर शब्द-सूत्र में पिरोने का बाल प्रयास किया है।)

★ अपने गुरुजनों का अवर्णवाद (निंदा) करना तो दूर रहा, आप उसे सुनना भी पसन्द नहीं करती थीं।

★ आप चूने के पानी का बराबर ध्यान रखती थीं। समय पूरा होने पर वे स्वयं ही खाली करतीं। हम पर भी विश्वास नहीं करती थीं। शाम को हम पानी में चूना डाल देतीं, फिर भी आप याद रखकर पूछती थीं कि "पानी में चूना डाला है या नहीं ?"

★ कोई कार्य करते हम से भूल न हो जाय, अतः पहले ही वे टोंक देती थीं।

★ आप हर महीने की वदि दसमी को श्री पार्श्वनाथ जन्म कल्याणक की आराधना, एकासने से जरूर करती थीं।

★ शाम को डोरी पर लटकता हुआ लूना, छलना, कपड़ा आदि देखतीं तो तुरन्त उठाने का कहती थीं। उड़ते हुए देखतीं तो कहतीं—"रातभर डोरी पर पड़ा रहेगा और उड़ता रहेगा तो

वायुकाय जीवों की विराधना होगी।" डोरी पर रखा हुआ यदि बाद में देख लिया तो रात को उसपर से कभी उठाने नहीं देती थीं।

★ जाली, खिड़की, दरवाजा आदि खोलते या बन्द करते समय हमें / गृहस्थ को उपयोग/जयणा/विवेक रखने का कहती थीं-"**धीरे से विवेकपूर्वक खोलो, विवेक से बन्द करो।"**
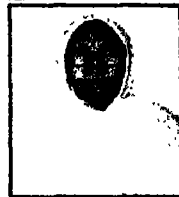
★ अस्सी-पिच्यासी वर्ष की आयु तक हमने देखा है-अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वतिथियों को चैत्यपरिपाटी (दर्शनार्थ) करने अवश्य पधारती थीं। **हम से कहतीं-"तुम पढ़ लिख रही हो तो रहने दो। मैं हो आऊँगी।"**

★ गौचरी करने के पहले तथा बाद में चैत्यवंदन, पोरिसी मुँहपत्ति, माँडला, संथारा पोरिसी आदि छोटी से छोटी नित्य की क्रियाओं में कभी भी आपसे विस्मृति नहीं होती थी।

किसी भी कार्य में व्यस्त होने पर भी समय होते ही स्मृति हो ही आती। यहाँ तक कि अस्वस्थ अवस्था में भी याद करके पूछतीं -"**मुझे अमुक क्रिया करवायी है या नहीं ?"**

★ जिन मन्दिर में मूलनायक भगवान् का चैत्यवन्दन करने के पश्चात् पार्श्वनाथ तथा सिद्धचक्रजी का लघु-चैत्यवन्दन रोज करती थीं।

★ अपने ठहरने के स्थान पर दीवार अथवा वहाँ रखी हुई गोदरेज की आल्मारी पर काँच/ शीशा लगा हुआ होता तो आप उसपर कागज / चूना लगवा देती थीं अथवा कपड़े का परदा डलवा देती थीं।

★ ट्यूबलाइटें, बल्ब आदि का उजाला करने पर गृहस्थ को टोंक देती थीं।

★ शयन करते समय पूरा खयाल रखती थीं कि पाँव की तरफ मंदिर, पुस्तक, मालादि कोई भी ज्ञानोपकरण, स्थापनाचार्यजी, तस्वीर, मूर्ति आदि तो नहीं है ?

★ आप कभी भी मच्छरदानी का उपयोग नहीं करती थीं।

★ पर्वतिथि को प्रायः उपवास-आयम्बिल आदि विशेष तप अवश्य करती थीं।

★ अपने पूज्य गुरुवर्य एवं गुरुवर्या के कालधर्म की तिथि पर आयंबिल / उपवास करती थीं।

★ मौन एकादशी के दिन 150 माला आप जरूर गिनती थीं।

★ आप प्रायः नित्यप्रति एकासन करती थीं।

★ आपको नाखून काटने के बाद उन्हें संवारना-सजाना पसन्द नहीं था। साथ ही कटे हुए नाखूनों को धूल के अंदर डालने का निर्देश देती थीं।

★ आप प्रतिदिन प्रातः देववंदन करती थीं।

★ हम लोग कभी भक्ति के अतिरेक से या यह सोचकर कि अब आपकी वृद्धावस्था है, दर्द होता होगा। इसलिए संथारे में आसन आदि ज्यादा बिछा देतीं अथवा सर्दी के दिनों में ज्यादा

ओढ़ा देतीं। पता लगने पर आप तत्काल हटा देती थीं।

★ आप मंदिरजी पधारतीं तब देखतीं कि पुजारी या कोई श्रावक परमात्मा पर वालाकूंची घिस रहा है तो तुरन्त ही उनका हृदय द्रवित हो उठता और पुजारीजी व श्रावक को मिठास से आशातना दूर करने के लिए कहतीं। अपने पास आनेवाले हर किसी को कहती थीं—"**पूजा नहीं करेंगे तो चलेगा, किंतु प्रभु-पक्षाल अपने हाथों से करेंगे तो मुझे बड़ी खुशी होगी। आप लोगों ने परमात्मा को अपना समझा ही नहीं। पुजारीजी के भरोसे भगवान् को छोड़ दिया है। वह वालाकूँची खच-खच करके घिसता है तो कितनी आशातना होती है तीर्थंकर प्रभु की? अगर वही आप अपने शरीर पर घिसे तो पता चले।**"

★ आपश्री को तला-गला, ज्यादा मिर्च-मसालेवाले पदार्थ, चटपटे नमकीन, मेवा-मिष्टान्न, दही, फल (केला छोड़कर) और हरी सब्जी (एकाध हरी सब्जी को छोड़कर) आदि बिल्कुल पसंद नहीं था। सात्त्विक निर्दोष गौचरी उन्हें पसन्द थी।

आप गौचरी वापरने और वहोरने में भी बड़ी उपयोग रखती थीं। जयणा उनका प्राण था। गौचरी वापरने सम्बन्धी कितने ही प्रसंग हमने देखें, जिसमें आपकी दृढ़ता के स्पष्ट दर्शन होते थे।

★ आप एलोपेथिक इलाज, केप्सूल, टोनिक, विटामिन आदि लेने की सख्त विरोधी थीं।

★ आप अजीर्ण-ज्वर आदि बीमारी में, रोग-मुक्त होने के लिए उपचार करने-करवाने के बजाय लंघन (उपवास) कर लेती थीं। जिससे ज्वर-जुकाम व अजीर्णादि रोग स्वत: ही दूर भाग जाता था। **आपकी इस सम्बन्ध में यह अवधारणा थी कि-"रोग में खाने-पीने से रोग और अधिक प्रबल होता है। ज्वर-जुकाम की अवस्था में खाना-पीना विष के समान है और अजीर्णादि में खाना रोगों को निमन्त्रण देना है। ऐसी स्थिति में उपवास करना ही श्रेयस्कर है। राजस्थानी कहावत है-"ज्वर, जाचक अरु पावणा लंघन तीन कराय" इन सबका भाव है कि रोग होने पर भोजन नहीं करना चाहिए। वे कहती थीं-'लंघनं परमं औषधम्'।**

★ सुबह मंदिर जाने से पूर्व या उसके पश्चात् आप नित्यप्रति नवस्मरण-स्तोत्र आदि का पाठ अवश्य ही करती थीं।

★ आपको घर-गृहस्थी की बातें करना बिल्कुल पसंद नहीं था।

★ आपको संयम पालन की दृष्टि से स्थंडिल-मात्रा (बड़ीनीति-लघुनीति) हेतु सूखी, निर्जीव खुली जगह पसंद थी।

★ आपको किसी की निंदा-विकथा करना जरा भी पसंद नहीं था।

★ कोई भी चीज इधर-उधर अव्यवस्थित रखी हुई होती तो आप उसे उठाकर समुचित स्थान पर रख देती थीं।

★ परात, घड़े-मटके आदि कुछ भी चीज खुली पड़ी होती तो आप कपड़ा ढँककर रखती थीं।

★ आप कागज का एक टुकड़ा भी इधर-उधर व्यर्थ नहीं जाने देती थीं। संभालकर हमें दे देती थीं। यदि जरूरत पड़ने पर हम कॉपी (नोटबुक) में से कागज निकालतीं या कभी कागज फाड़तीं तो हमें बिना किसी लाग-लपेट के वे तुरन्त टोंक देती थीं। कहती थीं - "**प्रियदर्शना ! सुदर्शना ! क्युं कापियाँ फिजूल खराब करी री हो ! क्युं कागज फाड़ाफाड़ी करो हो ! लो, यो कागज को टुकड़ो। कागज कितरा मेंगा आवे। तुमाने सीदा मिल जाय, अणी वास्ते कई मालम नी पड़े। यो तो जो कमावे, वणीने मालम पड़े के पैसो किस्तर आवे। संघ-समाज की कणी भी चीज को कदी दुरूपयोग नी करनो। नी तो भरुच का पाड़ा वेड़ने पाणी भरनो पड़ेगा।**"

★ आपको विहार में डोली, हाथलॉरी, व्हीलचेअर, साइकिल आदि कुछ भी वाहन व्यवस्था साथ रखना बिल्कुल पसंद नहीं था।

★ आपको प्रमाद, सुस्तीवाड़ा और निष्क्रियतायुक्त आलस्य भरा जीवन अर्थात् **मरियल बैल जैसा जीवन जीना पसन्द नहीं था।**

★ विशेष (अपरिहार्य) परिस्थिति को छोड़कर आपको अपने निमित्त बनाई हुई गौचरी कत्तई पसन्द नहीं थी।

★ **कामचोर बनना आपको कत्तई पसन्द नहीं था।**

★ आपको पराधीनता-परनिर्भरता कत्तई पसन्द नहीं थी।

★ आपको संयमी जीवन की संपूर्ण दैनन्दिनी चर्या अपने हाथों से करना खूब पसन्द थी। हम से भी यही कहती थीं - "**काम करे वो कामण करे**"।

★ किसी को बार-बार तकलीफ देना आपको पसन्द नहीं था।

★ आपको किसी से भी पगचंपी (पैर दबवाना) करवाना तनिक भी पसन्द नहीं था।

★ आपको नित्यप्रति एक घर से गौचरी लाना कत्तई पसंद नहीं था।

★ आपको भीषण गर्मी में भी पंखा, कूलर आदि का उपयोग करना कत्तई पसन्द नहीं था।

★ भयंकर सर्दी में भी गृहस्थ के ऊनी कम्बल, स्वेटर, मोजे, हीटर आदि का उपयोग करना आपको कत्तई पसन्द नहीं था।

★ विहार में स्थापनाचार्यजी सीधे और नाभि से ऊपर के भाग में रखने के लिए विशेष सूचन करती थीं।

★ आप विहार यात्रा में अपने उपकरण नौकर अथवा साथ चलनेवाले किसी भी भाई-बहन से उठवाने के पक्ष में नहीं थीं।

हमें भी हरदम यही प्रेरणा देती रहीं कि "अपना सामान स्वयं उठाओ, स्वयं नौकर बनो। स्वावलम्बी बनो। अपने को भार लगता है तो उसे नहीं लगता है क्या ? जैसा अपना जीव है, वैसा दूसरों का"। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का सिद्धान्त उनके जीवन में

चरितार्थ हुआ था।

★ आपश्री को सामने लाया हुआ आहार-पानी लेना पसन्द नहीं था और विहार में विशेष परिस्थिति में लेना पड़ता तो उन्हें बहुत पश्चात्ताप होता था।

★ आपको बारिश में गौचरी-पानी लाना कत्तई पसन्द नहीं था।

★ आपको वर्षावास के अतिरिक्त बिना किसी विशेष कारण के वृद्धावस्था में भी एक जगह स्थिरवास करना पसंद नहीं था।

● आपको दीवार का सहारा लेकर बैठना अच्छा नहीं लगता था। कभी-कभी हम निवेदन करती-"महाराजजी! हम तो सहारा लेकर बैठती हैं। आप भी तो थोड़ा सहारा लेकर बैठिये।" तब कहतीं-"**अभी से सहारा लेकर बैठने की आदत पड़ गई तो आगे बुढ़ापे में क्या करोगी ?**" वृद्धावस्था में भी बिना दीवार का सहारा लिए कई घंटे स्वाध्याय, जाप-मालादि करती रहती थीं।

★ अपने पहनने, ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र-आसन, कम्बली, चादर आदि वस्तुएँ इधर-उधर बिखरी हुई पड़ी रहे, यह भी आपश्री को कत्तई पसन्द नहीं था। **वे कहती थीं-"अपनी हर चीज व्यवस्थित और संभाल कर रखनी चाहिए। यह कोई दुकान, बाजार, हाट या उकरड़ा थोड़े ही है। एक यहाँ रखी है तो दूसरी ओर कहीं रखी है।"**

★ **गृहस्थों को बार-बार पत्र लिखना भी आपश्री को पसंद नहीं था। कभी-कभी हितशिक्षा के रूप में समझाईश देती हुई कहती थीं कि-"देखो, साध्वी होकर हमें पत्र लिखने का समय मिलता है और गृहस्थ को एक भी पत्र लिखने का समय नहीं मिलता है, तो फिर हम क्या व्यर्थ बैठे हैं जो अपना समय बरबाद करें ? हमें भी अपने ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय आदि में मस्त रहना चाहिए।" वे पुरानी स्मृतियाँ आज भी हमारे मन-मस्तिष्क में चक्कर काट रही हैं। आपको पारिवारिक जनों से भी अधिक पत्राचार करना पसन्द नहीं था। हमने देखा है कि आप स्वयं पारिवारिक जनों एवं भक्तों को कभी-कभी सुख-समाधि सम्बन्धी दो शब्द लिख देती थीं। यही कारण था कि हम में भी दीक्षा लेते ही वैसे ही संस्कार डालें।**

मन नहीं लगता !

यदि किन्हीं साधु-साध्वी भगवन्त के मुँह से आपश्री यह सुन लेतीं कि अमुक जगह अथवा जहाँ श्रावक-श्राविकाओं / लड़के-लड़कियों का आवागमन अधिक नहीं होता हो, ऐसे उपाश्रय में, हमारा मन अकेले में नहीं लगता। आपको बड़ा आश्चर्य होता कि अरे! श्रमणी जीवन में '**मन नहीं लगता**'! बड़ी अजब गजब की बात है। आपकी यह सोच थी कि श्रमणी जीवन में ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय के लिए जन कोलाहल से रहित नीरव, शान्त वातावरण उपयुक्त होता है। '**श्रमणी जीवन में मन नहीं लगता !**' ये शब्द यदि हमारे मुँह से निकले तब तो......

अनावश्यक परिचय

गृहस्थ से ज्यादा परिचय रखना, संपर्क करना आपको कत्तई पसन्द नहीं था। **उनकी यह अवधारणा थी कि गृहस्थों का अनावश्यक परिचय श्रमणी जीवन में दूधपाक में जहर जैसा है। 'अतिपरिचयादवज्ञा'**। गृहस्थों से अधिक मेल-मिलाप एवं संपर्क रखना भविष्य में हानिप्रद होता है। अगर कोई जिज्ञासु आए, बैठे, उन्हें धर्म के दो शब्द सुनाकर सन्मार्ग पर लगाना अपना कर्तव्य होता है।

बस, श्रमणी जीवन में गृहस्थों से इतना परिचय पर्याप्त है। इसके बाद **'कोई आये तो भला, नहीं आये तो भी भला।' अपने ज्ञान-ध्यान में मस्त रहो।**

हमने देखा है, दस दिन भी यदि कोई भक्त उनके पास नहीं आता, तो वे कभी याद नहीं करती थीं। उन्हें उनपचास वर्षों की संयम-यात्रा में कभी भी ऐसा महसूस नहीं हुआ कि 'फलानेचंदजी' नहीं आये ? उनका गाढ़ परिचय था अपनी माला-जाप व पुस्तक से। उनके जीवन की यह खूबी थी-**'अपनी माला और अपनी पुस्तक भली। न ऊधो का लेना न माधो का देना'**। **कभी किसी से कुछ नहीं कहना, अपने हाल में मस्त रहना-यह था उनके जीवन का आदर्श !** वस्तुत: उनके जीवन का मूलमंत्र था - **''आप स्वभावमाँ रे, अवधू सदा मगन में रहना।''** जब भी वे पुस्तक पढ़ने बैठतीं, उसमें एकाकार हो जातीं। कौन आया, कौन गया, कौन कहाँ, क्या बात कर रहा है ? उन्हें उनसे कुछ मतलब नहीं था।

शुभस्य शीघ्रम्

आपश्री कोई भी काम तत्काल कर लेने के पक्ष में थीं। विलंब बिल्कुल पसन्द नहीं था। यदि कोई सद्‌गृहस्थ आप से निवेदनपूर्वक कहता कि महाराज साहब ! यह कार्य कल कर लूँगा, नियम कल ले लूँगा। तत्काल आप उनसे पूछतीं-''क्या तुमने गारण्टी ले रखी है कल की ? काल पर जिसने विजय पा ली हो, वही कल की बात करता है।''

''अरे, भाई ! क्षण का भी भरोसा नहीं ! कल किसने देखा है ? इसलिए 'शुभस्य शीघ्रम्'—शुभ कार्य को कल पर मत टालो।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करेगा कब ? ॥

यह कल कभी पूरा होनेवाला ही नहीं है। यह जीवन अंजलि-जलवत् दिन-प्रतिदिन जा रहा है। यह चिंतन करो-**'बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।'**

सच है हर क्षण का सदुपयोग ही मनुष्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचाता है। समय के साथ गतिशील होना ही वांछित लक्ष्य की प्राप्ति भी कराता है।''

बहुमूल्य वस्तु त्याज्य

आपको चश्मे की कीमती फ्रेम, कीमती पेन, कीमती घड़ी, सेल-घड़ी, चैनवाले चमड़े के पर्स-पॉकिट आदि कोई भी कीमती वस्तु रखना जरा भी पसन्द नहीं था। आपका कहना था

कि-"**संयमी जीवन में ये कीमती वस्तुएँ शोभा नहीं देती हैं।**" उन्होंने स्वयं कभी भी कीमती वस्तुओं का उपयोग नहीं किया, और न ही इनका उपयोग हमें करने दिया।

आपकी यह सोच थी कि ज्यादा कीमती चीजें रखने से उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न हो जाती है और गुम हो जाने पर दु:ख होता है। अगर कोई उठा ले गया तो उसका भी दु:ख होता है। किसी पर शंका भी हो जाती है तथा व्यर्थ में कर्मबंधन हो जाता है।

आपको क्रेप, फूलवायल, चीकन, पोलिस्टर, नायलोन आदि कीमती आकर्षक वस्त्र वापरना कत्तई पसन्द नहीं था। कपड़े की टापटीप भी आपको पसन्द नहीं थी। इसका मतलब यह भी नहीं कि वे वस्त्र अव्यवस्थित रखती थीं। साड़ा, चादर आदि पहनने-ओढ़ने की साध्वी जीवन में जो मर्यादा बताई गई हैं, तदनुरूप वस्त्र धारण करने की आग्रही थीं। आधा सिर ढँकना, पेट खुला दिखना, हाथ की कोहनी खुली रखना, पांगरनी (छोटी चादर) छोटी ओढ़ना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं था। बहुत ही मर्यादित एवं संयमित जीवन था उनका। **वो एक आदर्श थीं, हमारे जीवन में सदा-सर्वदा प्रेरणा की सशक्त स्त्रोत।**

साधुता का दूषण

आपको प्रारंभ से ही पन्द्रह दिन पूर्व कपड़े का काप निकालना (कपड़े धोना) कत्तई पसन्द नहीं था। कोई विशेष परिस्थिति हो तो बात अलग है। आपश्री यह भी कहती थीं- "साध्वी-जीवन में रोज-बरोज या बार-बार कपड़े का काप नहीं निकालना चाहिए। यह साधुता का दूषण है। इस संदर्भ में आप निम्नांकित पंक्ति दुहराती थीं-'**साधु ने तो जाया मेला ज कपड़ा सोवे**' बार-बार काप निकालने (कपड़े धोने)से ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय में बाधा पहुँचती है।"

जब कभी हम लोग पन्द्रह-बीस दिन या महीने में आप से काप निकालने के लिए वस्त्र माँगती तो उनके मुँह से ये ही शब्द निकलते थे "रोज रोज क्या काप निकालना ? गंदे कहाँ हुए हैं ?" हम निवेदन करतीं-महाराजजी ! आपको याद नहीं है। महीनाभर हो गया। "क्या हो गया महीना हुआ तो ?" छोटे बच्चे की भाँति जिद्द करके जबर्दस्ती दो कपड़े लेती थीं। जब तक उनके हाथों में शक्ति रही, प्राय: हम से काप नहीं निकलवाया, बल्कि कभी कभार वे हमारे कपड़ों का काप निकाल देती थीं।

स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता उनके जीवन के अभिन्न अंग थे।

आर्यमर्यादा की हिमायती

आपश्री आर्यमर्यादा की हिमायती थीं। भारतीय देश की अनमोल थाती जैसी आर्य संस्कृति के प्रति उन्हें अत्यन्त गौरव था। आर्य मर्यादा के खिलाफ खानपान, रहन-सहन, आचार विचार, चाल-चलन, उद्भटवेष, नेलपॉलिश, होठपॉलिश (लिपिस्टिक), क्रीम-पाउडर

आदि उन्हें कुछ भी पसंद नहीं था।

इस संदर्भ में उनकी निगाहें अपने पास आनेवाली बहनों पर बहुत जल्दी पहुँच जाती थी। नेलपॉलिश, लिपिस्टिक, क्रीम-पाउडर पोतकर आनेवाली बहनों / युवतियों को आप तुरंत टोंक देती थीं। बहनों का दर्शन-वंदन का कार्य अभी पूरा भी नहीं हो पाता, उसके पूर्व ही आपकी मीठे शब्दों में सुंदर-सरस समझाईश शुरू हो जाती थी। खूबी इस बात की थी कि आपकी समझाने की शैली ही कुछ ऐसी थी कि उनके द्वारा कही गई बात का कोई बुरा भी नहीं मानता था और न कभी नाराज होता था।

बड़ी आत्मीयतापूर्ण तरीके आप कहती थीं-"अरे ! बेना ! यो कई पेरीने अई हो, नखापे कई लगायो हे, गाल पे कई पोत्यो हे, होठां पे कई रंग्यो हे। म्हें कई भी नी समझु हूँ, जाणु भी नी हूँ। जो किताबा में वाचूँ हूँ, वो थाने बतइरी हूँ। बुरो मत मानजो हो बेना ! नाराज मती वीजो। म्हें तुमारा अच्छा वास्ते कइरी हूँ। म्हारी समझी ने कइरी हूँ हो। इ चीजा कितरी नुकसानदायी वे हे शरीर वास्ते। कितरा जीव की हिंसा वे अणा चीजा में। नख पे नेलपालिश ने होठां पे लिपिस्टिक-लाली लगावो ने पछे इ खावा में आवे, पेट में जाय तो शरीर में कितरी बीमारियाँ पैदा वेइ जाय। अणीवास्ते म्हें तो यो ज कुहूँ के एसी हिंसात्मक चीजा को कदी उपयोग नी करनो। दूसरी वात एसो उद्‌भट वेश पेरीने भगवान् ने गुरु का दरबार में कदी नी जाणो। अपणा अंगोपांग को प्रदर्शन वे एसा कपड़ा कदीय नी पेरना।

बेना ! एसो वेश पेरनो ने एसी चीजा को उपयोग करनो के जो अपणा खानदान, अपणा कुल-घराणा ने शोभा दे। यो विचार करनो के अपणो देश कुणसो ? अपणो घराणो केसो हे ? अपणी संस्कृति केसी हे ? अपणे कणी कुल में जन्म्या हाँ ? अणी सब वाता पे खूब उंडो विचार करजो। म्हें कइ गलत केइरी वुं तो मिच्छामि दुक्कडं।"

इसतरह समझाकर आप ठेठ गले के नीचे उतार देती थीं। अनेक बहनें/युवतियाँ उसीसमय आप से संकल्प कर लेती थीं। वे बहनें-लड़कियाँ आज भी पूज्या दादीजी महाराज साहब को सतत स्मरण करती हैं।

यादगार महापुरुषों की

आप फोटो खिंचवाने की भी विरोधी थीं। उन्हें जब पता लग जाता कि फोटोग्राफर फोटो लेने आए हैं। उस वक्त नाराज होकर उन्हें स्पष्ट मना कर देती थीं। इतना ही नहीं, श्रावकों को भी बिना किसी लाग लपेट के निर्भीकता से कहती थीं-"**अणी भूतने घरमें क्यूं घाल्यो हे ? व्यर्थ में पैसो क्यूं बर्बाद करो हो ! आपका कने घणो पैसो हे तो बिचारा अपणा घणा गरीब साधर्मी भाईबहन हे, वणा ने वांटी दो।" आपकी वाणी सुनकर संघ के लोग हँस जाते और कहते कि महाराज साहब ! आपकी यादगार चाहिए। आपकी अनुपस्थिति में**

हम फोटो के दर्शन करेंगे ।

"अरे ! भाग्यशाली ! म्हारा दर्शन ! म्हारा में इतरी योग्यता कठे जो आप म्हारा दर्शन करो । अरिहंत परमात्मा और गुरुभगवंतां का दर्शन से आत्मा को उद्धार वेगा। म्हारी कई यादगार ! यादगार तो महापुरुषाँ की वेणी चइये ।"

पर जब कभी बड़े बड़े कार्यक्रमों में, जहाँ आपश्री का अपना बस नहीं चलता । जहाँ अपने अधिकार की वस्तु नहीं होती, वहाँ वे चुप्पी साध लेती थीं और मुँह नीचे की ओर कर लेती थीं ।

संयमी जीवन की बात तो दूर रही । आपश्री गृहस्थों को भी समझाती थीं-**"क्युं इतरा फोटु खेंचाइने भेरा करो हो । थांने कुण याद करेगा ।" तीर्थंकर ने भी लोग याद नी करे तो, अपणाने कुण याद करेगा । कितनी अच्छी सोच थी आपश्री की"** ।

पाठकगण सोच सकते हैं कि आपश्री जब फोटो खिंचवाने की विरोधी थीं, तो फिर प्रस्तुत ग्रंथ में आपश्री के इतने फोटो कहाँ से आए ? आज कम्प्युटर का युग है । आप जैसे भाग्यशालियों द्वारा छलछद्म करके लिए हुए हैं ये फोटो । उनकी जानकारी में नहीं है । दो चार फोटो बड़ी मुश्किल से येन केन प्रकारेण उन्हें समझा बुझाकर लिए गए हैं । शेष समस्त चित्र उनके अनजाने में ले लिये गये थे, जो आज हमारी अमूल्य धरोहर के रूप में हमारे पास सुरक्षित हैं । इन्हीं के परिणाम स्वरूप मधुर स्मृतियों को उच्च आयाम मिले है जो हमारे लिए वरदान स्वरूप सिद्ध हुए हैं ।

नियमित जीवन की साधिका

नित्यप्रति दोपहर को आराम-शयन करना आपश्री को कत्तई पसन्द नहीं था । आप कहती थीं-**"आहार को जितना बढ़ाओ, उतना बढ़ता है, जितना घटावो उतना घटता है । वैसे ही नींद भी घटाने से घटती है और बढ़ाने से बढ़ती है ।**

रोज खा पीकर गधे की तरह क्या पड़े रहना ? हाँ, यदि स्वास्थ्य खराब हो, थकावट हो, लम्बा विहार हो अथवा अन्य किसी कारण से दिन में विश्राम/शयन करना पड़े तो बात अलग है ।"

अन्तिम अवस्था में पिछले दो तीन वर्षों से हम आपश्री को निवेदन करतीं कि महाराजजी! आप एकासना करके उठी हैं । अतः थोड़ा आराम कर लीजिए । कहतीं- "संयमी जीवन में रोज रोज क्या आराम करना ? ऐसे आदत बिगड़ जाती है ।" दिन में नित्य सोने के प्रति आपश्री को खूब नफरत थी । दिन में भी आप सत्साहित्य / चरित्रों का बड़ी एकाग्रता के साथ वाचन किया करती थीं ।

नित्य रात को नौ-दस बजे संथारा करना (शयन करना) और प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त से पहले जग जाना । आपश्री का गृहस्थजीवन से ही यह नियम बना हुआ था कि प्रातः तीन बजे जग

जाना। अलार्म की या किसी को जगाने की भी जरूरत नहीं। तीन बजे स्वत:नींद टूट जाती। ऐसी नियमितता उनके जीवन में बन गई थी और कभी-कभी तो रात को दो बजे ही उठकर बैठ जातीं। उठकर नवकारमंत्र, गुरुदेव आदि की माला, फिर प्रतिक्रमण, पड़िलेहन, नित्य का स्तोत्रपाठ, नवस्मरण, मंदिर आदि की प्रात:कालीन चर्या से छ:-सात बजे तक निवृत्त होकर फिर सत्साहित्य वाचन में लीन हो जाती थीं। इस बीच दर्शनार्थ आनेवाले श्रद्धालु भक्तों को पच्चक्खाण व माँगलिक भी प्रदान करती थीं।

नियमित जीवन की साधिका को शत शत नमन।

संयम व साधना की ऊँचाइयों को स्पर्श करनेवाली उस उत्कृष्ट एवं पावन आत्मा को नमन।

सफलता की कुंजी

आप बिना भूख के न तो स्वयं खाने के पक्ष में थीं और न किसी को जबर्दस्ती खिलाने के पक्ष में थीं। आप सदा इसी बात पर बल देती थीं कि-"**हमेशा मीठा भोजन करना चाहिए**"। यानी जब भूख लगे तभी खाना। इसका मतलब यह भी नहीं है कि रात हो या दिन, कभी भी कुछ खा लेना। ईरानी होटल में खा लेना और इस्लामी होटल में भी खा लेना।

'हमेशा मीठा भोजन करना चाहिए' से उनका तात्पर्य यह था कि-"निर्धारित समय पर भूख लगे, तभी खाना। अन्यथा नहीं। बिना रूचि के भी नहीं खाना। भूख लगने पर ही खाना।"

आपश्री कहती थीं-"**भूख न देखे सूखी रोटी, नींद न देखे टूटी खाट। प्यास न देखे धोबी घाट**"। भूख लगेगी तो पेट स्वयं माँगेगा। बिना भूख लगे इस पेट की पेटी में क्यों डालना ?"

उनका एक ही सिद्धान्त था "**समय पर खाना, समय पर सोना और समय पर उठना**"।

आपश्री को ठूंस ठूंस कर खाने में भी कत्तई विश्वास नहीं था। पन्द्रह-बीस मिनट में एकासना कर लेती थीं। हम उनसे निवेदन करती ही रह जातीं कि महाराजजी! थोड़ा और लीजिए! तो कहतीं-"**अरे! बेना! घर परायो हे पर पेट परायो थोड़ीज हे। म्हें अठे कई पामणी थोड़ीज अई हूँ जो तुमारा कने मनवार करऊँ। एकदिन की वात तो हे नी जो भूखो रेवाय। भावे जितरो खई ल्यो। घणो ठूंस-ठूंस ने खाणो ने बीमार वेणो कणिये सिखायो। 'निगा राखिने खावो तो वेदा के क्यूं जावो ?' अणीवास्ते अपणा ज्ञानी भगवंताएं पेलाज के द्यो हे के उणोदरीतप (कम खावा वालो) करवावालो कदी बीमार नी वे। या भूख (पेट) कणी की सगी नी हे।** अणीवास्ते ज क्यो हे के -'**भूख रांड भूंडी ने आँख जाय उंडी**'।
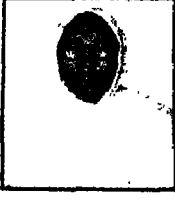
कम खाना, गम खाना, नम जाना एवं संयमित रहना ही जीवन में सफलता की कुंजियाँ हैं।

अनुशासनप्रियता

श्रमणी जीवन में में हंसी ठट्ठा करते रहना, गपशप करते रहना, अनुशासनहीनता बरतना, मान-मर्यादा का भंग करना, गुरुजनों की अवज्ञा करना आदि साध्वाचार के विपरीत प्रवृत्तियाँ आपको बिलकुल पसन्द नहीं थीं।

आप बड़ी ही अनुशासन प्रिय थीं। चारित्र जीवन अंगीकार करते ही दस-बारह साल तक आपकी हम पर कड़ी निगरानी रही और वह इसलिए कि कहीं जीवन बिगड़ न जाय। उन्हें अध्ययन से भी अधिक चिंता थीं हमारे जीवन की। यह कहें तो कोई अनुचित नहीं होगा कि **हम पर पूरा मिलेट्री शासन था।**

हमें अच्छीतरह याद है कि दीक्षा लेते ही श्रीराजमलजी जमींदार (संसारपक्षीय पिताश्री) नें स्पष्ट कहा था कि देखो, आप दोनों एक बात का पूरा खयाल रखना अपनी गुरुमाता (मेरी माँ) को जरा भी कष्ट मत पहुँचाना। उनकी बातों को उपेक्षित मत कर देना। यदि उनकी ओर से आपकी तनिक भी शिकायत मुझे सुनने को मिली तो फिर मेरे जैसा कोई बुरा नहीं है। मैं यह कत्तई बरदास्त नहीं कर सकता हूँ। वे जैसा कहें, वैसा कर लेना है। बस, मुझे आपसे और कुछ नहीं कहना है! शेष उन्हें संभालना है।

'निज पर शासन फिर दूसरों पर अनुशासन' ही उनके जीवन का मूल मंत्र था।

स्वावलंबन-सादगी की सजीव प्रतिमा

सादगी आप का ट्रेडमार्क था। वे प्रत्येक चीज में सादगी ही अपनाती थीं।

कोई भी वस्त्र पूरी तरह से जीर्णशीर्ण नहीं हो जाता, तबतक उन्हें पहनना ओढ़ना नहीं छोड़ती थीं। फटे हुए वस्त्रों को भी आप सदा सिलकर उपयोग में लेती थीं। इन आँखों ने, नब्बे वर्ष की उम्र में भी उनके हाथों में सुई धागा देखा है, क्योंकि दर्जी या किसी श्राविका से कुछ भी सिलवाना उन्हें पसंद नहीं था। कुछ भी सीना हो तो वे स्वयं अपने हाथ से सिलती थीं। यदि कोई बहन आप से निवेदन करती महाराज साहब! आप इस उम्र में क्यों सिल रही हैं? मुझे दे दीजिए। मैं अभी सिलकर दे दूँगी। कहतीं-"**नहीं, बहन! हमारा काम हमें ही करना है**"।

कभी कभी हमलोग भी कहतीं कि महाराजजी! आप रहने दीजिए। किसी से सिलवा लेंगी। आप कहतीं-"नहीं, अपने वस्त्र तो अपने हाथों से ही सिलना चाहिए।" हम अपने वस्त्रों को कभी किसी को सिलने के लिए देना चाहतीं। तब भी आप साफ मना करते हुए कहतीं-"नहीं, रहने दो। किसी को नहीं देना है। मैं ही सिल दूँगी धीरे-धीरे।"

विगत सैंतीस वर्षों में हमने उनकी मौजूदगी में कभी किसी भी वस्त्र की सिलाई नहीं की। सच तो यह है कि उनकी उपस्थिति में सुई धागा हाथ में लेने का कभी अवसर ही नहीं आया। प्रारंभ से लेकर अंतिम समय तक हमारे सारे वस्त्रों को आप ही सिलती थीं।

फटा हुआ, संधा हुआ, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र यदि कोई भाई बहन आपके शरीर पर धारण किए देख लेते तो निवेदन करते महाराज साहब ! क्या संघ में कोई कमी है जो आप ऐसा पहनती हैं ? प्रत्युत्तर में कहतीं-**"संघ सदा जयवंत है । संघ में क्यों कमी होगी ? संघ तो साधु साध्वी भगवंत के लिए पलक पावड़े बिछाए रहता है ।"** आपने जीवनभर सूती और ऊनी वस्त्रों के अलावा किसी किस्म के कपड़े का उपयोग नहीं किया ।

अप्रमत जीवन

भारंडपक्षी की तरह आपश्री अप्रमत्त थीं । वृद्धावस्था होने के बावजूद भी आपका आत्मबल-मनोबल कमजोर नहीं था ।

दृढ़ मनोबल की स्वामिनी ने जागरूक रहकर जगाने की चेष्टा की ।

हमने देखा है, आपने समय को साधा था । एक क्षण का भी आपके जीवन में आलस्य-प्रमाद नहीं था । भगवान् महावीर का यह दिव्य उद्घोष **"उट्ठिए ! नो पमायए-उठकर कर्तव्य-पथ पर चल पड़ो, प्रमाद मत करो ।"** आपके जीवन का दर्शन था ।

व्यवहार में मधुरता कदम-कदम पर परिलक्षित होती थी, किंतु संयमी जीवन की मर्यादाओं के निर्वाह और पालन में वे अत्यन्त कठोर थीं । कभी भी जीवन विकास में सहायक नियमोपनियम में आपने शैथिल्य स्वीकार नहीं किया । आपने प्रत्येक कार्य को निर्धारित समय पर सम्पन्न कर लेने को, अपने जीवन में इसतरह आत्मसात् कर लिया था कि कुछ भी कहते नहीं बनता । नियमित रूप से स्वाध्याय, ज्ञानचर्चा, सेवा-भक्ति आदि में निरंतर लगे रहना आपका सहज स्वभाव था ।

हमने पाया आपके सान्निध्य में निंदा-विकथा, गपशप और प्रमाद भरे आचरण को कत्तई स्थान नहीं था । आप किसी से भी आलतू-फालतू की बातचीत नहीं करती थीं । इसतरह अपनी कठोर संयम साधना के उनपचास वर्ष आपश्री ने बड़े गौरवपूर्ण ढंग से सम्पन्न किए ।

निरंतर श्रमशीलता आपके जीवन का मूलमंत्र था ।

अद्भुत धीरता

संकट के समय धैर्य रखना मानव जीवन का विशिष्ट गुण है । उसके उच्च व्यक्तित्व का द्योतक है उसका धैर्य । बारह वर्ष की आयु में ही आपको वैवाहिक बन्धन में आबद्ध होना पड़ा और युवावस्था में वैधव्य का पहाड़ टूट पड़ा, किन्तु आपका धैर्य अद्भुत था । पच्चीस वर्ष की उम्र से लेकर चालीस वर्ष तक आपके जीवन में कई उतार चढ़ाव आये । उससमय भी आपने धैर्य से काम लिया । असाध्य बीमारी आने पर भी धैर्य नहीं छोड़ा । घोर पीड़ा में भी कभी आपने मुँह से हाय विलापात नहीं किया । ऐसी स्थिति में आपका एकमात्र यही चिंतन चलता था -

"हंसता बाँध्या कर्म रोता नवि छूटे रे प्राणिया०".....।

"आँटो करमारो, नवि दीजे बीजा ने दोष के०".....।

"हे चेतन ! थे बांध्या ने थनेज भुगतना हे, तो पछे हाय हाय क्युं करे हे ।"

"माँ ये दिया सात पूत, कर्म दिया वाँट चूँट । अणी में कणी को भी हिस्सो नी वेड़ सके ।"

आपका अन्तिम समय का धैर्य तो जिन्होंने अपनी आँखों से देखा, वे आज भी आश्चर्य करते हैं । हमने भी उनके मुँह से अस्वस्थता में यह कहते हुए कभी नहीं सुना कि "**या बीमारी कद जायगा ?** और न कभी हाय विलापात करते हुए देखा । कोई भी उनसे कुछ कहता तो बस, एक ही बात कहती थीं-"**बीमारी अई हे तो जायगा ज । अणी की चिंता क्यूं करो । जतरा दिन को वेदनीय कर्म बाँध्यो वेगा वतरा दिन तो भुगतनो ज पड़ेगा । कोई भी रोग आवे घोड़ा की चाल से, ने जावे कीड़ी की चाल से ।"**

उफान तूफान से घबराना तो आपके जीवन में था ही नहीं । धैर्य और सहनशीलता उनके जीवन के अभिन्न अंग थे ।

आत्म-साधना का लक्ष्य

हमने पाया कि जाप के क्षेत्र में भी आपकी विशेष रूचि थी । जब भी समय मिलता, वे जाप-स्वाध्यायादि में संलग्न रहतीं । नित्यप्रति ब्राह्ममुहूर्त से पूर्व और शाम को, वे माला-जाप में बैठी दिखाई देतीं । आत्मसाधना ही आपका लक्ष्य था ।

आप निर्धारित माला, नवस्मरण, गुरुगुण इक्कीसा, पार्श्वनाथ स्तोत्र, जिनपंजर, ऋषिमण्डल स्तोत्र, गौतमरास, पुण्यप्रकाश स्तवनादि का पाठ नित्य ही करती थीं । जबतक आपके माला-जाप एवं विविध स्तोत्रादि का कार्य पूर्ण नहीं हो जाता, वे मुँह में पानी भी नहीं लेतीं ।

आप श्री पार्श्वनाथ भगवान् की छोटी-सी मूर्ति एवं गुरुदेव की तस्वीर अपने पास रखती थीं और उसी के समक्ष जाप-मालादि बड़ी एकाग्रता व तन्मयतापूर्वक करती थीं ।

आपकी संयमरूचि और क्रियाओं में जागरूकता भी बड़ी ही सराहनीय तथा अनुमोदनीय थी । जब कभी आप अस्वस्थ होतीं, उससमय की आपकी दैनन्दिनी क्रियाओं और आराधनाओं की सतत जागृति हमारे मन-मस्तिष्क को श्रद्धा और अहोभाव से झुका देती थी ।

महान् तपस्विनी

आप एक महान् तपस्विनी थीं । तपश्चर्या आपके जीवन में ओतप्रोत थी, क्योंकि '**इच्छा निरोधस्तपः**'-इच्छाओं के निरोध को ही तप कहा गया है । जप के साथ ही तप के प्रति भी आपकी स्वाभाविक रूचि थी । विनय, सेवा, स्वाध्यायादि आन्तरिक तप के साथ आपकी बाह्यतप की साधना भी निरन्तर चलती रहती थी ।

आपने अपनी शारीरिक अनुकूलता देखते हुए अमलावद में चारमासी तप, मन्दसौर में छः मासी तप और पारा में वर्धमान तप की ओली की । जब भी जैसी अनुकूलता होती, तदनुरूप आपकी कुछ न कुछ तपस्या चलती रहती थी । तप के साथ तेजोलेश्या (उग्रता) का नामोनिशान

नहीं था। तपश्चर्या के क्षेत्र में भी आपका उज्ज्वल पक्ष रहा है। हमने देखा है वर्धमानतप की ओली हो, चाहे नवपद की ओली चल रही हो.... । तपश्चर्या में भी वापरने के मामले में आपके चेहरे पर निश्चिन्तता, शांति और प्रसन्नता दिखाई देती थी।

इसके अतिरिक्त उपवास का पारणा हो या अट्ठम का, चारमासी का पारणा हो या दो मासी तप का, या अन्य किसी तप का पारणा....। पारणे के दिन कोई हाय तोबा..... कोई जल्दबाजी...... आपके चेहरे पर नजर नहीं आती थी। वैसे भी नित्यप्रति के एकासना की गौचरी में भी श्रद्धालुओं के आगमन अथवा धार्मिक अनुष्ठान की प्रवृत्तियों के कारण देरी का क्रम लगभग चलता ही रहता था। फिर भी कभी कोई जल्दबाजी नहीं। चेहरे पर नाराजगी के भाव नहीं, अधीरता व बेचैनी नहीं।

आपके जीवन की सबसे बड़ी खूबी यही थी कि चाहे बारह बजे या एक बजे ! जबतक हम गौचरी करने नहीं बैठतीं, तबतक आप भी नहीं बैठती थीं। इतनी शांति और धीरता थी उनके जीवन में। हम कभी निवेदन करतीं कि महाराज जी ! आप तो गौचरी वापर लीजिए। वे कहतीं-"मुझे क्या जल्दी है ? मुझे कहाँ जाना है ? एकबार कभी भी पेट में डालना है, डाल देंगे। तुम काम निपटा लो।"

गौचरी में चाहे रूखा-सूखा, ठंडा-गरम, अच्छा-बुरा, कैसा भी आया, जब भी आया बस, पेट में डालने से काम ! सीधा गले के नीचे उतार जाती थीं। कोई निंदा-प्रशंसा नहीं, नुक्ताचीनी नहीं।

गौचरी पानी के मामले में ऐसी शांतिप्रिय थीं आप।
ऐसी तप:साधिका के श्रीचरणों में शत-शत नमन !

स्वाध्यायरसिका

श्रमणी जीवन का महनीय एवं प्रधान सुकर्म है 'स्वाध्याय'। जैन शास्त्रों में स्वाध्याय पाँच प्रकार का बताया गया है। यथा-वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा।

आपको जीवन के प्रारंभ काल से ही स्वाध्याय में अत्यन्त रूचि थी। आपके लिए स्वाध्याय एक व्यसन बन चुका था। जब देखो, तब अकेली ही स्वाध्याय-सत्साहित्य / चरित्र वाचन में रत रहती थीं।

हमने देखा है राधनपुर में जब मोतियाबिंद से आपके नयनों की ज्योति कुछ कम हुई तो पढ़ना-लिखना मुश्किल हो गया। बिना स्वाध्याय किए समय कैसे व्यतीत हो ? अत: बड़े बड़े अक्षरोंवाली पुस्तकें मंगवाईं और धीरे धीरे पढ़तीं। जब श्रावक श्राविकावर्ग अथवा हमलोग आपको हर समय स्वाध्याय मग्न देखती थीं, तब महान् मूक उपदेश प्राप्त करती थीं।

ज्यों-ज्यों देह शिथिल होता गया और वृद्धावस्था बढ़ती चली गई, त्यों-त्यों आपकी स्वाध्याय तन्मयता गाढ़ बनती जाती थीं। महापुरुषों के जीवन चरित्र से पठन-मनन और चिंतन

से आपकी वृद्धावस्था और भी वैभवपूर्ण बनी थी। इस अवस्था में आप हमारे सिर पर उत्तरदायित्व सोंपकर निवृत्त हो गयी थीं।

प्रत्येक दर्शनार्थी आपके '**धर्मलाभ**' **अथवा** '**देवगुरुपसाय**' जैसे मधुर स्वर से पवित्र हो जाता था और बहुत अधिक हो तो मंगल-पाठ/हितशिक्षा के दो चार मीठे वाक्य सुनने का अवसर मिल जाता। इसके अतिरिक्त आप किसी से भी व्यर्थ की गपशप या घर गृहस्थी की बातचीत नहीं करती थीं। आपको स्वाध्याय विक्षेप नापसंद था।

जिन जिन महानुभावों ने आपके दर्शन किये, आपको हर समय स्वाध्याय, माला-जाप में मग्न ही देखा है। वे सभी इसी बात को बार-बार दोहराते हैं कि दादीमाँ का क्या स्वाध्यायप्रेम ! क्या जागृत अवस्था ! और कम शब्दों में क्या समझाने की शैली ! यही कारण था कि वृद्धावस्था में भी उन्हें बहुत-सी चीजें कण्ठस्थ थी। वे जब भी एकान्त में बैठतीं तो पुस्तक पढ़ती रहतीं। कभी-कभी स्तवन, सज्झाय, चैत्यवंदनादि याद करती रहतीं। गुनगुनाती रहती थीं।

वे सुबह से शाम तक अकेली बैठी रहतीं, परन्तु उन्हें कभी भी अकेलापन महसूस नहीं होता। माला और पुस्तक उनका प्रियतम और बहुत बड़ा साथी था। जब आनेवाला जोर से सुखशाता पूछता, तब उनका ध्यान खंडित होता।

हम कभी-कभी उनसे कहतीं महाराजजी ! अब तो पुस्तक रख दीजिए। आँखों में दर्द होगा ! तो कहतीं-"**स्वाध्याय से बढ़कर कोई तप नहीं है। 'ज्ञानी भगवंतों ने कहा है यदि छह महीने में भी एक गाथा याद होवे, तब भी याद करते रहना चाहिए। इससे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है। मन एकाग्र रहता है।' कभी कभी तो कुछ पुनरावर्तन करते रहना चाहिए। नहीं तो—**

"पान सड़े घोड़ा अड़े, विद्या विसरी जाय।
जगरा में बाटी बलै, कहो चेला किण न्याय ?"

स्वाध्यायप्रेम के साथ-साथ आपका 'स्मृतिवैभव' भी अद्‌भुत था। पचास वर्ष पुरानी बात भी आपकी स्मृति में रहती थीं। पाँच साल की उम्र से अन्त तक का अनुभव आपको आखिरी दिन तक उपस्थित था। प्रसंगोपात यदा-कदा अपने पुराने अनुभव हमें भी सुनाया करती थीं।

आपकी स्वाध्यायशीलता हम सब के लिए प्रेरणास्पद थी। यह जीवन्त प्रेरणा हम सब के लिए आज भी पथप्रदर्शक है।

आणा खण्डण करीय, सव्वंपि निरत्थयं तस्स।
आणा रहिओ धम्मो, पलालपुलूव्व पडिहाई ॥

जो आज्ञा का खण्डन करता है, उसका सबकुछ निरर्थक हो जाता है। आज्ञारहित धर्म तो बिना कणवाले घास के पुले के जैसा है।

प.पूज्या दादीजी म.सा. के विविध उपकरण
पूज्या गुरुमैया के प्रति श्रद्धाभीगा मन
'प्रियसु' करती उपकरणों का अवलोकन
पात्र
मुँहपत्ति
स्थापनाचार्यजी
चश्मा
पार्श्वनाथ भ., दादा गुरुदेव
दंडासन
दंडा
वासक्षेप का बटुआ
माला
भगवान्, गुरुदेव एवं माला रखने का पॉकेट
रजोहरण (ओघा)
पुस्तकें

पूज्या दादीजी म.सा. की जन्म एवं दीक्षा कुण्डली
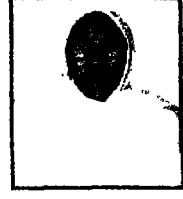
- एडवोकेट सुभाष सकलेचा, जालना (महाराष्ट्र)

पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी के जन्म एवं दीक्षा कुण्डली का विवेचन निम्नानुसार है :

जन्म-तिथि : कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा विक्रम संवत् १९६६

तदर्थ दिनांक : 13 नवम्बर-1910

समय : निश्चित पता नहीं।

पू. साध्वीप्रवराजी के जन्म समय की कुछ निश्चत जानकारी प्राप्त नहीं होने से उनके जीवन की कतिपय घटनाओं, उनके व्यक्तित्व विभिन्न आयामों को मद्दे नजर रखते हुए प्रातः 7.30 बजे का समय निश्चित कर जो जन्म कुण्डली बनती है वो निम्नांकित है -

जन्मांग कुण्डली

९ — रवि शुक्र गुरु बुध केतु मंगल ७ — १० — ८ — ६ — ११ — ५ — १२ चंद्र — २ — ४ — १ शनि राहु — ३ नेप.

उपर्युक्त कुण्डली का अध्ययन चलित कुण्डली से करने पर उनके जीवन की अन्यान्य घटनाओं और उनके व्यक्तित्व का सही परिचय मिलता है। लग्नभाव वृश्चिक है जो पुरूषार्थ के प्रतीक मंगल का घर है। इस भाव में रवि-शुक्र-बुध का युति इस बात को इंगित करती है कि- "शुक्र" इस वैवाहिक सुखों के ग्रह को जो इस कुण्डली में सप्तम-भाव (विवाह एवं पति) और शयन सुख (द्वादश भाव) का अधिपति है पर कर्मेश 'रवि' के साथ युति है। 'रवि'-अग्नि तत्त्व का प्रतीक और 'शुक्र' जल तत्त्व का। अर्थात् कर्मेश रवि ने 'केतू' (उपासना) के मार्ग से वैवाहिक-भोग एवं शयन सुख पर विजय पाकर अपना व्यक्तित्व बनाया जो 'उपासना' का कार्यक्षेत्र रहा जिसमें 'बुध' की संस्थिति ने उन्हें व्यवहार कुशल बनाया।

द्वितीय भाव वाणी और परिवार का है जिसका अधिपति 'गुरु' ग्रह है। यह सात्त्विक ग्रह मति-स्थान का भी अधिपति है। अस्तु 'सात्त्विक' भाव, धर्म प्रभावना, सत्य एवं निर्भीक वाणी की वे अधिपति रहीं।' चतुर्थभाव का अधिपति 'शनि' षष्ठम भाव में है। अस्तु ! सुख को उन्होंने अपने दास की तरह रखा। धर्म (त्रिकोण) के तीनों स्थान ९ (गुरु) १ (मंगल) और ४ (चंद्र) इसी बात की पुष्टि करते हैं। धर्मभाव (नवमभाव) का अधिपति चंद्र अपने से नवें स्थान पर यानी धर्म स्थान पर है और 'गुरु' की राशि में है। अस्तु ! जीवन पर्यन्त उनकी वाणी, कृति और व्यक्तित्व सत्त्वभाव-धर्मभाव से परिपूर्ण रहा। सप्तम भाव में राहू की स्थिति वैवाहिक
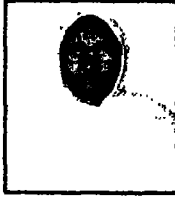
सुखों के प्रति वैर भाव दर्शाती है।

: दीक्षा कुण्डली :

पूज्या महाश्रमणीजी की दीक्षा तिथि विक्रम संवत् २००८ वैशाख शुक्ला दशमी तदनुसार दिनांक 16-5-1951 को हुई। यहाँ भी लग्न भाव में शुक्र की राशि में 'रवि' की संस्थिति जो आधिपत्य, अधिकार या अधिसत्ता का कारक है, स्थित है तथा यह दर्शाता है कि 'शुक्र' यानि भोग के घर में भौतिक सुखों को नष्ट कर कर्मक्षेत्र अधिपति 'शनि' वैराग्य का प्रतीक अपने मति में रखकर साध्वीप्रवराजी ने दीक्षाग्रहण की एवं उपासना आत्म-साधना (केतू)में अपना 'सुख' माना।

वैराग्य उनके मन-मस्तिष्क में रहा और उपासना उनके 'सुख' का कारक रही।

नवमांश कुण्डली में उन्होंने अपने व्यक्तित्व के कारक (रवि) भोगकारक (शुक्र) और सुख के अधिपति (शनि) सभी पर अंकुश लगाकर उनपर वर्चस्व स्थापित किया। यह बात इन ग्रहों की छठे स्थान में संस्थिति से ज्ञात होती है।

अस्तु !

दीक्षा कुण्डली

नवमांश कुण्डली

11. जीवन-सौरभ

(मालव-गौरव, अध्यात्म-पथ की साधिका पूज्याश्री महाप्रभाश्रीजी

(पू. दादीजी) महाराज साहब का जीवन परिचय)

नारी : गौरव का प्रतीक

भारतीय संस्कृति, उसकी विरासत एवं दर्शन के परिप्रेक्ष्य में नारी का स्थान बहुत उन्नत शिखर पर आसीन है। जीवन की इस हकीकत से आँखें मूंद लेना बेईमानी होगी। वह त्याग, सेवा और श्रम का पर्याय है। वह समूचे मानवसमाज का सौरभ है। उसकी अन्तर्निहित शक्तियाँ समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती हैं, एक दिशा दे सकती हैं, प्रकाशपुँज बनकर भव-सागर में भूले-भटकों को राह दिखाने की भी अभूतपूर्व क्षमता रखती हैं। उसके जीवन के प्रारम्भिक चरणों में सुसंस्कारित होने पर वह मानवसमाज के लिए वरदान स्वरूप सिद्ध हो सकती है।

जब हम नारी जाति के इतिहास पर दृष्टिपात करती हैं तो पाती हैं कि उनका जीवन बहुत

ऊँचा रहा है, तेजोमय रहा है।

समय-समय पर नारी ने पुरुषों को उभारा है। अपरिहार्य समय पर उसे जगाया है। कर्तव्य से पराङ्मुख को मार्ग पर लायी है। ब्राह्मी-सुन्दरी ने बाहुबलि को जगाया। राजीमती ने रथनेमि को प्रतिबोध दिया। याकिनी महत्तरा ने हरिभद्रपुरोहित को सत्य का मार्ग सुझाया। ऐसे एक नहीं, सहस्रों उदाहरण इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं।

स्वयं भगवान् महावीर ने अपने चतुर्विध संघ में नारी को समानाधिकार देकर उस समय की विषमता समाप्त की, जिस समय नारी को हीन-दृष्टि से देखा जा रहा था।

भगवान् महावीर ने नारी जाति की समान स्थिति का प्रतिपादन किया और उसका क्रियान्वयन करके बताया कि साधु के समान ही साध्वी पूज्या होती है तो श्रावक के समान ही श्राविका का सामाजिक सम्मान होना चाहिए। विशेष रूप से श्रमण-श्रमणी की परम्परा तो उस युग में पूर्णत: क्रान्तिकारी मानी गई, क्योंकि तत्कालीन विषमतावादी एवं वर्गवादी समाज में नर-नारी की समता का उदाहरण प्रस्तुत करना सराहनीय साहस का ही कार्य था। उसका प्रतिफल सामने आया कि महावीर के शासन में साधुओं और श्रावकों की अपेक्षा साध्वियों तथा श्राविकाओं की संख्या बहुत अधिक रही। यह विशेषता हर तीर्थंकर के शासन में रही जो आजतक चल रही है।

उद्बोधिनी शक्ति नारी अपनी मृदुता-उदारता से मानव-मन में दिव्य तेज-ओज का संचार करती है। चाहे क्रांति हो या शान्ति, भ्रांति के चक्कर में न उलझकर दोनों परिस्थितियों में शानदार दायित्व निभाती है। भारतीय साहित्य में नारी नारायणी के रूप में सदा प्रतिष्ठित रही है। उसमें समाज को व्यवस्थित, सुसंस्कारित व अनुशासित करने की अतुलनीय शक्ति है। विश्व के इतिहास पटल पर अंकित स्वर्णिम नाम, जिनमें त्याग व तपस्या की प्रतिमूर्तियाँ सतियाँ-महासतियाँ एवं श्रमणियाँ सदा सर्वदा वन्दनीया रहेंगी। अनेक समाज सेविकाएँ जिन्होंने मानवसमाज का श्रृंगार कर सशक्त एवं प्रखर बनाया, स्मरणीय वीरांगनाएँ, ललनाएँ जो समाज की मान-मर्यादाओं को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए बलिवेदी पर उत्सर्ग हो गईं हंसते-हंसते.., जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित किये, स्तुत्य हैं वो। इनका समाज में जितना सम्मान किया जाय उतना ही कम है। सच तो यह है जहाँ नारी का सम्मान होता है, पूजा होती है, उस राष्ट्र का गौरव दिन-प्रतिदिन बढ़ता है तथा देवगण भी रमण करने का मन करते हैं। वह अनेक गुणों को अपने आँचल में समेटे हुए है। वह समाज की निर्मात्री है। वह सृष्टा व दृष्टा दोनों हैं।

ऐसे ही अन्यान्य गुणों से युक्त साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब जो 'दादीमाँ' के सम्बोधन से जाना-माना श्रद्धास्पद व्यक्तित्व का व्यापक परिचय, जिसे स्मृतियों के झरोखों से देखा जा रहा है। अत्यन्त हृदयस्पर्शी, प्रभावशाली एक अमिट छाप छोड़नेवाला, सभी का मनभावन व लुभावन बन पड़ा है। यथार्थ और नैसर्गिकता का सशक्त आधार लिए यह रेखाचित्र श्रद्धालु पाठकों की प्रेरणा का स्रोत बने, उनका पथप्रदर्शक बने, इस संसार-सागर में प्रकाशस्तम्भ की भाँति मार्ग प्रशस्त कर सके तो निश्चय ही प्रयास की सफलता नि:संदेह रूप से प्रमाणित होगी।

महापुरुषों का जीवन आदर्श रूप

महापुरुषों का समागम, सम्पर्क/सान्निध्य कितना पावन एवं पुण्यकारक होता है ? इस सम्बन्ध में कहा गया है -

'मलयाचल गन्धेनत्विन्धनं चन्दनायते'-मलयाचल पर स्थित चंदन की सुगन्ध से साधारण वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं। इसीतरह महापुरुषों के संपर्क या सान्निध्य में आकर बड़े-बड़े क्रूर तथा पापात्माओं को जीवन-निर्माण के महान् यज्ञ में सम्मिलित होते हुए देखा गया है। महापुरुषों का चरित्र इतना निष्कलंक और पवित्र होता है कि उनके निकट जाने पर दुर्गुणों के समावेश की संभावना ही नहीं होती। वहाँ पहुँच कर तो आत्मज्ञान का महान् मंत्र उद्घोषित होता है। जीवन उद्यान में वैराग्य की पावन वायु संचरित होती है और सत्कर्मों का अरूणोदय होता है। पाप तथा कल्मष का निबिड़ अंधकार क्षीण हो जाता है और शुभ्र प्रभात का तेज बिखरने लगता है।

महापुरुष अपनी जीवन-लीला को समाप्त कर अनंतकाल के गर्भ में समा जाते हैं, परन्तु उनकी अमर कृतियाँ, दिव्य जीवन-संदेश, प्रेरणादायक हितशिक्षाएँ, तप-त्याग तथा वैराग्य के पुनीत उदाहरण भावी पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहते हैं।

महापुरुषों का त्याग और संयम हमारे लिए आदर्श का काम करता है। महापुरुषों की जीवनियाँ ही मानव को महान् बना सकती हैं। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य कवि लौंगफेलो ने कहा भी है

Lives of great men all reminds us.
We can make our lives sublime.

— महापुरुषों की जीवनियाँ हमें याद दिलाती हैं कि हम भी अपना जीवन महान् बना सकते हैं।

"जीवनचरित्र महापुरुषों के,
हमें नसीहत देते हैं;
हम भी अपना जीवन,
स्वच्छ रम्य कर सकते हैं।
हमें चाहिए हम भी अपने,
बना जाएँ पदचिह्न ललाम;
समय की इस रेती पर,
जो वक्त पड़े तो आए कुछ काम"।

— साँग ऑफ लाइफ लौंगफेलो

प्रसिद्ध दार्शनिक प्लूटार्क ने सत्य ही कहा है —

प्राचीन महापुरुषों के जीवन से अपरिचित रहना, जीवनभर निरंतर बाल्यावस्था में ही रहना है।

महापुरुषों के गुणों का चिंतन करना, उनसे प्रेरणा लेना तथा उनके त्याग-तप और संयम

साधना को अपना आदर्श समझते हुए उनके बताये हुए मार्ग पर चलने के लिए कटिबद्ध होना ही ज्ञान की बाल्यावस्था को पार कर उसकी युवावस्था में प्रवेश करना है।
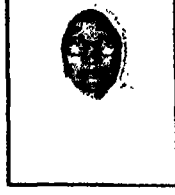
महापुरुषों का आदर्श चरित्र ही महान् प्रेरणादायक होता है। बिना कुछ कहे भी उनकी मुखाकृति और आचरण की गहरी छाप इतनी जबर्दस्त पड़ती है कि मानव तो क्या पशु-पक्षी भी अपना वैरविरोध भूलकर एक अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव करते हैं। उनका पावन चरित्र अन्य पुरुषों के उपदेशों से भी अधिक प्रभाव डालता है; क्योंकि चरित्र का बल अति महान् बल है। उनका मौन भी महान् उपदेश है। जिनकी कथनी और करनी एक समान है, उन्हीं का प्रभाव अधिक और स्थायी पड़ता है। जिनकी करनी, कथनी के समान नहीं है, उनका दिया हुआ उपदेश मात्र वाणी-विलास है। वह श्रोता के हृदय-स्थल को नहीं छू पाता। इसीलिए उनका प्रभाव भी स्थायी व गहरा नहीं हो पाता।

महापुरुषों के संपर्क में आने और उनकी सत्कृपा, असीम आशीर्वाद प्राप्त करने की तो बात ही अलग है। उनके नामस्मरण और जीवन के पावन प्रसंगों को पढ़ व सुनकर भी मनुष्य का कायाकल्प हो जाता है। इतना ही नहीं, कष्ट के समय धैर्य, शांति और सहनशीलता रखने की उसे प्रेरणा मिलती है। दृढ़ता के साथ सत्पथ पर आगे बढ़ने का महान् संदेश महापुरुषों के जीवन चरित्र से मिलता है।

जीवन क्या है ?

किन्तु जब हम यह विचार करते हैं कि जीवन क्या है ? तो प्रश्न बड़ा जटिल लगता है। इस विषय पर ऋषि-मुनियों और विद्वानों ने काफी चिंतन किया है। फिर भी जीवन की कोई सर्वमान्य एवं सर्वग्राह्य परिभाषा उपलब्ध नहीं है। सभी ने अपनी-अपनी दृष्टि से जीवन को परिभाषित किया है। किसी ने जीवन को नदी की भाँति माना है तो किसी ने सायकल चलाने के समान माना है और किसी ने जीवन को अंधी गली के समान बताया है। एक कवि ने जीवन के विषय में कहा है —

पानी केरा बुदबुदा अस मानस की जात ।
देखत ही छिप जात है, ज्यों तारा परभात ॥

यद्यपि जीवन की परिभाषा के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। फिरभी यह कहा जा सकता है कि जन्म और मृत्यु के बीच का जो समय है वह जीवन है।

जीवन-प्रकार

जीवन की परिभाषा के साथ कुछ विद्वानों ने मनुष्य की प्रवृत्तियों के आधार पर जीवन का वर्गीकरण भी किया है। यथा-सामान्य जीवन मानवीय जीवन है। भोग विलास, राग-द्वेष के दलदल से ग्रस्त जीवन आसुरीजीवन है। आसुरीजीवन को निकृष्ट माना गया है, क्योंकि

इसमें उचित-अनुचित का कोई विवेक नहीं है। बस, इसमें अपनी इच्छा पूर्ति को ही प्रमुख माना गया है। जो भव्यात्मा राग-द्वेष की परिणति कम करते हुए स्वार्थ की सीमाओं का अतिक्रमण कर, सेवा, परोपकार और परमार्थ के पाठ को पढ़ लेता है उसका जीवन धन्य और अनुकरणीय बन जाता है। वह नदी में प्रवाहित जल की भाँति दूसरों को संतुष्ट करने में ही अपना परम सौभाग्य समझता है, स्वार्थ की कारा से वह मुक्त होता है तथा जिस जीवन में सत्य, अहिंसा, करुणा और प्रेम हो, वह देवी जीवन है और इससे भी आगे की बात करें तो जो अपरिमित ज्ञानालोक से जगमगाता जीवन है, वह है आध्यात्मिक जीवन जिसे सर्वश्रेष्ठ जीवन कहा गया है।

मनुष्य जबतक जीवित रहता है अपनी देह से जाना जाता है। देह के विसर्जन के पश्चात् वह विस्मृत हो जाता है, किंतु यदि उसने कुछ उपलब्धियाँ प्राप्त की है तो देह के विसर्जन के पश्चात् भी वह स्वयं द्वारा सृजित उपलब्धियों के नाम से सदियों तक याद रहता है।

मनोहर मालव-धरती

भारतवर्ष की वसुंधरा को ऐसे महापुरुषों एवं सती-साध्वी सन्नारियों को जन्म देने का गौरव सम्प्राप्त है, जिनके पवित्र जीवन की ज्योति आज भी पथभ्रान्तों का मार्गदर्शन करती हैं। जिनके कारण आर्यभूमि की कीर्ति दिगृदिगन्त में व्याप्त है। **ऐसी ही एक महान् आत्मा का पुनीत जीवन-सौरभ का प्रवाह मालवा की धरा पर सरदारपुर तहसील के वरमण्डल गाँव जिला-धार (म.प्र.) की पुण्यभूमि से निःसृत होकर भारत के विभिन्न भागों में प्रवहमान हुआ और अनेक भव्य जीवों की आत्मभूमि को समृद्ध व पवित्र बनाता हुआ मरुधर की माटी धाणसा गाँव, जिला-जालोर (राज.) में आकर विसर्जित हो गया।**

भारत की पुण्य धरा में शस्य श्यामला मालव भूमि अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये विख्यात रही है। यहाँ का मौसम भी सदैव अनुकूल रहा है। यहाँ की रात्रियों के सम्बन्ध में कहा जाता है '**शबे मालवा शामे अवध।**' यह धरती प्राकृतिक सुषमा और संपदा से भी सम्पन्न रही है। तभी तो कहा गया है –

मालव धरती गहन गंभीर।
डग डग रोटी, पग पग नीर॥

परन्तु समय के प्रवाह के साथ यहाँ भी परिवर्तन की बयार चली और जो महिमा प्राचीनकाल में मालवा की थी आज वह नहीं रही। इसके अनेक कारण हैं जिन पर यहाँ विचार करना प्रासंगिक नहीं है। हाँ, जब धर्म की और विशेषकर जब जैनधर्म की बात आती है तो हम पाती हैं कि प्राचीनकाल से ही मालवा में जैनधर्म अच्छी स्थिति में रहा है। परमारकाल और सल्तनतकाल में तो जैनधर्म का स्वर्णकाल कहा जा सकता है। इस अवधि में धार एवं माँडव सत्ता के केन्द्र रहे हैं तथा वहाँ जैन धर्मावलम्बियों का बाहुल्य भी रहा है। अनेक जैनधर्मावलम्बी

सुलतानों के शासन में मंत्री पद को सुशोभित कर रहे थे। माँडव में ही लाखों की संख्या में जैनधर्मावलम्बी निवास करते थे। बाहर से जो भी साधर्मी यहाँ आता, उसे प्रत्येक घर से एक स्वर्णमुद्रा और एक ईंट दी जाती थी, जिससे उसके आवास गृह का निर्माण हो जाता था और वह लखपति बन जाता था। निश्चय ही धार एवं माण्डव के समीपवर्ती तथा राज्यान्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में भी जैनधर्म के अनुयायी सुखपूर्वक निवास करते रहे होंगे। इस अवधि के अनेक पुरातात्त्विक अवशेष भी पाये जाते हैं तथा अनेक विद्वान् मुनियों द्वारा रचित साहित्य भी उपलब्ध होता है। **ऐसे क्षेत्र में यदि कोई चारित्रात्मा जन्म लेकर विकास करें तो किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं।**
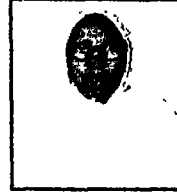
शांति का अक्षय भंडार था, ज्ञान का जलता हुआ दीपक था, समर्पण की बहती हुई सरिता थी तथा समता, सरलता व सहिष्णुता का अद्भुत संगम था इस गुरुमैया का जीवन। त्याग, वैराग्य और संयम की उज्ज्वल ज्योति से दीप्त था इस ममतामयी माँ (महाश्रमणी श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब) का अद्भुत जीवन। यह जीवन आत्म-साधना का निर्मल आदर्श है। जिसे हम आध्यात्मिक जीवन की संज्ञा दे सकते हैं। वास्तव में उनका वह आदर्श जीवन आज भी हमें ज्वलंत प्रकाश-पुंज की तरह आत्म-जागरण का संदेश सुना रहा है। ऐसे महान् आदर्श जीवनसौरभ को शब्दबद्ध करने के लिए हमारे इस कार्य को अनधिकार चेष्टा ही कहना उपयुक्त है। क्योंकि न तो हमने कभी अपनी गुरुणीमैया का अध्ययन करने का प्रयास किया और न हम इस अध्ययन के योग्य ही थीं, फिर भी, उनकी कृपा-प्रसादी स्वरूप पाथेय लेकर इस दुर्गम पथ पर चलने का साहस किया है।

विशुद्ध संयम की प्रतिमूर्ति पूज्याश्री ने इस अवनितल पर जन्म लेकर जैनशासन की जो सेवा की है, वह अवर्णनीय है।

प्रस्तुत ग्रंथ के पृष्ठों में पूज्याश्री के जीवन-सौरभ की झलक को उभारने का प्रयास किया जा रहा है, जिन्होंने अपने आपको साधना में समर्पित कर दिया था, जिन्होंने कषायों की मलिनता से हटकर समभाव की साधना में रहने का अथक प्रयास किया था।

जन्म एवं माता-पिता

ऐसी महान् दिव्य व्यक्तित्व की धनी पूज्या श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब का आज से 94 वर्ष पूर्व मालवा की धन्य धरा '**पगपग रोटी, डगडग नीर**' की उक्ति अनुसार वरमण्डल गाँव की पुण्यभूमि पर श्रेष्ठी श्री जड़ावचंदजी की धर्मपत्नी देवगुरुधर्मानुरक्ता, जिनशासन समर्पिता श्रीमती वजीबाई की कुक्षि से, **जिस दिन श्री द्राविड़-वारिखिल्ल दस करोड़ मुनिवरों के साथ मुक्ति-पद पाए तथा कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य इस**

अवनितल पर अवतरित हुए; ऐसे कातिक शुक्ला पूर्णिमा के पावन दिन विक्रम संवत् १९६६ तदनुसार ईस्वीसन् 1910 को जन्म हुआ।

नामकरण

'**कन्यारत्न**' के रूप में साक्षात् लक्ष्मी का पदार्पण होने की बधाई सुनकर श्रेष्ठी श्री जड़ावचंदजी का रोम रोम प्रसन्नता से पुलकित हो उठा। होता भी क्यों नहीं ? जन्म-वेला की ग्रहस्थिति के अनुसार पारिवारिकजनों ने नवजात तेजस्विनी बालिका का नाम रखा **कुमारी लीलावती**।

बाल्यावस्था

कुमारी लीलावती दूज के चाँद की भाँति बढ़ने लगी। मातापिता की प्रथम सन्तान होने से आपका पालन-पोषण एक राजकुमारी की तरह होने लगा। वह उन भाग्यशालिनी कन्या रत्नों में से एक थी, जिसे बाह्य सुख-सुविधाओं के साथ-साथ माता-पिता एवं बुजुर्गों का आन्तरिक स्नेह भी प्राप्त था। उसकी छोटी से छोटी इच्छा का भी पूरा ख्याल किया जाता। इस तरह शनैः शनैः बढ़ती हुई लीलावती को देखकर माता-पिता के हृदय में अनेक प्रकार की मधुर कल्पनाएँ लहराने लगी।

बच्चों का व्यक्तित्व मधुरता से ओतप्रोत होता है। उनके चेहरे से निश्छलता टपकती है। उनका हृदय स्वच्छ व पावन होता है। बाल्यावस्था में न छल होता है न कपट। बचपन स्वयं भी अपने आप में सौन्दर्य है। एक कवयित्री की पंक्तियों में –

"चिंता रहित खेलना, खाना और फिरना, निर्भय, स्वच्छन्द।
बोली कैसे भूला जा सकता है, बचपन का अतुलनीय आनन्द"।

प्रथम कन्यारत्न लीलावती की बाल्य सौरभ सुषमा बिखेरती भोलीभाली सूरत, मधुर मीठी किलकारियों से भरा बचपन, हास्य, अनूठा आकर्षण, मनोहारिणी छटा आदि परिजनों के हृदय को आनंद से भर देती थी।

लीलावती के कार्य-कलापों से आनंदित होकर माता-पिता अपना जीवन बड़े ही प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में व्यतीत कर रहे थे।

धर्म-संस्कारों का बीजारोपण

लीलावती के बाल्यकालीन जीवन का विकास प्राकृतिक सुषमामय सरल एवं निश्छल ग्राम्य परिवेश में हुआ था। आपके मातापिता का जीवन सरल और सादगीपूर्ण था। आपके जीवन पर इन संस्कारों की अमिट छाप पड़ी। यही कारण है कि आपका सारा जीवन शान्त, सरल, निश्छल, विनम्र और सादगीपूर्ण रहा। बहुत लाड़प्यार से सानंद बचपन के सात वर्ष बीते।

महान् आत्माओं के भावीजीवन की चर्या और कार्यों का आभास उनकी शैशवावस्था में ही होने लगता है। कहा भी है –

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' और **'पूत के पाँव पालने में ही नजर आते हैं।'** इन कहावतों के अनुसार बचपन से ही यह विलक्षण बालिका बड़ी सरल हृदया, सुशीला, विनयी-विवेकवती और सहिष्णुतादि गुणों से ओतप्रोत थी।

माता वजीबाई बड़ी धर्मपरायणा व सहज-सरल स्वभाववाली थीं। उत्साह से भरी सरल हृदया माता ने अपनी लाड़ली बेटी को उद्‌बोधक व प्रेरक धर्मकथाएँ सुना-सुनाकर उसके मन में धार्मिक संस्कारों का सुंदर बीजारोपण कर दिया।

अपने गाँव में प.पू. साध्वीजी महाराज साहब का वर्षावास होने से लीलावती ने आठ वर्ष की लघु वय में ही उनसे पंचप्रतिक्रमण शुद्ध व कण्ठस्थ सीख लिया।

विवाह-बंधन में

बालिका का जीवन नित्यप्रति विकसित हो रहा था। होते होते वह बारह वर्ष की वय में जा पहुँची। उस काल में इतनी उम्र में बालिकाएँ परिणय बंधन में बाँध दी जाती थीं। पिता जड़ावचंदजी ने भी इस दायित्व को संपन्न करने की भावना से लाड़ली लीला के हाथ पीले कर देने का प्रस्ताव परिवार के समक्ष रखा। जब वह विवाह योग्य हुई तो माता-पिता सुयोग्य वर खोजने लगे। उनकी चाह थी कि बालिका अपने मातृकुल और श्वसुरकुल दोनों कुलों का नाम उज्ज्वल करें। देहली दीपिका बनें। इस पुण्यशालिनी के पूर्वकृत पुण्य प्रभाव से वरमण्डल के पास ही राजगढ़ गाँव में धनीमानी सुखी संपन्न श्रेष्ठियों की पंक्ति में अग्रणी श्रेष्ठी **विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब के परमभक्त अनन्य श्रावक श्री मोहनखेड़ा तीर्थ के निर्माता संघवी सेठ लूणाजी के सुपौत्र सेठ श्री चंपालालजी जमींदार के साथ बारह वर्षीय लीलावती का विवाह निश्चित कर दिया।** सुयोग्य सुसम्पन्न घर एवं वर को देखकर सभी लीलावती के भाग्य को सराह रहे थे। धर्मानुरागी सुसंस्कारी संघवी परिवार ने भी इस रत्न को पाकर अपने भाग्य को सराहा। विवाह तिथि निश्चित हुई और निश्चित तिथि को शुभ मुहूर्त्त में विवाह सम्पन्न हो गया। श्रेष्ठी चंपालालजी भी अपने कुलानुसार धार्मिक प्रवृत्ति के ही थे। अतः **'सोने में सुहागा हो'** गया।

ममतामयी माँ ने, पारिवारिक जनों एवं सखियों ने अश्रुभरी आँखों से उसे विदा किया। विदा होकर लीलावती ससुराल की देहली पर पहुँची। ससुराल की चौखट पर सौम्य, सरल व सुंदर नववधू लीलावती की सादगी व भोलेपन ने ससुराल में सभी का मन जीत ही लिया था। उनका जीवन संघवी सेठ लूणाजी की कुलवधू के रूप में अपने परिवार के साथ आनन्दपूर्वक बीत रहा था। इसी बीच आपने क्रमशः दो पुत्ररत्नों को जन्म दिया। बड़े सुपुत्र का नाम राजमल और छोटे का नाम जवाहरमल दिया गया। दोनों पुत्रों को देखकर माता-पिता पुलकित हो उठे।

मन में भाँति-भाँति की कल्पनाएँ संजोए पतिपत्नी आनन्द के सागर में तन्मय थे।

आकस्मिक वज्राघात

सर्व सुख सम्पन्न घर में लीलावती सुख के साम्राज्य में रह रही थी। परन्तु "**सबै दिन होत न एक समान**" की इस उक्ति के अनुसार सर्वदा पूर्णिमा तथा सर्वदा अमावस्या नहीं। सुख और दु:ख भी दिवस के प्रकाश एवं रात्रि के अंधकार के समान है।

"**नीचैर्गच्छत्युपरि च दशाचक्रनेमिक्रमेण**"।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है –

"किसका समय इस विश्व में है, एक सा रहता सदा।
सर्वत्र क्रम से घूमती है, आपदा और सम्पदा ॥"

वही सूर्य जो प्रात:काल प्रताप युक्त उदित होता है, शाम के समय उदासी सहित अस्त होता है।

लीलावती भी अधिक दिनों तक सुखी नहीं रह सकी। मानो यह एक चेतावनी थी कि लीला! संसार के सुख क्षणिक हैं। यदि संसार में अविनाशी शाश्वत सुख होता तो तीर्थंकर और चक्रवर्ती राजा इसे छोड़कर दीक्षा क्यों अंगीकार करते ? सच है –

'कली कोई जहाँ पर खिल रही है।
वहीं एक फूल भी मुरझा रहा है' ॥

कर्मों की गति विचित्र है। कर्मराजा के समक्ष हर प्राणी को झुकना पड़ता है। लीलावती के शांत सुखों के लहलहाते जीवन पर अचानक पति-वियोग का पहाड़ टूट पड़ा। पति के वियोग की काली घटा घिर आई। पिंजरे का पंछी अपना बसेरा समाप्त कर नया घर बसाने उड़ गया। लीलावती के धैर्य का बांध टूट गया।

सभी सोचने लगे –

आदमी का जिस्म क्या है, जिस पै शैदा है जहाँ।
एक मिट्टी की इमारत, एक मिट्टी का मकां ॥
खून का गारा बना, और ईंट इसमें हड्डियाँ।
चंद सांसों पर खड़ा है, यह खयाली आसमाँ ॥
मौत की पुरजोर आँधी, इससे जब टकरायेगी।
टूटकर यह इमारत, खाक में मिल जायेगी ॥

उस पर आए दुर्भाग्य से सभी द्रवित थे। उनके पति को क्रूर काल ने असमय ही छीन लिया था। अपने पर आई आघातपूर्ण विपदा से छव्वीस-सत्तावीस वर्षीय लीलावती हतप्रभ रह गई। अश्रुओं की अनवरत धारा बहने लगी। सांत्वना के कई हाथ उठे, कई उभरे, पर

लीलावती अपने विलाप को रोक नहीं पा रही थी।

परन्तु आप साधारण महिला न थीं। जो महान् बनने के लिए अवतरित हुआ हो, उसे दुःख की आँधियाँ कुछ देर के लिए संतप्त कर सकती हैं, पर अधिक समय तक विचलित नहीं कर सकतीं। हाँ, यह सच है कि आकस्मिक विपत्ति बड़ों-बड़ों को भी विचलित कर देती है। युवावस्था का निश्चित समय, कल्पना के स्वप्न संजोने का समय, विश्वोद्यान में कोयल या बुलबुल के समान चहकने का समय और अचानक आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ना एक विषम विपत्ति थी। छव्वीस-सत्तावीस वर्ष की आयु और पति का वियोग ? लीलावती को अब सुख कहाँ ? उसका तो सर्वस्व ही यमराज ने लूट लिया था। उसका मन म्लान क्यों न होता ?

गृहस्थ का आधार छीनने से लीलावती के पिता के हृदय की शोभा भी कुछ मुरझा-सी गई थी, परंतु उन्हें अपनी उदासी की विशेष चिंता न होकर अपनी लाड़ली बेटी के सुख की विशेष चिन्ता थी। बेटी के वैधव्य ने उसके माता-पिता को भी गहन विषाद से भर दिया था।

संसार : एक नाटक

'धर्म करने से आत्मा को सुख मिलता है'। और 'टूटी की बूटी' नहीं है। लीलावती इस तथ्य से परिचित थी। पति के विछोह को उसने भुलाने के लिए धर्मसाधना को जीवन में प्रमुख स्थान देने में ही सार माना। वे अन्तर्मुखी हो गईं। जीवन की क्षणभंगुरता का चिंतन अत्यन्त प्रबल हो उठा। उसे संसार के क्रिया-कलापों में एक नाटकीयता का आभास होने लगा।

एक मार्ग अवरुद्ध होने का अर्थ यह होता है कि शीघ्र ही एक अन्य मार्ग खुलने वाला है, किन्तु इसका आभास एकाएक नहीं होता है। धीरे-धीरे समय व्यतीत होता जाता है और फिर एक निश्चित अवसर पर उसकी अनुभूति / प्रतीति होने लगती है। ऐसा ही कुछ लीलावती के साथ भी हुआ।

दूध मुँहे बच्चों का दायित्व

पति-वियोग के बाद आपका मन संसार की असारता से अधिक प्रेरित होकर वैराग्य की ओर अग्रसर हो गया, किन्तु दोनों पुत्र नन्हें-नन्हें पौधे से होने के कारण गृहस्थी का भार नहीं संभाल सकते थे। अतः वैराग्य भावों से सभर होने के बावजूद उन्हें कुछ समय गृहस्थ जीवन में रूकना ही पड़ा।

पति के असामयिक निधन से लीलावती पर दूध मुँहे नन्हें-मुन्ने फूल से लाड़ले बेटों का दायित्व आ पड़ा। **एक माली की तरह उन्हें सुसंस्कारों से सिंचित किया। उन्होंने उनमें धर्म-संस्कारों का बीजारोपण कर पल्लवित-पुष्पित किया। पढ़ा लिखाकर सबतरह से**
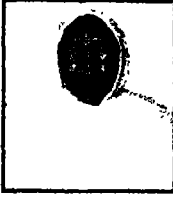
उन्हें सुयोग्य बनाया।

युवावस्था प्राप्त होने पर दोनों पुत्र व्यवसाय में लग गये। जब दोनों पुत्र विवाह योग्य हो गये तो लीलावती ने विवाह के दायित्व को शीघ्र सम्पन्न करने की भावना से सुयोग्य कन्याओं की खोज प्रारम्भ की। दोनों पुत्रों की यथासमय धर्मसंस्कारिणी सुशीला कन्याओं के साथ शादी करके उन्हें घर गृहस्थी का भार सम्भला दिया।

दायित्व से मुक्ति

फिर उन्होंने अपने आपको तप-त्याग एवं देव, गुरु-धर्म के प्रति अनन्य आस्था से जोड़ दिया। साथ ही अपने आपको धर्म-श्रवण, धर्म-पठन व धर्माराधना में रमा दिया।

वास्तव में, लीलावती तो जैन धर्मानुरागिणी, चिंतनशीला व धर्म-भावनाओं से ओतप्रोत वैराग्यवासित थीं ही। वे जानती थीं –

"कबिरा धूरि सकेल के, पुरिया बाँधी देह।
दिवस चारि का पेखना, अंत खेह की खेह॥"

'**अघट घटना पटीयसी भगवती भवितव्यता महाबलवती है**'। परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है। इसमें प्रतिपल परिवर्तन होता रहता है। सुख-दु:ख की छाया प्रतिसमय परिवर्तित होती रहती है। शांति और सुख के क्षण जीवन में दो-चार हैं और दु:ख का महासागर यहाँ नित्य प्रति तूफान और ज्वारभाटों के साथ गरजता रहता है। महाकवि पंत के अनुसार "**यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु**" का दार्शनिक तथ्य ही सत्य है।

वैराग्योत्पत्ति के कारण

लीलावती के हृदय में वैराग्यभाव जागृत हो गये थे। जब हम वैराग्य की बात करते हैं, तो हमारे लिये यह भी आवश्यक हो जाता है कि हम वैराग्योत्पत्ति के कारणों पर संक्षिप्त चर्चा कर लें। जैन साहित्य का आलोडन करने पर ज्ञात होता है कि वहाँ वैराग्योत्पत्ति के अनेक कारण गिनाये जाते हैं। उनमें निम्नांकित तीन कारण कुछ ऐसे हैं जिन में लगभग सभी कारण समा जाते हैं। यथा :- (१) दु:खगर्भित वैराग्य (२) मोहगर्भित वैराग्य और (३) ज्ञानगर्भित वैराग्य। इनका भी संक्षिप्तीकरण किया जाय तो जैनागमों में ही वैराग्यप्राप्ति के दो कारण बताये गये हैं, यथा :- (१) नैसर्गिक और (२) आधिगामिक। इन कारणों का विवरण देकर हम विषय को अनावश्यक विस्तार देना उचित नहीं समझतीं। वैसे ये कारण अपने नाम के अनुसार स्पष्ट हो जाते हैं।

जब हम लीलावती के वैराग्यभाव की ओर दृष्टिपात करती हैं तो पाती हैं कि प्रारम्भिक तौर पर उनका वैराग्य दु:खगर्भित था, किन्तु जब देखती हैं कि उन्होंने अपने सांसारिक कर्तव्यों की पूर्ति के प्रति पूर्ण जागरूकता रखी और उसके पश्चात् ही चारित्र अंगीकार किया तो प्रतीत होता है कि उनका वैराग्यभाव ज्ञानगर्भित था। तभी तो वे अन्तिम समय पर्यन्त अपने संयम और साध्वाचार में इतनी सुदृढ़ रह सकीं। अन्ततः उन्होंने अपनी दृढ़ भावना को पारिवारिक सदस्यों

(श्वसुरपक्षीय एवं मातृपक्षीय परिवार) के सामने प्रकट कर ही दिया।

गुरुवर्याश्री के प्रथम दर्शन

भाग्यवान् व्यक्ति पद-पद पर कल्याण का भाजन बनता है। उसके कदम-कदम पर मंगल कदम चरण चूमते हैं।

लीलावती के प्रबल पुण्योदय से प्रवर्तिनी प.पू. गुरुणीजी श्री मानश्रीजी महाराज साहब की सुशिष्या प.पू. गुरुणीजी श्री कमलश्रीजी म.सा., प्रशान्तमूर्ति प.पू. गुरुणीजी श्री हेतश्रीजी महाराज साहब अपनी परमविदुषी सुशिष्या श्रीमुक्तिश्रीजी म.सा. आदि श्रमणी वृन्द के साथ राजगढ़ पधारीं। लीलावती उनके पावन दर्शनों के लिए व्याकुल हो उठी। उनका मन बार बार गुरुवर्याश्री के चरणों में जाने के लिए ललकने लगा।

उपवन में प्रवेश करने के बाद व्यक्ति उपवन के उस क्षेत्र में पहुँचता है, जहाँ की सुरभि, जहाँ की सुषमा उसे सर्वाधिक आकर्षित करती हों। **लीलावती को 'हेत मुक्ति' की सुरभि ने जैसे मोह लिया। वे जिन श्रीचरणों में सर्वप्रथम पहुँची थीं; वे श्रीचरण थे साधना की प्रखर प्रतिमूर्ति पूज्यवर्या गुरुणीजी श्री हेतश्रीजी महाराज साहब एवं पू. गु.श्रीमुक्तिश्रीजी महाराज साहब**। जैसे कोई गहन अंधकार में स्पर्श से टटोलते-टटोलते अपने हाथ खोजी जा रही वस्तु पा लेता है, उसीतरह लीलावती ने विराग पथ का अपना माध्यम दोनों पूज्या गुरुवर्याश्री के रूप में पा लिया था। वहाँ विराजित अन्य श्रमणीवृन्द को लीलावती अनिमेष दृष्टि से देख रही थी, अत्यन्त श्रद्धाभाव से उन्होंने सभी को नमन किया एवं पू. गुरुवर्याश्री के श्रीचरणों में बैठकर असीम सुख का अनुभव किया।

दीक्षा की राह पर

चर्चा के दौरान श्रद्धापूर्वक बड़े विनम्र शब्दों में लीलावती ने कहा-''पूज्यवर्याश्री ! मैं अपने जीवन में एक विशेष उद्देश्य लेकर चली हूँ। बीच में सांसारिक व्यवहार निभाने का दायित्व भी ग्रहण किया, किंतु दुर्भाग्य ने मुझे गहन आघात पहुँचाये। मैं अब इसी उद्देश्य से आपश्री के सान्निध्य में आई हूँ कि मुझे आपश्री अध्यात्म-मार्ग पर साथ लेकर चलें।'' इतना कहकर उन्होंने अपने ऊपर जो बीता, वह सब विस्तार से बतलाया।

पूज्या गुरुवर्याश्री ने लीलावती को यह कहकर धैर्य बंधाया कि संसार में प्रत्येक जीव शुभाशुभ कर्मों के अधीन है। कभी संयोग तो कभी वियोग, कभी अनुकूलता तो कभी प्रतिकूलता। कभी सुख तो कभी दुःख, कभी धूप तो कभी छाँव। कभी अंधकार तो कभी प्रकाश ! जीवन की राहपर चलते हुए विविध अनुभूतियों से हर एक को गुजरना पड़ता है।

बहन लीला ! तुम पूर्ण धैर्य एवं विवेक से काम लो। संसार में ऐसा कौन है, जिसके जीवन में उतार-चढ़ाव नहीं आए हो ?

**''जीवन में सुख-दुःख निरंतर, आते जाते रहते हैं।
सुख तो सब ही सह लेते, पर दुःख धीर ही सहते हैं॥**

मनुज दुग्ध से, दनुज रुधिर से, देव सुधा से जीते हैं।
इस जगती का हलाहल विष, तो शंकर ही पीते हैं ॥"

लीलावती को गहरा सुख मिला। एक नई स्फूर्ति, एक नई चेतना से मानो समृद्ध बनकर मन-ही-मन जैसे वे पुलक-पुलक हो उठीं। उनकी वैराग्य भावनाओं का आभास धीरे-धीरे अब पारिवारिक जनों को भी होने लगा।

लीलावती का एकमात्र संबल अब पू. गुरुवर्याश्री का अपनत्व से ओतप्रोत आशीष एवं अनुग्रह ही था। **पूज्या गुरुवर्याश्री ने अत्यन्त आत्मीयता के साथ कहा- "अपने श्रेष्ठ मार्ग पर अडिग रहना।"**

बस, रंग चढ़ने लगा। रंग चढ़ भी गया था, चमक भी आ गई थी; केवल पक्का और स्थायी होना था। लीलावती का वैराग्य-अंकुर लहलहा उठा। उनका मन संयम के जल में अवगाहन करने लगा। समय अपने प्रवाह के साथ बीतता जा रहा था। लीलावती की उत्कृष्ट धर्मभावनाएँ उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पा रही थीं।

"जाग उठा फिर सोना क्या रे"।

संकल्पों को साकार करने का समय आया। जीवन के धन्य क्षण आ गए। मन-मयूर नाच उठा।

'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में पर लय होयगी, बहुरि करेगा कब ॥'

इस शुभ भाव को अन्तर्हदय में भलीभाँति प्रतिष्ठापित कर लीलावती श्रमणीधर्म में दीक्षित होने के लिए लालायित हो उठी। किसी शायर ने सत्य ही कहा है –

"ढूँढती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
जब तलब जाती रही, वह बेकरार आने को है" ॥

लीलावती का वैराग्यभाव इतना अविचल एवं जागृत था कि अब उन्हें किसी भी तरह से किसी के भी द्वारा विचलित करना संभव नहीं था। दृढ़ प्रतिज्ञ को मंजिल मिलती ही है। **कहा भी है 'जहाँ चाह है वहाँ राह'।**

लीलावती ने पुनः दृढ़ता के साथ संयम-मार्ग पर आरुढ़ होने हेतु पारिवारिक सदस्यों से आज्ञा माँगी। पर भला! मोहासक्त परिवार उन्हें दीक्षित होने हेतु कैसे स्वीकृति प्रदान करता? किन्तु उनकी परिपक्व संयम दृढ़ता के आगे सारे ही प्रयत्न निष्फल रहें।

जीत सत्य की होती है, असत्य की नहीं, योग की होती है, भोग की नहीं, त्याग की होती है, राग की नहीं। इस सत्य को हृदयंगम करते हुए उल्लास भावों से संयम-मार्ग पर अग्रसर होने हेतु सभी पारिवारिक सदस्यों ने उन्हें दीक्षा की अनुमति प्रदान की।

दीक्षा के सम्बन्ध में सुनने को तो काफी मिलता है, किन्तु बहुत ही कम लोग ऐसे होंगे जो

दीक्षा का अर्थ और उसके महत्त्व के विषय में जानते होंगे। अतः यहाँ इस विषय पर संक्षेप में विवरण देना प्रासंगिक ही होगा।

दीक्षा का अर्थ एवं महत्त्व

भारतीय संस्कृति में चिंतन का केन्द्रबिन्दु आत्मा है। इसीलिए धर्म-दर्शन की विविध धाराओं में शरीर से परे आत्मोत्थान पर विशेष बल दिया गया है। साधना का चरम लक्ष्य परमपद की प्राप्ति ही है।

'**असारोऽयं संसारः**' अर्थात् यह संसार असार है। इस असार संसार में लेशमात्र भी सुख नहीं है। यह आधि-व्याधि और आँधियों से घिरा हुआ है। यह संसार दुःखों से परिपूरित है। उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट कहा है -

जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो ॥

संसार में जन्म का दुःख है, जरा, रोग और मृत्यु का दुःख है। चारों ओर दुःख ही दुःख है। '**संसार दुक्खं**' - संसार महादुःखमय है। इसीलिए यहाँ प्राणी निरन्तर कष्ट ही पाते रहते हैं।

संसार कैसा है ?

श्री अभिधान राजेन्द्र कोश में कहा है -

"**एगंत दुक्खे जरिते व लोए**"। (अभिधान राजेन्द्र कोश-भाग-3 पृ. 610)

यह संसार ज्वर के समान एकान्त दुःखरूप है। जो दुर्गति में धकेल दे, जो मोहमाया से जोड़ दे, वह है संसार। जो पवित्र आत्मा को कलुषित कर दे, जो राग-द्वेष के परिणाम को पुष्ट करे, वह है संसार।

संसार असार क्यों ?

दुखों से भरा हुआ होने से संसार असार है। कर्म की पराधीनता होने से संसार असार है। सच्चा कोई शरण नहीं होने से संसार असार है। असंतोष, झगड़ा और क्लेश होने से संसार असार है। संसार की इस असारता को प्रत्यक्ष जानकर व मानकर चौवीस तीर्थंकर स्वयं जो उसी भव में निश्चित अपना मोक्ष जानते हैं, फिर भी चारित्र अंगीकार करते हैं तथा हमारे सामने एक अद्‌भुत आदर्श उपस्थित करते हैं। "**चारित्र बिना नहीं मुक्ति रे**"। किन्तु आज सभी तृष्णा की आग में झुलस रहे हैं और जहाँ तृष्णा है, वहाँ दुःख है। यह सांसारिक तृष्णा भयंकर विषैले फल देनेवाली विषवेल है।

एतदर्थ विश्ववत्सल तीर्थंकर परमात्मा ने संसार को महाभयानक जंगल कहा है। इस जंगल को पार करने के लिए एवं भव यात्रा को समाप्त करने के लिए संयमयात्रा (दीक्षा) एक

श्रेयस्कर मार्ग है। दीक्षा एक ऐसी सुन्दर नौका है, जिसपर सवार होते ही भवरूपी सागर को पार करने का भय नहीं रहता।

दीक्षा आत्मा को परमात्मा बनाने का श्रेष्ठ उपाय है। वह एक प्रकार से आध्यात्मिक प्रयोगशाला है। इस प्रयोगशाला में प्रवेश कर चारित्रात्मा तप-त्याग, स्वाध्याय, एवं ज्ञान-ध्यान के द्वारा आत्मिक गुणों का निरीक्षण परीक्षण करती है और आत्मा की अव्यक्त शक्तियों को प्रकट करती है। अभिधान राजेन्द्र कोश में कहा है –

'अभयकरो जीवाणं सीयघरो संजमो भवइ सीओ'।

— अभिधान राजेन्द्र कोश भाग 7 पृ. 883

प्राणिमात्र को अभयदान करने के कारण संयम (दीक्षा) शीतगृह (वातानुकूलित घर) के समान शान्तिप्रद है।

दीक्षा यानि दोषों का दफन, कल्पना का कफन।

दीक्षा है सत्य की साधना और मैत्री का विस्तार।

दीक्षा है गुरु के द्वारा प्रदत्त प्रकाश में अनंत की यात्रा। वह यात्रा है परमात्मा की ओर उड़ान।

दीक्षा चौदह राजलोक के प्राणिमात्र की रक्षा करने के लिए श्रेष्ठतम जीवनचर्या है।

दीक्षा संसार के समस्त प्राणियों को अभयदान देकर आत्मा को निर्मल बनानेवाली पवित्र गंगा है।

दीक्षा संसार की भयंकर अटवी में भटकते हुए भव्यात्माओं को मोक्ष-मार्ग की ओर ले जानेवाला श्रेष्ठ रथ है।

दीक्षा यानि चारित्र। चारित्र के बिना मोक्ष नहीं हो सकता। चारित्र के बिना मानव जीवन सार्थक नहीं बनता है। चारित्र त्रिभुवन में दुर्लभातिदुर्लभ वस्तु है। इसलिए स्वर्ग के इन्द्र भी चारित्र की चाह करते हैं।

चारित्र अर्थात् आत्मा और परमात्मा का एकीकरण। चारित्र मोक्ष-महल पर चढ़ने की लिफ्ट-सीढ़ी है। वह मोहराजा की राजधानी रूप इस पापमय संसार को नष्ट करनेवाला अणुबम है। वह कर्म-सेना को परास्त करनेवाला वीर योद्धा है। वह शिव-सुन्दरी के वरण का स्वयंवर मंडप है। यह चारित्र आन्तरिक शत्रुओं को खदेड़नेवाला मशीनगन है। वह मुक्ति का साक्षात् कारण है। वह सकल जीवों का अभयदाता है। यह चारित्र ज्ञान-ध्यान के निर्मल शीतल और स्वादिष्ट जल पीने की पवित्र प्याऊ है। वह परमपद का परम पवित्र पंथ है।

जब हम **'दीक्षा'** शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करती हैं तो पाती हैं कि दीक्षा शब्द **'दीक्ष्'** धातु से बना है। इसका अर्थ होता है-किसी धर्म-संस्कार के लिए अपने आपको तैयार करना। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अपने आपको आत्म-संयम के लिये तैयार करना। इसे आन्तरिक चेतना का रूपान्तर भी कहा जा सकता है। यह आध्यात्मिक जीवन का प्रवेशद्वार भी

है। दीक्षा को वृत्तियों का पवित्रीकरण और संस्कारशीलता का नाम भी दिया जा सकता है। दीक्षा के सम्बन्ध में एक कवि ने कहा है : –

विश्वानन्दकरिभवाम्बुधितरी सर्वाऽऽपदांकर्त्तरी,
मोक्षाध्वैक विलंघनाय विमला, विद्या परा खेचरी।
दृष्ट्या भावित कल्मषापनयने, बद्धा प्रतिज्ञा दृढ़ा,
रम्यार्हच्वरतिम् तनोतु भविनां दीक्षा मनोवांछितम् ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि विश्व में आनंद का संचार करनेवाली, घोर संसार-सागर से पार पहुँचानेवाली, सम्पूर्ण आपदाओं को काटनेवाली, मोक्षमार्ग को पार करने के लिए एकमात्र निर्दोष आकाशगामिनी उत्कृष्ट विद्या है। दृष्टिमात्र से पाप मल को हटाने में जो दृढ़ प्रतिज्ञावाली हैं, ऐसी सुरम्य आर्हत्दीक्षा अर्थात् भागवती प्रव्रज्या भव्यजनों को मनोवांछित फल प्रदान करें।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने दीक्षा की परिभाषा कुछ इसप्रकार की है :–

दीयते ज्ञानसद्भावः क्षीयते पशुबन्धनाः।
दानाक्ष-परमसयुक्तः दीक्षा तेनेह कीर्तिता ॥

उपर्युक्त विवरण से **दीक्षा** का अर्थ स्पष्ट हो जाता है और यह सहज ही कहा जा सकता है कि दीक्षा सात्त्विक जीवन जीने की अपूर्व कला है। आत्म-साधना के परम और चरम बिन्दु तक पहुँचाने वाले सोपान का नाम दीक्षा है।

जैन आगम साहित्य में दीक्षा और वय पर भी विचार किया गया है। यह बिन्दु यहाँ अप्रासंगिक प्रतीत होता है। अतः इस पर विचार नहीं किया जा रहा है।

श्रमण-श्रमणी के चार प्रकार

श्री अभिधान राजेन्द्र कोश में श्रमण-श्रमणी के चार प्रकार बताये हैं :-

चत्तारि पुरिस जाया पन्नत्ता –

सीहत्ताए णाम मेगे निक्खंते सीहत्ताए विहरइ,
सीहत्ताए णाम मेगे निक्खंते सियालत्ताए विहरइ,
सियालत्ताए णाम मेगे निक्खंते सीहत्ताए विहरइ,
सियालत्ताए णाम मेगे निक्खंते सियालत्ताए विहरइ ॥

अभिधान राजेन्द्र कोश भाग 5 पृ. 1029

१. कुछ व्यक्ति सिंह की तरह चारित्र लेते हैं और सिंह की तरह ही पालते हैं।
२. कुछ व्यक्ति सिंह की तरह चारित्र लेते हैं और सियाल की तरह पालते हैं।
३. कुछ व्यक्ति सियाल की तरह चारित्र लेते हैं और सिंह की तरह पालते हैं।
४. और कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो सियाल की तरह चारित्र लेते हैं और सियाल की तरह ही पालते हैं।

आपश्री ने विक्रम संवत् २००८ में राजगढ़ में जिस श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास, उल्लास, उत्साह,

उमंग और वैराग्य वासित भावना के साथ सिंहवृत्ति से चारित्र अंगीकार किया और आत्म-साधना के लिए एक कठोर कदम बढ़ाया, आपने संसार के मोह-बंधनों को तोड़कर अपनी गुरुवर्याश्री के पाद-पंकजों में सर्वतोभावेन अपने आपको समर्पित किया और अन्तिम समय तक उसी श्रद्धा, उसी आनंद एवं उल्लासपूर्वक सिंह की भाँति उनपचास वर्ष पर्यन्त निर्मल चारित्र का पालन दृढ़ता के साथ किया। किसी कवि ने ठीक ही कहा है –

त्यागियों की यह संस्था है,
कायरों का यहाँ काम नहीं ।
पंचमहाव्रत का पालन करते,
शूरवीरों का मुकाम यही ॥

दीक्षोत्सव

लीलावती की दीक्षा की तैयारी हुई। सारा परिवार जुट गया। लीलावती के मन के उल्लास और आनंद की कोई सीमा नहीं थी। वे अपने संकल्पों को साकार होते देखकर मन-ही-मन नाच रही थी। व्यक्ति के संकल्प प्रखर होने चाहिए। प्रखर संकल्प एकदिन निश्चित रूप से सफल होता है। **श्री मोहनखेड़ा तीर्थ-निर्माता संघवी सेठ लूणाजी की कुलदीपिका पौत्रवधू लीलावती की दीक्षा** का शुभमुहूर्त *व्याख्यानवाचस्पति* परम पूज्यपाद आचार्यप्रवर श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब ने वैशाख शुक्ला दसमी का प्रदान किया। उस समय प.पू. आचार्य भगवन्त आहोर (राज.) विराज रहे थे और दीक्षा प्रदान करने हेतु स्वयं आ पाने की स्थिति में नहीं होने से राजगढ़ विराजित परम विद्वान् पू. मुनिराज श्री वल्लभविजयजी म.सा. एवं प.पू. श्री कल्याणविजयजी म. सा. को सहर्ष दीक्षा करवाने की आज्ञा प्रदान की। दीक्षोत्सव पर आसपास के क्षेत्रों के सहस्रों लोग एकत्र हुए। पू. दोनों मुनिप्रवर दीक्षा मण्डप में पधारे। पू. गुरुवर्याश्री सभी शिष्याओं के साथ इस समारोह में पधारीं। दीक्षा का भव्य जुलूस निकाला गया। यह दिन वैशाख शुक्ला दसमी, विक्रम संवत् २००८, तदनुसार ईस्वी सन् 2051 का था। वातावरण गगनभेदी मंगल नारों से गूँज रहा था। दीक्षा-वरघोड़ा निश्चित समय पर **सेठ लूणाजी प्राग्वाट निर्मित श्री मोहनखेड़ा तीर्थ जिला-धार (म.प्र.)** के सुसज्जित सभामण्डप में पहुँचा। मंडप की विशालता और उसमें नहीं समा पानेवाली भीड़ ने समा बाँध दिया। देखते-देखते सांसारिकता के दायरे से निकलकर वे विराग के दायरे में आने को तत्पर हुईं। कई आँखों से अश्रुधारा बह उठी। पारिवारिक जनों के अलावा अन्य उपस्थित लोगों के अश्रु बह रहे थे। सभी की दृष्टि लीलावती पर टिकी हुई थी।

जब वे वस्त्र परिधान परिवर्तित करने जा रही थीं। तब हजारों सिसकियाँ एक साथ निकल पड़ीं। नाई ने केश-राशि का कर्तन कर दिया। शुभ्र वस्त्र धारण कर लीलावती बाहर निकलीं। उस परिधान में वे सचमुच दिव्य देवत्वधारिणी लग रही थीं। एकसाथ हजारों हजार

सिर उनके चरणों में झुक गये। समग्र वातावरण जय ध्वनियों से गूँज उठा। पू. दोनों मुनिप्रवरों के वरद हस्त से एवं पू. गुरुवर्याश्री की पावन निश्रा में दीक्षा-विधि सम्पन्न होने लगी। आनन्दपूर्ण हर्षोल्लासमय वातावरण में प.पू. मुनिप्रवर द्वय के वरद हस्त से **वैशाख शुक्ला दशमी, जिस दिन हमारे आसन्न उपकारी चरमतीर्थाधिपति श्रमण भगवान् महावीर ने कैवल्य-ज्योति पाई थी; के शुभ दिन शुभमुहूर्त्त में दीक्षा प्रदान की गई और दीक्षा मंत्र प्रदान करके उन्हें प.पूज्या गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी महाराज साहब की सुशिष्या साध्वीश्री 'महाप्रभाश्रीजी' के रूप में घोषित किया**। आगे चलकर आप **'दादीपौत्री'** के नाम से विख्यात हुईं।

आपने प्रव्रज्या अंगीकार करके संघवी सेठ लूणाजी के कुल में चार चाँद लगाये। लीलावती अब 'लीला' न रही, अपितु साध्वी श्रीमहाप्रभाश्रीजी, बन गई।

अति सुंदर संयोग

आपकी बड़ी दीक्षा मनोहर मालवभूमि राजगढ़ (म.प्र.) में सम्पन्न हुई। वर्षावास का समय था। **इस संदर्भ में यहाँ यह भी उल्लेखनीय अति सुंदर संयोग ही रहा कि जिस कार्तिक शुक्ला द्वादशी को आपकी बड़ी दीक्षा हुई, वह परम पवित्र कल्याणक दिवस था-परमतारक परमात्मा श्रीअरनाथजिन के केवलज्ञान का और यह भी 'सोने में सुगन्ध' ही कहा जा सकता है कि परम पूज्यपाद राष्ट्रसंत तीर्थप्रभावक, साहित्यमनीषी वर्तमानाचार्यदेवेश श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी (तब मुनिप्रवर श्री जयन्तविजयजी) महाराज साहब के साथ ही विक्रम संवत् २०१२ कार्तिक शुक्ला बारस के शुभ दिन हमारी गुरुमैया (पू. दादीजी म.सा.) की बड़ी दीक्षा प.पू. व्याख्यान वाचस्पति आचार्यप्रवर श्रीमद् विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के वरद हस्तों से सम्पन्न हुई।**

साधना की ओर बढ़ते कदम

दीक्षोपरान्त पू. श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब ने सतत ज्ञान ग्रहण की प्रवृत्ति अपनाई। अपनी गुरुवर्याश्री से विनय-विवेक के साथ साधु प्रतिक्रमणसूत्र, चार प्रकरण, तीन भाष्यादि कण्ठस्थ कर लिए। **यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि आपने अपने जीवन में ज्ञान से भी सर्वाधिक महत्त्व अपनी गुरुवर्याश्री की वैयावच्च-सेवा-शुश्रूषा को दिया। आपश्री न केवल सेवा-शुश्रूषा परायणा ही थी, प्रत्युत विनय-विवेक, विनम्रता और गुरुके प्रति अंतरंग भक्ति-सेवा व समर्पण की तो साक्षात् प्रतिमूर्ति थीं। शैशवावस्था से ही यह गुण आप में विद्यमान था। श्रमणी जीवन में प्रवेश करने के पश्चात् तो यह गुण और अधिक निखर उठा। आपने अपनी पू. गुरुवर्याश्री की आज्ञा के विपरीत कभी कोई ऐसा कदम उठाया ही नहीं और ना कोई ऐसा आचरण किया कि उन्हें उपालंभ देने का**

प्रसंग उपस्थित हो। आपने अपने जीवन में गुर्वाज्ञा को सर्वोपरि महत्त्व दिया था। इस अप्रतिम विनयगुण ने ही उन्हें सुयोग्यतम बनाया और वे प्रतिष्ठा के उच्चशिखर पर विराजमान हो सकीं। कहते हैं-"सोने में सुगन्ध" हो जाए तो वह अमूल्य बन जाता है। आपके व्यक्तित्व में सेवा-समर्पण का स्वर्ण और विनय-विवेक की सुवास उभय विद्यमान थी। विनय में अद्‌भुतशक्ति है। सफलता के शिखर पर द्रुतगति से बढ़ी जा रही थीं आप।

नूतनदीक्षिता साध्वीश्री अब बहुत ही सजग बनकर संयम-पथ पर कदम रख रही थी। उनकी मृदु-मधुर वाणी, शान्त-मनोहर चेहरा व हर कार्य में उत्कण्ठा, सेवा-शुश्रूषा एवं संयम-साधना के क्षेत्र में अद्‌भुत जागरूकतादि देखकर पू. गुरुवर्याश्री आदि सभी संतुष्ट थीं। अपनी पूज्या गुरुवर्याश्री से आपको भरपूर स्नेह-वात्सल्य मिल रहा था।

नवदीक्षिता साध्वीश्री के मन में सेवा और विनय का भाव तो इतना अद्‌भुत था कि आपने पू. गुरुवर्याश्री के मन को जीत लिया। **जैनागम उत्तराध्ययनसूत्र के प्रथम 'विनय' अध्ययन में कहा है कि उनका जीवन विकास सुनिश्चित है जो "इंगियागार संपन्ने०" बनकर अपने पूज्य गुरुजनों के निर्देशों के अनुसार अपने जीवन को गरिमामय ढंग से ढालते हैं। गरिमापूर्ण जीवन जीनेवाले ही तो गौरव को प्राप्त करते हैं।**

गुर्वाज्ञा ही प्रथम धर्म

आपकी यह अवधारणा थी कि गुर्वाज्ञा पालन ही यथार्थ गुरू-भक्ति है। शिष्य गुरु की बाह्य भक्ति (पगचंपी, गौचरी-पानी आदि) करे और उनकी आज्ञा नहीं माने तो उसका क्या मतलब ? शिष्य शब्द का अर्थ भी इस विषय की पुष्टि करता है।

'शासितुं योग्य:=शिष्य:'-शासन अर्थात् आज्ञा। जो शासन करने के योग्य है, जो गुर्वाज्ञा माने वही वास्तविक शिष्य है। गुर्वाज्ञा माननेवाला शिष्य जन्म-जन्मान्तर में कल्याण का भाजन बनता है। गुर्वाज्ञा-पालन का महत्त्व बताते हुए संत कबीरदासजी ने भी कहा है -

गुरु को शिर पर राखिए, चलिए आज्ञा मांहि।
कहत कबीर ता दास को, तीन लोक डर नांहि।

गुर्वाज्ञा को 'तहत्ति' करना यह शिष्य का मुख्य और प्रथम धर्म है। जैसाकि जैनागमों में कहा है - "आणाए धम्मो" - आज्ञा में ही धर्म है।

गुरु-चरणों में प्रतिपल आपके मन में श्रद्धा का अथाह सागर लहराता था। एक शिष्य के मन में गुरु के प्रति किसतरह का समर्पण होना चाहिए, यह आपके जीवन से सहज ही जाना जा सकता है। **गुरु की असीम कृपा-दृष्टि जिसपर हो जाये, सचमुच वह सौभाग्य संपन्न होता है। आप इस दृष्टि से परम सौभाग्यशालिनी रहीं।**

जैसा परिवेश मिलता है, वैसे ही संस्कार और परिस्थितियाँ बन जाती हैं। आपको पू. गुरुवर्याश्री का जो सान्निध्य मिला, उससे आपके व्यवहार में उच्च संस्कार कूट-कूट

कर भर गए। शनैः-शनैः तप-त्याग की आग में, साधना के पथ पर आप उत्तरोत्तर और अधिक निखरती ही चली गईं। परिणामतः आपका जीवन प्रपंचों से परे, लोकैषणा से दूर व निष्कलंक होता गया।
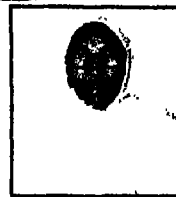
सुवासित जीवन-सौरभ

आप जब जितना आवश्यक होता, उतना ही बोलती थीं। अनुशासन, स्वाध्यायप्रियता, समता, सहिष्णुता आदि दिव्य सद्गुण-सुमनों से आपका जीवन सुवासित था। जिसका सौरभ आज भी चारों दिशाओं में महक रहा है। जैसा उनका नाम था, वैसा ही दीप्तिमान उनका व्यक्तित्व था।

श्रमणाचार के प्रति वे पूर्ण जागरूक थीं। पूर्ण कर्तव्य-परायणा थीं। वे जीवनभर संयम रूपी असिधारा-पथ पर चलती रहीं। उनकी आकृति और प्रकृति में सहजता थी, सरलता थी और सात्त्विकता थी।

उनके अन्तर्मानस में न घुमाव था, न फिराव था, न दुराव था और न छिपाव ही था। जो भी मन में भाव उत्पन्न होते अपनी पू. गुरुवर्याश्री के समक्ष सहज-सरल शब्दों में निवेदन कर देती थीं। वे अप्रमादी थीं। निरर्थक बातें- गप-शप करना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं था। यही कारण था कि जब भी अपनी दैनन्दिनी क्रियाओं के बाद उन्हें समय मिलता, तब वे स्वाध्याय करतीं। धार्मिक साहित्य वाचन करतीं।

आपने संयम जीवन का प्रथम चातुर्मास प.पू. गुरुवर्याश्री के साथ जावरा (म.प्र.) किया। फिर अलिराजपुर, कुक्षी, राजगढ़, मन्दसौर, रतलाम, खाचरौद, आहोर एवं थराद आदि स्थानों पर प.पू. गुरुवर्याश्री के साथ आपके वर्षावास हुए। इसतरह आप प.पू. गुरुवर्याश्री के श्रीचरणों में सतत चौदह वर्ष रहीं और उनकी परम कृपापात्र बनीं। तत्पश्चात् तीन चातुर्मास आहोर में पुनः प.पू. गुरुवर्याश्री के साथ किये और बत्तीस चातुर्मास आपके स्वतंत्र रूप से हुए।

धर्म-प्रभावना में वृद्धि

राजगढ़ (म.प्र.) जिला-धार साधु-संतों का विचरण क्षेत्र रहा है। मैं (प्रियदर्शना) अपने माता-पिता के साथ पू. दादीजी महाराज साहब के दर्शनार्थ जाती थी। धार्मिक संस्कार प्रारंभ से थे ही। पू. साधु-साध्वी भगवन्तों के समागम से ये धर्म संस्कार और भी अधिक अभिवृद्धि पा कर परिपक्व हो गये। सत्संग का परिणाम यह हुआ कि मेरे (प्रियदर्शना) हृदय में वैराग्य भावना तरंगित होने लगी। विचारों में दृढ़ता आने लगी। जैसा घर का परिवेश होता है। वैसा प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है।

मेरा (प्रियदर्शना) परिवेश धार्मिक संस्कारों से परिपूर्ण था। वैसा ही मुझ पर प्रभाव पड़ रहा था। इसतरह मैंने दीक्षित होने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

वि. संवत् २०२० में थराद का वर्षावास सम्पन्न होने पर वहाँ से विहार कर आप (पू.
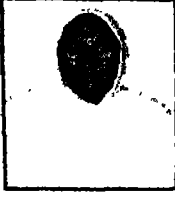
दादीजी महाराज साहब) अपनी पूज्या गुरुवर्या श्री मुक्तिश्रीजी महाराज साहब के साथ बहुत कम समय होने पर भी लम्बे विहार कर प्रतिष्ठा एवं आचार्य पदवी के प्रसंग पर श्री मोहनखेड़ा तीर्थ पधारीं। आपकी प्रथम पौत्री कुमारी पुष्पलता (प्रियदर्शना) की दीक्षा लेने की उत्कट भावना को जानकर मुहूर्त्त निकलवाया गया। दीक्षा का शुभ मुहूर्त्त तय होने पर मंगलमय आयोजन प्रारंभ हो गया।

योग-संयोग कहिए 'दोनों हाथों में लड्डू'वाली कहावत पूर्णत: चरितार्थ हुई, क्योंकि उससमय विक्रम संवत् २०२० में श्री मोहनखेड़ातीर्थ में फाल्गुन शुक्ला तृतीया के शुभ दिन श्रीमद् यतीन्द्रसूरि गुरुमंदिर की प्रात: प्राण प्रतिष्ठा और मध्याह्न में प.पू. गणाधीश श्री विद्याविजयजी म.सा. की आचार्यपदवी सम्पन्न होनेवाली थी। **'सोने में सुहागा की भाँति'** मेरी (प्रियदर्शना) दीक्षा की शुभ तिथि भी फाल्गुन शुक्ला तृतीया रही। राजगढ़-मोहनखेड़ा तीर्थ में दोहरे लाभ में एक तीसरा लाभ और जुड़ गया। अन्तत: वह शुभ समय आ गया, जिसकी कुमारी पुष्पलता प्रतीक्षा कर रही थी। भारी जनमेदिनी के बीच आपकी प्रथम पौत्री कु. पुष्पलता को भगवान् महावीर की प्रथम शिष्या चंदनबाला की तरह प.पू. आचार्यप्रवरश्री की प्रथम शिष्या बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आचार्यपद प्रदान महोत्सव होने के पश्चात् अपराह्न तीन बजे प.पू. आचार्यप्रवर श्रीमद् विजय विद्याचंद्रसूरीश्वरजी महाराज साहब के वरद हस्तों से कु. पुष्पलता की भागवती प्रव्रज्या बड़े उल्लासमय वातावरण में सम्पन्न हुई। **नूतन दीक्षिता का नाम साध्वी 'श्रीप्रियदर्शनाश्रीजी' रखा गया।**

आपका विक्रम संवत् २०२१ का चातुर्मास आहोर में प. पूज्या प्रशांतमूर्ति गुरुवर्या श्री हेतश्रीजी म. के सान्निध्य में हुआ। संयोग से उस वर्ष प.पू. विद्वद्वर्य मुनिप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब का चातुर्मास आहोर होना निश्चित हुआ था।

बुद्धि का समुचित विकास हो, इस दृष्टि से दीक्षा अंगीकार करते ही मुझे (प्रियदर्शना) प्रथम वर्षावास में ही संस्कृत पाणिनीय व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् प.पू. मुनिराज श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब से लघुसिद्धान्त कौमुदी का अध्ययन प्रारंभ करवाया गया। पू. गुरुवर्याश्री एवं आपने मेरा पूरा ध्यान अध्ययन की ओर केन्द्रित किया।

चातुर्मास पूर्णाहूति के पश्चात् प.पू. मुनिराजश्री कल्याणविजयजी महाराज साहब ने वहाँ से विहार किया। कौमुदी का अध्ययन स्थगित हो गया, लेकिन धार्मिक अध्ययन पू. गुरुवर्याश्री की पावन निश्रा में यथावत् चलता रहा।

प.पूज्यपाद आचार्य देवेश श्रीमद्विजयविद्याचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. धाणसा का चातुर्मास सम्पन्न होने पर विभिन्न ग्रामों में विचरण करते हुए सियाणा (राज.) पधारें। वहाँ मेरी (प्रियदर्शना) बड़ी दीक्षा सम्पन्न करवाने हेतु आप सियाणा पधारीं। बड़ी दीक्षा के अवसर पर आपका संसारपक्षीय (ज्येष्ठ पुत्र-पुत्रवधू एवं पौत्रियाँ)-परिवार वहाँ आया हुआ था। विक्रम संवत् २०२१ में बड़ी दीक्षा सम्पन्न होने के पश्चात् जब परिवार जाने लगा तो आपकी द्वितीय पौत्री

कुमारी प्रेमलता (सुदर्शना) ने घर जाने से मना कर दिया। मैंने (प्रेमलता) स्पष्ट शब्दों में उन सब को कह दिया। मैं यहीं रहूँगी। दीक्षा लूँगी। आपने उनसे कहा—"जब यह इतनी जिद् कर रही है तो कुछ समय यहीं रहने दो।" आपके कहने से उन्होंने मुझे (प्रेमलता) वहीं छोड़ दिया। मैं (प्रेमलता) अपनी दादीमाँ और ज्येष्ठ भगिनी के सान्निध्य में रह कर अत्यन्त प्रसन्न थी। आपके श्रीचरणों में मेरा धार्मिक अध्ययन शुरू हुआ। कुछ समय पश्चात् पुनः राजमलजी (संसारपक्षीय पिताश्री) आये। मुझ से (प्रेमलता) घर चलने के लिए कहा, पर मैंने उनके साथ जाने से साफ मना कर दिया। आपके पावन सान्निध्य में रहकर मैंने संयम साधना के लिए ज्ञानार्जन करते हुए चारित्र जीवन की तालीम (शिक्षण) लेकर स्वयं को तैयार करना शुरू कर दिया।

आपने अपनी दोनों पौत्रियों को संस्कृत व्याकरण (लघुसिद्धान्त कौमुदी) का ठोस अध्ययन करवाने हेतु प.पू. गुरुवर्याश्री की आज्ञा से ईस्वी सन् 1965 का चातुर्मास भीनमाल नगर में किया, क्योंकि —

हमारे अध्ययन की सुव्यवस्था

प.पू. मुनिराज श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब का चातुर्मास वहीं पर था। इस चातुर्मास में उनके पास लघुसिद्धान्तकौमुदी के अध्ययन के साथ-साथ धार्मिक अध्ययन भी चलता रहा।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् प.पू. मुनिराज श्रीकल्याणविजयजी महाराज साहब भीनमाल से विहार कर अन्यत्र पधार गये। इस बीच कुछ माह अध्ययन में व्यवधान उत्पन्न हो गया।

प.पू. मुनिराज श्री कल्याणविजयजी म.सा. का ईस्वी सन् 1966 का चातुर्मास थराद (उत्तर गुजरात) हुआ। हम दोनों को लघु कौमुदी एवं सिद्धान्त कौमुदी पूर्ण करवाने के उद्देश्य से आपने भी थराद चातुर्मास किया। दोनों कड़ी लगन एवं तत्परता से ज्ञानार्जन में जुटी रहीं। इस वर्षावास में भी प.पू. मुनिराज श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब ने पूरे मनोयोग पूर्वक दोनों को व्याकरण एवं काव्य का अध्ययन करवाया। परिणामतः दोनों की कौमुदी पूरी हुई।

किन्तु अभी धार्मिक सूत्रार्थ का अध्ययन करना शेष ही था। कौमुदी के अध्ययन के साथ-साथ कुछ मूलसूत्र भी हमें कण्ठस्थ करवाये गये। धार्मिक-सूत्रार्थ के विषय का विद्वान पंडित इधर कोई था नहीं। व्याकरण-काव्य के साथ धार्मिक अध्ययन भी अति आवश्यक था। काफी पूछताछ करने पर आपको ज्ञात हुआ कि राधनपुर (गुजरात) में माननीय पण्डित श्री माणकलालजी एवं पण्डित श्री हरगोविन्दजी नामक अच्छे धार्मिक प्राध्यापक हैं। आप हमें लेकर राधनपुर पधारीं। उस वक्त वहाँ जैन समाज के तीन सौ घर थे। अनेक जिनमंदिर थे। आपका सन् 1967 एवं 68 का वर्षावास राधनपुर हुआ।

आपके हृदय में हमें अध्ययन करवाने की इतनी तीव्र तमन्ना थी कि जिसकी कोई सीमा नहीं। प्रारंभ से ही उनकी यह हार्दिक भावना थी कि इन्हें येन-केन-प्रकारेण अध्ययन के क्षेत्र

में आगे बढ़ाया जाय ! वे हृदय से यह चाहती थीं कि हमलोग ज्ञान-ध्यान व स्वाध्याय में आकण्ठ डूब जाय !

यह कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि दीक्षा लेते ही आपने हमें यह जन्मघुट्टी पिलायी थीं कि जहाँ किसी की दृष्टि नहीं पड़े, वैसे एकान्त स्थान में बैठकर मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना। उन्होंने अध्ययनकाल में हमें कभी अपने पास नहीं बिठाया। वे इस बात को भलीभाँति जानती थीं कि प्रारंभ में यदि बातों में रस लग गया तो फिर पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगेगा। श्रमणी जीवन में गृहस्थ-परिवार को आप धधकता हुआ आग का गोला समझती थीं। जैसा कि जैनागमों में कहा है-"गिहि संथवं न कुज्जा"-अर्थात् गृहस्थ से परिचय-सम्पर्क नहीं करना चाहिए। इस बात को गम्भीरता से लेते हुए ही उन्होंने शुरू से आखिर तक एकान्त-शान्त स्थान में बैठकर हमें ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय व लेखनादि कार्य करने की सतत प्रेरणा दी। उन्होंने हमारे जीवन में अकेले बैठकर पढ़ने-लिखने की ऐसी सुंदर आदत डाली कि आज भी हमें एकान्तवास (जन कोलाहल से रहित नीरव, शांत, प्राकृतिक वातावरण) बहुत ही प्रिय लगता है। यह संपूर्ण श्रेय हमारी पू. दादीमाँ को जाता है।

प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुलन

राधनपुर जैसे अनजान-अपरिचित क्षेत्र में आप हमें लेकर पहुँच गयीं। वहाँ आपको प्रतिकूल परिस्थितियों जैसे-गौचरी-पानी, उपाश्रय आदि का सामना करना पड़ा। प्रत्येक कष्ट-कठिनाइयाँ सहकर भी आप वहाँ रहीं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आपने वहाँ एक नहीं, प्रत्युत अनवरत दो चातुर्मास किये।

वहाँ त्रिस्तुतिक आम्नाय के घर होना तो कोसों दूर की बात है, पर दादा गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. का नाम भी कोई नहीं जानता था। और तो और ! वहाँ ठहरने के लिए उपाश्रय भी बड़ी मुश्किल से थराद निवासी श्रीमान् खूबचंदभाई त्रिभोवनदासजी वोरा के अथक प्रयास से उपलब्ध हुआ था और वह भी पुराने ढंग का। न थी हवा की गुंजाइश और न था कोई विशेष प्रकाश ! प्रारंभ में वहाँ के श्रावक-श्राविकाओं ने आप से कईतरह के प्रश्न पूछे- **"મહારાજ ક્યાંથી આવ્યા છો ? અંહિયાં કેટલા દિવસ રોકાવાના છો ? આગલ ક્યાં જવાના છો ? તમે કયા સમુદાયના ? તમારા ગુરુનું નામ શું છે ? કયા ઉપાશ્રયે રોકાયા છો ?" आदि-आदि एक के-बाद-एक प्रश्नों की बौछारें करते थे। आप सभी को बड़ी शांति से जवाब देती थीं। वहाँ प्रारंभ में तो अपनत्व जैसा कुछ था ही नहीं।**

मैं (प्रियदर्शना) पानी लेने जाती थी। एक-एक लोटा पानी वहोराते थे लोग। दो-चार-पाँच जगह से एक घड़ा भरता था मुश्किल से। उस घड़े भर पानी लाने में भी कई प्रश्न पूछे जाते थे और उपेक्षा भाव से वहोराते थे सो अलग। गौचरी लेने जाती, तब

भी पात्र रखने से पहले ये ही प्रश्न पूछे जाते – "સાહેબ ! તમે કયા ગચ્છના ? કયા સંઘાડાના ? તમારા ગુરુનું નામ શું ? ઝોલીમાં પાત્રા કેમ રાખો છો ? શું લાલ પાત્રા નથી રાખતા ? ઘડામાં દોરી નથી નાખતાં ? તમારા સમુદાયમાં લાલ પટ્ટાની કાંબલી નથી વાપરતા ?"

इत्यादि प्रश्नोत्तर में ही दस मिनट वहीं बरबाद हो जाते थे। जैसे ही उन्हें श्रीमद् गुरुदेव के समुदाय का परिचय दिया जाता तो तुरन्त उनकी मुखाकृति बदल जाती और भावों में परिवर्तन आ जाता। वास्तव में **आज का युग दृष्टिराग का युग है, साधु-राग का नहीं। त्याग की पूजा नहीं, बल्कि परिचय की पूजा है। राग की पूजा है, बोलती तस्वीरों की पूजा है। यह राग ही बड़ा खतरनाक है। इसीलिए कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद हेमचन्द्राचार्यजी महाराज साहब को भी वीतराग स्तोत्र में कहना पड़ा-**

"कामराग स्नेहरागा वीषत्कर निवारणौ।
दृष्टिरागस्तु पापीयान् दुरुच्छेद सतामपि ॥"

यह दृष्टिराग, ज्ञानी, ध्यानी, त्यागी, तपस्वी आध्यात्मिक साधकों के लिए भी छोड़ना बड़ा दुष्कर है।

अस्तु, गौचरी में चाय, खाखरा लाती थी, वह भी दस-पन्द्रह घर घूमकर और थोड़ा बहुत दूध कभी-कभार देखने को मिलता था। अनेकबार आयम्बिलखाते से गौचरी लाकर वापर लेती थीं। कभी-कभी मैं (प्रियदर्शना) आप से कहती-महाराजजी ! मुझे यहाँ गौचरी-पानी जाने में बड़ा संकोच होता है। कोई भक्ति-भाव नहीं ? मुझे शर्म आती है। '**मान न मान मैं तेरा मेहमान**' वाली स्थिति है।

आप बड़ी शांति से हमें समझाती थीं-"अगर पढ़ाई करना है तो मान-अपमान सब कुछ सहना पड़ेगा। जैसा मिलेगा, जो भी मिलेगा उससे चलाना पड़ेगा। तकलीफ उठाये बिना सफलता थोड़े ही मिलती है !"

'विद्यार्थिनः कुतो सुखम्, सुखार्थिनः कुतो विद्या'।

गुजरात का खाना, मीठा खाना, जो मिला, जैसा मिला उसे ग्रहण कर आपको अध्ययन करवाना ही था। आपको गौचरी-पानी की नहीं, प्रत्युत अध्ययन करवाने की चिंता थी। इसतरह नानाविध कठिनाइयाँ सहकर भी आप दो साल वहाँ विराजीं। इस सम्बन्ध में आपने कभी किसी से कुछ नहीं कहा। आपने ठान लिया था कैसी भी विषम परिस्थिति में जीना पड़े, पर इन्हें पढ़ाना तो है ही। ऐसे विद्वान् पंडित तथा अध्ययन-क्षेत्र बहुत कम मिलते हैं।

चातुर्मास सानंद सम्पन्न हुआ। कभी-कभी आप हमें यह भी कहती थीं-"**श्रमणी जीवन की यही तो परीक्षा है ? यही तो कसौटी है ? 'कठिनाइयों एवं असुविधाओं में भी अध्ययन करना' यही तो जीवन की महत्ता है।**

धार्मिक अध्ययन और अधिक करवाने की दृष्टि से आपका अगला वर्षावास भी वहीं होना तय हुआ, किन्तु प्रथम वर्षावास की अपेक्षा द्वितीय वर्षावास में आपको कठिनाइयों का सामना कम करना पड़ा। आपकी साध्वाचार की कठोरचर्या से वहाँ के श्रावक-श्राविकावर्ग परिचित ही नहीं, बल्कि प्रभावित हो गये।

राधनपुर का द्वितीय चार्तुमास सम्पन्न कर आप श्री शंखेश्वरतीर्थ की यात्रा करती हुई आहोर अपनी पू. गुरुवर्याश्री के श्रीचरणों में पहुँच गईं। वहाँ प.पू. गुरुवर्याश्री की निश्रा में आपकी द्वितीय पौत्री कुमारी प्रेमलता (सुदर्शना) ने इसी वर्ष दीक्षा लेने की अपनी आंतरिक भावना व्यक्त की। पारिवारिक जनों को बुलाया गया। उनके समक्ष मैंने (प्रेमलता) स्पष्ट कहा- अब आप विलम्ब न करें। चाहे कुछ भी हो, मेरा सुदृढ़ संकल्प है कि मुझे तो इसी वर्ष दीक्षा लेनी ही है। आप आशीर्वाद देकर मुझे सहर्ष अनुमति प्रदान करें। मेरी दृढ़ता और विचारों की परिपक्वता देखकर श्रीराजमलजी (पू.पिताजी) ने प.पू. उत्कृष्ट संयम की मूर्ति गुरुवर्याश्री एवं आपश्री से निवेदन किया कि आप मालव प्रदेश राजगढ़ की ओर पधारने की कृपा करें, ताकि वहाँ इसकी दीक्षा सम्पन्न हो जावे। प.पू. गुरुणीजी महाराज साहब ने वहाँ पहुँचने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। अत: आहोर दीक्षा होना तय हुई। दीक्षा-मुहूर्त्त निकलवाया गया। **ज्ञानगर्भित वैराग्य से प्रेरित होकर आपकी द्वितीय पौत्री कुमारी प्रेमलता की वि.सं. २०२६, ईस्वी सन् 1969 की साल में फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन शुभमुहूर्त्त में प.पूज्यपाद कविरत्न शांतमूर्ति आचार्यदेव श्रीमद् विजय विद्याचंद्रसूरीश्वरजी महाराज साहब के कर-कमलों से आहोर, श्रीगोड़ी पार्श्वनाथ जिनालय से कुछ दूर एक बृहत वटवृक्ष के नीचे अत्यन्त उत्साह एवं धूमधाम के बीच भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। प.पू. आचार्यश्री ने नव दीक्षिता का नाम साध्वी 'श्री सुदर्शनाश्रीजी' रखा।**

इस वर्ष का आपका चातुर्मास प.पू. गुरुवर्याश्री के पावन सान्निध्य में आहोर ही हुआ। पू. गुरुवर्याश्री एवं आपकी निश्रा में हम दोनों का मूलसूत्र के पठन-पाठन एवं अर्थ कण्ठस्थ करने का वाचना, पृच्छना व परावर्तना रूप स्वाध्याय अनवरत चार माह सुंदर ढंग से चलता रहा।

इस सुपरिवर्तन का ठोस आधार था पूज्या दादी मातेश्वरी का दृढ़ संकल्प एवं संतुलित आचरण।

चातुर्मास समाप्त होने पर आपने प.पू. गुरुवर्याश्री की शुभाज्ञा से प.पू. कुसुमश्रीजी म.सा. एवं प.पू. कुमुदश्रीजी म.सा. आदि अपनी वड़ील गुरुबहनों एवं अपनी दोनों पौत्रियों के साथ शस्य श्यामला मनोहर मालवप्रदेश की ओर प्रस्थान किया। चूंकि गुरु भगवंत आचार्यदेवेश श्रीमद् विजय विद्याचंद्रसूरीश्वरजी महाराज साहब ने श्रमणीवृन्द को बड़ी दीक्षा सम्पन्न करवाने हेतु राजगढ़ (मोहनखेड़ातीर्थ) पहुँचने का आदेश प्रदान किया था।

युवापीढ़ी में धर्म-चेतना की लहर

मेरी (सुदर्शना) बड़ी दीक्षा श्री मोहनखेड़ा तीर्थ में सम्पन्न हुई। तत्पश्चात् पारा संघ का अत्याग्रह होने से प.पू. आचार्य भगवन्तश्री के आदेशानुसार सन् 1970 का चातुर्मास पारा (म.प्र.) हुआ। आपके पारा पदार्पण से इस चातुर्मास में विशेष जागृति उत्पन्न हुई। आपकी प्रेरणा से अनेक स्त्री-पुरुषों, बालक-बालिकाओं ने देव-दर्शन, देव-पूजा, रात्रिभोजन-जमीकंद त्याग एवं नवकारसी आदि के नियम लिए। कई बालक-बालिकाओं ने गुरुवंदन, सामायिक, चैत्यवंदन, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक सूत्र कण्ठस्थ किए। युवापीढ़ी में महिला समाज एवं पुरुषवर्ग से भी अधिक उमंग व उत्साह था। युवापीढ़ी ने अक्षयनिधि तप, एकासने, तेले आदि अनेकविध तपश्चर्याओं में खूब भाग लिया। आपकी ही सुप्रेरणा से इस चातुर्मास में चौदह सपनाजी एवं पालनाजी लाये गए। इसतरह जनसमूह में एक नई धार्मिक-चेतना प्रकट हुई। बड़े धूमधाम से चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

पूज्याश्री : मोहनखेड़ातीर्थ पदार्पण

चातुर्मास समाप्त होते ही विहार हुआ। पारा निवासियों ने हृदय और आँखों के भर-भर आने पर भी ठाठ-बाट से विहार कराया। यहाँ से विचरण करते हुए आप मोहनखेड़ा तीर्थ पधारीं। पौष शुक्ला सप्तमी (गुरुसप्तमी) वहीं मनाई। उन दिनों मन्दसौर से त्रिस्तुतिक संघ के माननीय श्रीराजमलजी लोढ़ा वहाँ आये हुए थे। काफी देर तक उनसे आपकी चर्चा हुई। उन्होंने अध्ययन हेतु मन्दसौर पधारने के लिए आप से बहुत आग्रहभरा निवेदन किया।

उन दिनों प.पूज्यपाद आचार्य भगवन्तश्री मंदसौर नई आबादी प्रतिष्ठा करवाने हेतु पधार रहे थे। अत: विहार में मन्दसौर तक आप भी साथ में थीं। प.पू. आचार्य भगवन्तश्री मोहनखेड़ा तीर्थ से विहार कर राजोद, लाबरिया होते हुए बदनावर (म.प्र.) पधारे। आप किसी विशेष कार्यवश कुछ पूछने हेतु पू. आचार्यश्री के श्रीचरणों में दोपहर तीन बजे उपाश्रय में पहुँचीं।

चाय का संकल्प

पू. आचार्यभगवन्तश्री काष्ठासन पर विराजे हुए थे। कुछ साधु भगवन्त चाय वापर रहे थे। आपने सहजभाव से पू. आचार्यश्री से निवेदन किया—"गुरुदेव ! आप भी पधारिये।" उन्होंने फरमाया—"साध्वीजी ! मैं चाय नहीं लेता हूँ।" उसी समय आपने कहा—"गुरुदेव ! मुझे भी जीवनभर के लिए चाय नहीं लेने का संकल्प करवा दीजिए"। सचमुच उसीक्षण उन्होंने बिना विलम्ब किए पू. दादीजी महाराज साहब को प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) करवा दिए। हम तो देखती ही रह गईं। उस संकल्प को आपने अन्तिम क्षण तक पूरी दृढ़ता के साथ निभाया।

कभी-कभी आप चर्चा के दौरान कहा करती थीं—"नियम लेने से पूर्व मैं भी चाय लेती थी, किन्तु चाय का व्यसन बड़ा दु:खदायी होता है। आदत नहीं होनी चाहिए। कइयों को देखा

है, चायदेवी के नहीं मिलने पर सिर पकड़ कर बैठ जाते हैं, सो जाते हैं। कुछ सूझता ही नहीं है। चाय की आदत बन जाने से नहीं मिलने पर तड़पन होती है। इतना ही नहीं, यह चाय का व्यसन एकासना, आयंबिल भी नहीं करने देता। यह हमें पराधीन बना देती है। इसलिए श्रमण-श्रमणी जीवन में तो चाय का व्यसन होना ही नहीं चाहिए। मौका आने पर सहज रूप में इसका सेवन कर लें, बात अलग है।" वे कहती थीं -"**केवल चाय ही नहीं, वैसे हमें किसी भी वस्तु के अधीन नहीं होना चाहिए।**"

'**परस्पृहा महादु:खं, निस्पृहत्वं महासुखं**' यह आपका जीवन सूत्र था। समय पर जो भी, जैसी भी निर्दोष वस्तु मिल जाय, उसे ग्रहण कर लेना, यही जीवन का सच्चा आनंद है।

मन्दसौर में शालायी शिक्षण

मन्दसौर पहुँचने पर श्रीमान् राजमलजी लोढ़ा ने आप से निवेदन किया-आप यहीं विराजकर इन दोनों को अध्ययन करवाइए। अध्ययन की संपूर्ण व्यवस्था यहाँ हो जाएगी। आपको तनिक भी चिंता करने की जरूरत नहीं है। सब संभाल लूँगा मैं।

आपका ईस्वी सन् 1971 का वर्षावास मन्दसौर जनकूपुरा हुआ। श्रीमान् लोढाजी ने मन्दसौर में राष्ट्रभाषा हिन्दी वर्धा का केन्द्र खुलवा कर '**प्रारंभिक, परिचय और कोविद**' की तीन परीक्षाएँ दिलवाईं। हम दोनों का परीक्षा परिणाम सुन्दरतम रहा।

यद्यपि दीक्षा से पूर्व हमारा स्कूलीय व्यावहारिक शिक्षण प्राथमिक कक्षा पाँचवीं तक हुआ था। योग-संयोग से उन दिनों दसवीं-ग्यारहवीं द्विवर्षीय कोर्स का नया नियम निकला था। अत: दोनों को उसका फार्म भरवाया गया। अध्ययन का क्रम सतत चलता रहे, यह विचार करके मन्दसौर श्रीसंघ ने आग्रहपूर्वक ईस्वी सन् 1972-73 के चातुर्मास भी वहीं करवाये। इससे अध्ययन तीव्रगति से चलता रहा। ईस्वी सन् 1972-73 के दोनों चातुर्मास मन्दसौर नई आबादी श्रेयांसनाथ मंदिर में हुए। ईस्वी सन् 1972 में आपका चातुर्मास मन्दसौर-नई आबादी था। तब संसारपक्षीय पारिवारिक लोग अवकाश के क्षणों में आपके दर्शनार्थ आए। उससमय आपकी चतुर्थ पौत्री कुमारी आशा (आत्मदर्शनाश्रीजी) चार माह आपके संग रही। उसे भी संग का रंग लग गया। वैराग्यावस्था में वह तीन-चार वर्ष पर्यन्त आपके श्री चरणों में रहकर धार्मिक अध्ययन करती रहीं।

आपश्री ने एवं माननीय लोढ़ाजी ने अपूर्व उत्साह, साहस एवं अथक प्रयासों के द्वारा पढ़ा लिखाकर हमें (प्रियदर्शना-सुदर्शना) सुयोग्य बनाने का संकल्प कर लिया था।

शालायी शिक्षण-क्षेत्र में कदम उठानेवाली प्रथम साध्वी

यद्यपि इस अध्ययन के दौरान आपको अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। विरोधों को झेलना पड़ा। विरोधों को झेलकर भी आपने साहस को नहीं छोड़ा।

यों कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि वे एक साहसी, दृढ़ संकल्पी, निर्भीक सिंहनी थीं कि जिन्होंने किसी भी कार्य के लिए कदम उठाकर पुनः पीछे कदम रखना सीखा ही नहीं था।
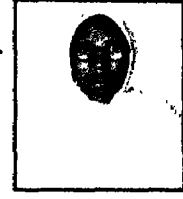
यद्यपि आप पुराने युग की थीं, परन्तु आधुनिक युग की ओर आपकी नफरत पूर्ण दृष्टि नहीं थी। वे प्राचीन परंपराओं को तोड़ने में भी कतई विश्वास नहीं करती थीं और न ही आधुनिक परंपराओं को जोड़ने की आकांक्षी थीं। उनका न तो पुरातन परंपराओं से चिपके रहने का आग्रहपूर्ण दृष्टिकोण था और न ही आधुनिक परंपरा को आँखें मूँद कर मान्य करने की पक्षधर थीं। यही कारण था कि आपने अपने सरल हृदय को पाषाण से भी अधिक मजबूत बनाकर हमें शालायी अध्ययन करवाना प्रारंभ किया।

आज से चौंतीस-पैंतीस वर्ष पूर्व त्रिस्तुतिक संघ-समाज में आप पहली साध्वी थीं, जिन्होंने इतना साहस करके विरोधों को झेलकर शालायी अध्ययन के क्षेत्र में पहला कदम उठाया था, जबकि वे इतनी विदुषी भी नहीं थीं, फिर भी हमें अध्ययन करवाने की लगन थी। उत्कट भावना थी। यही कारण था कि अध्ययनकाल में कई अवरोध भी आए, विरोध भी हुए, उन सब का सामना करते हुए आपका अनवरत प्रयास जारी रखना, यह इसका ज्वलन्त प्रमाण था। अध्ययन दरम्यान कभी कोई रूकावट नहीं आने दी आपने। आपने हमारे अध्ययन में किसी प्रकार की कोई कसर उठा नहीं रखी। अपने उत्तरदायित्त्व का सफलता पूर्वक निर्वाह किया।

मेहंदी को पत्थर पर जितना अधिक पीसा जाता है, उतना ही अधिक वह रंग लाती है।

रंग लाती है हिना पत्थर पे घिसने के बाद

ठीक इसीतरह अनेक विरोध, कष्ट-कठिनाइयाँ सहते हुए पू. दादीजी महाराज साहब का प्रयत्न भी आखिर रंग लाया।

आपकी दोनों पौत्रियों (प्रिय-सुदर्शना) के समय तो व्यावहारिक शिक्षण का काफी विरोध हुआ था, किंतु सभी विरोधों को झेलकर आपके सद्प्रयासों ने शालायी अध्ययन-मार्ग को, बाद में (आज) सभी के लिए सहज, सरल, सुगम और साफ बना दिया।

एक प्रसंग याद आ रहा है—जब मंदसौर अध्ययन का क्रम चल रहा था। तब एक सज्जन ने आकर आपको सूचना दी—महाराज श्री! "अब इनके व्यावहारिक शिक्षण पर प्रतिबंध लग जाएगा।" मुझे विश्वस्त सूत्रों के द्वारा पता लगा, अतः आपको अवगत कराने आया हूँ। अब आप जैसा उचित समझें, करें।

हम दोनों ने कहा—महाराजजी! अब क्या होगा? हमारी पढाई बंद हो जाएगी? आपने दृढ़तापूर्वक कहा—"**होगा क्या? सब अच्छा होगा।**" उनका हर जवाब आशा और आत्मविश्वास से भरा ही हमें मिला। हमने कभी भी उनके मुँह से यह नहीं सुना कि "**अब क्या होगा? कैसे**

होगा ?" कब, क्यों और कैसे ? की जगह उनकी सोच "धैर्य रखो, सब अच्छा होगा" "ऐसे यूं होगा" वाली रहती थी। इसी सकारात्मक सोचने उन्हें '**महतोमहीयान्**' के रूप में विचारों का धनी बनाया। हमें ऐसा कईबार अनुभूत हुआ है।

आपने सान्त्वना भरे शब्दों में कहा–"तुम तो अध्ययन में मस्त रहो। मेरे पास कोई आएँगे, मैं अपने आप जवाब दे दूँगी।" ठीक यही बात श्री राजमलजी लोढ़ा ने भी कही थी।

हम दोनों की अध्ययन के प्रति निष्ठा, लगन, दिनरात भरपूर परिश्रम और हर परीक्षा में पूर्णतः सफलता देखकर कई ईर्ष्यालु विरोधी तत्त्व भीतर ही भीतर जल भुन रहे थे। परंतु ऐसा कोई एक भी बिंदु नहीं मिल पाया उन्हें, जो हमारे अध्ययन को रोक सके।

किसी ने कहा भी कि साध्वियों को इतना पढ़ाने से क्या लाभ ? पर आपने उस बात को आई गई कर दी। उस बात पर कोई ध्यान ही नहीं दिया।

अपना सा मुँह लेकर चल दिए

कुछ दिन पश्चात् फिर एक सज्जन आपके पास आये। हम अध्ययन कर रही थीं। कुछ दूरी पर आप विराजी हुई थीं। पहले उन्होंने कुछ इधर-उधर की बातें कीं। फिर आप से पूछा-इन दोनों का अध्ययन ठीक से चल रहा है ना ? लघुसिद्धान्त कौमुदी हो चुकी है इनकी। धार्मिक अध्ययन राधनपुर करवा दिया है। अब अधिक अध्ययन करवाने से क्या फायदा ? व्यावहारिक शिक्षण की क्या जरूरत है ? क्या इन्हें नौकरी करवाना है ? यदि इन्होंने अधिक अध्ययन कर लिया और विशिष्ट योग्यता (स्नातकोत्तर बन गईं) प्राप्त कर लेंगी, फिर आपकी आज्ञा की अवमानना (अवज्ञा) करेंगी ? पढ़-लिख जाने के बाद आपकी सेवा की उम्मीद ही नहीं की जा सकती है इनसे ? अभी आप उत्साह-उमंग से पढ़ाने में लगी हैं, पर बाद में पछतावा करना पड़ेगा ! अतः मेरी समझ से अब यह स्नातकोत्तर शिक्षण यहीं स्थगित कर दिया जाय, अत्युत्तम रहेगा।

उनकी सारी बातें आप ध्यानपूर्वक चुपचाप सुनती रहीं। कुछ क्षणों के बाद आपने उन सज्जन से बड़े संयमित और नपे तुले शब्दों में कहा-"आप ज्ञान-प्राप्ति में प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव क्यों दे रहे हैं ? आखिर.....।"

इनकी ज्ञानार्जन की क्षमता है, ज्ञान पिपासा है, बुद्धि है और परिश्रम भी दिनरात करती हैं। फिर व्यर्थ ही ज्ञान-प्राप्ति में प्रतिबन्ध क्यों लगाया जाय ? क्या आपको इनके अध्ययन करने से साध्वाचार के विपरीत जीवन नजर आया ? अथवा इनके रहन-सहन, खान-पान व आचार-व्यवहार में कुछ न्यूनता महसूस हुई ? यदि वैसी बात हो, तब तो मैं अभी ही इनका अध्ययन बंद करवा दूँ! मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि आप अध्ययन के क्षेत्र में इतना उल्टा-सीधा क्यों सोच रहे हैं ? मैं अपना कर्तव्य समझ कर इन्हें अध्ययन करवा रही हूँ। ये उम्र ही

अध्ययन की है। मुझे पूर्ण आत्मविश्वास है इन पर। मेरी अन्तःकरण की भावना है कि ये पढ़-लिखकर अपनी श्रमणी जीवन की मर्यादा में रहती हुई अपनी क्षमतानुसार जिनशासन की प्रभावना करें।"

आपने अन्त में इस बात पर बल दिया कि-"**कोई कुछ भी कहे, पर मैं इनका अध्ययन बिना गल्ती के कभी बंद नहीं करवाऊँगी ! इन्हें क्या पढ़ाना ? क्या नहीं पढ़ाना ? कहाँ पढ़ाना ? यह सब मुझे सोचना है। बस, आप से मेरा इतना ही निवेदन है कि यदि इनकी कोई शिकायत हो तो, वह बताइए, ताकि मैं उसका निवारण कर सकूँ।" इतना सुनते ही वे मुस्करा गये। सब कुछ समझ गये। इन पर कुछ भी प्रभाव पड़नेवाला नहीं है। वे सज्जन अपना सा मुँह लेकर चल दिए।**

क्यो वेगा ?

तत्पश्चात् हमने आपश्री से निवेदन किया-महाराजजी ! हमलोग तो कभी किसी के बारे में कुछ नहीं कहती हैं ? तो फिर अमुक व्यक्ति हमारे बारे में ऐसा क्यों सोचते हैं ? आपका एक पेटेन्ट वाक्य था-"**क्यो वेगा ? अपणो कई ले। नाई रूठेगा तो बाल लेगा कई सिर तो नी लेगा। कोईये कई केद्‌यो तो तमारे कठे गुमड़ा वेइ ग्या। क्यो तो भलेइ क्यो ! तुमारो कई ल्यो ?**

जीव ! तू तारी संभाल,
बीजा ने मत देख !

अपणी आत्मा ने देखणो। अपणा ज अवगुण देखणा। दूसरों कई कंर यो नी देखणो। जीवन में एक सिद्धान्त राखणो ओर यो विचार करनो के 'जणी कने जो चीज वे वा दे। अपणे लेणी वे तो लां, नी लेणी वे तो वणी की चीज वणी कनेज रेगा। एक आत्मा-परमात्मा को डर राखणो। आत्मा छानी चोरी वे, पर परमात्मा छानी चोरी नी वे। परमात्मा तो सब ने देखी र्‌यो है।

अच्छो करोगा तो अच्छो मिलेगा ने बुरो करोगा तो बुरो मिलेगा। "जो करेगा वो भरेगा, जो खोदेगा वो पड़ेगा। अणीवास्ते एसी छोटी-छोटी वाता पे ध्यान नी देणो अपणे। अपणा ज्ञान-ध्यान में मस्त रेणो।"

इसतरह आप समय-समय पर '**गागर में सागर**' के रूप में अपनी सीधी-सरल भाषा में समझाया करती थीं हमें।

वस्तुतः आपकी मौजूदगी में हम ज्ञान-ध्यान, लेखन-पठन आदि में मस्त रहती थीं। किसीतरह की कोई चिंता नहीं थी। आप कई बार कहती भी थीं-"**म्हें बेठी हूँ वठेतक तुमाने कायकी चिंता हे ? अभी तो म्हें सब संभाल री हूँ। तुम खूब पढ़ो-लिखो, स्वाध्याय करो ने मस्त रो। कणी वात की कोई चिंता-फिकर नी करणी**"।

कुशल नेतृत्व

आपके कुशल मार्गदर्शन व सान्निध्य में रहकर हमने अपने क्षयोपशम के अनुसार प्रायमरी

से लेकर रिसर्च तक व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त किया। संस्कृत-व्याकरण, काव्य, साहित्य, तथा प्रारम्भिक, परिचय व कोविद की राष्ट्रभाषा हिन्दी वर्धा की परीक्षाएँ दीं, एवं प्रकरण, भाष्य कर्मग्रन्थादि से लेकर यथाशक्य धार्मिक ज्ञानाभ्यास किया। **आज हम आंशिक रूप से जो कुछ भी बन सकी हैं, यह सब उन्हीं गुरुमैया का परम प्रसाद है, उन्हीं का परम प्रताप है और उन्हीं की महती कृपा का सुफल है।**

आपका हमारे जीवन-विकास एवं जीवन-निर्माण में-अध्ययन-अध्यापन, स्वाध्याय, चिन्तन-मनन व लेखन-कार्य में अपूर्व / अद्वितीय योगदान रहा, उसे जीवन में एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। आपके उस ऋण से कभी उऋण नहीं हुआ जा सकता है। **दादीमाँ हमारी प्राण थीं और हैं आज भी। हमारा कण-कण, हमारा अणु-अणु आपके अनंत उपकारों से उपकृत है।**

समता, ममता एवं सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति दादीमाँ के कारण हमें अपनी ज्ञानोपासना / स्वाध्याय के लिए पूरा-पूरा समय मिलता था। यहाँ तक कि गौचरी लाना, पात्र धोना, पानी ठंडा करना, भरना, झोली धोना, कपड़े का काप निकालना, सिलाई करना, आने जानेवालों से बात-चीत करना आदि सभी कार्य आप कर लेती थीं। जब हम करने लगतीं तो **वे कहतीं-"तुम अभी ये काम रहने दो। तुम तो अभी पढ़ने-लिखने की तरफ अपना सारा ध्यान केन्द्रित करो। तुम पढ़ो-लिखो! ये कार्य मैं कर लूँगी। बाद में तुम्हें ही तो करना है।"** आपका एकमात्र यही लक्ष्य था कि इस उम्र में पढ़-लिख जाएँगी तो जीवन ज्ञान-ध्यान में बीतेगा। सुखमय बीतेगा। हमारी उस ममतामयी माँ ने नि:स्वार्थभाव से बिना किसी प्रतिफल की आशा से हमारे अध्ययन में भरपूर सहयोग प्रदान किया। अध्ययन की प्रगति का सम्पूर्ण श्रेय तपस्विनी उस पूज्या दादीमाँ को ही है।

आपके कुशल नेतृत्व एवं शीतल छाँवतले हमारी ज्ञानोपासना चलती रहीं। इसी बीच विभिन्न गाँवों-नगरों के संघों की वर्षावास हेतु विनतियाँ भी आती रहीं। श्रीसंघों के अत्याग्रह को ध्यान में रखते हुए आपने अध्ययन काल के दरम्यान अमलावद, उज्जैन, आलोट, महिदपुर आदि स्थानों पर वर्षावास संपन्न किए। उन विभिन्न ग्राम नगरों के संघों को चातुर्मास का लाभ भी मिला और अध्ययन में भी किसीतरह का कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं हुआ।

सफल चातुर्मास

आपका ईस्वी सन् 1974 का चातुर्मास मन्दसौर से सात-आठ किलोमीटर दूर अमलावद गाँव में हुआ। यद्यपि अमलावद कोई बड़ा गाँव नहीं है। फिर भी लोगों की उत्कट भक्ति-भावना देखकर आपने स्वीकृति प्रदान कर दी। सभी में अनुपम उल्लास था। चातुर्मास काल में लोगों ने खूब धर्मलाभ लिया। बड़े उत्साह के साथ धर्म प्रभावनापूर्वक चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

चातुर्मास सम्पन्न होते ही आपकी पावन निश्रा में **वहाँ से बही पार्श्वनाथ तीर्थ का छःरी पालित पद-यात्रा संघ का सुन्दर आयोजन हुआ**। बही पार्श्वनाथ तीर्थ का कार्य सम्पन्न होने पर आप पुनः मन्दसौर नई आबादी पधार गयीं।

लक्खण नहीं पलटै लाखां

मन्दसौर-नई आबादीवाले खाबियाजी आपश्री से बहुत ही प्रभावित थे। स्वतन्त्र विचार के थे वे। मनोविनोदी स्वभाव था उनका। यदा-कदा जब भी उन्हें समय मिलता। पूज्या दादीमाँ के श्रीचरणों में आकर बैठते थे और विभिन्न प्रकार की वार्तालाप का आनन्द लेते थे।

एकदिन का प्रसंग है। वार्तालाप के दौरान उन्होंने पूछा-महाराजश्री ! मैं देखता हूँ अमुक व्यक्ति दिनरात इतनी ढ़ेर सारी आराधना-साधना करता है ? सामायिक-प्रतिक्रमण, पूजा-पाठ आदि करता है, फिरभी उनके जीवन में कोई असर नहीं। बस, निंदा-विकथादि दुनियाभर की पंचायती के अलावा उनके पास कोई काम नहीं ? ऐसा क्यों ? तब आप समझाती हुई कहतीं कि,"खाबियाजी ! ऐसे लोगों का एक प्रकार का यह स्वभाव हो गया है। उन्हें कितना ही क्यों न उपदेश दिया जाय ?"

"सुणी सुणी ने फूट्या कान।
तो ये न आयो हरदे ज्ञान॥"

ऐसी स्थिति होती है उन लोगों की। जिसका जैसा स्वभाव बन गया है उसे बदलना बड़ा मुश्किल है। स्वभाव कभी किसी का बदलता नहीं है। **"कूतरा की पूँछ टेढ़ी की टेढ़ीज रेवे, पकड़ो वठे तक सीधी ने छोड़ी के पाछी वाज हालत"। क्युंकि क्यो हे -**

"बारा कोसे बोली पलटै, फल पलटै पाकां।
जरा आया केश पलटै, लक्खण नहीं पलटै लाखां॥"
'पड़्या लक्खण तीन दन मसाणा में भी नी जावे।'

सब कुछ बदल सकता है, किंतु मनुष्य के स्वभाव में बदलाव होना बहुत कठिन है। बारह कोस के बाद भाषा बदल जाती है। पक जाने पर फल बदल जाते हैं। बुढ़ापा आने पर केशों का रंग बदल जाता है, परन्तु मनुष्य की प्रकृति (स्वभाव) लाख प्रयत्न करने भी नहीं बदलती है। ऐसे व्यक्तियों को कुछ कहना ही बेकार है। निंदा-विकथा करना ही उनकी आदत बन गई है। अत: ऐसे जीवों पर हमें सदा माध्यस्थ भाव रखना चाहिए।

इसीतरह आपश्री बहनों / लड़कियों को भी धार्मिक स्थलों में सामायिक-प्रतिक्रमण, प्रवचन, प्रभुदर्शन-प्रभुपूजा आदि धार्मिक क्रिया करते समय, यदि उन्हें किसी की निंदा-विकथा, गप-शप अथवा घर-गृहस्थी की बातें करती हुई देखतीं तो उनकी आत्मा बड़ी ही कष्ट पाती थी। कभी मुस्कराती हुई तो कभी थोड़ी नाराजगी की मुद्रा में समझाईश के तौर पर सहज-सरल शब्दों में बहनों से कहतीं-"ओ बहना ! कितने कर्मबंधन होते हैं अपने ? दुनिया की

पंचायती से अपने को क्या लेना-देना है ? क्या मिलनेवाला है ? सामायिक-प्रतिक्रमणादि धार्मिक अनुष्ठानों में संसारवर्धक बातें करने से कितने चिकने कर्मबंधन होते हैं ? तुम्हारी ये घर-गृहस्थी की बातें तो कभी भी खत्म होनेवाली ही नहीं है। घर छोड़कर आती हो और यहाँ आकर दुनियादारी की बातें शुरू कर देती हो ?"

"आयर वाता बायर वाता, वाता पाणी जाता ।
इ वाता कब खूटेगा, जम मारेगा जब लाता ॥"

महापुरुषों की कर्मस्थली में वर्षावास

सन् 1975 का आपका वर्षावास शस्य श्यामला मनोहर मालव भूमि उज्जैन में हुआ। यह अनेक विशिष्ट महापुरुषों की कर्मस्थली रही है। यहाँ अतिप्रसिद्ध प्राचीन अवन्ति पार्श्वनाथ प्रभु का भव्य जिनालय है। यहाँ विक्रमादित्य जैसे न्यायी प्रजावत्सल राजा हो चुके हैं। सती साध्वी मयणासुंदरी जैसी सन्नारियाँ हुई हैं। जहाँ उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल ने साध्वी सरस्वती का अपहरण किया था। कालिकाचार्य ने अपनी बहन साध्वी सरस्वती को उसके पंजे से मुक्त कराया। सिद्धसेन दिवाकर जैसे प्रकाण्ड विद्वान् ने महाप्रभाविक 'कल्याण मन्दिर' स्तोत्र की रचना की है, ऐसी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक नगरी में आपका वर्षावास धार्मिक आराधनाओं के साथ सानन्द-सोल्लास सम्पन्न हुआ।

यशस्वी चातुर्मास

आप मन्दसौर विराजमान थीं। वैशाख शुक्ला पंचमी को श्रीसंघ आलोट(म.प्र.) ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर निवेदन किया-महाराजश्री ! इस वर्ष के चातुर्मास का लाभ लेने का अवसर हमारे आलोट संघ को प्रदान करने की कृपा करें।

श्रीसंघ की विनती में विनम्रता के साथ भावभरा आग्रह भी था। अत: इस वर्ष का आपका चातुर्मास आलोट हुआ। वर्षावास-काल में श्रावक-श्राविकाओं में अद्भुत धर्म-जागृति हुई। त्याग-तपस्याओं का भी निरन्तर क्रम चला। इस वर्ष आराधना में बड़ी धूमधाम रही। श्रीसंघ ने तन-मन-धन से पूरा लाभ लिया। श्रीसंघ आलोट पर आपके विशिष्ट तप-त्याग एवं कठोर साधुचर्या का विशेष प्रभाव पड़ा।

चातुर्मास में अट्ठाई महोत्सव, नवकार आराधना, विशाल रथयात्रा का आयोजन, अक्षयनिधि तप, अट्ठाइयाँ, तेले, आयम्बिल आदि अनेकविध आराधनाएँ हुईं, जिनमें लोग धर्म से जुड़ें। अत्यन्त सफलतापूर्वक आलोट का चातुर्मास व्यतीत कर नागेश्वर तीर्थ होते हुए आर्यरक्षित सूरिजी की जन्मभूमि मन्दसौर पधारीं। हमारी एम.ए. की परीक्षा समाप्त होने के बाद आप वहाँ से विहार करके मन्दिरजी की प्रतिष्ठा के अवसर पर राजगढ़-मोहनखेड़ा तीर्थ पधार गयीं।

प्रतिष्ठा सम्पन्न होने के पश्चात् आपकी चतुर्थ पौत्री कुमारी आशा की दृढ़ता देखकर

आपने अपने संसारपक्षीय सुपुत्र (राजमल) से कहा—"इसे दीक्षा ही लेना है तो अनावश्यक विलम्ब करने में कोई सार नहीं है।" दीक्षा मुहूर्त निकलवाया। वि.संवत् २०३५ में वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया के शुभ मुहूर्त में **प.पू. शांतमूर्ति कविरत्न आचार्यदेव श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज साहब के कर-कमलों से श्रीमोहनखेड़ातीर्थ में कुमारी आशा की अतीव उत्साह-उमंग के साथ भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। नवदीक्षिता कुमारी आशा का नाम परिवर्तित कर साध्वी श्री 'आत्मदर्शनाश्रीजी' रखा गया।**

सौम्य व्यक्तित्व की धनी

इस प्रतिष्ठा के अवसर पर नागदा निवासी श्रीमान् श्रेष्ठीवर्य श्री शैतानमलजी वागरेचा ने श्रीसंघ की सहमति से अपनी ओर से नागदा चातुर्मास के लिए आग्रह किया। सन् 1978 का आपका चातुर्मास नागदा जंक्शन के लिए स्वीकृत हुआ। श्रीसंघ नागदा एवं श्री शैतानमलजी वागरेचा का धर्मनिष्ठ परिवार आपकी आचार निष्ठा, व्यवहार एवं मृदुता से अभिभूत हो गया था। श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ से विहार कर आपने नागदा की ओर प्रस्थान किया। तत्पश्चात् मार्ग में आनेवाले ग्राम-नगर निवासियों को धर्मलाभ प्रदान करते हुए आप नागदा पधार गयीं। नागदावालों की प्रसन्नता का तो कहना ही क्या था। अत्यन्त धूमधाम के साथ उपाश्रय में प्रवेश करवाया। श्रीसंघ में खूब उत्साह था। चातुर्मास काल में विविध धर्मध्यान एवं त्याग तपस्याएँ हुईं। अनेक व्यक्तियों ने व्रत-नियम अंगीकार किए। बड़े ठाठ से वर्षावास सम्पन्न हुआ। आपके सम्बन्ध में सोचती हैं तो लगता है-दादीमाँ के पास ऐसा क्या जादू था कि आप जहाँ पधारतीं वहाँ की हो जातीं। आपके सौम्य व्यक्तित्व से शायद ही कोई अप्रभावित रह जाता हो।

जब आप नागदा में वर्षावास कर रही थीं, सहसा एकदिन किसी श्रावक ने सुबह-सुबह आकर कहा महाराज साहब! देखिए, आज अखबार में अमुक समाचार आए हैं, और अखबार हमें थमाया। हम पढ़ने बैठ गयीं। कुछ अधिक देर तक अखबार पढ़ते देखकर आपने हमें मीठी फटकार लगाते हुए कहा-"**अणी में एसो कई हे, जो आंख्या फाड़-फाड़ ने देखी री हो? अणी से अपनी आत्मा को कई भलो वेणो हे! भणोगा तो कई काम आवेगा। टेम क्युं खराब करी री हो!**"

समाज को सद्प्रेरणा

आप श्रावकों के हाथों में भी सुबह-सुबह अखबार देखतीं तो उनकी आत्मा बड़ी दुःखी होती। वे कभी श्रावकों से भी मुस्कराते हुए कहतीं-"आप लोग बिस्तर से उठते ही अखबार पढ़ने बैठ जाते हैं। क्या मिलता है इससे आपको? अखबारों में आधी सच और आधी गप्प (झूठ) होती है। चौराहे पर बैठकर दुनिया की पंचायती करते रहते हैं। फालतू बातें-भटाई बाजी में समय बर्बाद हो रहा है। यदि आपको कहा जाय-भाई! सुबह उठकर एक माला गिनो, प्रभु-

दर्शन करो, पूजा-पाठ करो। कहेंगे-महाराजश्री! समय नहीं मिलता। अखबार पढ़ने के बजाय यदि आप नित्यप्रति एक-दो पृष्ठ सत्साहित्य का वाचन करें तो कितना ज्ञानवर्धन होता है। ज्ञान-प्राप्ति में हम बहुत पीछे हैं। व्यर्थ का समय नष्ट करने के लिए बहुत आगे हैं। अखबार पढ़ने का चस्का सा लग गया है। बिना अखबार देखे चैन नहीं पड़ता है, किंतु यह हमारा कितना समय बिगाड़ता है। हमारे तीर्थंकर परमात्मा ने तो आह्वान किया है,'**समयं गोयम ! मा पमायए**'–'हे गौतम ! क्षणभर भी व्यर्थ मत जाने दो।' दूसरी बात अखबार पढ़ने का रस लग जाने पर स्वाध्याय में कटौत्री होने लगती है। देशकथा-राजकथा प्रारम्भ हो जाती है। मन यत्र-तत्र भटक जाता है। अत: अखबार व्यर्थ ही कर्मबंधकारिणी क्रिया है।"

आपश्री की सद्प्रेरणा से श्रीमान् शैतानमलजी के अन्तर्मन में पैदल-यात्रा संघ की भावना जागृत हुई। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् तत्काल **श्री बागरेचा परिवार ने आपकी शुभ निश्रा में चातुर्मासिक विविध आराधनाओं के शिखर स्वरूप नागदा से नागेश्वर तीर्थ का सात दिवसीय छःरी पालित पद-यात्रा संघ का सुन्दर आयोजन किया**। पदयात्रा संघ में करीबन डेढ़सौ-दो सौ पदयात्री साथ थे। अन्तिम दिन स्वामी-वात्सल्य एवं माला परिधानादि का कार्यक्रम रखा गया था। नागेश्वर तीर्थ से आलोट, महिदपुर आदि सभी स्थानों पर धर्म-प्रभावना करती हुई कुक्षी पधारीं। वहाँ एक-दो दिन ठहर कर तालनपुर-तीर्थ पधार गईं। दर्शन-वन्दन कर वहाँ से आगे प्रस्थान किया। फिर आपका अलीराजपुर पधारना हुआ। वहाँ दो-चार दिन धर्मलाभ देकर लक्ष्मणी तीर्थ पहुँचीं आप। त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव के दर्शन कर अपूर्व आनन्दानुभूति हुई। रोम-रोम पुलकित हो गया। आपकी एक सप्ताह वहीं स्थिरता रही।

हार आपकी और जीत संघ की

इसी दरम्यान कुक्षी श्रीसंघ के प्रतिनिधि चातुर्मास की भावभरी विनम्र विनती लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हो गये। कुक्षी चातुर्मास करने का आपका भाव कम था। आपकी उन लोगों से मनोविनोदपूर्ण अनेक प्रश्नोत्तर एवं चर्चाएँ हुईं। तथापि श्रीसंघ कुक्षी अपने यहाँ चातुर्मास करवाने पर तुला हुआ था। आखिर हार आपकी और जीत संघ की हुई। कुक्षी श्रीसंघ का अत्याग्रह, धर्म-स्नेह और विनयशीलता देखते हुए आपको स्वीकृति के स्वर में 'हाँ' कहनी ही पड़ी। सबके चेहरे पर प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो गयी।

कसौटी पर खरे उतरे !

कुक्षी श्रीसंघ पर पूज्यपाद दादागुरुदेवश्री की विशेष कृपा रही है। वि.सं. १९२७ में पूज्यपाद दादागुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब कड़ाके की सर्दी के मौसम में विचरण करते हुए कुक्षी पधारें। गुरुदेवश्री को गाँव के बाहर घने पेड़ के नीचे रूकना पड़ा। तब वहाँ के प्रमुख श्रावकों ने निरन्तर आठ दिन तक उनकी हर दृष्टि से साध्वाचार की कठोरतम

परीक्षाएँ ली थीं और उस परीक्षा की कसौटी पर वे खरे उतरें।

अन्ततोगत्वा श्रावक नतमस्तक हो गए। वि.सं. १९२७ के चातुर्मास में दादा गुरुदेव ने उन ज्ञान-पिपासुओं को पैंतालीस जिनागमों का सार्थ पीयूषपान करवाया था। आज वैसे पारखी तो नहीं रहे हैं, परन्तु हाँ, आज भी कुक्षी संघ प्रेमालु, श्रद्धालु और भक्ति-भावों से भरपूर जरूर है। ऐसी ऐतिहासिक नगरी में आपका चातुर्मास विशेष प्रभावना पूर्वक सानन्द सम्पन्न हुआ। ईस्वी सन् 1979 का निमाड़ क्षेत्र का—कुक्षी का वर्षावास अपने आप में एक अनूठा वर्षावास रहा। आपके पदार्पण ने संघ में धर्म-जागृति की एक नवीन लहर उत्पन्न कर दी। चातुर्मास के दौरान विविध धर्म आराधना एवं त्याग-तपस्याएँ सम्पन्न हुईं। सम्पूर्ण कार्यक्रम निर्विघ्न रूप से सानंद-सोल्लास हुए।

साधुता की कसौटी

एकदिन की बात है। कुक्षी वर्षावास में मूसलधार वर्षा शुरू हो गई। दो चार घंटे बाद कुछ कम हुई, तब श्रावक-श्राविकाओं ने उपाश्रय में पहुँच कर आप से करबद्ध प्रार्थना की—महाराजश्री ! वर्षा बंद हो गई है। आप अपनी शिष्याओं को गौचरी-पानी जाने का आदेश दीजिए। आपने शांति से कहा-"अभी हल्की-हल्की पानी की बूंदें गिर रही हैं। वर्षा थमेगी, तब अपने आप आने का अवसर देखेंगी।"

सावण-भादों में कभी-कभी वर्षा की झड़ियाँ लग जाती थीं। वर्षा थमने का नाम नहीं लेती थी। मुसलधार वर्षा होने पर श्रद्धालु भक्त आप से निवेदन करते कि महाराज साहबजी ! आज वर्षा नहीं रूकेगी। हम यहाँ गौचरी-पानी लेकर आ जाए तो क्या हर्ज है ? शाम होने आई है, उपवास हो जाएगा। ऐसी स्थिति में आप बिना किसी लिहाज के स्पष्ट कहती थीं-"ऐसे अवसर पर ही कभी-कभी साधुता की कसौटी होती है। आप लेकर आए तो आपको भी लाभ नहीं मिलेगा और यदि हम लेती हैं तो हमें भी नुकसान होगा। इसमें एक नहीं, अनेक हानियाँ हैं- सामने लाया हुआ, हमारे निमित्त बनाया हुआ, अप्काय के जीवों की भयंकर विराधना का और बिना जयणा-उपयोगपूर्वक लेकर आने का। यदि हम से बिल्कुल नहीं रहा जायेगा, तब हम उपयोगपूर्वक स्वयं लेने आ जाएँगी।

जानबूझकर इतने दोषों का सेवन क्यों करना ! अरे भाई ! श्रमणी जीवन में ऐसा विचार करना चाहिए-'**लाधे तो भाड़ो देइने, अणलाधे मन तोष**' मिल गया तो ठीक, वर्ना सहज तपोवृद्धि हुई।" ऐसी चिंतनपूर्ण सोच थी आपकी। गौचरी-पानी की गवेषणा में खूब सजग थीं आप। आपकी संयम-साधना के क्षेत्र में अद्भुत जागरूकता देखकर सभी भावविभोर हो उठते।

कुक्षी संघ का आप पर इतना स्नेह-वात्सल्य रहा कि चातुर्मास समाप्ति के बाद भी आपको विहार नहीं करने दिया और होली चातुर्मास पर्यन्त आपको वहीं स्थिरता करनी पड़ी। आज भी यथावत् वही स्नेह-श्रद्धाभाव बना हुआ है उनके प्रति। **कुक्षी संघ को आरती और पाठशाला आपके द्वारा प्रदत्त धरोहर है, वह अद्यावधि सुरक्षित है।**

आपके जीवन की यह विशिष्टता रही है कि आपने जहाँ कहीं भी, चाहे वह परिचित क्षेत्र हो या अपरिचित क्षेत्र, चाहे अपना संघ-सम्प्रदाय हो या अन्य संघ-सम्प्रदाय, चातुर्मास सम्पन्न किया, अपनी अमिट छाप छोड़कर आईं। कितने ही युग बीत गये हों, कितने ही चातुर्मास हो गए हों, पर वहाँ का बच्चा, बूढ़ा, जवान कोई आपको भूला नहीं पाया और आज भी वैसी ही श्रद्धा बनी हुई है।

आपकी जीवन-चर्या ही कुछ ऐसी थी, जो बरबस लोगों को अपनी ओर खींच लेती थी। आप जहाँ भी पधारीं, लोग आपको उसी रूप में देखते हैं, याद करते हैं और कहते हैं–'**दादीमाँ तो दादीमाँ ही थीं।**'

शोध-कार्य करवाने की दिली-तमन्ना

आपने हमें दर्शनशास्त्र में एम.ए. करवाने के बाद पी-एच.डी. (शोधकार्य) का फार्म भरवा दिया था। सालभर हो चुका था, पर जैनदर्शन से सम्बन्धित व्यवस्थित साहित्य कहीं उपलब्ध नहीं हुआ। अत: शोध-कार्य नहीं हो पा रहा था। अवरोध के बादल छँट ही नहीं रहे थे।

आपश्री हम से पूछती रहती थीं कि फार्म तो भर दिया है, पर यह कार्य कहाँ और कैसे सम्पन्न होगा? हमने अपने निर्देशक माननीय डॉ. अखिलेशकुमारजी राय से राय चाही तो उन्होंने साहित्यादि के सम्बन्ध में सुझाव दिया और बताया कि भोपाल में माननीय डॉ. सागरमलजी जैन निवास करते हैं। वे मेरे परम मित्र हैं तथा आपको इस कार्य में मदद कर सकते हैं।

हमने आपश्री को सारी परिस्थिति से अवगत कराया। वे हमारे अध्ययन हेतु कहीं भी जाने को तैयार थीं। इतनी अध्ययन-प्रेमी थीं आप। बस, आपके मन-मस्तिष्क में शोध-कार्य करवाने की एक सुदृढ़ भावना थी।

आपने कहा-"वहाँ अगर साहित्य उपलब्ध हो सकता हो तो वहाँ चलें।"

होली चातुर्मास के पश्चात् आपने कुक्षी से विहार कर मनावर, बड़वानी होते हुए भोपाल के लिए प्रस्थान किया। आपको इस विहार यात्रा में संकट भी आये और कभी आनंद भी। कहीं पर ठहरने के लिए आलीशान भवन मिला तो कहीं पर घासफूस की कुटिया भी नहीं मिली। कभी खुली सराय मिली तो कभी टूटी फूटी धर्मशाला भी। कहीं मान-सम्मान मिला तो कहीं अपमान के कड़वे घूँट भी। वास्तव में '**कभी घी घणा तो कभी मुट्ठी चणा**' वाली लोकोक्ति पूर्णरूप से आपके जीवन में चरितार्थ हुई थी। इतना सब कुछ होने के बावजूद आप कभी भी **आनेवाली विघ्न-बाधाओं-कठिनाइयों तथा आँधी-तूफानों को देखकर न घबरायीं, न विचलित हुईं और न अपने कदम कभी पीछे रखें, बल्कि सबका दृढ़ता पूर्वक सामना करती हुई सिंहनी की भाँति अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ती चली गईं।** इसतरह अनेक कष्टों को अपने अपूर्व आत्मबल से जीतते हुए आष्टा पहुँचीं। आष्टा में श्रीसंघ के स्नेहपूर्ण आग्रह

पर दो-चार दिन वहाँ ठहरीं। तत्पश्चात् मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल पधारीं।

आत्मीयतापूर्ण व्यवहार
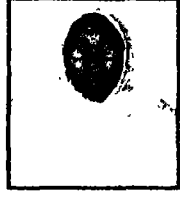
आश्चर्य तो यह है कि आप जहाँ भी एकबार पधारतीं, वहाँ का संघ आपके जीवन-व्यवहार से प्रभावित एवं आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता। आप चाहे किसी भी क्षेत्र में गईं, वहाँ आपको परायापन महसूस नहीं हुआ। जहाँ गईं, वहाँ की हो गईं। यत्र-तत्र-सर्वत्र अपनत्व ही मिला।

एकदम नया क्षेत्र, नया वातावरण, नए लोग। भोपाल शहर में आपका पदार्पण हुआ। सप्ताह भर महावीर-भवन रूकीं। भोपाल श्रीसंघ आपके श्रीचरणों में वर्षावास का आग्रह लेकर पहुँचा। श्रीसंघ ने प्रार्थना की-महाराजश्री ! यह चातुर्मास तो आपको यहीं करना पड़ेगा। आपने फरमाया-''पूज्य आचार्य भगवन्त जहाँ भी आज्ञा प्रदान करेंगे, वहाँ होगा।'' श्रीसंघ ने पूछा-आचार्यश्री इस वक्त कहाँ विराजमान हैं ? वे जहाँ भी विराज रहे होंगे, वहाँ जाकर हम आदेश ले आएँगे? पर चातुर्मास तो यहीं होगा इस वर्ष। आपने भोपाल संघ के श्रावकों से कहा-''महान् कविरत्न शांतमूर्ति पूज्यपाद आचार्य भगवंत श्रीमद् विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब अभी श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ विराज रहे हैं। जब आपका इतना आग्रह ही है तो आपलोग पूज्यवर्यश्री की सेवा में पहुँचकर चातुर्मास की प्रार्थना कीजिए। वे चाहेंगे तो आज्ञा प्रदान कर देंगे ?'' श्रीसंघ ने ऐसा ही किया।

मध्यप्रदेश की राजधानी के लोग बड़े उदार दृष्टिवादी हैं। वे सम्प्रदायवादी नहीं, बल्कि त्याग के पुजारी हैं। गुणानुरागी भी हैं। श्रीवालचंदजी, श्री विमलचंदजी, श्री राजेन्द्रकुमारजी, श्री तेजराजजी आदि प्रमुख लोग मोहनखेड़ा तीर्थ पूज्यपाद आचार्य भगवन्त की सेवा में आज्ञा-प्राप्ति हेतु पहुँच गए। उधर से अहमदाबादवाले भी चातुर्मास की विनती करने हेतु उपस्थित हो गए थे। कुछ क्षण चिन्तन के पश्चात् आचार्यश्री ने भोपाल श्रीसंघ को प्रमुखता दी। उनकी धारणा थी कि अहमदाबाद संघ तो अपना ही हैं, परन्तु जब एकदम अपरिचित क्षेत्र से संघ आकर इतना आग्रहभरा निवेदन कर रहा है तो इस वर्ष वर्षावास का लाभ उन्हें ही क्यों न दिया जाय ? पूज्यवर्य आचार्य भगवन्त ने भोपाल-संघ की विनती बड़े स्नेह से स्वीकार करके अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया। उन्होंने सहर्ष आज्ञा-पत्र प्रदान कर दिया। पत्र-पाकर वे बहुत आह्लादित हुए। उनकी असीम अनुकंपा का अनुभव करके भोपाल संघ को हार्दिक प्रसन्नता हुई।

सन् 1980 का आपका चातुर्मास तृतीय पट्टधर प्रशान्तमूर्ति श्रीमद् भूपेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब की जन्मभूमि एवं मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में हुआ। वर्षावास काल में नवदिवसीय नवकार आराधना बड़े धूमधाम से सम्पन्न हुई। इस सुअवसर पर कुक्षी (म.प्र.) से श्रीमनोहरलालजी वकील, श्री आजादकुमारजी आदि गुरूभक्त तथा राजेन्द्र महिला मंडल-कुक्षी, प्रथमबार जिनेन्द्रभक्ति

व गुरु-भक्ति हेतु वहाँ पधारे और नवदिन पर्यन्त अपने रंगारंग कार्यक्रम से तत्रस्थ साधर्मी भाई-बहनों को भक्ति-भावना से सराबोर कर दिया था। इस तरह चारों माह धर्म-ध्यानादि में अतीव उत्साह-उल्लास बना हुआ था। भोपालनिवासी भाई-बहनों में विशेष उत्साह का संचार हुआ।

पेट किस से भरता है ?

चातुर्मास में एकदिन चर्चा के दौरान ललवानीजी ने आप से पौष्टिक पदार्थ लेने हेतु आग्रह भरा निवेदन किया। तब आपने उन्हें समझाते हुए कहा-"ललवानीजी ! खाते-खाते अनन्त जिन्दगियाँ बीत गईं ! हर जन्म में इस जीव ने खाऊँ-खाऊँ के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। जितना खाये, उतना कम। यह लालबाई कभी संतुष्ट ही नहीं होती। यह (जीभ) कभी मना ही नहीं करती और यह मन महाराज ही हमें नाच नचाता है। कभी हलवा-पुरी खाना चाहता है तो कभी एरोप्लेन में बैठकर उड़ना चाहता है। कभी क्या चाहता है तो कभी क्या ? इसलिए हमें इसके अनुसार नहीं चलना है, क्योंकि कहा है --

"मन के मते न चालिए, मन के मते हजार।
जो यह गुड़ माँगे कबहू, दीजे नमक उधार।।"

कितना ही खिला-पिला दो इसे, पर यह सब जीभ का स्वाद है। गले के नीचे गया कि मिट्टी। जैसा कि गुजराती में कहावत है '**....उतर्युं घाटी ने थयुं माटी**'। थोड़ा चिंतन करो, पेट किससे भरता है रोटी-दाल से या मेवा-मिष्ठान्न से ? या पौष्टिक पदार्थ से ? या टोनिक विटामिन से ?" आपकी ऐसी सचोट बातें सुनकर ललवानीजी तो स्तब्ध हो गये ! बोले-हाँ, महाराजश्री ! बात तो एकदम सच है आपकी। सन्तुष्टि तो दाल-रोटी से ही होती है।

हमने भी कभी नही देखा कि आपने किसी पदार्थ के खाने का स्वाद लिया हो। अपनी देह पुष्टि के लिए कोई टॉनिक-विटामिन जैसा पौष्टिक पदार्थ का सेवन किया हो ? इतना ही नहीं, मेवा, मिठाई, कचौड़ी-पकौड़ी, मिर्च मसालेदार चटपटे नमकीन, हरी सब्जियाँ (एकाध हरी सब्जी को छोड़कर) आदि कुछ भी नहीं लेती थीं आप।

आप हमेशा यही समझाती थीं-"सादा रहना, सादा खाना और विचार उच्च रखना।"

वास्तव में आपकी इच्छा-शक्ति बहुत दृढ़ थी। दुनिया का कोई शाहंशाह भी आपको अपने संकल्पों से नहीं डिगा सकता था। उनके रग-रग में, मन के अणु-अणु में यह कूट-कूट कर भरा हुआ था कि-'**मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।**'

आपकी यह सोच थी कि पौष्टिक पदार्थ खाने-पीने से भी कुछ नहीं होता। टॉनिक-विटामिन, फल-ज्यूस व मेवा-मिष्ठान्न आदि पौष्टिक पदार्थ नित्यप्रति सेवन करनेवाले भी दिनरात रोते रहते हैं। आपके संपर्क में आनेवाले सभी श्रद्धालु भक्तों को यह भलीभाँति विदित है कि आप गौचरी के मामले में कितनी कठोर थीं। आपकी प्रेरणा से व निश्रा में।

चातुर्मासिक विविध आराधनाओं के शिखररूप श्रेष्ठीवर्य श्रीमान् बालचंदजी राजेशकुमार अगरबत्तीवालों ने सात दिवसीय भोपाल से होशंगाबाद तीर्थ का छ:री पालित पद-यात्रा संघ का भव्य आयोजन किया।

लक्ष्य में सफलता प्राप्त करके ही आना

चातुर्मास दौरान काफी पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि माननीय डॉ. श्री सागरमलजी जैन अभी-अभी बनारस चले गये हैं। वहाँ पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान में 'डायरेक्टर' के पद पर नियुक्त हो चुके हैं। जैनदर्शन से सम्बन्धित इतना विपुल साहित्य यहाँ उपलब्ध होना भी सम्भव नहीं है।

अपनी शिष्याओं की जितनी हित-चिंता आप किया करती थीं, उतनी अन्यत्र दुर्लभ ही प्राप्त होती है। आप अपनी शिष्याओं को अपने से सवाया ही देखना चाहती थीं।

दादीमाँ को शोध-कार्य करवाने की प्रबलतम इच्छा थी। उन्होंने कुछ सोचा, चिन्तन-मनन किया और विचार-विमर्श करके शोध-कार्य करने हेतु हम दोनों को बनारस भेजना ही उचित समझा। आपने अपने हृदय को वज्रमय बनाकर बड़ी हिम्मतपूर्वक कहा कि—"**कठिनाइयों से जूँझकर भी अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त करके ही आना**"। माँ ने अनेक हितशिक्षाएँ दीं। भरपूर आशीर्वाद दिया। जीवन में प्रथमबार ही ममतामयी माँ से अलग होने का अवसर था। अत: आँखों से गंगा-जमना बह चली। अश्रु-मुक्ता गिराती हुई वात्सल्यमयी माँ को वन्दन-नमन कर हमने भारी कदमों से होशंगाबाद तीर्थ से बनारस की ओर प्रस्थान किया।

आप अपनी चौथी पौत्री आत्मदर्शनाश्रीजी को साथ लेकर विहार करती हुई अपनी पू. गुरुवर्याश्री की सेवा में आहोर पधार गईं।

हम शीघ्र शोध-कार्य पूर्ण करके पुन: आपश्री के श्रीचरणों में पहुँच गईं। अभी मौखिक परीक्षा देना शेष थी। अत: आपने पुन: हमें आगरा की ओर प्रस्थान करवाया।

विगत दो-तीन वर्षों से आपकी अन्तिम लघु पौत्री कुमारी सुधा आपके चरण-सरोजों में रहकर ज्ञानार्जन कर रही थी। उस पर भी वैराग्य-रंग चढ़ गया। माता-पिता ने उसके विरक्ति भाव को देखकर परिपक्व बनाने हेतु दादीमाँ के चरणों में रहने दिया। परिणाम यह हुआ कि ज्ञानार्जन के साथ जब संयम (वैराग्य) रंग पक्का चढ़ गया तब सुदृढ़ इच्छा जानकर विक्रम संवत् २०४० में आषाढ कृष्णा पंचमी के दिन शुभमुहूर्त्त में आहोर श्री गोड़ी पार्श्वनाथजी मंदिर के विशाल प्रांगण में **कुमारी सुधा की आर्हती दीक्षा प. पूज्यपाद राष्ट्रसंत श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म.सा. के कर-कमलों से सम्पन्न हुई। नूतनदीक्षिता का नाम साध्वीश्री 'सम्यग्दर्शनाश्रीजी' रखा गया**। यह आपकी सबसे लघु पौत्री थी। हमलोग आगरा (उत्तरप्रदेश) चातुर्मास सम्पन्न कर परीक्षा देकर यथासमय पुन: आपकी सेवा में उपस्थित हो गईं।

गरिमापूर्ण ऐतिहासिक वर्षावास
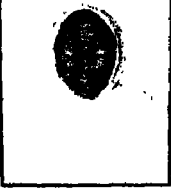
तभी किशनगढ़ शहर से श्रीवीरबहादुरसिंहजी भंडारी, श्री कानसिंहजी कर्नावट, श्री धनबुद्धसिंहजी मेहता आदि सभी श्रावक एकत्र होकर चातुर्मास की प्रार्थना करने आ पहुँचे। करबद्ध निवेदन किया-महाराजश्री ! आप अपनी चरण-रज से हमारे शहर को पवित्र कीजिए। हमारे नगर में चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान कर हमें कृतार्थ कीजिए। अन्ततः संघ का हार्दिक आग्रह एवं प्रार्थना को देखकर आपश्री का ईस्वी सन् 1985 का चातुर्मास प.पू. आचार्य भगवन्तश्री के निर्देशानुसार किशनगढ़ शहर में हुआ।

राजस्थान के विभिन्न गाँवों-नगरों में धर्म-प्रभावना करती हुई आप आगे बढ़ रही थीं। सोजत, ब्यावर, अजमेर होती हुई आप द्वितीय पट्टधर चर्चा चक्रवर्ती आचार्य श्रीमद् विजय धनचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब की जन्मभूमि किशनगढ़ पधारीं। किशनगढ़वासियों ने श्रद्धा के साथ आपका चातुर्मास हेतु भव्य नगर-प्रवेश करवाया। यहाँ यतियों की पाटगादी थी। यति अवस्था में पूज्य दादा गुरुदेव ने विक्रम संवत् १९१३में वर्षावास कर इस भूमि को अपनी चरण-रज से पावन किया था।

यहाँ लोगों में धर्म के प्रति अच्छी लगन और निष्ठा है। सेवाभावना भी उल्लेखनीय है। चातुर्मास प्रारम्भ होते ही धर्माराधना की प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ हो गयीं। प्रतिदिन भक्तामर, प्रार्थना, तप-जप, धर्मानुष्ठान चलते रहें। समय-समय पर विभिन्न धार्मिक आयोजन उत्साह-उल्लासपूर्वक हो रहे थे। इस चातुर्मास काल में श्रीमान् वस्तीमलजी बोथरा की धर्मपत्नी श्रीमती सरेमकुंवर बहन ने मासक्षमण की तपस्या की। जब भी मासक्षमण तप के दौरान किसीप्रकार की अस्वस्थता महसूस होती। वे आपके श्रीचरणों में निवेदन करतीं और वात्सल्यमूर्ति आपश्री उन्हें गुरुदेव के नाम की वासक्षेप देकर कृतार्थ करतीं। संयोग कहिए या आपके तप का पुण्यबल, वह तपस्विनी बहन कुछ क्षणों में ही स्वस्थ हो जातीं। उनकी मासक्षमण तपस्या निर्विघ्न सम्पन्न हुई।

किशनगढ़ शहर से विहार करके मदनगंज स्टेशन पहुँची। अनेक श्रावक-श्राविकाओं को मन्दिर के प्रति श्रद्धान्वित किया। सभी के हृदय में दादा गुरुदेव के प्रति अटूट आस्था जगाई और उन्हें गुरु आम्नाय दिलवाकर परम गुरुभक्त बनाये, जो आज भी पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्या दादीमाँ के प्रति श्रद्धावनत हैं।

जैसलमेर यात्रार्थ बढ़ते कदम

किशनगढ़-मदनगंज का यशस्वी चातुर्मास सम्पन्न होने पर आपने जैसलमेर की यात्रार्थ विहार किया। उन दिनों मार्ग निरापद नहीं थे। कोरे बालू रेत के धोरे। पानी का अभाव। मार्गवर्ती स्थानों की पूरी जानकारी नहीं होने से कभी-कभी बहुत लम्बा विहार हो जाता था। मार्ग

में जैन घर नहीं होने से गौचरी-पानी की बड़ी कठिनाई होती थी। अनेक बार शुद्ध आहार के अभाव में छाछ व बाजरे की रोटी, या लालमिर्च और हथेली जैसी मोटी-मोटी रोटियाँ तथा भूने हुए चने से भी काम चलाना पड़ता था।

गर्मी का मौसम था। धरती भी तपी हुई थी। कभी-कभी लम्बे विहार में नीचे से बालूरेत में पाँव जलते थे और ऊपर से प्रचण्ड सूर्य तपता था, परन्तु आपने कभी किसी बात की परवाह नहीं की। सचमुच, इसबार का विहार तपस्या ही था। **श्रमणी जीवन कठिनाइयों का घर है।** उनका हंस-हंसकर सामना करना ही था। उन्हें चीरकर आगे बढ़ रही थीं। ऐसी गर्मी में भी आपकी वह मृदु मुस्कान अखण्ड रही। मार्ग को पार करती हुई आप सानंद जैसलमेर पहुँच गयीं। अतिरम्य प्रशमरस निमग्न परमात्मा के दर्शन कर भाव-विभोर हो गईं। वहाँ के विशाल मन्दिर अतिरमणीय हैं। पन्द्रह दिन वहाँ ठहरीं। फिर लोद्रवा पार्श्वनाथ तीर्थ के दर्शन करती हुई नाकोड़ा तीर्थ की ओर प्रस्थान कर गयीं।

आचार-संहिता से प्रभावित

मार्गस्थ ग्रामों-नगरों की स्पर्शना करती हुई दुन्दाड़ा ग्राम पहुँचीं। श्रीसंघ ने कुछ दिन तक अपने यहाँ स्थिरता करने की आग्रहभरी प्रार्थना की। दुन्दाड़ा ग्राम में स्थानकवासी समाज के सौ-सवा सौ घर हैं। श्रीजैन श्वेताम्बर भव्य जिनालय है। तत्रस्थ निवासी लोग आपकी आचार-संहिता से प्रभावित हो गये। इस वर्ष का चातुर्मास करने का आग्रहपूर्ण निवेदन किया। हुआ भी यही कि सन् 1986 का चातुर्मास दुन्दाड़ा ही हुआ। चातुर्मास-काल में नवकार-आराधना, पंच-परमेष्ठी आराधना, पर्यूषण महापर्व आराधना, रथयात्रा, नवपद ओली आदि सभी आराधनाएँ मन्दिर के विधि-विधान की पद्धति से अति सुंदर ढंग से संपन्न हुईं। तत्रस्थ निवासी सभी श्रावक-श्राविकाओं ने उत्साहपूर्वक सभी आराधनाओं में भाग लिया। वर्षावास समाप्त होते ही आप वहाँ से विहार कर गुरु-सप्तमी के दिन भाण्डवपुरतीर्थ पधारीं। प.पू. राष्ट्रसंत वर्तमानाचार्यदेवेश श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब वहीं विराज रहे थे। उनके निर्देशानुसार गुरु-सप्तमी के बाद भाण्डवपुर से आपने सियाणा की ओर विहार किया।

महान् आत्मबली

मार्गवर्ती ग्राम-नगरों में जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करती हुई आप आकोली पहुँचीं कि एकाएक आपका स्वास्थ्य अधिक खराब हो गया। यहाँ दो-चार दिन ठहरने की भावना थी, किन्तु अस्वस्थता के कारण एक माह से भी अधिक रूकना पड़ा। घरेलू उपचार चल रहा था, पर उसका कोई असर नजर नहीं आ रहा था। कमजोरी काफी बढ़ गई। उनमें न चलने की शक्ति थी, न विशेष बोलने की शक्ति थी। न खाने में मन था, न पीने का मन था। ज्वर ने बड़ी मजबूती से आपको घेर लिया था। फिर भी आपकी उस समय की जागरूकता / सजगता आज भी हमारे मानस पटल पर अंकित है। ऐसे ज्वराक्रान्त क्षण में भी आपके चेहरे पर झुंझलाहट और परेशानी की रेखा नहीं थी। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे धीरज नहीं खोती थीं।
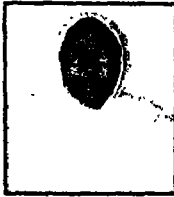
वे दृढ़ प्रतिज्ञ एवं महान् आत्मबली थीं। जो संकल्प वे एकबार कर लेती थीं, उस पर दृढ़ रहने का उनका दृष्टिकोण था। इस संदर्भ में एक प्रसंग याद आ रहा है। आप दिन-प्रतिदिन अशक्त होती चली गईं। फल एवं भौतिक उपचार पर आपका बिल्कुल विश्वास नहीं था। फिर भी हमने आपको दवाई लेने के लिए विनम्र निवेदन किया। साफ मना करते हुए आपने फरमाया—"तुम्हें पता ही है कि मुझे सौगन्ध है। मेरा नियम मत तुड़वाना।" जब बहुत ज्यादा आग्रह किया तो उनकी आँखों में पानी आ गया। अश्रुकण छलकाते हुए हमने अनुरोध के स्वरों में निवेदन किया—महाराजजी! विशेष परिस्थिति में अपवाद मार्ग का सेवन करने का भी शास्त्रों में विधान बताया है न? '**आपात्काले मर्यादा नास्ति**' के अनुसार यदि कुछ समय के लिए थोड़ी दवाई........ और फल-जूस..... लेने में क्या दिक्कत है? ऐलोपेथिक दवाई और फल से उन्हें इतनी अधिक चिढ़ थी कि कुछ मत पूछिए। वास्तव में दवाई और फल उनके लिए छत्तीस का आंकड़ा था। उनके जीवन के सर्वथा प्रतिकूल थीं ये चीजें। इतनी अस्वस्थ हालत में भी नाराज होती हुए हम से बोलीं-"**बस, तुमारे तो यो एक इज धंधो है। याज रट लगई रखी है, दवई! दवई!! और दवई!!! आखिर दवई और फल से वेणो जाणो कइ हे**"? '**सतां कोपोऽपि परेषां हिताय**'-इस उक्ति के अनुसार आपकी ऐसी नाराजगी में भी हमारा तो कल्याण ही समाविष्ट है। धीरे से कहा-महाराजजी! आपकी बात सच है, किंतु हमारा हृदय क्या पत्थर का है? जो आपकी इस गिरती हुई हालत को देखकर भी हम पर कोई असर नहीं होगा? आखिर हम कैसे अपने मन को समझाएँ? क्या करें? फल या दवाई से कुछ होता तो नहीं है, पर आप से कुछ भी वापरा नहीं जा रहा है। एकदम अशक्ति आ गई है। खाली पेट रहने से, कुछ भी नहीं लेने से कैसे काम चलेगा? कभी-कभार हमारी भी छोटी-सी बात मान लीजिए! बोलीं — "**भई? थें म्हांरा से माथापच्ची मत करो। नवकारमंत्र का प्रभाव से म्हांरे सब ठीक वेइ जायगा**"।

उनकी दवाई थी एकमात्र नवकार। नवकार मंत्र में आपकी सदा दृढ़ आस्था रही है। सदैव उनका यही विश्वास रहा है कि इस मंत्र के प्रभाव से कोई विघ्न या बाधा उनके समीप नहीं फटक सकती और यदि कोई कष्ट या बीमारी आ भी जाय तो वह निश्चय ही टल जाएगी।

सुमटीबहन, कमलाबहन आदि ने आप से निवेदन किया—बावसी! दवाई और फल भले आप न लें, परन्तु ग्लुकोज की बोतल चढ़ाने में क्या दिक्कत है? थोड़ी शक्ति आ जायेगी। **आपका जवाब था—"अगर ग्लुकोज चढ़ाने से ही शक्ति आती है तो रोज रोटी क्यों खाते हो? रोटी-सब्जी खाना बंद करो। बस चढ़ाया करो ड्रीप, लिया करो टॉनिक-विटामिन और फल। शक्ति मिल जाएगी, फिर चूल्हा फूँकने की माथापच्ची नहीं करनी पड़ेगी।"** उनकी सटीक बातें सुनकर सभी खिल-खिलाकर जोरों से हँस पड़ी।

आपकी नवकारमंत्र के प्रति अटूट आस्था का ही सुफल था कि आप महीने-डेढ़ महीने में धीरे-धीरे स्वस्थ हो गईं। सभी ने आपके दृढ़ संकल्प व नवकार के प्रति अटूट श्रद्धा की भूरि-भूरि अनुमोदना एवं प्रशंसा की।

आपके स्वास्थ्य-लाभ से सभी अत्यन्त प्रसन्न थे। वास्तव में ही सच्चे संयमी उपसर्ग, परिषह-बीमारी और कष्टों को निर्जरा का कारण मानकर समभाव में रह सकते हैं। आपके समान अपार सहनशक्ति रखनेवाले विरले ही होते होंगे, हमने तो बहुत कम देखें। शारीरिक बल कमजोर होने पर भी आपका आत्मबल अद्‌भुत था।

शत शत नमन है ऐसी उच्च आत्मा को।

गुर्वाज्ञा शिरोधार्य

उन दिनों पूज्यपाद वर्तमानाचार्यदेवेशश्री सियाणा विराजमान थे। अत: आप वहाँ से विहार कर पूज्य आचार्य भगवन्तश्री के दर्शनार्थ सियाणा पहुँचीं।

इसी अवसर पर भरतपुर निवासी श्री सुमेरचंदजी जैन दर्शनार्थ वहाँ आये। श्रीसुमेरचंदजी का आप से सम्पर्क हुआ। आपके उच्च आचार-विचार-व्यवहार-वाणी को देखकर बड़े प्रभावित हुए और उनके अन्तर्मानस में अपने यहाँ आपका चातुर्मास करवाने की भावना उद्‌बुद्ध हुई। आप जहाँ ठहरी हुई थीं, वहाँ वे पहुँचे। उनके भावभरे निवेदन का मुख्य स्वर था-महाराज साहब! **हमारी हार्दिक इच्छा है आप एकबार भरतपुर पधारिए! हम नहीं, दादा गुरुदेव की जन्मभूमि आपको पुकार रही है। उस भूमि का आप पर अधिकार है। वह चाहती है कि उसकी गोद में एकबार आपका चातुर्मास हो। 'जैसी क्षेत्र-स्पर्शना'** कहकर आप मुस्करा दीं। शायद दादीमाँ ने कल्पना भी नहीं की होगी कि गुरुजन्मभूमि में मेरा जाना होगा। पूज्य आचार्य भगवन्त श्री के समक्ष भी श्री सुमेरचंदजी ने अपनी मनोभावना व्यक्त की। गुरुदेवश्री ने आपको फरमाया-**भरतपुर आपका चातुर्मास करवाने की इनकी प्रबल भावना है और मेरी भी हार्दिक इच्छा है आप उस क्षेत्र को संभालें। बिना ननुनच किए तुरन्त आपने आज्ञा शिरोधार्य कर ली। इतना भी नहीं पूछा - कैसे लोग हैं वहाँ के? कैसा क्षेत्र है? कैसा रहन-सहन है, कैसा खान-पान है? बिना कुछ भी जवाब-सवाल किए आपने एकदम नए क्षेत्र में जाने की पहलीबार में ही सहर्ष आज्ञा स्वीकार कर ली।**

गुरु-जन्मभूमि : भरतपुर की ओर प्रस्थान

लगता है पूज्य दादागुरुदेव ने आपको अपनी जन्मभूमि में बुलाया था। आपने अपनी शिष्याओं के साथ अतिशीघ्रतापूर्वक पुण्यभूमि भरतपुर के लिए प्रस्थान किया। सियाणा-जिला जालोर से विहारकर आप आहोर, पाली, ब्यावर, सोजत, अजमेर होती हुई किशनगढ़-मदनगंज आईं। इस बीच कहीं-कहीं बिल्कुल घर नहीं आते हैं और किशनगढ़-मदनगंज के बाद तो भरतपुर पहुँचने तक चार-पाँच स्थानों को छोड़कर कहीं जैन घरों की बस्ती नहीं है, फिर भी कठिनाइयों को सहते हुए, मार्ग की विघ्नबाधाओं को पार करते हुए उत्साहपूर्वक तेजी से कदम आगे बढ़ा रही थीं। विहार भी पन्द्रह-सत्रह किलो मीटर से कम नहीं होते थे। आपकी आयु भी उस वक्त कम नहीं थीं। करीबन सतहत्तर-अठहत्तर वर्ष की हो चुकी थीं आप। क्रमशः मार्ग

तय करती हुई सेवर पहुँचीं । जनमानस के हृदय-सरोवर में उल्लास की ऊर्मियाँ लहराने लगीं । श्रीसंघ भरतपुर ने आपका भव्य प्रवेश करवाया ।

सुषुप्त क्षेत्र में नवजागृति

राजस्थान की भूमि वीर प्रसविनी है । यहाँ की पावनभूमि ने विश्वपूज्य दादा गुरुदेव जैसे महान् विभूतियों को जन्म दिया है । ऐसी पावन गुरुजन्मभूमि भरतपुर में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक एवं स्थानकवासी जैन पल्लीवालों के करीब तीन सौ घरों की बस्ती है । उस समय वहाँ के निवासी श्वेताम्बर साधु-साध्वी भगवंत की चर्या, आचार-विचारों से अनभिज्ञ थे ।

इस पल्लीवाल क्षेत्र में श्वेताम्बर साधु-साध्वी भगवंतों और उसमें भी विशेषत: श्वेताम्बर मूर्तिपूजक साधु-साध्वी भगवन्त का विचरण बहुत ही कम होता है । यही कारण है कि वे उनकी क्रिया-कलापों से पूरीतरह से परिचित नहीं थे तथा वर्तमान में भी पूरी तरह से जानकर नहीं हैं । यों कहना चाहिए इस सुषुप्त क्षेत्र में आपने ज्ञान की एक नवज्योति जलाई ।

भरतपुर आपके निरन्तर दो चातुर्मास हुए । दोनों ही चातुर्मास बड़े प्रभावशाली रहें । इन वर्षावासों में आपने अपनी आत्म-आराधना करते हुए वहाँ के जनजीवन का भी उपकार किया। उन्हें धर्म की ओर मोड़ने के लिए अथक परिश्रम किया । उनमें धर्म का बीजारोपण किया । तप-जप की साधना भी करवाई ।

प्रभावशाली व्यक्तित्व

आपने अपनी मधुरवाणी से इस क्षेत्र को जगाया । श्रावक- श्राविकाओं को समझाया । उनके योग्य 'आचार-विचार' से उन्हें अवगत कराने की कोशिश की । आपके सदुपदेश एवं प्रेरणा से वे लोग गुरुवन्दन, देववन्दन, सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा-पाठ एवं धर्माराधना करना समझे और सीखें । आपने उन्हें उनका महत्त्व समझाकर यथाशक्ति माला, सामायिक व पूजा-पाठ करने, रात्रि-भोजन एवं जमीकन्द-त्याग आदि के नियम संकल्प करवाये ।

आपकी वाणी में मधुरता, हृदय में सरलता, मन में मृदुता, भावना में भव्यता, नेत्रों में करुणा, दृष्टि में विशालता, व्यवहार में कुशलता और अन्त:करण में कोमलता कूट-कूट कर भरी हुई थी । इसलिए आपने देश-क्षेत्र काल-भावानुसार वहाँ के भाई-बहनों को पहचान कर अर्थात् पात्र की परीक्षा कर उनके योग्य उन्हें नियम-संकल्प करवाये । जन-जन के हृदय में संयमित-नियमित शुद्ध-सात्त्विक खान-पान की सुवास भरी ।

यह कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि आपके शुभागमन से भरतपुरवासियों के जीवन में काफी कुछ परिवर्तन आया और धार्मिक चेतना जागृत हुई । यहाँ के श्रावक-श्राविकाओं के सुधार का श्रेय आपको ही है । ईस्वी सन् 1987-88 भरतपुर के वर्षावास में उस प्रतिकूल क्षेत्र में भी धर्म की अमिट छाप पड़ी ।

आपकी प्रेरणा एवं निश्रा में बड़े धूमधाम से नवकार-आराधना, पंच परमेष्ठी आराधना,

इक्यासी आयम्बिल, अक्षयनिधि तप, जीरावला पार्श्वनाथ प्रभु की सविधि आराधना, कवल, गिनती आदि के विभिन्न एकासने, ससमारोह चन्दनबाला अट्ठम तप, लड़ी तेले, रथयात्राओं का भव्य आयोजन, पर्यूषण महापर्व की भव्य आराधना एवं तपस्याएँ हुईं, जिनमें छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े सभी जुड़ गए। भरतपुर के इतिहास में ऐसी धर्म-आराधना प्रथमबार हुई।

चातुर्मास दरम्यान आसोज महीने में आहोर निवासी श्रीमीठालालजी कुहाड़ की धर्मपत्नी श्रीमती प्यारीबाई कुहाड़ की ओर से अट्ठाई महोत्सवपूर्वक विंशतिस्थानक तप के उपलक्ष्य में सुन्दर उद्यापन (उजमणा) भी हुआ।

दीपावली और ग्रीष्मकालीन अवकाश में धार्मिक संस्कार शिविरों का आयोजन किया गया, उनमें भाई-बहनों. छोटे-बड़े बालक-बालिकाओं ने काफी ज्ञानार्जन किया। गुरुवन्दन, चैत्यवन्दन, प्रतिक्रमण, स्नात्र-पूजा आदि सीखने का अभ्यास किया। **"अखिल भारतीय श्री राजेन्द्र-जयन्त जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर" का श्रीगणेश होना इसी पावन गुरुजन्मभूमि की देन है।**

साम्प्रदायिक भेद-भाव को भूलकर आप सभी को समान दृष्टि से देखती थीं। सभी को अपना मानती थीं। अत: समयानुकूल अनेक लोग वहाँ आते थे। यद्यपि आपके लिए यह नूतन क्षेत्र था, फिर भी आपने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से सर्वत्र अपनत्व बटोरा। आपकी सौम्यता, सरलता व वाणी की मृदुता की सभी पर गहरी छाप पड़ी। आपकी कठोर-चर्या का उन पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

आपने उन्हें पूज्य दादा गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब के जीवन-दर्शन से सम्बन्धित कई बातें बताकर अनेक परिवारों को गुरुदेवश्री के प्रति श्रद्धान्वित किया। उनमें समर्पण का भाव जगाकर पैंतीस-चालीस परिवारों को विधिवत् गुरु-आम्नाय (गुरु-दीक्षा) दिलवाई (वर्तमान में दस-बारह परिवार और गुरुभक्त बने)। आपकी उपस्थिति में धर्म की विशेष प्रभावना हुई।

आपकी प्रेरणा से गुरुजन्मभूमि पर नौ बीघा जमीन और क्रय करना, धार्मिक कन्या शिविर का प्रारम्भ, पैंतीस-चालीस घरों को गुरुदीक्षा दिलवाना, प्रथमबार भरतपुर से सिरसतीर्थ तक छ:री पालित पद-यात्रा संघ का आयोजन आदि, ये सब आपके चातुर्मास की विशेष उपलब्धियाँ रहीं।

भरतपुर का यशस्वी एवं ऐतिहासिक यह प्रथम वर्षावास पूर्ण हर्षोल्लास एवं उत्साहपूर्वक सानन्द सम्पन्न हुआ। आपने जहाँ भी वर्षावास किया, वहाँ पर स्नेह-सद्भावना का निर्माण किया।

भरतपुर : प.पू.राष्ट्रसंत गुरुदेवश्री का पदार्पण

चातुर्मास समाप्त होने पर प.पूज्य राष्ट्रसंत वर्तमानाचार्य भगवंत श्रीमद् विजय जयन्तसेन सूरीश्वरजी म.सा. व्यापक स्तर पर गुरुसप्तमी मनाने हेतु इन्दौर से उग्र विहार कर ग्वालियर, धौलपुर होते हुए भरतपुर पधारें। आपकी प्रेरणा एवं पावन निश्रा में अत्यन्त धूमधाम से शानदार

ढंग से गुरुसप्तमी मनाई। तब भरतपुर श्रीसंघ ने आपका सन् 1988 का चातुर्मास करवाने के लिए भावभरी प्रार्थना की। पू. आचार्यश्री ने सहर्ष अनुमति प्रदान की। वे पुन: वहाँ से जयपुर, किशनगढ़, ब्यावर, पाली होते हुए आहोर पधार गए।

कष्टसहिष्णुता प्रिय थीं वो

पूज्य आचार्य भगवन्तश्री के विहार के पश्चात् आपने भरतपुर से आगरा की ओर विहार किया। भरतपुर से आगरा, शौरीपुर, धौलपुर तक जैनघरों की बस्ती नहीं है। उधर का मार्ग भी निरापद नहीं है। चोर डाकुओं का क्षेत्र होने से रास्ता बड़ा बीहड़ है। फिर भी सब कुछ सहन करते हुए उस क्षेत्र में विचरण किया। विहार में कहीं ठहरने का स्थान नहीं मिलने पर, कहीं गौचरी-पानी की व्यवस्था न मिलने पर, तो कहीं साधु-साध्वी की मर्यादाओं से परिचित नहीं होने पर अपमान-तिरस्कार के प्रसंग भी उपस्थित हुए। जब भी ऐसे प्रसंग आए उस समय आपके अन्तर्मन में किंचित्मात्र भी क्षुब्धता उत्पन्न नहीं हुई। **सदा यही सोचकर मन में आह्लादित होती रहीं कि यह तो कुछ भी कष्ट नहीं है। भगवान् महावीर को अनार्यदेश में कितने कष्ट दिए गये, तथापि उन्होंने उन कष्टों का मुस्कराते हुए स्वागत किया। वैसे ही उस पथपर हमें भी बढ़ना है। कष्टों से घबराना कायरता है। आपके जीवन के अन्य अनेक प्रसंग कष्ट-सहिष्णुता की दृष्टि से घटित हुए हैं।**

यह सच है पैदल विचरण करना काँटों का मार्ग है, फूलों का नहीं, कष्टों का मार्ग है, सुख-सुविधाओं का मार्ग नहीं, वीरों का मार्ग है, कायरता का नहीं। कष्ट-सहिष्णु व्यक्ति ही इस राह का राहगीर बन सकता है।

आप कष्ट सहिष्णुताप्रिय थीं। विभिन्न प्रसंगों पर आप कहतीं-"**यह जीवन तो मोम के दाँतों से लोहे के चने चबाने जैसा है। श्रमण/श्रमणी-मार्ग तो सिर पर कफन बाँध कर चलने का मार्ग है।**"

कष्ट-परिषह व उपसर्ग जीवन के लिए वरदान है। स्वेच्छा से कष्ट सहने के लिए ही तो घर छोड़ा है। श्रमणी जीवन अर्थात् कठिनाइयों का घर। श्रमणी जीवन अर्थात् प्रतिकूलताओं का घर। श्रमणी-जीवन में प्रतिकूलताएँ / परेशानियाँ तो कदम-कदम पर आएँगी ही।

धौलपुर क्षेत्र की स्पर्शना

आपकी यह आन्तरिक प्रबल भावना थी कि इस ओर विचरण हुआ है तो फिर चतुर्थ पट्टधर श्रीमद् यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब की जन्मभूमि धौलपुर क्षेत्र की स्पर्शना हो जाय, अत्युत्तम है। अत: आगरा से शौरीपुरी की यात्रा करते हुए धौलपुर पहुँचीं। वहाँ जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्रीमान् सुरेन्द्रसिंहजी-प्रद्युम्नसिंहजी बोहरा का केवल एक ही घर है। उनके स्नेहपूर्ण आग्रह से उन्हीं की कोठी पर कुछ दिन ठहरीं। तत्पश्चात् आपने चातुर्मास हेतु भरतपुर के लिए

प्रस्थान कर दिया। भरतपुर श्रीसंघ ने आपका अत्यन्त धूमधाम से नगर प्रवेश करवाया। इस चातुर्मास में भी खूब धर्माराधनाएँ हुईं। अति उल्लासमय वातावरण में वर्षावास सानन्द सम्पन्न हुआ।
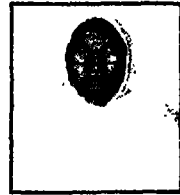
पू. राष्ट्रसंत गुरुदेवश्री की निश्रा में वर्षावास

राजस्थान की वीरभूमि से पदयात्रा कर आपका पूर्वांचल की पावन धरा पर पदार्पण हुआ और गुरुजन्मभूमि में यशस्वी दो वर्षावास सानंद सम्पन्न कर पुनः अपनी यात्रा के अगले पड़ाव, पश्चिमांचल राजस्थान को लक्ष्य कर यहाँ से विदा हो गईं। मारवाड़ जालोर जिले के विभिन्न छोटे-छोटे ग्रामों को अपनी चरण-रज से पावन कर निरन्तर ग्यारह-बारह वर्ष तक इसी क्षेत्र में विचरण किया।

सन् 1989 का प.पूज्य राष्ट्रसंत वर्तमानाचार्यदेवेश श्रीमद् जयन्तसेनसेनसूरीश्वरजी गुरुदेवश्री का चातुर्मास खिमेल (राज.) राजस्थान हुआ। आपका वर्षावास भी पू. गुरुदेवश्री के पावन सान्निध्य में हुआ। सबसे सुखद बात तो यह थी कि नित्यप्रति आचार्यश्री के दर्शन-वन्दन, प्रवचन, शास्त्र-श्रवण, सेवा, सद्शिक्षाओं का पीयूषपान करने का सतत चारमाह तक अच्छा लाभ मिला।

आप ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय और आत्म-आराधना करती हुई जन-कल्याण की भावना से ग्रामों/नगरों में विचरण करती रहीं। अंतिम समय तक स्थिरवास नहीं किया। आपकी सोच थी- **"साधु तथा जल बहता ही भला लगता है।"**

आपके आचार-व्यवहार से प्रभावित होकर विभिन्न गाँवो/नगरों के संघ अपने-अपने क्षेत्र में पधारने हेतु आपश्री के चरणों में आग्रहभरा निवेदन लेकर उपस्थित होते थे।

प्रभावशाली वर्षावास

आप विहार करके पाली पधारीं। ज्योंही जोधपुर सूचना पहुँची कि जोधपुर के सभी श्रावक चातुर्मास हेतु अपने नगर में पधारने की प्रार्थना लेकर आए। उनका अत्यधिक आग्रह देखकर आपने स्वीकृति प्रदान की। पाली से विहार कर रोहट होते हुए जोधपुर पधारीं। आपका सन् 1990 का वर्षावास पंचम पट्टधर कविरत्न शांतमूर्ति श्रीमद् विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब की जन्मभूमि जोधपुर शहर में बड़े उत्साहपूर्ण वातावरण में विविध धर्माराधनाओं के साथ निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। यह वर्षावास बड़ा प्रभावशाली रहा।

वर्षावास सम्पन्न कर ओसिया, गांगाणी कापरड़ा आदि तीर्थों की ओर प्रस्थान कर दिया। उधर की यात्रा करके पाली आदि स्थानों पर विचरण करते हुए 'पाथेड़ी' ग्राम पधारीं। पाथेड़ी से विहार करके किसी जैनेतर भाई के घर ठहरी थीं। तभी अपराह्न तीन बजे जालोर से प्रमुख श्रावकगण चातुर्मास की विनती लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हो गये। आपश्री ने फरमाया कि आपको सन् 1991 में वर्षावास का लाभ मिल चुका है। अब अन्य क्षेत्र को लाभ मिलना चाहिए। चाहे कुछ भी हो, इस वर्ष का चातुर्मास हमें देना ही पड़ेगा। वे अपने आग्रह पर अड़े

हुए थे, और बिना स्वीकृति पाए, लौटने से इन्कार कर दिया।

अन्ततः संघ की विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए आपने ई.सन् 1993 का वर्षावास जालोर करने का मानस बनाया। वहाँ के श्रीसंघ को पूज्यपाद आचार्यश्री ने चातुर्मास हेतु स्वीकृति प्रदान की। हर्षित होते हुए सभी श्रावक अपनी पुण्यवानी की सराहना करते हुए पुनः जालोर लौट गए।

ज्ञान-शिविरों का अनूठा दौर

जालोर एक धार्मिक एवं ऐतिहासिक नगरी है। जालोर-दुर्ग पर परमार्हत् कुमारपाल महाराजा द्वारा निर्मित अति प्राचीन जिनालय हैं। पू. दादा गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब की यह ध्यानस्थली रही है। उन्होंने आठमाह तक निरन्तर यहाँ तपस्या की थी तथा जोधाणा नरेश को उपदेश देकर शस्त्र-बारुदादि निकलवा कर जिन-मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया। सात सौ घरों को सत्य की राह दिखाकर श्वेताम्बर मूर्तिपूजक बनाया।

ऐसी ऐतिहासिक नगरी में ईस्वी सन् 1991 और 1993 के आपके दो चातुर्मास हुए। दोनों चातुर्मास प्रभावशाली रहे।

सन् 1993 में पू. आचार्यश्री गुणरत्नसूरिजी महाराज साहब का चातुर्मास जालोर 'पराबास' में था और आपका चातुर्मास तीनथुई बड़ी धर्मशाला में था। हर पन्द्रह दिन में दर्शन-लाभ मिलता था। परस्पर सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार बना रहा। एक दूसरे की कहीं कोई काट-छाँट नहीं। आपके इस चातुर्मास की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि ज्ञान-शिविरों, ज्ञान-प्रतियोगिताओं का अनूठा दौर चला। एक-दो-चार नहीं, विभिन्न बीस प्रतियोगिताओं की ज्ञान-गंगा बही, जिनकी स्मृति आज भी तरोताजा है। प्रतिदिन सुबह दोपहर-शाम तीन-तीन बार धार्मिक कक्षाएँ चलाई जाने लगीं। फिर भी विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती रही। चातुर्मास में एक-के-बाद एक तपस्याओं की झड़ी-सी लगी रही।

आपकी प्रेरणा से बालक-बालिकाओं, युवापीढ़ी में भी धर्म-चेतना जागृत हुई। चातुर्मासकाल में दीपावली के अवकाश में नन्दीश्वर द्वीप में व्यापक स्तरपर धार्मिक सुसंस्कार कन्या शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें दो सौ कन्याओं ने भाग लिया। उद्घाटन-समापन-वेला पर स्वयं पू. आचार्यश्री गुणरत्नसूरिजी महाराज साहब ने, अपने शिष्य-शिष्या-परिकर के साथ पधारकर शिविरार्थिनी बहनों को सम्बोधित किया था। आपकी प्रेरणा से जालोर में एक-दो नहीं, अपितु पाँच-पाँच कन्या शिविर हुए। जालोर का 1993 का ऐतिहासिक, यशस्वी चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

वर्षावास समाप्त होने पर आपने आसपास के क्षेत्र के अनेक छोटे-छोटे गाँवों को स्पर्श किया तथा वहाँ धर्म-जागृति फैलाई। ढंढारपट्टी व दियावट पट्टी में आप विचरण करती रहीं।

आबालवृद्ध प्रभावित

चैत्र मास में सूरा संघ के प्रतिनिधि श्री हस्तीमलजी, छगनराजजी, भंवरलालजी, पुखराजजी, पारसमलजी आदि श्रावकगण अपने गाँव में पदार्पण की विनती लेकर आपके चरणों में उपस्थित हुए। उन दिनों उनके गाँव में शांतिस्नात्रादि सह अट्ठाई महोत्सव का आयोजन किया गया था। अपनी सूरा की धरती को पावन करने की आग्रहभरी प्रार्थना की। आपने श्रमणी-मर्यादा के अनुरूप कहा **'क्षेत्र-स्पर्शना'**। हस्तीमलजी बोले-दादीमाँ! केवल 'क्षेत्र-स्पर्शना' कहने से काम नहीं चलेगा। आपको पधारना ही होगा। उनके स्वर में निवेदन की दृढ़ता थी। आप जितनी कठोर थीं, उतनी ही संवेदनशीला भी थीं। वे संघ के भावभरे आग्रह को ठुकरा नहीं पायीं और तत्काल स्वीकृति प्रदान कर दी। अट्ठाई महोत्सव पर यथासमय सूरा पधार गयीं। अन्य साधु-साध्वी भगवन्त भी वहाँ पधारे हुए थे। कार्यक्रम सानंद चल रहा था।

सूरा के इतिहास में लगभग सौ वर्ष में साधुभगवन्त/साध्वी भगवन्त का चातुर्मास नहीं हुआ था। अतः विगत कई वर्षों से सूरा संघ की, श्रमण-श्रमणी भगवंतों का चातुर्मास करवाने की प्रबल भावना थी। इस बार वे किसी भी हालत में अवसर चूकना नहीं चाहते थे। संयोग की बात है कि पन्द्रह दिन आपका वहाँ विराजना हुआ। बच्चे, बूढ़े सभी प्रभावित हो गए। आपके व्यवहार व सद्गुणों से आकृष्ट होकर श्रीसंघ ने अपने यहाँ चातुर्मास करवाने की अपनी उत्कट भावना आपके समक्ष प्रकट की। आपने कहा- **'वर्तमान योग।' गुरुदेवश्री! जो आदेश प्रदान करेंगे, वहाँ हो जाएगा**। वे फटाफट आदेश-पत्र ले आएँ। अनुमति-पत्र हमारे पास पहुँच गया। चातुर्मास की स्वीकृति मिलते ही श्रीसंघ में हर्षोल्लास-उत्साह-उमंग का नवसंचार हो गया। वर्षों बाद सूरा ग्राम में चातुर्मास हो रहा था।

धर्मचेतना का केन्द्र : सूरा

वहाँ से विहार कर आप सरत, मड़गाँव, मोदरा होती हुई धाणसा आईं। दो-चार दिन वहाँ ठहरीं। फिर चातुर्मास का समय समीप जानकर सूरा की ओर प्रस्थान कर दिया। वहाँ के भाई-बहनों और बालक-बालिकाओं का उत्साह एवं हर्ष अवर्णनीय था। सूरा पहुँचते ही धर्मप्रेमी गुरुभक्तों ने आपका भव्य स्वागत के साथ नगर-प्रवेश करवाया। विविध आराधनाओं से भरापूरा ईस्वी सन् 1994 का चातुर्मास सूरा गाँव में हुआ।

सूरा संघ में धर्मभावना अच्छी है। आपके वर्षावास से और भी अधिक धर्म-चेतना जागृत हुई। प्रथमबार आपकी प्रेरणा से त्याग-तपस्या की जैसे होड़ लगी हुई थी। महापर्व पर्यूषण में भी आराधना की धूम मची हुई थी। इतने छोटे ग्राम में विशाल समारोह पूर्वक चन्दनबाला अट्ठमतप, कुमारपालकृत भव्य महाआरती, सूरा से सरत, सूरा से साँथू की भव्य चैत्यपरिपाटी का आयोजन, विशाल रथयात्रा, नवकार-आराधना, सामूहिक लड़ी तेले, सामूहिक

इक्क्यासी आयम्बिल, अट्ठाइयाँ, ग्यारह उपवास आदि धर्माराधनाएँ आपकी पावनप्रेरणा से सूरा के इतिहास में प्रथमबार निर्विघ्न सानंद सम्पन्न हुईं। इतना ही नहीं, अपितु चातुर्मास-काल में श्रीसंघ ने धार्मिक कन्याशिविर ज्ञानसत्र का भी सुंदर आयोजन किया। जिसमें विभिन्न ग्राम नगरों की ढाई सौ कन्याओं ने भाग लिया। वहाँ के नवयुवकों का पूरा-पूरा सहयोग रहा।

अनेक जगह चातुर्मास दरम्यान जैनेतर लोग भी आपके पास खूब आकर बैठते थे। उन्हें भी आप अपनी सीधी-सादी सरल भाषा में सचोट दृष्टान्तों के द्वारा अपनी बात हृदय में जचा करके मदिरा, माँस, अफीम-गांजा, जर्दा, चिलम आदि व्यसनों का त्याग कराती थीं।

विहार-यात्रा में छोटे-छोटे गाँवों के विश्राम में भी रात्रि में सात-आठ बजे ग्रामीण लोग आपके दर्शनार्थ आते थे, तब चर्चा के दौरान बीड़ी-सिगरेट नहीं पीना, पानी छानकर पीना, सांप, बिच्छू आदि जीव-जन्तुओं को नहीं मारना, भगवद्-भजन करना इत्यादि अनेकानेक छोटे-छोटे नियम उन्हें देती थीं।

इसतरह आपके उपदेश से कितने ही व्यसनियों ने व्यसनों का त्याग किया। कितनों ने रात्रिभोजन, कंदमूल का प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) किया। कइयों ने प्रभु-दर्शन व पूजा-पाठ का नियम लिया तो कई भक्त माला फेरना, सामायिक करना सीखे हैं।

यथार्थत: आपके सदुपदेश से अनेक श्रद्धालु भक्त व्रत-नियम से जुड़े हैं और कई धर्म-मार्ग में आगे बढ़े हैं। आपके पावन सान्निध्य में धर्मबोध पानेवाले जैन-जैनेतर अनेक भावुक भक्त हैं। आपका स्वभाव भी कुछ ऐसा निराला था कि जो भी उनकी शीतल सुखद छाया में एकबार आता था, बरबस आकर्षित हो जाता था। कितने ही भक्तजनों को हमने आपके श्रीचरणों में बार-बार आते देखा है और उनके अन्तर व आँखों में आपके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति की झलक को पाया है।

आपका सूरा का चातुर्मास बड़ा प्रभावशाली रहा। चातुर्मास समाप्त होने पर आपका पधारना आकोली हुआ। आकोली में ग्रीष्मकालीन धार्मिक कन्या शिविर बड़े शानदार ढंग से सम्पन्न हुआ। नवयुवकों ने हर दृष्टि से पूर्ण सहयोग दिया।

शिविर के अवसर पर सियाणा श्रीसंघ वर्षावास की विनती लेकर आपके चरणों में पहुँचे। इसी अवसर पर धाणसा श्रीसंघ के प्रमुख श्रीवच्छराजजी भंसाली, श्रीभंवरलालजी आदि श्रावकगण भी चातुर्मास की विनती करने उपस्थित हुए। सियाणा संघ अत्यधिक आग्रहभरा निवेदन कर रहा था।

सियाणा में सफल चातुर्मास

उसे ध्यान में रखकर आपने फरमाया कि अगर वर्तमानाचार्यदेवेशश्री अनुमति प्रदान करेंगे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह सुनकर सभी प्रफुल्लित हो गये। आज्ञा मिल गई। इस वर्ष के वर्षावास हेतु आप सियाणा पधारीं। वर्षावास में धार्मिक अनुष्ठानों की झड़ी लग गई।

तप-त्याग एवं अन्य धार्मिक आराधनाओं में पूरे चार मास बड़े धूमधाम से व्यतीत हुए।

सियाणा के इतिहास में वर्षावास काल में पंच परमेष्ठी एकासने, कुमारपाल महाराजाकृत भव्य महाआरती, ससमारोह चंदनबाला अट्ठम तपाराधना, सुविधिनाथजी मंदिर के विशाल प्रांगण में छप्पन दिग्कुमारिका कृत भव्यातिभव्य महोत्सव, रंगोली आदि अनेकविध रंगारंग कार्यक्रम प्रथमबार सम्पन्न हुए। यहाँ चातुर्मासकालीन धार्मिक कन्याशिविर भी बड़े शानदार ढंग से सम्पन्न हुआ।
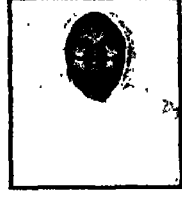
आपकी प्रेरणा एवं निश्रा में पौष माह में गुरुसप्तमी पर श्रीमान् शाह भंवरलालजी गटमलजी भंडारी ने विविध कार्यक्रमों के साथ पंचाह्निका महोत्सव का सुंदर आयोजन किया। बड़े ठाठ से गुरुसप्तमी का कार्यक्रम संपन्न करवा कर वहाँ से विहार किया। बाकरा, मोदरा, धाणसा, पांथेड़ी आदि आसपास के क्षेत्रों में धर्म की ज्योति जलाते हुए पुनः आपका पधारना सूरा हुआ और वहीं ग्रीष्मकालीन कन्या शिविर का भव्य आयोजन हुआ। छोटे से गाँव में दूसरी बार आयोजित कन्याशिविर में भी बालिकाओं की उपस्थिति सुन्दरतम रही।

आपकी प्रेरणा एवं पावन निश्रा में स्थान-स्थान पर आयोजित धार्मिक कन्या शिविरों में अनेक बालिकाएँ सामायिक, गुरुवंदन, चैत्यवंदन, प्रतिक्रमण, भक्तामरस्तोत्र आदि धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ जीवनोपयोगी बातें, व्यावहारिक हितशिक्षा, विनय-विवेक, अनुशासन आदि सुसंस्कार प्राप्त कर चुकी हैं। इसके परिणाम स्वरूप अनेक बालिकाएँ अपना सद्गृहस्थ जीवन सुखशांतिपूर्वक व्यतीत कर रही हैं।

जीवन में गतिशीलता

प.पू. राष्ट्रसंत वर्तमानाचार्य भगवन्तश्री का ईस्वी सन् 1996 का वर्षावास भीनमाल होना निश्चित हुआ। भीनमाल संघ के श्रावकगण सूरा कन्याशिविर समापन समारोह के अवसर पर आपकी सेवा में उपस्थित हुए। संघ की अत्यधिक आग्रहभरी विनती के कारण आपने पूज्यपाद राष्ट्रसंतश्री के पावन सान्निध्य में भीनमाल चातुर्मास सम्पन्न किया।

चातुर्मास पूर्ण होते ही आपकी वृद्धावस्था के कारण भीनमाल संघ ने प.पूज्यपाद राष्ट्रसंत आचार्य भगवन्तश्री से, आपको भीनमाल स्थिरवास करने हेतु करबद्ध विनम्र निवेदन किया। पू. गुरुदेवश्री ने सहर्ष आज्ञा प्रदान करदी। उसके बाद आप दो वर्ष वहीं विराजमान रहीं, किन्तु शेष काल में नरता, पांथेड़ी, थलवाड़ आदि आस-पास के क्षेत्रों में विचरण किया। उन्हें एक स्थान पर बैठना अच्छा नहीं लगता था।

बड़े-बड़े शहरों की अपेक्षा छोटे-छोटे गाँवों में विचरण करना आपको बहुत अधिक पसन्द था। गाँवों को पसन्द करने का मुख्य कारण यही था कि वहाँ का रहन-सहन, शुद्ध-सात्त्विक खान-पान, मान-सम्मान, निर्दोष गौचरी, स्नेह-प्रेम, मान-मर्यादाएँ, शुद्धवायु, प्रदूषणमुक्त जीवन, एकदम शुद्ध-सात्त्विक, नीरव, शांत प्राकृतिक वातावरण,
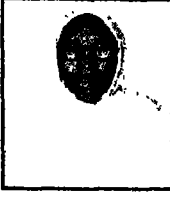
स्थंडिल (जंगल) एवं मात्रा (लघुशंका) के लिए निर्जीव सूखी जगह इत्यादि सुविधाएँ होने से साध्वाचार का पालन सुगमता से हो सकता है ।

आप कई बार चर्चा के दौरान कहती थीं—"गाँवों में माला, जाप, ज्ञान-ध्यान व स्वाध्याय कितना सुखपूर्वक होता है ? साध्वाचार का पालन भी निरतिचार होता है । संघ चाहे छोटा हो या बड़ा, कहीं पर भी रहकर आराधना-साधना करना है तथा श्रीसंघको अपनी क्षमतानुसार वीतराग-वाणी का पीयूष-पान करवाना है । यह कितनी बढ़िया सोच थी उनकी ।

यही कारण था कि आपने शहरों को कम महत्त्व देकर अधिकांशत: गाँवों में चातुर्मास एवं विचरण अधिक किया । यथा—पारा, महिदपुर, आलोट, अमलावद, खिमेल, दुन्दाड़ा, सूरा, सियाणा आदि । विगत बारह वर्षों में आपने जालोर जिले के ग्राम / नगरों में खूब विचरण किया।

ज्ञान-चेतना का केन्द्र : भीनमाल

ईस्वी सन् 1992-96-97 एवं 98 भीनमाल के इन चार चातुर्मासों में अनेकानेक धर्माराधनाएँ हुईं । आपकी प्रेरणा एवं निश्रा में विभिन्न ज्ञानप्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं, जिसमें बालक-बालिकाएँ, बहनें-भाई सभी ने अति उत्साह-उमंगपूर्वक भाग लिया । आपने बालक-बालिकाओं को धार्मिक सूत्रों का खूब अध्ययन करवाया । उनके प्रोत्साहन के लिए अनेकविध परीक्षाएँ आयोजित की गईं । पारितोषिक भी खूब दिये गये । श्री गोड़ीजी मंदिर, श्री शंखेश्वरजी मंदिर एवं श्री महावीरजी बड़ा मंदिर आदि विभिन्न स्थानों पर श्रीसंघ भीनमाल ने बाल/किशोर शिविर, महिला शिविर और कन्या शिविरों का सुन्दरतम आयोजन किया । इसतरह भीनमाल में पाँच-छ: धार्मिक शिविरों का व्यापक स्तर पर आयोजन हुआ है ।

महिमामयी परमश्रद्धेया परमपूज्या दादीजी महाराज साहब विगत तीन वर्ष से भीनमाल में स्थिरता किए हुए थीं । फिर भी परनिर्भरता तो आपके जीवन में कहीं दिखाई ही नहीं देती थी ।

आराम व सुख-सुविधा से कोसों दूर

आपका कितना निस्पृह, स्वावलंबी और आत्मनिर्भर जीवन था । कितनी दीर्घदृष्टि थी । कभी किसी से पगचंपी नहीं करवाती थीं और न किसी से मालिश ही करवाती थीं। किसी से क्या ? हम (संसार पक्षीय पौत्रियों) से भी नहीं ।

शाम को बहनें नित्यप्रति प्रतिक्रमण करने आती थीं । एकदिन की बात है । एक बहन ने पगचंपी करने हेतु आपके पाँवों को हाथ लगाया । तुरंत आपने कहा-"नी बेन ! म्हांरा पग के हाथ नी लगावणो । हाथ लगावा से म्हांरे ज्यादा दु:खे ।" क्यों, महाराज साहब ? आपका बुढ़ापा है । बुढ़ापे में हाथ-पैर, कमर आदि में दर्द होता ही है । **बड़े प्रेम से समझाती हुइ बोलीं-"रोज-रोज दबावा की आदत डाली लूँ तो म्हें पराधीन वेई जऊँ । रोज पग दबावा को या**

मालिश करवा को हेवा कर लूँ और जद कोई नी करे, लापरवाही कर दे तो पछे अपणा ने वणी व्यक्ति पे गुस्सो आवे। अभावो वेई जाय। वणी पे म्हारा भाव बिगड़ी जाय ओर 'भाव बिगड्या के भव बिगड्यो'। क्लेश को वातावरण उभो वेई जाय। या परिस्थिति आज घणा घरा में अपणे देखी रया हाँ। म्हें थने भी याज सीख दूँ के जीवन में कदी एसी आदत नी रखणी के पछे अपणा ने दु:खी वेणो पड़े।"

हमलोग भी कभी आपके पास बैठकर पैरों को सहलाने या दबाने की कोशिश करतीं तो वे मीठे शब्दों में कहतीं–"**म्हारे नी दबावणो। स्वाध्याय करो। क्यूं समय खोवो।**" निवेदन के स्वरों में कहतीं–महाराजजी ! आज थोड़ी सी देर.....। बडे सीधे-सरल व सहज भावों में वत्सलतापूर्वक कहतीं–"**थें कई परायी थोड़ी हो। जदी म्हारे दु:खेगा, म्हें आगे-चलने थाने कई दूँगा। म्हें तो थाने भी योज कूं के ध्यान राखजो, जीवन सुखी वणावणो वे तो जठे तक अपणा हाथ-पग चले वठे तक अपणो काम अपणे ज करणो। कणी से भी अपणो काम नी करावणो। कणी ने भी तकलीफ नी देणी। विछाणा में पड्या वां तो वात अलग हे। नी तो अपणे दूसरा के पराधीन वेइ जावां। कैसी सुन्दर सोच थी उस महान् आत्मा की !"**

जीवन हो तो ऐसा हो !

आपके स्वावलम्बन के बारे में जितना कहें उतना कम है।

आप एकासना / बियासना करने के पश्चात् दाँत साफ करती थीं, चूँकि बत्तीसी बिठाई हुई थीं। गौचरी करके उठने में यदि हम से एकाध मिनट देर हो जाती, तो तत्काल दाँत धोने का प्याला उठाकर परठने (फैंकने) के लिए प्रस्थित हो जातीं। हम निवेदन करतीं–महाराजजी ! आप यह क्या कर रही हैं ? आप ऐसा करती हैं तो हमें शर्म आती हैं। अच्छा नहीं लगता।

बोलीं-"इसमें क्या हो गया ? हाथ-पैरों को थोड़ा बहुत इधर-उधर करना ही चाहिए। नहीं तो यह शरीर कामचोर हो जायेगा। आयुर्वेद में भी कहा है कि 'शतपदगामी' अर्थात् भोजन करने के बाद सौ कदम चलना चाहिए ताकि स्वास्थ्य ठीक रहे। अन्यथा हाथ-पाँव काष्ठवत् अकड़ जायेंगे।

दूसरी बात यदि दांत धोने का प्याला पड़ा रहा, ध्यान नहीं रहा तो उसमें मक्खी-मच्छर इत्यादि जीव-जन्तु गिर जायेंगे। व्यर्थ में जीव विराधना एवं सम्मूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति होगी सो अलग।" इसी तरह स्थंडिल-मात्रा (बड़ीनीति-लघुशंका) करने जाना होता तो पानी लेकर अकेली पधार जातीं। पानी वापरना होता तब भी किसी से कहती नहीं। स्वयं अपना पात्र और आसन उठाकर पहुँच जातीं घड़े के पास। वैसे वे मुश्किल से एक या दो बार पानी वापरती थीं। नित्य सुबह-शाम की वस्त्र प्रतिलेखन, संथारा, आदि कार्य अपने हाथों से करती थीं। **कैसा आदर्शमय जीवन था आपका !** वास्तव में **जीवन हो तो ऐसा हो !**

सरल एवं भाव पारखी हृदया

पूज्या दादीजी महाराज साहब की वृद्धावस्था एवं प्रचण्ड गर्मी को देखते हुए भीनमाल श्रीसंघ की एवं हमारी धाणसा चातुर्मास करने की मानसिकता नहीं थी, परन्तु प्रकृति को कुछ और ही मंजूर था। उसके गर्भ में किसी और घटना ने जन्म ले लिया था, पर वह अभी नेपथ्य में थी। उधर धाणसा श्रीसंघ का, आपका चातुर्मास करवाने का अत्यधिक आग्रह रहा। वे अपने क्षेत्र में आप जैसी त्यागी तपस्विनी कठोर संयम-साधिका साध्वी का चातुर्मास कराना चाहते थे। अत: उन्होंने आप से आग्रहपूर्ण भावभरा निवेदन किया। **'भगवान् भक्त के अधीन होते हैं'**। इस कहावत के अनुसार अन्त में उन सब की प्रबलतम भक्ति और भावना पर पू. दादीमाँ ने अन्तर्मन से विचारकर धाणसा वर्षावास करने की स्वीकृति प्रदान कर दी। इसतरह विक्रम संवत् २०५६ का आपका चातुर्मास धाणसा के लिए स्वीकृत हुआ। यह चातुर्मास भी आपके संयम जीवन का अविस्मरणीय चातुर्मास बना। विहार में आपको थकावट एवं घबराहट महसूस होती थी। कभी बेचैनी भी बढ़ जाती, पर आपका धाणसा पहुँचने का एक मात्र लक्ष्य था।

आपने दृढ़ संकल्प एवं आत्मबल के सहारे आषाढ़ शुक्ला नवमी की शुभ वेला में धाणसा नगर में समारोहपूर्वक प्रवेश किया। आपके पदार्पण से नगर में धर्माराधना का जो अनूठा वातावरण निर्मित हुआ, वह सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। बड़ी धूमधाम के साथ वर्षावास प्रारंभ हुआ। चातुर्मास की अवधि में बड़े ठाठ से नवकार आराधना, शंखेश्वर के तेले, लड़ी तेले, इक्यासी आयंबिल, सामूहिक वीशस्थानक तप, नवपद ओली एवं अक्षयनिधि तपाराधना आदि निर्विघ्न रूप से सानंद-सोल्लास सम्पन्न हुई।

आपकी प्रेरणा से चातुर्मास काल में धाणसा के इतिहास में प्रथमबार ससमारोह चन्दनबाला अट्ठमतप, कुमारपाल महाराजाकृत महाआरती का दो बार भव्य आयोजन, धाणसा से मोदरा तथा धाणसा से बाकरा रोड की भव्य चैत्यपरिपाटी का आयोजन, गिनती, कवल, पंचपरमेष्ठी आदि के विविध एकासने, पर्यूषण महापर्व की सुंदरतम आराधना के नव सूत्रीय कार्यक्रम के विविध अनुष्ठान हुए। जिससे संघ-समाज में विशेष धर्म जागृति रही। बालिकाओं ने धार्मिक अध्ययन किया। परीक्षाएँ ली गईं। प्रोत्साहन स्वरूप पारितोषिक दिये गए।

चातुर्मासिक आराधना एवं धार्मिक कार्यक्रमों की भीनी-भीनी मनभावन सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी। इसतरह ज्ञान-ध्यान, तप-त्याग की दृष्टि से उत्साह-उमंग के साथ चातुर्मास अत्यन्त सफलता पूर्वक निर्विघ्न सानंद सम्पन्न हुआ।

उत्साह-उल्लास में डूबे ये चातुर्मास के क्षण कैसे बीत गये ? पता ही नहीं चला।

अब उस ऊर्जा और आनंद से सराबोर आपके स्नेह-वात्सल्य एवं पावन सान्निध्य से वंचित होने का समय समीप आ गया था।
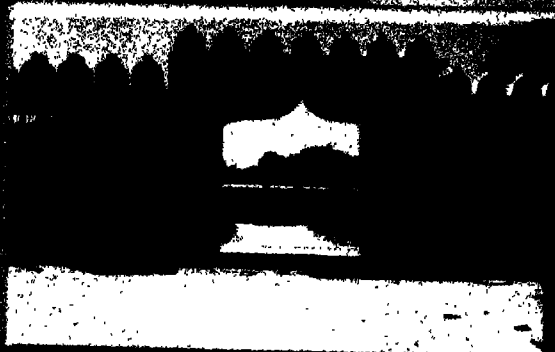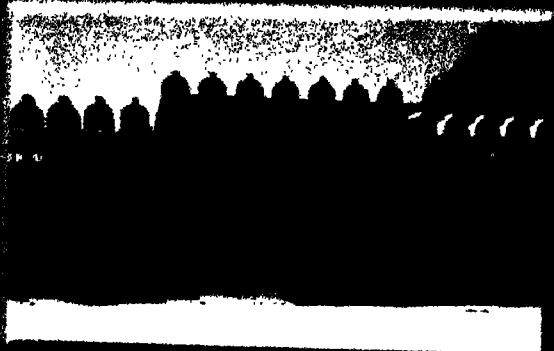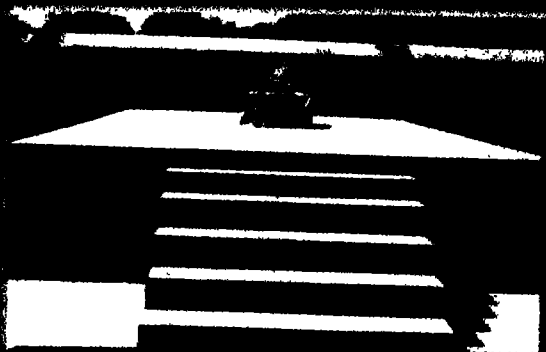
पू. दादीजी म.सा. के समाधि स्थल के विभिन्न भीतरी दृश्य

पू. दादीजी म.सा. के समाधि स्थल का भीतरी दृश्य, धाणसा (राज.)

पू. दादीजी म.सा. के समाधि स्थल का भीतरी दृश्य, धाणसा (राज.)

पू. दादीजी म.सा. के समाधि स्थल का भीतरी दृश्य, धाणसा (राज.)

मृत्यु का पूर्वाभास

कौन जानता था कि अब यह पावन आत्मा इस शरीर से विदाई लेनेवाली है ? प्रकृति के क्रूर पंजे इस वत्सलता को छीननेवाले हैं । हमारे जीवन का यह मजबूत वात्सल्य-स्तम्भ अब मौत के आँधी-तूफान से ढहनेवाला है ।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् मात्र तीन माह ग्यारह दिन व्यतीत हुए थे कि कठोर दुर्भाग्य ने दस्तक दे दी । **'इदं शरीरं व्याधिमंदिरम्'** के अनुसार फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा से आप हल्के से ज्वर से ग्रस्त हो गयी थीं । भयंकर वेदना में भी आपने अपने आत्मबल को ज्वलन्त रखा । वे भला मामूली ताप की क्या परवाह करतीं ? जीवन के संध्याकाल में महाप्रयाण से दो चार दिन पूर्व पाँव, पीठ व सिर में बहुत दर्द रहा और अंतिम दिन शांत हो गया था । धीरे-धीरे शारीरिक दुर्बलता आ चुकी थी । लगता है भव्यात्माओं को भविष्य में घटनेवाली घटनाओं का पूर्वाभास सहज हो जाता है । इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । आपको मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था ।

फाल्गुन वदि एकम के दिन आप श्री गोड़ीजी पार्श्वनाथ प्रभु के दर्शनार्थ पधारीं । जैसे ही प्रभु-दर्शन व गुरुदेव के दर्शन करके उल्टे कदमों से बाहर आ रही थीं । पीछे से आवाज आई-

"अब तू मंदिर नी अई सकेगा,
ई थारा आखरी दरसन है" ।

सीढ़ियाँ उतरते ही उन्हें आभास हो चुका था कि अब मेरा अंतिम समय निकट है । हुआ भी ऐसा ही । दूसरी बार फाल्गुन वदि तृतीया को जब गौचरी नहीं चलने लगी, तब आपने फरमाया-**'अन्न छूट्या वणी का घर छूट्या समझो'** ।

तीसरी बार जब दिन-प्रतिदिन आपके स्वास्थ्य में गिरावट आने लगी और उन्हें देखकर जब हमारी आँखों से अश्रुकण छलकने लगे, तब वात्सल्य उंडेलते हुए आपने हमारे सिरपर आशीर्वाद का वरद हस्त रखकर अत्यन्त शांत मुद्रा व स्निग्ध आवाज में अनेक हितशिक्षाप्रद बातें कहीं और अपने वार्तालाप को समेटते हुए अन्त में कहा-**"एक दो दिन जो भी निकले वी नफा का"** ।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि अस्वस्थता के बाद आप को दस दिन पूर्व ही अनुभूति हो गयी थी कि अब यह माटी की देह माटी में मिलनेवाली है ।

तीन-तीन बार संकेत करने पर भी हम समझ नहीं पायीं कि आप हमें निराधार छोड़कर चली जाएँगी । हम तो इन्हीं खयालों में रहीं कि बुखार की कमजोरी से संभवतः उन्हें ऐसा महसूस हो रहा है, पर हमें क्या पता था कि वस्तुतः चार-पाँच दिन की अत्यल्प अवधि के बाद ही यह वज्रपात हमारे आंगन में होनेवाला है ।

प्रकृति द्वारा प्रदत्त सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त

व्यक्ति अपने जीवनकाल में समस्त कार्यक्रमों के लिए सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त निकलवाता है, लेकिन जन्म-मरण के कार्यक्रम वह मुहूर्त्तानुसार नहीं कर सकता, चूँकि जन्म-मृत्यु तो प्रकृति की देन है। उसका सोचा हुआ कुछ काम नहीं आता, किंतु कितना आश्चर्यकारी संयोग हुआ। सच है महान् पुण्यशाली आत्माओं को संयोग भी महान् ही मिलते हैं। विशिष्ट आत्माओं के लिए प्रकृति भी अनुकूल हो जाती है। पू. दादीजी महाराज साहब के लिए मानो प्रकृति ने मुहूर्त्त निकलवाकर पहले से ही तैयार रखा था। **आपका जन्म कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा, जिस दिन द्राविड़ वारिखखिल्ल दस करोड़ मुनिवरों के साथ सिद्धाचल पर सिद्धिपद को पाये, एवं कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य इस धरातल अवतरित हुए, के पावन पर्व दिन हुआ। यह भी कैसा अद्‌भुत एवं विस्मयकारी संयोग ही था कि चरम तीर्थपति श्रमण भगवान् महावीर ने जिस पावन तिथि वैशाख शुक्ला दसमी को कैवल्य-ज्योति प्राप्त की थी, उसी दिन आपने चारित्र अंगीकार किया।**

लगता है महाप्रयाण हेतु भी प्रकृति ने सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त निकलवाया था। आपने महाप्रयाण का ऐसा पावन दिन लिया जिस दिन प्रथम तीर्थाधिपति श्री आदिनाथ प्रभु ने केवलज्ञान पाया था। फाल्गुन कृष्णा एकादशी को मृत्यु का वरण करना भी सार्थक हो गया। यह भी कितना आश्चर्यजनक संयोग ही कहा जा सकता है कि जिस दिन परमतारक देवाधिदेव श्री श्रेयांसनाथ प्रभु का जन्म कल्याणक एवं बीसवें तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रतस्वामी का केवलज्ञान कल्याणक था, उस पावन तिथि फाल्गुन कृष्णा बारस को आपका अग्नि संस्कार हुआ, जो विरलों को ही मिलती है। साथ ही यह भी कैसा विचित्र संयोग रहा कि आपकी पूज्या गुरुणीमैया प्रशांतमूर्ति श्री हेतश्रीजी महाराज साहब के महाप्रयाण का वही महीना, वही अग्नि संस्कार की तिथि और वही श्री गोड़ी पार्श्वनाथ मंदिर के पासवाला स्थान था। अन्तर मात्र शुक्ल-कृष्ण पक्ष और ग्राम का रहा। प.पू. गुरुवर्याश्री का विक्रम संवत् २०३९में फाल्गुन शुक्ला बारस के दिन आहोर में अग्नि संस्कार हुआ तो पू. दादीजी महाराज साहब का विक्रम संवत् २०५६ में फाल्गुन कृष्णा बारस को धाणसा में अग्निसंस्कार हुआ।

फाल्गुन प्रारंभ होते ही स्वास्थ्य-लाभ के बजाय दिनानुदिन आपका स्वास्थ्य और अधिक नरम होता चला गया। धाणसा श्रीसंघ ने जितनी भी हो सकती थी तन-मन से सेवा की। जिसे भी आपके स्वास्थ्य का पता चला, वे श्रद्धालुभक्त स्वास्थ्य-पृच्छा एवं दर्शनार्थ आने लगे थे। धाणसा एवं अन्य श्रीसंघ ने उपचार करवाने एवं डॉक्टरादि लाने के लिए भी आपसे आग्रहभरा अनुरोध किया, किंतु आपने दवाई-डॉक्टर आदि का दृढ़ता से इन्कार कर दिया। महाप्रयाण के तीन-चार दिन पूर्व थोड़ा दर्द रहा, बाकी और कोई व्याधि नहीं थी।

हमें याद है जब आप स्वस्थ थीं। कभी-कभी किसी से वार्तालाप के दौरान कहती थीं-"**चलते-फिरते, पूर्ण जागरूक और स्वस्थ अवस्था में मृत्यु आये तो अच्छा है।" हुआ भी वैसा ही। स्वयं आत्मनिर्भरता में मृत्यु महोत्सव बनता है।**
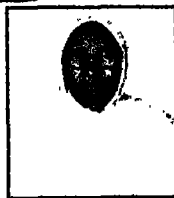
मृत्यु क्या है ?

इस चराचर जगत् में जन्म, जीवन और मृत्यु का चक्र अनादिकाल से चला आ रहा है और चलता रहेगा। जन्म है तो मृत्यु भी निश्चित है। जीवन इन दो किनारों के बीच का भटकाव है। जन्म मित्र की भाँति प्रतीत होता है तो मृत्यु दुश्मन की भाँति, किन्तु जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अनिवार्य होती है। फिर, मृत्यु से क्या डरना ? मृत्यु का मुस्कराते हुए स्वागत करना चाहिए। मृत्यु को महोत्सव बना लेना चाहिए ताकि सब याद रखे। किन्तु इससे विपरीत मृत्यु का साक्षात् दर्शन तो दूर रहा, मृत्यु का नाम सुनते ही मनुष्य के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या मृत्यु इतनी भयानक है ? इतनी खतरनाक है कि मनुष्य उससे डर जाय ? पैदा हुए तब से मृत्यु अपना साया बनकर साथ चल रही है, फिर भी हम उससे परिचित नहीं हैं। संसार का यह परिवर्तनशील घटनाक्रम है। कोई भी इससे बच नहीं सकता।

वैसे देखा जाये तो मृत्यु है क्या ? गीता की भाषा में कहें तो पुराने कपड़े उतारकर नये कपड़े पहनना, पुराना जीर्ण-शीर्ण घर छोड़ कर नये घर में रहने जाना। वैसे भी पुराना ज्यादा अच्छा नहीं लगता है।

'पंखी को यह पिंजरा पुराना लागे
बहुत समझाया पर वो नया पिंजरा माँगे'

बस, ऐसा ही कुछ होता है मृत्यु के समय ! भारतीय तत्त्वचिंतकों ने मृत्यु से डरने की जगह मृत्यु का सहर्ष आलिंगन करने की बात कही है। उनका कहना है कि मृत्यु तो इस जीवन का अंत है और दूसरे जीवन का प्रारंभ है। विरक्त मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता है, वह डरता है जन्म से। वह समझता है सारे दुःख जन्म से जुड़े हुए हैं। जन्म जबतक होता रहेगा, तबतक दुःख बने रहेंगे, पर जो जीवन जी कर जाते हैं, जीवन के जहर को अमृत में परिवर्तित करके जाते हैं। उनके लिए तो मृत्यु महोत्सव हो उठता है। इसीलिए एक मृत्युकला-मर्मज्ञ ने कहा है- **'मृत्योर्बिभेषि किं मूढ !'-अरे मूर्ख ! मृत्यु से क्यों डरता है ?** वह कोई डरने जैसी चीज नहीं है। वर्तमान शरीर को छोड़कर जीव का दूसरे शरीर में प्रयाण कर जाना ही मृत्यु कहलाती है।

एक उर्दू शायर ने कहा है –

"हँस के दुनिया में कोई, कोई रो के मरा।
जिन्दगी पाई मगर उसने, जो कुछ हो के मरा ॥"

जो मृत्युकला का रहस्य समझ लेता है, वह कायरों की भाँति होनेवाली मृत्यु को स्वीकार नहीं करता, वह वीरों की सी मृत्यु को ही स्वीकार करता है। **आचारांग सूत्र में श्रमण-श्रमणी भगवंतों के लिए कहा गया है- 'जीवियास मरणभय विप्पमुक्को'-वह जीने की भी आशा न रखे और मृत्यु के भय से भी मुक्त हो।** श्रमण तो जब से संयम जीवन अंगीकार करता है तभी से वह सिरपर कफन बाँधकर चलता है, यानि मौत को भी साथ में लिए फिरता है। जीवन और मृत्यु उसके लिए एक खेल है। वह तो यही सोचकर चलता है कि जीवित रहना आत्मा का धर्म है और मरना इस शरीर का धर्म है। इसमें हर्ष-शोक करने की कहीं गुंजाइश नहीं है।

मृत्यु : साधना का माप-दण्ड

इस संसार में मनुष्य जब से जन्म लेता है, तब से लेकर मृत्यु तक का समय उसकी ज़िंदगी का साधनाकाल है और मृत्यु का समय उसका परीक्षा-काल। साधना के विद्यालय में मनुष्य अपनी साधना का अभ्यास करने के लिए अपने जीवन-काल में साधना करता है और जीवन के अंत में मृत्यु के समय उसकी सारी साधना की परीक्षा होती है। इस दृष्टि से मृत्यु सारी जिन्दगी का निचोड़ है, जीवनभर की तैयारी की परीक्षा है। मृत्यु तो प्रत्येक मनुष्य की जीवनभर की साधना का माप-दण्ड है। जिसका मरण सुधरा, उसका जीवन भी सुधरा और जिसका मरण बिगड़ा, उसका जीवन भी बिगड़ा हुआ समझा जाता है। अत: प्रत्येक साधक को हर समय जागरूक रहना चाहिए। मौत कभी भी जीवन की किसी भी अवस्था में आ सकती है। यद्यपि महापुरुषों की दृष्टि में उसकी तिथि निश्चित है, किंतु साधारण व्यक्ति इस बात को नहीं जानते कि मौत कब आयेगी ? अतएव मृत्यु के लिए तो हरसमय तैयार रहना चाहिए। मृत्यु की कला सीखने के लिए जीवन में पहले से ही साधना होनी चाहिए। उर्दू के एक शायर कहते हैं-

"मरने से मफर नहीं है, अब जय अकबर !
बेहतर तो यही है, खुशी से मरना सीखो ॥"

मृत्यु महोत्सव बनी

भारतीय संस्कृति का यह सूत्र है - 'मधुरेण समापयेत' - अन्त हमेशा मधुर-मीठा होना चाहिए। अन्त मधुर तभी होता है जब प्रारंभ मधुर हो, जीवन मधुर हो।

पूज्याश्री का जीवन इसीतरह का था जो आत्महित में से लोक-हित को अनवरत प्रकट करता रहा। उन्होंने समाज को सदैव दिया ही दिया, लिया कुछ भी नहीं।

आपके जीवन की अनूठी छाप तो थी ही, परन्तु आपका मरण भी पूर्ण जोश, होश एवं

प्रभावशाली रहा। '**अन्त भला तो सब भला**' यह कहावत आपके जीवन के अन्तिम समय तक चरितार्थ हुई। जीवन की सार्थकता इसी में अनुभूत होती है कि मृत्यु कैसे हुई ? यही क्षण तो जिन्दगी की सफलता को चिह्नित करता है। किसी विचारक ने कहा है –

"कैफियत उसकी जो दुनिया की जुबान पर अपनी कहानी लिख दें।"

आपका व्यक्तित्व तो यह संदेश देता था-

"जीना है तो जी, जिन्दे दिल की तरह
मुर्दा दिल क्या खाक जिया करते हैं ?"

जिनके जीवन की प्रत्येक क्रिया में जागरूकता थी। जिनके जीवन की हर सांस में संयम की सुवास भरी हुई थी। जिनके जीवन का हर कदम साध्वाचार की शुद्धि के विकास में गतिशील था। जिनके हृदय के कण-कण से सहजता-सरलता टपकती थी। जिनकी प्रभु-भक्ति में परमात्म-प्राप्ति का लक्ष्य था। जिनका रोम-रोम असीम वात्सल्य से भरपूर था। समता जिनके जीवन का शृंगार था। सहिष्णुता जिनके जीवन का विशिष्ट गुण था। सरलता जिनकी नस-नस में रक्त की भाँति समायी हुई थी। उन्हें भला मौत क्या भयभीत करती ? उन्होंने अपने समाधिमरण की पूर्व से ही पूरी तैयारी कर ली थी। वे पूर्ण स्वस्थता, सहजता और प्रसन्नतापूर्वक उस मृत्यु को महोत्सव रूप देने में संलग्न थीं।

हमारे दिल में गहरी पीड़ा है कि हमारे सिर का साया चला गया, किंतु एक चिंतन हमें संबल प्रदान करता है कि साधक की उत्कृष्ट साधना का परिणाम यही है कि वह वीरतापूर्ण मृत्यु का वरण करें और वही सब उस दादीमाँ के साथ घटित हुआ।

जैसा आपका जीवन पवित्र और उच्चकोटि का था। वैसी ही मृत्यु भी उच्चकोटि की थी। कठोर संयम साधना के पुनीत पथ पर वीरतापूर्वक चलकर अपना अन्तिम लक्ष्य समाधिमरण का वरण किया।

यह जीवन का वह आखिरी क्षण है, जिसके सामने संसार की बड़ी-से-बड़ी शक्तियाँ अपनी हार मान लेती हैं। जिन्होंने अपनी साधना से जीवन-मृत्यु के स्वरूप का चिंतन करते हुए मृत्यु को महोत्सव माना। उनका जीवन धन्य है। उर्दू शायर ने कहा है –

"जिन्दगी ऐसी बना, जिन्दा रहे दिलशाद तूं।
जब न हो दुनियाँ में तो, दुनियाँ को याद आये तूं॥"

ऐसी वीरांगनाओं का मरण ही महोत्सव बनता है, उन्हीं का इतिहास रचा जाता है और वे अमरता के संदेश को अमिट बना लेते हैं।

आपने मृत्यु को सहर्ष स्वीकार करके सर्वश्रेष्ठ कौशल का परिचय देकर मृत्यु को भव्य महोत्सव में रूपान्तरित कर दिया।

पुण्य प्रखरता का नमूना

अन्तिम क्षणों में आपके मुख पर शांति विराज रही थी। कोई हायतोबा नहीं। वेदना का लेशमात्र चिह्न भी दिखाई नहीं दे रहा था। ऐसा लगता था कि एक वीरांगना जीवन संग्राम में विजयश्री का वरण कर शांति और संतोष से अंतिम विदा ले रही है। उनका संयमी जीवन तो आदर्श था ही, मृत्यु भी कम आदर्श न थी। ऐसा समाधिमरण महान् विशिष्ट आत्माओं को ही उपलब्ध होता है। समाधिभावों के अंतिम दिनों में उनकी निगाहें प.पू. गुरुवर्याश्री की ही बाट जोह रही थी और आपकी एकमात्र यही –

अभीप्सा, शुभ संकल्प एवं गहरी पिपासा थी –

"ऐसी दशा हो भगवन् ! जब प्राण तन से निकले......

अनशन को सिद्ध वट हो, प्रभु गोड़ी देव घट हो,

गुरुराज भी निकट हो..... जब प्राण तन से निकले....." ।

हे भगवन् ! मृत्यु के समय मेरा मन तेरे ही चरणकमल में लीन बना रहे और गुरु का सामीप्य रहे.... ऐसी मनःस्थिति का निर्माण हो। मृत्यु के समय यदि गुरुका सान्निध्य मिल गया तो ऐसी मनःस्थिति रहना मुश्किल नहीं है। जिनके प्रति हृदय में अंतरंग-भक्ति एवं अटूट श्रद्धा हो, समर्पण हो.... वैसे गुरु का नैकट्य, मृत्यु शैया में भी जागृति भर देता है।

जीवन में यदि सद्गुरु का संयोग मिला हो, सद्गुरु से मोक्षमार्ग का ज्ञान लिया हो, मोक्ष-मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त किया हो तथा सद्गुरु के गुणों के प्रति अनुराग किया हो, तभी मृत्यु के समय सद्गुरुका योग मिल सकता है और उनसे अंतिम समाधि प्राप्त हो सकती है।

आखिरी पल, आखिरी श्वास ऐसे क्षणों में प.पू. गुरुवर्याश्री सन्निकट बैठी थीं, उन्हीं के द्वारा जीवन, जन्म और मृत्यु का सार अनमोल समाधिमरण को स्वीकार करना पुण्य प्रखरता का इससे बढ़कर दूसरा नमूना और क्या हो सकता है ? जिसका पुण्य सितारा तेज हो, उन्हीं का मुकद्दर स्वर्णिम अवसर बनकर ऐसा अद्भुत करिश्मा दिखाता है कि जनाजा उठे और हजारों आँखें बरबस रो पड़े। किसी शायर ने कहा है –

"मौत वही जिसका जमाना करे अफसोस,

वैसे तो जीते हैं सब मरने के लिए,

नौ खडी शिविका का चित्र

ओपोनी धर्मशाला से स्वर्गारोहण
हेतु विहार करती पूज्या दादीमाँ
के साथ विशाल जनसमूह

अंतिम यात्रा के समय का
एक भाव विह्वल दृश्य

नौ खंडी शिविका में
विराजमान पूज्याश्री

धाणसा में अंतिम यात्रा
के समय उमड़ा
जन सैलाब

पंचतत्त्व में विलीन हुई
पार्थिव देह

क्या पूछते हो उनकी जिन्दगी कैसी गुजरी,
सोचो इस बात पर कि कितनी अच्छी गुजरी,
वे मरे तो उनको इसतरह उठाया गया,
एक शाहंशाह की मानो सवारी गुजरी ॥"
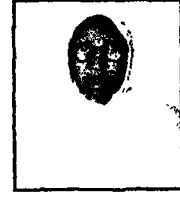
प्रकाश प्रकाश पुंज में विलीन

प्रथम तीर्थाधिपति श्री आदिनाथ प्रभु के केवलज्ञान कल्याणक का शुभ दिवस था। रात्रि आठ बजे हृदय में '**एक अरिहंत ! एक अरिहंत !**' का ध्यान करती हुई और '**वेरं मज्झ न केणइ**' की मंगलमय भावना में रमण करती हुई हमें बीच मझधार में रोती-बिलखती छोड़कर समाधिपूर्वक इस पार्थिव देह का परित्याग करके वह पुनीत तप:पूत आत्मा स्वर्गलोक को पवित्र बनाने प्रयाण कर गई।

आपके स्वर्गगमन से संघ-समाज में सर्वत्र शोक छा गया। सभी को आघात पहुँचा, पर हमें तो (आपकी प्रिय पौत्रियों को) बहुत ही गहरा आघात लगा, चूँकि हम संयमी जीवन के पहले क्षण से आज तक छाया की तरह आपके साथ ही रहीं। उस मातृत्व की छाया में हम अपने आपको सुरक्षित तथा निश्चिंत अनुभव करती थीं। एक माँ का अपनी पुत्री के प्रति जो स्नेह-वात्सल्य होता है, उससे भी कहीं अधिक विशुद्ध स्नेह-वात्सल्य गुरुमैया का अपनी शिष्याओं (पौत्रियों) के प्रति था। एतदर्थ उनके विरह का गहरा सदमा लगना स्वाभाविक ही था।

आँखों से आँसू बह रहे थे, हृदय टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर रहा था। बेचैन थीं हम..... बेताब थीं हम और अब तो अधीरता भी दम तोड़ रही थी। हम पूज्या दादीमाँ की छाती से लिपट गईं। हमारे रूँधे गले से आवाज निकल रही थी-महाराजजी ! एक अरिहंत !!! क्रूरकाल की महिमा अगम्य है। भविष्य के गर्भ में क्या निहित है ? केवलज्ञानी के बिना उसे कोई नहीं जान सकता है। इस क्रूरकाल के समक्ष बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी-तपस्वी साधक ही नहीं, अपितु अक्षय पौरुष के धनी तीर्थंकर परमात्मा सब हार गये।

विक्रम संवत् २०५६, ई. सन् 3-3-2000 फाल्गुन वदि द्वितीय बारस को दोपहर एक बजे बाद महाप्रयाण की अंतिम यात्रा निकली। हजारों श्रद्धालुजन सम्मिलित हुए। आपके दाह संस्कार तक सुदूर क्षेत्रों से भारी जनसंख्या में श्रद्धालु भक्त धाणसा पहुँच गये थे, जिनमें आपके संसारपक्षीय दोनों सुपुत्र, दोनों लघुभ्राता, भगिनीद्वय, पौत्रवधू, पुत्रवधू, भतीजे, भाभियाँ, पौत्र, पौत्रियाँ, प्रपौत्र-प्रपौत्री, भतीजियाँ — पीहर व श्वसुराल पक्ष के अनेक आत्मीयजन भी सम्मिलित थे।

अंतिम यात्रा श्री गोड़ीजी पार्श्वनाथ भगवान् के मंदिर के निकट स्थल पर पहुँची। हजारों

जनमेदिनी के समक्ष चंदन की लकड़ियों की चिता पर आपका पार्थिव शरीर रखा गया। आपके संसारपक्षीय ज्येष्ठ सुपुत्र ने मुखाग्नि दी। देखते-देखते आग की प्रचंड लपटों ने आपके जीवन की रक्तिम आभा को चारों ओर फैला दी। **ज्योति ज्योति में विलीन हो गई। रह गईं मात्र स्मृतियाँ। बस, उन्हीं स्मृतियों का आश्रय रह गया अब।**

एक दिव्यात्मा, जिसने अपनी परम तपस्या, संयम-निष्ठा, निर्मल प्रभु-भक्ति, **मैत्री और करुणा से अपने जीवन को पावन बनाया, जिसने संस्कृति का दूध पिलाकर जन-जन को परिपुष्ट किया। उसकी देह विलीन हो गई, परन्तु वह अजर-अमर आत्मा जन-जन में अध्यात्म की ज्योति सदा जगाती रहेगी-'यावत् चन्द्र दिवाकरौ।'**

धाणसा धरती के कण कण में उस दिव्यात्मा की करुणा की गंगा धारा नित्य प्रवाहित है। यही नहीं, जहाँ-जहाँ वात्सल्यमयी माँ ने कुंकुमी पद-पद्म धरे वह धरती निहाल हो गई।

'महाप्रभा' की प्रभा सर्वदा सबको अंधकार से प्रकाश में ले जाएगी –

तमसो मा ज्योति र्गमय।

पू. दादीजी महाराज साहब की स्मृतियों के साथ उनके द्वारा प्रदत्त हितशिक्षाएँ, उनके द्वारा दिया गया ज्ञान, उनके द्वारा दिये गये संस्कार ही हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। वे ही सब हमारा सम्बल है, संयम-यात्रा का पाथेय है। उनसे हमारी यही विनती है कि वे जहाँ भी हों, वहीं से हमें आशीर्वाद और शक्ति प्रदान करती रहें ताकि हम उनके बताये मार्ग का अनुसरण करती रहें।

भयभीत साधक स्वीकृत कार्यभार का भलीभाँति निर्वाह नहीं कर सकता।

•

यह ब्रह्मचर्य जगत् के सभी पवित्र अनुष्ठानों को सारयुक्त बनानेवाला है।

•

यह ब्रह्मचर्य जगत् के सभी पवित्र अनुष्ठानों को सारयुक्त बनानेवाला है।

•

: विनय-तप :

विणाओ वि तवो

विनय अपने आपमें एक तप है।

व्यक्तित्व के प्रतिबिम्ब

परम विदुषी साध्वी द्वय-डॉ. प्रियसुदर्शनाश्रीजी म.सा.ने श्रद्धेया गुरुवर्या साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के जीवन का बहुत निकटता में उत्तुंग मेरु पर्वत की उच्चता, विशालता व नैसर्गिकता का अध्ययन किया है तथा सरसता व रोचकता के साथ शब्दों के माध्यम से प्रणयन किया है जो अत्यन्त प्रभावशाली, व मार्मिक बन गया है। निःसंदेह रूप से सुधी पाठकों को सहजरूप से आकर्षित करेगा। कई भक्त हृदयों के संस्मरण भी हृदयस्पर्शी व प्रत्येक हृदय की धड़कन से जुड़ने लगे हैं।

(प्रस्तुत खण्ड के संस्मरण मूलतः दो भागों में विभक्त हैं। अनुक्रमांक 1 से 37 तक के संस्मरणों को आलेखित किया है साध्वीद्वय डॉ. प्रिय सुदर्शनाजी म.ने। तत्पश्चात् विभिन्न श्रावक श्राविकाओं के 25 संस्मरणों को साध्वीद्वय के द्वारा सम्पादित किया गया है।)

प.पूज्या दादीजी म.सा. : विभिन्न मुद्राओं में

स्वाध्यायमग्ना
पू. दादीजी म.सा.

कायोत्सर्ग में लीन
पू. दादीजी म.सा.

माला-जाप में लयलीन
पू. दादीजी म.सा.

श्रीपाल रास वाँचन में तल्लीन
पू. दादीजी म.सा.

1. वह कौन था ?

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में नित्यप्रति अनेक घटनाएँ घटती हैं, किंतु कभी-कभी ऐसी अद्भुत एवं आश्चर्यजनक घटनाएँ घट जाती हैं, जो सदा-सदा के लिए स्मृति-पटल पर स्थायी रूप से अंकित रहती हैं।

बात बहुत पुरानी है। वर्षों बीत जाने से गाँव का नाम स्मृति पटल पर नहीं आ रहा है, पर घटना ज्यों-की-त्यों याद है।

सन् 1968 की घटना है। राधनपुर (गुजरात) में आपका वर्षावास था। चातुर्मास के पश्चात् शंखेश्वरतीर्थ की ओर आपका विहार हुआ। मार्गवर्ती छोटे-छोटे गाँवों में विचरण करती हुई आप आगे बढ़ रही थीं। हमने आप से निवेदन किया-अगर आज शाम को विहार कर लें तो परसों सुबह तक शंखेश्वर दादा के दरबार में पहुँच सकती हैं। आपने कहा-"ठीक है। अभी किसी से पूछ लें। अगला गाँव कौन-सा है और यहाँ से कितने किलोमीटर है ?" एक सज्जन ने बतलाया-यहाँ से सात-आठ किलोमीटर की दूरी पर एक छोटा-सा गाँव आता है। यदि आप कच्चे रास्ते से जाएँगी तो पांच-छः किलोमीटर ही पड़ेगा। जल्दी पहुँचने के इरादे से कच्चे रास्ते से जाना तय किया। शाम का वक्त था। इसलिए चार बजे ही विहार कर दिया, क्योंकि साथ में न तो कोई आदमी था और न किसीतरह की कोई व्यवस्था। चलते-चलते रास्ता भूल गयीं। चारों ओर जंगल ही जंगल। अंधेरा छाने लगा। रास्ता कच्चा था। उबड़-खाबड़ और कंकरीली जमीन थी, कांटे भी जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े थे। और तो और! रात भी घनी अंधेरी थी। चलते-चलते काफी समय हो गया। थककर चूर हो गयीं। लेकिन कहीं कोई गाँव तो क्या गाँव का चिह्न भी दिखाई नहीं दे रहा था। अब क्या करें, किससे पूछें ? कोई भी नजर नहीं आ रहा था। झाड़ियों में उलझ गईं। अब तो कदम-कदम पर काँटों ने भी जी भरकर स्वागत करना शुरू किया। ऐसी संकट की स्थिति में भी आपने धैर्य एवं साहस के साथ कहा-"चली चलो चुपचाप नवकारमंत्र व शंखेश्वर दादा का नामस्मरण करते हुए। शंखेश्वर दादा, नवकारमंत्र व दादागुरुदेव की कृपा से कोई-न-कोई गाँव आयेगा ही।" उस वक्त हम दोनों की उम्र करीबन अट्ठारह व पन्द्रह साल की थी। भय लगना स्वाभाविक भी था। कुछ रास्ता पार करने पर पुनः कहा-महाराजजी! अगर गाँव नहीं आयेगा तो क्या चलती रहेंगी रातभर ? कहीं रूकने जैसा तो कोई स्थान ही नहीं दिखाई दे रहा है। चारों ओर निर्जन स्थान! अगल-बगल में केवल झाड़ियाँ! हम दोनों हैरान-परेशान हो गईं। अब क्या होगा ? कहाँ जाएँ ? किधर जाएँ ? यही प्रश्न दिल-दिमाग में लगातार घूम रहा था। कहाँ ठहरेंगी ऐसी झाड़ियों व जंगल में? आपने बिना किसी घबराहट के सहज शान्त भाव में कहा-"**तुम शांति रखो। यहाँ घबराने से काम नहीं चलेगा। शंखेश्वर प्रभु का एकाग्र मन से जाप करो और अभी देखना थोड़ी-ही देर में अपने आप रास्ता मिल जाएगा। निश्चित रूप से श्री शंखेश्वर प्रभु किसी-न-किसी को भेजेंगे ही। वे**

अपनी परीक्षा ले रहे हैं।" कुछ देर में एकाएक चमत्कार हुआ। सामने से किसी ने तेज आवाज में कहा-माताजी ! ओ माताजी !! आप इधर किधर जा रही हैं ? इधर तो कोई रास्ता भी नहीं है। ऐसा लगता है कि आप रास्ता भूल गई हैं। आपको कहाँ जाना है ?" आपने साहस बटोरते हुए मीठे-मधुर शब्दों में कहा-"भाई! कितनी दूर है अगला गाँव ?" वह सज्जन घोड़े पर सवार था। उसने सफेद वस्त्र धारण किये हुए थे। बोला-"माताजी ! आप जहाँ जाना चाहती थीं, वह गाँव तो दाहिने हाथ की तरफ छूट गया है। आप दूसरे गाँव के निकट पहुँच गयी हैं।" घुड़सवार के सान्त्वना भरे शब्द सुनकर आप बोलीं-"दूसरा गाँव ही सही, पर यहाँ मैं किसी को जानती नहीं हूँ और रात्रि का शुभारंभ हो चुका है। कोई ठहरने का स्थान मिलेगा वहाँ ?" उसने कहा-"मातेश्वरी ! आप तनिक भी चिंता मत कीजिए। मेरे पीछे-पीछे आप सभी चले आइए।" उस घुड़सवार के मिलने से और उसके कथन से आपने संतोष की साँस ली। उसने कहा-"माताजी ! सामने जो गाँव दिखाई दे रहा है। उसके समीप ही एक लक्कड़पीटा है। वहाँ एक परिवार रहता है, जो साधु-संतों के प्रति बहुत श्रद्धाभाव रखता है। वहीं आप रूक जाइए। मैं उनसे कह देता हूँ। चलिए।" वह घुड़सवार आगे-आगे और आप उसके पीछे चल रही थीं। कुछ दूर चलने पर गाँव के निकट पहुँचीं। उसने लक्कड़पीटा के मालिक को आवाज लगायी-"अरे ! बाबूलालजी ! दरवाजा खोलो। मातेश्वरी पधारी हैं। रास्ता भूल गई थीं। समय काफी हो चुका है। रात्रि विश्राम यहीं करेंगी।" दरवाजा बंद था। ताला लगा हुआ था। लकड़े की जाली थी। अन्दर से सब कुछ दिखाई दे रहा था। रात के साढ़े दस बज चुके थे, पर अभी सभी जाग रहे थे। मकानमालिक ने कहा,"आ रहा हूँ।" उधर घुड़सवार ने कहा,"माताजी ! मैं अभी दो मिनट में आ रहा हूँ।" आपने उसे-बार-बार धन्यवाद दिया। आप देखकर स्तंभित और चमत्कृत सी रह गयीं कि दो-चार कदम चलने के पश्चात् ही वह घुड़सवार देखते-देखते ही न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। मकानमालिक आया। दरवाजा खोला। बोला-"पधारिए माताजी!" भीतर जाने के बाद उसने पूछा,"माताजी ! आपको यहाँ तक कौन छोड़ने आया था और किसने बताया यह स्थान ?" आप बोलीं "हम तो उन्हें जानती नहीं है, पर एक घुड़सवार आपके घर तक हमें पहुँचाने आया था। उसने ही आपको आवाज लगायी और 'अभी दो मिनट में आ रहा हूँ' यह कहकर पता नहीं, एक क्षण में कहाँ गायब हो गया।" आप, मकानमालिक व हम सभी काफी देर तक प्रतीक्षा ही करते रह गये। वह नहीं आया। आखिर वह कौन था ?

तभी आपने बताया कि शंखेश्वर दादा का ही यह प्रभाव और चमत्कार है कि उन्होंने ही घुड़सवार के रूप में आज किसी अदृश्य शक्ति के अधिष्ठायकदेव को हमारी सहायता के लिए भेजा है।

यह था पूज्या दादीमाँ के आत्मविश्वास का चामत्कारिक प्रभाव।

2. मर्यादा-पालन

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

यह प्रसंग उन दिनों का है जब आप सन् 1986 में दुन्दाड़ा विराज रही थीं। चातुर्मास के पश्चात् एक दिन आप वस्त्र-प्रतिलेखना कर रही थीं। इतने में कंचनबहन कुछ वस्त्र लेकर वहोराने आयी। वन्दन करके आपसे निवेदन किया - महाराज साहब ! कुछ लाभ दीजिए। "नहीं बहन ! मुझे कुछ भी जरूरत नहीं है।" थोड़ा-सा लाभ तो देना ही पड़ेगा आपको। मुझे निराश मत कीजिए। केवल मुहपत्ति जितना कपड़ा ले लेंगी, तो मुझे सन्तोष हो जाएगा। कंचनबहन रोने जैसी हो गई, तो आपश्री दयार्द्र हो गईं। बोलीं "अगर तुम्हारी इतनी प्रबल भावना है तो एक मुँहपत्ति जितना वस्त्र वहोरा दो।"

जब वह वस्त्र फाड़ने लगी। आपश्री की दृष्टि कपड़े पर पड़ी तो कहा-"बहन ! रूको ! यह कौन-सा कपड़ा है ?"

बढ़िया से बढ़िया पोलिस्टर है।

"तब तो रहने दो। मुझे जरूरत नहीं है।" क्या हुआ महाराजश्री ? आपने कहा- "पोलिस्टर काम नहीं आता है बहन।" सभी तो लेते हैं ? "जिसकी जो जाने ! अपन दूसरों की तरफ क्यों देखें ?" अच्छा तो आप फुलवायल की एक चादर ही ले लीजिए। "वह भी नहीं।" वाह ! महाराज साहब वाह ! यह भी नहीं, वह भी नहीं। तब फिर आप क्या लेंगी ? मैं तो इतनी भक्ति-भावना से लेकर आयी हूँ और आप फरमा रही हैं मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।

"बहन ! तुम बड़ी भक्तिभाव से लेकर आयी हो, यह बिल्कुल सत्य है, पर मुझे यह नहीं कल्पता है। तुम स्वयं समझदार हो। सोचो। हम साध्वी हैं। हमारी अपनी मर्यादाएँ हैं। अपनी साध्वाचार की मर्यादा के विपरीत क्यों कोई चीज ग्रहण करें ? जहाँतक निभ जाये वहीं तक अच्छा है।"

"साध्वीजीवन तो बड़ा सादगीपूर्ण होता है। हमारे ज्ञानियों ने तो हमें जीर्ण-शीर्ण वस्त्र ग्रहण करने का विधान बताया है, पर आज के इस भौतिक युग में यह सम्भव नहीं है।" वह बहन समझ गई। आपकी बातों से वह पूर्णत: संतुष्ट व प्रभावित होकर घर लौटी।

आज भी वह बहन आपश्री की बातों को याद करती रहती है।

3. स्वाद के प्रति अनासक्ति

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

यह घटना सन् 1990 की है, जब आप चातुर्मासार्थ जोधपुर की ओर कदम बढ़ा रही थीं। जोधपुर सन्निकट आने पर एक ग्राम में विश्राम किया। रोहट के बाद से जोधपुर तक बस्ती नहीं आने से मध्याह्न करीब बारह बजे जोधपुर से एक सज्जन गौचरी लेकर आए। गौचरी वहोर ली।

सुबह से कुछ भी नहीं लिया था। गौचरी प्रारम्भ की। प्रथम ग्रास(कवल) ने ही हम दोनों की मुखाकृति को बदल दिया। यह सब्जी कैसे वापरना ? यह समस्या थी दोनों के सामने।

जीवन में शायद पहली बार ही 'केर' की सब्जी चखी थी। जीभ पर रखते ही ऐसा लगा, मानो बर्फ रखा हो। नाक-भौं सिकुड़ने लगे। आप की नजरों से हमारा बिगड़ा हुआ चेहरा (टेढ़ी मेढ़ी मुखाकृति) छिप नहीं सका। हमारे चेहरे को देखकर मुस्कराती हुई बोलीं-"क्या हुआ ? प्रियदर्शना ! सुदर्शना ! नहीं भाती हैं सब्जी ? गले नहीं उतर रही है ? पर यह तो श्रमणीजीवन है। **"कभी घी घणा तो कभी मुट्ठी चणा"** साधु-संत खाने के लिए नहीं जीते हैं। जो कुछ भी रूखा-सूखा, सरस-नीरस और पर्याप्त-अपर्याप्त मिल जाता है, उसे जीभ की लोलुपतारहित भाव से ग्रहण करते हैं। पेट ही तो भरना है। समय पर जो मिला, जैसा मिला, उसे उदरस्थ करने का ही अपना मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। रसनेन्द्रिय का स्वाद लेना, यह अपने जीवन में शोभा नहीं देता। अच्छा हो या बुरा, ठंडा हो या गरम, स्वादिष्ट हो या बेस्वाद। गले के नीचे उतार जाना है। हमने चुपचाप गौचरी वापर ली। यह घटना आपकी आहार के प्रति अनासक्ति तथा स्वाद विजय का परिचायक है।

4. भूतबंगला

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

सन् 1986 का आश्चर्यजनक एक प्रसंग स्मृति-पथ पर आ रहा है। विहार करती हुई आप एक गाँव में पहुँचीं। नाम था शंभूखेड़ा। वहाँ धर्मशाला वगैरह ठहरने का कोई स्थान नहीं था। किसी ने भी अपना मकान या स्थान देना नहीं चाहा। काफी पूछताछ करने के पश्चात् एक व्यक्ति ने राजपूत के बंगले की ओर संकेत करते हुए कहा-वह खाली है। उसमें कोई नहीं रहता है। उसने यह भी बताया कि महाराज ! यह तो कई वर्षों से खाली पड़ा है। **लोगों के कथनानुसार इसमें भूतों का वास है। इसी भय से इस में उस परिवार का न तो कोई व्यक्ति रहता है और न ही कोई इसे किराये पर लेता है।** आपने पूछा-"मकान मालिक का नाम क्या है ? और वे कहाँ रहते हैं ? उन्हें बुलवा दीजिए।"

अमरसिंहजी आए। पूछा-"भाई ! यह मकान आपका है ?" हाँ महाराज ! "आप इसे खोल सकते हैं ? केवल रात्रि-विश्राम करना है।" वे चौंक उठे और आश्चर्यमिश्रित स्वर में बोले,"**महाराज ! और तो कोई बात नहीं, पर यह भूतबंगला है। इसमें भूत रहते हैं।**"

आपने कहा "अमरसिंहजी ! भूत भी तो आखिर देव होते हैं। रहते हैं तो रहने दो। वे भी रहेंगे। हम भी रहेंगी। उनसे कोई भय नहीं है। आप तो इजाजत दीजिए रात्रि-विश्राम करने की।" सहर्ष काम में लीजिए आप, पर महाराज ! कहीं ऐसा न हो, मेरी बदनामी हो जाय ! आपने कहा-"निश्चिंत रहिए।" उन्होंने तत्काल बंगला खोल दिया, सफाई करवा दी। आप

ठहर गईं। **रात को आपने कहा-"प्रिय-सुदर्शना ! सत्तावीस नवकारमंत्र, सात उवसग्गहरं एवं दादा गुरुदेव का नाम सुमिरण करके सो जाओ। घबराने की कोई बात नहीं।"** देखा, आप काफी रात तक जाप करती रहीं। प्रात:काल हुआ। आपको सही-सलामत देखकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा-महाराज ! रात को भय लगा ? कुछ परेशानी हुई ? "नहीं तो ! भगवत्-भजन में आराम से रात गुजारी।"
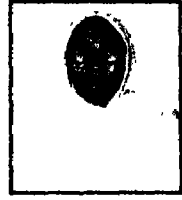
सभी को विश्वास हो गया कि इस महान् पुण्यात्मा के निवास करने से भूतों ने इनका कुछ भी अनिष्ट नहीं किया, बल्कि वहाँ से तिरोहित हो गए। सभी ग्रामवासी आपके चरणों में श्रद्धावनत हो गए। आग्रह करके आपको एकदिन और रोका।

5. स्वावलम्बन का दिव्य रूप

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

सन् 1987 में आप भरतपुर पधार रही थीं। तब की बात है।

आप मार्गस्थित किसी के मकान में ठहरी थीं। विहार लम्बा हो जाने से आप काफी थक चुकी थीं। प्रतिक्रमण के तुरन्त बाद संथारा कर लिया। गहरी नींद आ गईं हमें। रात में आप उठीं। मात्रा (लघुनीति) परठकर बाहर से पधार रही थीं। अकस्मात् जग गईं हम। देख लिया उन्हें पधारते हुए। अब करतीं भी क्या ? सो गईं पुन:।

सुबह पूछा-महाराजजी ! रात को हम दोनों में से किसी एक को उठा देना था न ? आप क्यों पधारीं बाहर मात्रा परठने ? आपने कहा-"तुम दोनों गहरी नींद में थीं। नींद में अन्तराय क्यों डालूँ ? नींद में से जगाकर दोष में क्यों पड़ूँ ? **क्या मेरे पाँवों में मेहंदी लगी है, जो नहीं जा सकूँ ?**" आपका जवाब सुनकर हम तो आपके प्रति मन-ही-मन श्रद्धावनत हो गईं।

ऐसा तो एकबार नहीं, अनेकबार हुआ है। मतलब यह कि आप किसी को भी नींद में से उठाने के पक्ष में नहीं थीं।

स्वावलम्बन के अतिदिव्य स्वरूप को शत-शत नमन !

6. पर-दु:खकातरता में छलावा

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आप दया की सागर थीं। जब वे किसी को दु:खी देख लेतीं, तो एकदम सिहर उठती थीं। उनकी आँखें आँसुओं से भीग जाती थीं। करुणा के मारे आपका हृदय व्याकुल हो उठता था। जबतक उस दु:खी के दु:ख को दूर नहीं कर देती थीं। तब तक उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी। वे बड़ी कोमल स्वभाव की थीं। इस प्रसंग में सन् 1998 की घटना स्मृति पटल पर आ

रही है। आप भीनमाल जिला-जालोर (राज.) के श्री महावीरजी मंदिर के उपाश्रय में विराज रही थीं। एकबार एक गरीब साधर्मी जैनबन्धु अपने दो छोटे बच्चों के साथ महावीरजी धर्मशाला के एक कमरे में ठहरें। दोपहर के समय आपश्री पुस्तक-वाचन में निमग्न थीं। उसने सन्निकट आकर तेज आवाज में कहा-"**साहेबजी! मत्थएण वंदामि।**" "**मत्थएण वंदामि**" शब्द सुनते ही आपने आँखें उठाकर ऊपर देखा। बोलीं-'**देवगुरुपसाय**'। बैठ गया वह उनके श्रीचरणों में।

उसके साथ फूल सा मासूम बच्चा भी था। करीब सात-आठ वर्ष का। आपने पूछा- "कहाँ से आए हो भाई!"

बोला-साहेबजी! मैं जोधपुर के पास एक गाँव का रहनेवाला हूँ।

"कैसे आए हो ?"

उसने कहा - मैं अपनी आपबीती क्या सुनाऊँ? मेरी पत्नी मर चुकी है, और वह दो बच्चें छोड़ गयी है। एक तो यह बैठा आपके सामने और एक इससे छोटा, जो अभी सो रहा है। कहते-कहते उसकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। उसे रोते देखकर आपकी आँखें भी सजल हो गयीं। बोलीं-"भाई! शान्ति रखो, धैर्य धारण करो। रोओ मत, पूरी बात कहो। क्या बात है?"

उसने अपनी पूरी राम-कथा सुना दी। निःश्वास छोड़ते हुए कहा-साहेबजी! बड़ी आशा लेकर आया हूँ।

"कहो न फिर!"

क्या कहूँ साहेब! जीभ नहीं चलती है कहने के लिए।

"अरे, भाई! घबरा क्यों रहे हो? क्यों संकोच कर रहे हो? जो भी समस्या हो, बोलो?"

साहेबजी! यहाँ किसी से कहकर आप मेरा कुछ सहयोग करवाने की कृपा करावें। ये छोटे-छोटे बच्चें हैं।

आपने कहा-"अच्छा! आज मैं किसी से बात करूँगी।"

वहाँ रहते उसे दो-तीन दिन और बीत गए।

उसका बड़ा बेटा आपके पास आकर बैठता था और बड़ी मीठी-मीठी लुभावनी बातें करता था। वह ऐसी बातें करता था जो एक बड़ा समझदार आदमी भी नहीं करता है। उसकी करुणासभर बातें सुनकर आपकी आँखों से आँसू टपकने लगे। आपने वहाँ के भाई-बहनों को इशारा किया। आपका संकेत पाते ही वहाँ रूपयों व नए-पुराने वस्त्रों के साथ ही अन्य कई वस्तुओं का ढेर लग गया। वह सारा माल बटोर कर प्रसन्न होता हुआ वहाँ से रवाना हो गया। **यह है आपकी दयालुता व करुणामय व्यक्तित्व का ज्वलंत उदाहरण**। कुछ दिन पश्चात् ज्ञात हुआ कि वास्तविकता तो कुछ और ही थी। वह मदिरापान भी करता था। पक्का धोखेबाज था, जो ऐसा नाटक रच रहा था।

7. उसका जीवन बदल गया

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

ईस्वी सन् 1985 का आपका चातुर्मास अजमेर जिले में स्थित किशनगढ़ शहर में था। चातुर्मास पश्चात् आप जैसलमेर यात्रार्थ पधारीं। तब की यह घटना है। जैसलमेर में कुछ दिन स्थिरवास किया। कुछ दिन के स्थिरवास से वहाँ का जनसमूह परिचित हो गया था। रात को जैनेतर बीस-पच्चीस भाई-बहन सत्संग के लिए आया करते थे। आप अपनी सरल भाषा में सभी को बड़ी प्रेरणादायक बातें एवं कहानियाँ सुनाया करती थीं। आपके सुवचनों से प्रभावित हो, उन लोगों में से किसी ने बीड़ी-सिगरेट, तो किसी ने सुपारी-जर्दा नहीं खाने का, किसी ने प्याज-लहसुन का, तो किसी ने भांग-गांजा व शराब नहीं पीने का संकल्प कर लिया।

एकदिन किसी एक बहन ने कहा-महाराज ! मैं आपसे एक बात पूछूँ ? "हाँ, पूछो ! क्या बात है ?"

मेरे पतिदेव जुआ खूब खेलते हैं ? आपके पास ऐसी कोई दवा है, जिससे वे जुआ खेलना छोड़ दें ? सारा घर बरबाद कर दिया है। अगर वे जुआ खेलना छोड़ दें तो, मैं जीवनभर आपके गुण गाऊँगी। आपके उपकार को नहीं भूलूँगी महाराज ! बोलते-बोलते उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। आपने उसे खूब धैर्य बंधाया। आश्वासन देते हुए कहा-"बहन ! रोओ मत। एकबार तुम अपने पतिदेव को यहाँ लाना। मैं समझाने की कोशिश करूँगी।" वह बहन अपने घर चली गई। शाम को जब उसका पति घर आया तो उसने अपने पतिदेव से कहा - अजी ! सुनिए तो ! धर्मशाला में एक बहुत अच्छी मातेश्वरी आई हैं। कम-से-कम दर्शन करके उनका आशीर्वाद तो ले लो। आपका कल्याण होगा।

दूसरे दिन वह बहन अपने पतिदेव को लेकर आई। **आपका उस जुआरी से वार्तालाप का प्रसंग कैसे उस जुआरी के जीवन में एक नया मोड़ लाता है और उसके जीवन की कैसे जीवन-दिशा बदल जाती है। इसका उदाहरण उस जुआरी और आपके बीच हुए निम्नांकित वार्तालाप से अच्छी तरह से समझा जा सकता है।**

वह जुआरी आया तब आप माला में लीन थीं। उस व्यक्ति ने आपके चरणों के समीप ही पृथ्वीपर लेटकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। बोला-महाराज ! मुझे आशीर्वाद प्रदान कीजिए। आपने अपने हाथ की माला रख दी और धर्मलाभ दिया।

आपने पूछा-"भाई तुम कौन हो ? कहाँ से आए हो ?"

महाराज ! मैं यहीं का रहनेवाला हूँ और इसका पति हूँ।

"क्या करते हो ?"

कहने लगा-"क्या करूँ महाराज ! मैं जिन्दगी से निराश हो चुका हूँ।"

"क्यों भाई ! निराश कैसे हो गये ?"

महाराज ! जो पूँजी पास में थी, वह मैं लाभ की आशा में जुएँ के दाँव पर लगाता रहा । फिर पत्नी की तरफ इशारा करते हुए इसके सारे गहने भी बेच दिए । इसतरह सब कुछ खो दिया । अब स्थिति यह है कि कभी-कभी पेट भरने के लिए अन्न के दाने भी नसीब नहीं होते हैं । आपने आत्मीयतापूर्ण भाव से कहा-"**धन हार गये तो क्या हुआ, अब उस रास्ते को छोड़ दो, अन्य कोई विवेक-विचारपूर्ण मार्ग को अंगीकार करो । भाई ! हार और जीत तो जीवन में लगी ही रहती है । सम्पूर्ण जीवन ही एक व्यापार है । व्यापार में हानि और लाभ, धूप-छाँव की भाँति सुनिश्चित है । सब कुछ खो दिया तो क्या हुआ, पर अब इस अनमोल जीवन को मत खोओ । बिना परिश्रम-पुरुषार्थ किए, कमाई करने की सोचने पर ऐसा हो ही जाया करता है । मेरी बात मानो । मैं आपके हित के लिए कह रही हूँ । 'जब जागे तब सबेरा' अब ही सही, संकल्प कर लो । "मैं श्रम करके ही कमाई करूँगा और वही मेरी सच्ची कमाई होगी" ऐसी ध्रुवधारणा बना लो। इस संकल्प से चलनेवाला जीवन में कभी पराजित नहीं होता ।**"

आपकी हितकर व कल्याणकारी मीठी वाणी उसके हृदय में प्रवेश पा गई । मन बदल गया । उसने कुमार्ग छोड़ दिया । आजीवन द्यूत-कर्म नहीं करने का संकल्प ले लिया ।

आपने कहा-"भाई ! नियम लेना तो बड़ा आसान है, पर उसे निभाना बड़ा मुश्किल है । नियम निभाने के लिए सुदृढ़ मनोबल की आवश्यकता होती है ।"

महाराज ! मैं प्राणपण से उसकी रक्षा करूँगा । आपके सद्बोध और सद्भावपूर्ण वचन सुनकर दयाराम गद गद हो गया तथा आँखों में आँसू लाकर आपके चरणों में झुक गया । प्रणाम करके बोला-महाराज ! आज तो आपने मेरी कायाकल्प कर दी । बस, मुझे अन्तर्आशीर्वाद दीजिए । भगवान् ! अब मुझे ऐसी दुर्बुद्धि कभी न दे कि मैं कुमार्ग की ओर जाऊँ ?

आप उसकी बात सुनकर मुस्करा दी तथा वासक्षेप देकर मंगल पाठ सुनाया ।

बोलीं-"दयारामजी ! मैं एक मंत्र देती हूँ। जब भी समय मिले, गिन लिया करना ।" एक कागज पर नवकारमंत्र लिखकर देती हुई बोलीं-"भाई ! इससे तुम्हें बड़ी शांति और अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा मिलेगी ।"

महाराजश्री ! वह तो मैं गिनूँगा ही ।

सच-सच बताऊँ ! डर तो आज आपके यहाँ आने में लग रहा था । "क्यों ?" आपश्री ने पूछा । इसलिए कि मेरी पत्नी ने मेरे बारे में आपको सब कुछ बता दिया था । सोच रहा था आप मुझ पापी को क्या-क्या कहेंगी । मुझ जुआरी के बारे में क्या-क्या सोचेंगी और मुझे आशीर्वाद भी देंगी या नहीं ।

"भोलेभाई ! ऐसा तुमने कैसे सोच लिया ? **साधु-संतों के जीवन का तो आभूषण ही करुणा और दया है** । हाँ, पता नहीं, आप क्या-क्या सोच रहे होंगे ? महाराज के पास आया दर्शन करने व आशीर्वाद लेने और छुड़वा दिया द्यूतकार्य ।"

दयाराम अपने हाथों से दोनों कान पकड़कर बोला-नहीं, नहीं, महाराज ! आपने तो मेरा

उद्धार कर दिया। मैं तो आपको ही अपने सबसे बड़े गुरु के स्थान पर मानता हूँ। भला मैं आपके विषय में ऐसा सोचूँगा ? राम ! राम !!

आपश्री को उसकी सरल बातें सुनकर हँसी आ गई। समय काफी हो चुका था। अत: वे उठ खड़ी हुईं और बोलीं-"अच्छा भाई ! मेरे ज्ञान-ध्यान और संध्या करने का वक्त हो चुका है। अब तुम भी जाओ और अपने संकल्प का दृढ़ता से पालन करते हुए अच्छा जीवन बिताने का प्रयत्न करो।" ओफ्फ ओह ! मैं भूल ही गया था महाराज कि आपका समय कितना कीमती होता है। कृपा करके क्षमा करो। प्रभो ! मैंने बहुत वक्त बरबाद कर दिया आपका।

"नहीं ऐसी कोई बात नहीं है भाई ! तुम्हें मुझ से बात करके सन्तोष हुआ और तुमने 'जुआ' नहीं खेलने का त्याग करके निर्मल जीवन बनाने का निश्चय किया। इससे भी मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मैं इसे वक्त की बरबादी नहीं मानती। यह समय तो सार्थक ही हुआ है। परन्तु अब मुझे कुछ और भी कार्य करना है इसलिए....।" आपकी बात बिल्कुल सत्य है, मैं चलता हूँ। जबतक आप यहाँ रुकेंगी, रोज ही दर्शन करूँगा। कहते हुए वह पुन: नमस्कार करके चला गया। आपश्री को भी उसके हृदय-परिवर्तन से प्रसन्नता हुई।

जबतक आप वहाँ विराजीं नियमित रूप से वह दर्शनार्थ आता रहा। जब वहाँ से प्रस्थान किया, वह दयाराम एक मुकाम तक आपके साथ-साथ चला और पुन: घर लौटते समय कृतज्ञता व्यक्त करते हुए बोला-प्रथमबार ऐसी महान् विभूति की सहानुभूतिपूर्ण एवं प्रेम से सराबोर वाणी सुनी। आपने मेरे जीवन को आमूलचूल परिवर्तित कर दिया। कृतार्थ हो गया मैं। **धन्य है ऐसी दिव्यविभूति को !**

8. दानव से मानव बन गया

- साध्वीद्वय डॉ. प्रिय-सुदर्शनाश्री

बात चौदह वर्ष पुरानी है। ईस्वी सन् 1988 का प्रसंग स्मरण हो रहा है। चातुर्मास प्रारम्भ होने से पूर्व ही आपने भरतपुर से आगरा की ओर प्रस्थान किया। मार्गस्थित गाँवों-नगरों में विहार करती हुई किरावली पहुँचीं। वहाँ दो-तीन दिन किसी परिस्थितिवश रूकना पड़ा। कुछ योग-संयोग कह लीजिए। ऐसी कोई चर्चा चल पड़ी। उस दरम्यान अनिलजी ने बताया "महाराजश्री! यहाँ भंवरसिंह नामक एक चौधरी (जाट) रहता है। वैसे तो वह बड़ा सज्जन है, पर जितना सज्जन है उतना ही खतरनाक / खूंखार भी है वह। किसी की हत्या करने में, चाकू चलाने में एक मिनट की भी देर नहीं करता है। कभी-कभी खा-पी भी लेता है।"

आपने कहा-"भाई ! इसमें कौन-सी नई बात है। आप लोग तो अभ्यस्त हो गए हैं इन सारी चीजों के लिए। हमारे लिए यह नया क्षेत्र और नया वातावरण है।"

चर्चा चल ही रही थी तभी उधर से वे ही महानुभाव गुजरे। अनिलजी ने उन्हें तेज आवाज
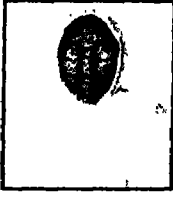
लगाई "भँवरजी ! ओ भँवरजी !! पधारिए ! पधारिए !!! महाराज साहब पधारी हैं आज ।" जैसे ही वे सज्जन आए । आपने बड़ी आत्मीयता से कहा- "भँवरजी ! अभी आप ही की चर्चा हो रही थी यहाँ ।"

अनिलजी तो बेचारे मन-ही-मन घबरा रहे थे । महाराजश्री ने सरल-सीधे भाव से कभी कुछ कह दिया तो मेरी आज मिट्टी पलीत हो जाएगी । पर आपश्री ने पासा पलटते हुए कहा - "भँवरजी ! कभी भगवत्-भजन करते हो अथवा नहीं ?"

"कभी-कभी समय मिलने पर कर लेता हूँ महाराजश्री !"

दूसरा प्रश्न किया- "जीवन में किन्हीं गलत चीजों का व्यसन तो नहीं है ना ?" वैसे तो कोई लत नहीं है, पर कभी-कभार माँस खा लेता हूँ और शराब भी पी लेता हूँ ।"

"खेतीवाड़ी करते हो या बिजनेस !" 'खेतीवाड़ी ।' भँवरजी ने उत्तर दिया ।

"खेतीवाड़ी करते हुए निरीहमूक (साँप-बिच्छू आदि पंचेन्द्रिय) जीवों को मारते तो नहीं हो ?"

मुस्कराते हुए बोले-"महाराजश्री ! आप सर्प-बिच्छू की बात कर रही हैं, मगर मैं तो मनुष्य की जान लेने में भी देर नहीं लगाता ।"

"क्यों ? भँवरजी !" आपश्री ने पूछा ।

"किसी से जरा सी कुछ बात हो जाती है तो आवेश आ जाता है महाराज ! मैं गलत बात को बिलकुल बर्दाश्त नहीं कर सकता ।"

आपने समझाते हुए कहा,"भँवरजी ! यह मनुष्यजीवन क्या इसीलिए मिला है ? जो मनुष्य अन्य किसी भी जीव को कष्ट पहुँचाता है, वह आर्य, भला अथवा सज्जन नहीं हो सकता और आप तो सज्जन कहलाते हैं ।"

अभी ये लोग तो 'सज्जन' कहकर बड़ी तारीफ कर रहे थे आपकी । हमारे मन में तो छोटे-बड़े (एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक) सब जीवों के प्रति दयाभावना होनी चाहिए, फिर **वह मानव हो या पशु ? 'हम किसी को दुःख देंगे तो दुःख ही मिलेगा और सुख देंगे तो सुख मिलेगा ।' यह सूत्र हमेशा याद रखो कि हम किसी जीव को कष्ट देंगे, सतायेंगे या मारेंगे तो वह कदापि अपना बदला लिए बिना नहीं रहेगा ।"**

जो गल काटे और का, अपना रहे कटाय ।
धीरे धीरे देखियों, बदला कहीं न जाय ॥

"आप भले ही बहुत ज्यादा पढ़े लिखे या प्रकाण्ड विद्वान् नहीं, पर सज्जन तो हैं ही । इसलिए इतना तो अवश्य ही सोच सकते हैं कि जब हम किसी भी जीव को जिन्दगी नहीं दे सकते हैं, तो उसकी जिन्दगी छीनने का हमें क्या अधिकार है ?

माँस-भक्षण और मदिरापान करना भी बहुत बुरी बातें हैं । यह काम तो हिंसक जानवरों का है, पर आप तो मनुष्य हैं भाई ! आपके दिल में दया और प्रेम है । साथ ही आपके पास ज्ञान, समझ और विवेक भी है, तो फिर आप में बेजुबान और निर्दोष जीवों पर दया की भावना होनी

चाहिए।

क्रूर और हिंसक प्राणियों की भाँति कठोरता का व्यवहार करते हुए जानवरों की जान ले लेते हैं अथवा उनका माँस खाते हैं तो क्या आप उन हिंसक प्राणियों से भी गये बीते हैं ? उन्हें तड़पते-छटपटाते देखकर मन को पीड़ा नहीं होती ?
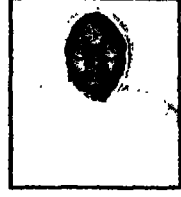
मान लीजिए आपका अपना लाड़ला बेटा किसी असाध्य बीमारी से तड़पता हो या किसी दुर्घटना से घायल होकर छटपटा रहा हो तो आपके दिल में कितनी पीड़ा होती है ? उसके शीघ्र स्वस्थ हो जाने की प्रभु से प्रार्थना करते हैं। बस, उतना ही दुःख का अनुभव वे जीव भी करते हैं। उनका माँस खाना कितना घृणित और निकृष्ट कार्य है। क्या पेट को कब्रस्तान बनाना उचित है ?"

आपकी हृदयस्पर्शी व प्रभावशाली वाणी ने उनके दिल दिमाग को झकझोर दिया और उस दिशा में सोचने के लिए बाध्य कर दिया। उनकी आँखें खुल गयीं। उनका मानस बदलने लगा। उठ खड़े हुए। नतमस्तक हो गये आपश्री के सामने।

आपने कहा-"भँवरजी ! मेरी बातों को आप अन्यथा मत लेना।" नहीं, महाराजश्री ! आपने तो मुझ पर महती कृपा की है। चिन्तन के लिए सुअवसर दिया है। मैं शाम को पुनः आपकी सेवा में हाजिर होऊँगा और बताऊँगा कि मुझे क्या करना है ?

वे घर तो गये, परन्तु मन बड़ा बेचैन था। उनके मन में भयंकर ऊहापोह चल रही थी। चूँकि आपश्री के एक-एक शब्द उनकी आँखों के आगे तैर रहे थे। मन में उथल-पुथल हो रही थी। आपके पावन उद्देश्यपूर्ण अन्तर्मानस से सरल शब्दों में समझाई गई बातों का उनपर सीधा और गहरा प्रभाव पड़ा था। आपकी जादूईवाणी ने उनके मानस को हिला दिया। पूर्वकृत पापकार्यों से उन्हें मन-ही-मन आत्मग्लानि होने लगी। मन पश्चात्ताप से भर गया।

सूर्य ढलते ही भँवरजी आपश्री के श्रीचरणों में आ पहुँचे। आते ही चरणों में प्रणाम किया।

"भँवरजी ! मेरी बातों पर कुछ चिन्तन किया ?" आपश्री ने पूछा। हाँ, महाराजश्री ! सब कुछ सोचकर ही आपकी शरण में आया हूँ। पश्चात्तापपूर्ण शब्दों में निवेदन किया-"मैं तो सचमुच बड़ा पापी हूँ महाराज ! न जाने अगले जन्म में मेरी क्या दुर्दशा होगी ?"

आश्वासन पूर्ण शब्दों में आपने कहा-"कुछ दुर्दशा नहीं होगी, सब अच्छा होगा भैया ! जो **व्यक्ति सच्चे हृदय से अपने पापों के लिए पश्चात्ताप कर लेता है। उसके सारे पाप उसी समय धुल जाते हैं। पश्चात्ताप एक ऐसा निर्झर है, जिसमें स्नान करके कोई भी व्यक्ति शुद्ध व पवित्र हो सकता है। बस, जरूरत है शुद्ध, सरल व पवित्र हृदय से पश्चात्ताप करने की।**

साँचे शाप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिले, साँचे माँहि समाय॥

नेकी और सच्चाई के रास्ते पर चलनेवाले को न शाप लगता है और न ही उसका कभी अनिष्ट होता है। आप भी अगर अब सच्चे हृदय से अपने गलत कार्यों के लिए पश्चात्ताप करेंगे तो पूर्वकृत पाप भी धुल जायेंगे और भविष्य में भी सुखी हो जाएँगे।"

"भाई ! तुमने पाप अवश्य किये हैं और पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

अगर उन पापों के लिए तुम्हें घोर पश्चात्ताप है तो अब भी चेत जाओ तथा मन के प्रबल पछतावे से उन कर्मों को हल्का कर लो। शास्त्रों में मनोबल का बड़ा महत्त्व बताया है।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।"

मन से मनुष्य एक क्षण में सातवी नरक में जा सकता है और उसी मन के प्रभाव से दूसरे ही क्षण में मोक्ष के सन्निकट पहुँच जाता है।" बेचारे भँवरसिंहजी आश्चर्यचकित हो आपकी बातें सुनते रहें। वे इतना तो समझ गये कि यदि मन एकदम पवित्र व निर्मल हो जाए तो एक क्षण में जीव भगवान् के पास जा सकता है और यदि मन पापभावना से परिपूर्ण है तो एकक्षण में नरक में भी पहुँच जाता है।

आपश्री भी उनके मनोभावों को समझ गई थीं।

इसलिए पुनः बोलीं,"भँवरजी ! बस, आप इतना समझ लो कि अब भी आप के जीवन का जो समय शेष है, उसके द्वारा ही अपने मन को इतना स्वच्छ-निर्मल व पवित्र बना लो कि सारे पापकर्म धुल जाए।" **"जब जागे तब सबेरा" अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है भाई !"**

आपकी वाणी का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि उसी क्षण उन्होंने कहा,"महाराजश्री ! आज मैं आपके समक्ष संकल्प करता हूँ कि अब कभी भी ऐसा कोई पाप-कार्य नहीं करूँगा।" आपने मीठे-मधुर शब्दों में कहा-"भँवरजी ! कोई बात नहीं।"

'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेय' अब नये सिरे से जीवन जीना शुरू करें।"

"बस, महाराजश्री ! आज तो मैं निहाल हो गया। आपने मुझ जैसे खूंखार व्यक्ति के जीवन को ही बदल दिया। मैं आपके इस उपकार को कभी भी नहीं भूल सकता।"

आपका आशीर्वाद सदैव मुझ पर बना रहें।

आपश्री की विवेक युक्त, करुणामयी वाणी एवं आत्मीयतापूर्ण व्यवहार ने उसके जीवन को ऊँचाईयाँ प्रदान की। वह दानव से मानव बन गया।

9. गुरु के प्रति गजब का विनय

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आपके महाप्रयाण का अन्तिम दिन था। सुबह लगभग सात बजे का समय। बस हमलोग मंदिर से आई ही थीं। आप मन्दस्वर में बोलीं-"प्रियदर्शना ! सुदर्शना ! मुझे कन्धे का सहारा देकर यहाँ से धीरे-धीरे भीतर कमरे में ले चलो।"

अपनी पूज्या गुरुवर्याश्री के साथ पू. दादीजी म.सा.

प.पू. प्रशान्तमूर्ति गुरुणीजी
श्री हेमश्रीजी म.सा.

प.पू. आगमदीपिका प्रवर्तिनी गुरुवर्याश्री
मुक्तिश्रीजी म.सा.

प.पू. गुरुवर्या श्री हेम-मुक्तिश्रीजी म.सा. की सुशिष्या
प.पू. साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) म.सा.

सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ ! आपके संकेत को समझ ही नहीं पाईं। महाराजजी ! कमरा छोटा है। सभी आपके दर्शनार्थ आ-जा रहे हैं। अन्दर पधारकर क्या करना है ? आप तो यहीं विराजिए। दूसरी बात आप से एक कदम भी तो चला नहीं जा रहा है। खड़ा होने की भी तो शक्ति नहीं है। **आपने धीरे से कहा-"साहेबजी ! (प.पू.गुरुवर्याश्री मुक्तिश्रीजी म. साहेब) पधार रहे हैं ना अभी ? उनके सामने पाट पर मैं कैसे बैठूँगी ? वे नीचे विराजें और मैं उनके सामने ऊपर बैठूँ ? यह कितना अविनय है। मुझे अन्दर ले चलो।"** आपको काफी निवेदन किया कि आपकी अंदर जाने की और नीचे बैठने की शारीरिक स्थिति नहीं है। आखिरकार हम दोनों के कंधे का सहारा लेकर आप अन्दर कमरे में पधार गईं। इतना ही नहीं, पू.गुरुवर्याश्री के प्रातः दस बजे पहुँचने के बाद महाप्रयाण तक आप पाट पर नहीं विराजी सो नहीं ही विराजीं।
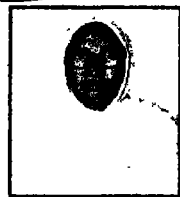
अन्तिम क्षण तक गुरु के प्रति कैसी अद्भुत निष्ठा-श्रद्धा व अहोभाव ! आप महान् थीं फिर भी आपकी लघुता व विनयशीलता अद्वितीय थी। वही लघुता आपकी महत्ता में चार चाँद लगा रही थी। अपने गुरुजनों के प्रति आप में गजब का विनय था।

वास्तव में **'लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर' इस पंक्ति को आपने अपने जीवन में पूर्णरूप से चरितार्थ किया था।**

10. गुरुवर्या की आत्मीयता

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

एक पुराना प्रसंग याद आ रहा है, पूज्या दादीजी महाराज साहब हमें कभी-कभी सुनाया करती थीं। उन्होंने बताया-"जब मैं नूतनदीक्षिता थी। एकदिन मैं गरम पानी लेने गयी। घड़ा उठाकर लाई। सावधानीपूर्वक सीढ़ियाँ चढ़ रही थी। हाथ में डंडा था, बगल में रजोहरण था और कंधे पर कंबली थी। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए अचानक साड़े में पैर अटका। घड़ा हाथ से छूट गया, पानी फैल गया और घड़ा फूट गया। मैं कांप उठी। अब क्या करूँ ? पूज्या गुरुवर्याश्री क्या कहेंगी ? परन्तु पता लगने पर करुणा-वात्सल्यमूर्ति पूज्या गुरुवर्या ने आवाज लगाकर मुझे अपने पास बुलाया। मैं तो घबरा रही थी। अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा-"**क्यों धूजे री हे महाप्रभा! का वु ? बेड़ियो फूटो के ? बेड़ियो फूटो का वुं। फूटो तो सो फूटो। चिंता करवारी कोई वात नी। जा, थने कुणे कोई नी के, जा स्वाध्याय कर, थारुं कोम कर, पण धका ती ध्योन राखेन लावजे।**" इत्यादि मधुर शब्दों से मुझे तसल्ली मिली। उधर अन्य सभी गुरुबहनें पानी के लिए इन्तज़ार कर रही थीं। एक साध्वीजी ने झाँककर देखा। सीढ़ियों पर पानी-पानी हो गया था। झोली भीग गई थी।

मैं पू. गुरुवर्याश्री के सम्मुख नतमस्तक हाथ जोड़े खड़ी थी-और वे मुझे बड़े स्नेह-वात्सल्य से कुछ कह रही थीं। तभी किसी वरिष्ठा साध्वीजी ने पूछा - "महाप्रभा ! का वु ?
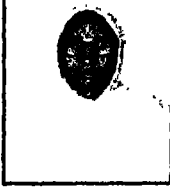
बेड़ियो कीकर फूटे ?" मैं चूप खड़ी थी । तत्काल **पू. गुरुवर्याश्री ने आत्मीयस्वर में कहा-"नवी हे, पग परो सीकल्यो वेइ जणती पड़ी वेई। अणमा पुसवारी का वात है !**

ओपरे हाथों थी पण कदी छूटी हके ने फूटी हके ।"

सहवर्तिनी श्रमणीमंडल और मैं पू.गुरुवर्याश्री की आत्मीयता को पाकर धन्य हो उठीं ।

11. विराट् व्यक्तित्व की धनी

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

यह घटना सन् 1971 की है । आप मन्दसौर चातुर्मासार्थ विराज रही थीं । हम दोनों को **राष्ट्रभाषा हिन्दी वर्धा की 'कोविद' परीक्षा की तैयारी** करवाने हेतु तत्रस्थ निवासी माननीय श्रीग्रामीणजी प्राध्यापक दोपहर उपाश्रय में आते थे । चातुर्मास भी पूर्णाहूति पर था ।

एकदिन गुरुजी ने हम से कहा-महाराजश्री ! आपकी दादी मातेश्वरी कैसी महान् विभूति हैं ? ऐसी साध्वी आजतक मैंने कहीं भी नहीं देखी । चार माह से मैं प्रतिदिन आ-जा रहा हूँ। आपकी दादी मातेश्वरी को देखता हूँ। तनिक भी प्रमाद नहीं । दोपहर कभी सोते ही नहीं देखा है और न दीवार का सहारा लेते ही कभी देखा । सारे दिन वो अपनी पुस्तक वाचन में व्यस्त रहती हैं । कभी माला, तो कभी जाप में तल्लीन । कोई व्यर्थ की बातें नहीं, कोई प्रपंच नहीं, कोई आडम्बर नहीं । उन्हें देखकर तो मेरा मस्तक स्वतः ही झुक जाता है । कितना सीधा, सरल, निश्छल जीवन ! कितनी गंभीर और कैसी शान्त-प्रशान्त मुद्रा ! मैं तो देखता ही रह जाता हूँ ।

आपके तप-त्याग, वैराग्य व अप्रमत्तता से माननीय ग्रामीणजी प्राध्यापक भी प्रभावित हो गए।

क्यों न हो ! आखिर उनके विराट् व्यक्तित्व की दिव्य आभा जो थी... ।

12. फ्रेम सादी हो

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आपकी दोनों आँखों का मोतियाबिन्द का आपरेशन किया हुआ था । चश्मा पहनना अनिवार्य था । ईस्वी सन्. 1992 में भीनमाल महावीरजी के प्रांगण में आपकी निश्रा में धार्मिक संस्कार कन्या शिविर का कार्यक्रम चल रहा था । तब की घटना स्मृति पटल पर आ रही है ।

एकदिन अकस्मात् आपके हाथ से चश्मा गिर पड़ा और टूट गया । काँच फूट गया । एक गुरुभक्त को पता चलते ही आपके पास आया । बोला-दादीजी महाराज साहब ! क्या चश्मा बनवाना है ? बोलीं-"हाँ," तो यह लाभ मुझे मिलना चाहिए । "फ्रेम कैसी लायेंगे ?" अच्छी से अच्छी, कीमती से कीमती किस्म की फ्रेम लाऊँगा ? "तब तो फिर मुझे आप से नहीं बनवाना है ।"

क्यों ? महाराजश्री !

"मुझे तो एकदम सादी फ्रेम चाहिए। मैंने तो कभी अपनी जिन्दगी में कीमती फ्रेम नहीं वापरी, तो अब बुढ़ापे में क्यों वापरूँ ?

दादीजी महाराज साहब! मुझे चश्मा, चश्मा की फ्रेम बाजार से खरीद कर थोड़े ही लाना है क्या ? जो आप इतना गहरा विचार कर रही हैं। मेरी दो-तीन दुकानें हैं। आपने स्पष्ट कह दिया-"ना, मुझे आपसे चश्मा या चश्मा-फ्रेम कुछ भी नहीं मंगवाना है। आपको साध्वाचार के विधान का क्या मालूम है ? **"जिसका जीवन सादा उसका नाम साधु।" सादगी में ही संयम है। साधुत्व में तो सादगी ही चाहिए।** अगर मैं ऐसा करूँगी तो, हमारी ओर संकेत करते हुए, ये साध्वियाँ क्या करेंगी ? किसका अवलम्बन लेंगी ? किसका अनुकरण करेंगी ? अगर तुम्हारी दुकान में सादी एवं सस्ती फ्रेम हो तो ले आना। अन्यथा कोई बात नहीं।"

आपके जीवन व्यवहार से वे प्रभावित हो गए। **ऐसा लगता है, आप विष से भी ज्यादा विषयों से डरती थीं।**

धन्य है, नमन है (उस) सरलता व सादगी से भरे उस अनुपम व्यक्तित्व को...।

13. मर्यादामय जीवन की शिक्षा

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आप विहार में अपना कोई भी उपकरण साथ में पैदल चलनेवाले किसी भी गृहस्थ-भाई-बहन को देना नहीं चाहती थीं और न कभी देती थीं। सन् 1970 में आप पारा से मोहनखेड़ा पधार रही थीं। कुछ बहनें विहार में साथ चल रही थीं। आप आगे थीं और हम दोनों पाँच-सात कदम पीछे थीं। एक बहन ने मेरे (सुदर्शना) हाथ से आग्रह करके पानी की शीशी ले ली और मैंने भी सहजभाव से दे दी। प्रारम्भ में मुझे साध्वाचार की मर्यादाओं और विधि-विधान का इतना सूक्ष्म ज्ञान नहीं था और न इतना अनुभव ही था कि गृहस्थ को अपना कोई भी उपकरण दिया जाता है या नहीं ? चूँकि दीक्षा लिए अभी अधिक समय नहीं हुआ था।

आपको लघुनीति हेतु जल की जरूरत थी। आवाज लगाई। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। आपकी नजर एक बहन पर पड़ी, जिसके हाथ में शीशी थी। **संयमी का कोई उपकरण असंयमी उठाये, यह आपको पसन्द नहीं था।** कठोर चारित्र की धनी, स्वावलम्बी जीवन की आग्रही आप ऐसा कैसे चलने दे सकती थीं। उसी वक्त आपने टोंका-

"सुदर्शना ! अभी तो माँ को दूध पेट में ज हे। उगता पौधा हो। अभी से थाकवा लगी तो आगे कई करोगा। थारा से म्हें कई उम्मेद राखुं। नी, उठा वाय तो म्हनें दे देती। वणाने क्यूं दी ? आयंदा ध्यान राखजो।" मैं तो काँपने लगी। फौरन आपके आशय को समझ गई कि वे क्या कहना चाहती थीं।
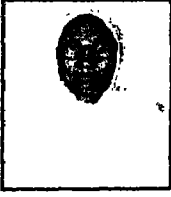
स्वावलम्बन तो मानो आपकी चेरी थी।

कितने हर्ष व गौरव की अनुभूति होती है मर्यादामय जीवन की चर्चा करने में...।

14. संकल्प-शक्ति का प्रत्यक्ष चमत्कार

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

यह वैराग्योद्‌गम घटना आपके वैधव्य होने के पश्चात् की है। अपने पतिदेव के स्वर्गगमन के बाद आप एकबार असाध्य रोग से घिर गईं। जंघा पर कैंसर जैसी भयंकर गाँठ हो गई थी और उससे हरसमय मवाद-रक्त बहता रहता था। घाव कभी भरता ही नहीं था। परिवारजनों के आग्रह से कई वैद्यों, डाक्टरों, हकीमों से उपचार भी करवाया गया, पर कोई फर्क नहीं। आप तो इस तथ्य से भलीभाँति अवगत ही थीं कि जबतक अशातावेदनीय कर्म का उदय है, तबतक कोई कुछ नहीं कर सकता है। कोई उपचार-औषधि कारगर नहीं हो सकती।

हम आपके जीवन का यह पक्ष भी उजागर करना चाहेंगी कि बचपन से ही आप में देव-गुरु व धर्म के प्रति अटूट आस्था थी। नवकारमंत्र पर पूर्णश्रद्धा थी और अपराजेय संकल्पशक्ति थी आप में। दिन पर दिन बीतने लगे। एक रात में आपकी असाध्य बीमारी कैसे गायब हो गई? पढ़कर पाठक शायद विश्वास ही नहीं कर पायेंगे। क्या ऐसा भी हो सकता है?

जैनागम उत्तराध्ययन सूत्र में जैसे अनाथीमुनि की घटना पढ़ते हैं, श्रवण करते हैं। आपके जीवन में भी ठीक वैसी ही घटना घटित हुई। यह उद्‌बोधक संस्मरण पढ़ने से ज्ञात होगा कि आपके दिलदिमाग में चारित्र के प्रति कितना बहुमान था, कैसा अहोभाव था, जिसके चिन्तन-मात्र से ही असाध्य बीमारी छूमन्तर हो गई।

हृदय की सच्ची प्रार्थना में, शुद्ध मानसिक संकल्प में अद्‌भुत शक्ति छिपी हुई है, जिससे असंभव भी संभव हो जाता है। हमलोगों की दीक्षा के पश्चात् आपको दो-तीन बार टाइफाइड निकला। यदा-कदा शारीरिक तकलीफ भी होती तो हम दवाई के लिए आग्रह किया करतीं। तब आप ने हमें प्रस्तुत घटना सुनाई थी। जब भी संयमी जीवन की बात आती तो आप सज्झाय के प्रस्तुत पद को बड़े अहोभाव से दुहराती :

"चारित्र तो चिंतामणि ए माता, एतो शिवरमणीनो मोड़,
माता मैं तो, लेशु एँ माता लेशु संयमभार....।"
"एम चिंतवता वेदना गई,
मैं तो हुई रे निहाल....।"

चूँकि इसका प्रत्यक्ष चमत्कार आपने अपने जीवन में अनुभूत किया था।

सुनकर हम तो आश्चर्यचकित रह गईं। आपने वह प्रसंग बताते हुए कहा कि उस असाध्य रूग्णावस्था में ही मुझे पालीताणा दादा के दर्शन करने की भावना जागृत हुई। मैंने घर से विदाई

ली। मेरे साथ परिवार के एक दो सदस्य थे। मैं अहमदाबाद पहुँची। वहाँ किसी धर्मशाला में रात्रि-विश्राम किया। रात को मुझे नींद नहीं आई। मेरे दिलदिमाग में चिन्तन उभरा। अरे! मैं कितनी मन्दभागिनी हूँ कि त्रिलोकीनाथ! दादा के दरबार में जा रही हूँ। वहाँ जाकर के भी क्या मैं आदिनाथ दादा के चरण नहीं भेट पाऊँगी ? क्या दादा के चरणस्पर्श से वंचित रह जाऊँगी ? चूँकि गाँठ से रक्त-मवाद बह रहा है। हे प्रभो ! मैंने पिछले जन्म में कैसे घोर पाप कर्म किए हैं। भयंकर निकाचित कर्म बांधे हैं। इतनी छोटी आयु में मेरा सहारा चला गया। कंधों पर नन्हें मुन्ने दो बच्चों का भार आ पड़ा, और तो और! इस असाध्य बीमारी ने मुझे घेर लिया। काफी इलाज के बाद भी कोई फर्क नहीं। मैं कितनी निर्भागिणी हूँ प्रभो! अब तो मुझे तेरा ही एकमात्र सहारा है। हे दादा ! तेरे दरबार में आकर भी मैं तुझ से दूर ही रहूँगी क्या ? इसतरह भावनात्मक चिन्तनपूर्ण पश्चात्ताप का निर्झर फूट पड़ा।

मैं बहुत रोई ! इतना रोना आया कि आँखों से आँसू टपकते-टपकते मेरा तकिया भीग गया उसी क्षण। यकायक अन्तःकरण से स्फुरणा हुई। मैंने दृढ़निश्चयपूर्वक यह संकल्प किया कि-"हे दादा ! हे मम तारणहार प्रभो ! यदि मेरे इस असाध्यरोग का शमन हो जाएगा, यह पाँव की पीड़ा पूर्णतः सदा के लिए मिट जाएगी तो, मैं अपने दोनों बच्चों (राजू-जवाहर) के हाथ पीले करके आपके धर्मशासन में सर्वात्मना समर्पित हो जाऊँगी, संयमजीवन अंगीकार कर लूँगी।"

इसतरह संकल्प करने के पश्चात् मुझे कुछ राहत मिली। दिल हल्का हुआ। मुझे कुछ ही देर में नींद आ गई। सुबह मुझे पालीताणा की गाड़ी पकड़नी थी। जैसे ही मैं सुबह जल्दी उठी। निवृत्त होने गई। ऐसी अनहोनी घटना देखकर मुझे इतना हर्ष हुआ, जिसकी कोई सीमा ही नहीं। रोम रोम पुलकित हो गया। न मालूम दो-तीन घंटे में वह रक्त, वह मवाद कहाँ गायब हो गया ! वह घाव कैसे भर गया। एकाएक यह क्या चमत्कार हो गया, कैसे हो गया ?

मैं सब कुछ समझ गई। यह सब मेरे दादा की असीम कृपा एवं संयम (चारित्र) के संकल्प-बल का ही एकमात्र प्रभाव, सुफल व चमत्कार है। मेरे मन-मस्तिष्क में अनाथीमुनि घूम गए। मैं इस पद को बोल उठी -

**"इम चिंतवता वेदना गई
मैं तो हुई रे निहाल।"**

मैंने वहीं दृढ़निश्चय कर लिया, चाहे कुछ भी हो, कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न आएँ। मुझे चारित्र तो ग्रहण करना ही है।

वहाँ से रवाना होकर पालीताणा दादा के दरबार में पहुँची। अपार प्रसन्नता की अनुभूति हुई और भावनासभर हृदय से दादा के दर्शन-पूजन किये। उस रात के बाद से आजतक कभी भी कुछ नहीं हुआ। देवगुरु की असीम कृपा से सब कुछ ठीक हो गया।

इससे यह सिद्ध होता है कि मानसिक संकल्प में कैसी अद्भुत-अनुपम शक्ति निहित है। यह संकल्प-बल एक अमोघ शस्त्र है। आपने दोनों बेटों के पीले हाथ करके

वि.संवत् २००८ ईस्वीसन् 1951 में चारित्र स्वीकार कर ही लिया। इतना ही नहीं, सतत उनपचास वर्षों तक कठोरता के साथ विशुद्ध निर्मल चारित्र-जीवन का पालन किया।

सच तो यह है कि दृढ़संकल्पशक्ति ही उनके जीवन की सफलता व उच्चता का एकमात्र सशक्त आधार था।

15. वज्र से भी अधिक कठोर गुरुमाता

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

'**वज्रादपि कठोराणि, मृदूनिकुसुमादपि**' इस उक्ति को आपश्री ने अपने जीवन में अक्षरश: चरितार्थ किया था। अनुशासन, नियम व संयम में आप वज्र से भी अधिक कठोर थीं। इस सम्बन्ध में आपश्री छोटी-से-छोटी गल्ती को भी नज़रअन्दाज नहीं करती थीं।

आपश्री की यह सोच थी कि रोग का निदान प्रारंभ में ही होना चाहिए। राई जितनी होनेवाली गल्ती को भी शुरू में ही रोक देना श्रेयस्कर है। यदि प्रारंभ में छोटी-सी गल्ती की उपेक्षा कर दी जाय तो भविष्य में पुन: वही गल्ती या उससे भी बड़ी गल्ती होने की संभावना निरन्तर बनी रहती है।

एक ओर जहाँ आपश्री का संकल्प हिमाद्रि-सा कठोर सुदृढ़ था, वहीं दूसरी ओर आपश्री की अर्न्तवृत्तियों की शिखर श्रेणियों से करुणा, वात्सल्य और स्नेह का निर्झर सतत प्रवहमान था। आप ऊपर से श्रीफल के समान एकदम कठोर और भीतर से बिल्कुल मक्खन के समान कोमल थीं। सच ही कहा गया है,"**संत हृदय नवनीत समाना**" आप हमारे उज्ज्वल भविष्य के लिए कितनी हितचिन्तिका थीं ? इस वास्तविकता का पता हमें ठोकरें खाने के बाद लगा था।

ईस्वी सन्. 1964 का बहुत पुराना प्रसंग है। संयम जीवन अंगीकार किए हुए मुझे (प्रियदर्शना) शायद अभी पूरा एक माह भी नहीं हुआ था, तब की मेरे जीवन में घटित यह अविस्मरणीय घटना है।

प.पूज्यपाद राष्ट्रसंत वर्तमानाचार्यदेवेश श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म.सा. (तब मुनिप्रवर श्रीजयन्तविजयजी म.सा. 'मधुकर') की पावन निश्रा में राजगढ़, जिला धार (म.प्र.) से सिद्धाचल महातीर्थ का छ:री पालित पदयात्रा संघ आयोजित हुआ। जिसमें प.पू. शासनदीपिका गुरुवर्याश्री मुक्तिश्रीजी महाराज साहब आदि के साथ पू.दादीजी म.सा. भी थीं। पू.दादीजी म. की कठोर अनुशासन की वह स्मृति मेरे मन-मस्तिष्क के स्मृति-कोष में सैंतीस वर्षों के बावजूद अद्यावधि ज्यों-की-त्यों सुरक्षित है और जीवन पर्यन्त सुरक्षित रहेगी। शुभमुहूर्त में वहाँ से पद यात्रा संघ का प्रयाण हुआ। संघ में पाँच सौ-सात सौ पदयात्री थे। करीब-करीब सभी साध्वीजी भगवंत साथ थीं। आगे बढ़ते हुए संघ सोनगढ़ पहुँचा। एक दिन का पड़ाव वहाँ था। शाम की प्रतिलेखन आदि से निवृत्त होने के पश्चात् पू.गुरुवर्याश्री, पू.दादीजी म.सा. एवं अन्य

सभी श्रमणीवृन्द मंदिरजी दर्शनार्थ पधारीं। मैं (प्रियदर्शनाश्री) भी साथ थी। दर्शन-चैत्यवंदन के पश्चात् प्रदर्शनी देखती हुई पुनः लौट रही थीं। उन दिनो वहाँ जैनदर्शन से सम्बन्धित भव्यप्रदर्शनी लगी हुई थी। देखते देखते सूर्य ढल गया। अंधेरा छाने लगा। चारों तरफ रोशनी हो गई थी। पू.दादीजी म. अपनी गुरुवर्याश्री के साथ धर्मशाला में पधार गईं। मुझे ध्यान नहीं रहा कि दोनों पूज्याश्री व कुछ श्रमणीभगवंत अपने गंतव्य स्थलपर कब पहुँच गयीं। मैं छोटी एवं नूतन दीक्षिता होने के नाते सभी के पीछे चल रही थी। सभी के साथ प्रदर्शनी देखने में मैं भी तल्लीन थी। फिर एक वरिष्ठा साध्वीजी ने मुझे कहा-देख, सामने एक और प्रदर्शनी लगी हुई है। चलो, देखकर आएँ। मुझे तो उस वक्त नूतन दीक्षिता होने के कारण श्रमणी जीवन के आचार-विचार, विधि-विधान एवं नियमादि कुछ भी मालूम नहीं थे। कब जाना, कहाँ जाना, किसके साथ जाना और किसके साथ नहीं जाना ? साध्वीजी महाराज ने पुनः जोर देकर कहा-चल, चल। प्रियदर्शना! अभी देखकर आते हैं। अनुभवहीनता और बचपना होने की वजह से मैं उनके साथ प्रदर्शनी देखने चली गयी। पू. गुरुवर्याश्री की आज्ञा के बिना अथवा उनसे पूछे बिना एक कदम भी नहीं जाया जाता है किसी के भी साथ। यह जानकारी मुझे कत्तई नहीं थी। थोड़ा अंधेरा हो गया था। सभी बहनें धर्मशाला के बाहर पांडाल में प्रतिक्रमण करने हेतु पहुँच चुकी थीं।

मैं उन साध्वीजी महाराज के साथ जैसे ही धर्मशाला के समीप पहुँची। परम हितैषिणी, अनुभवी एवं दीर्घद्रष्टा पू. गुरुवर्याश्री ने पू.दादीजी महाराज साहब को संभवतः संकेत किया कि इतने विलम्ब से अंधेरा होने के बाद अमुक साध्वीजी के साथ वह आ रही है। यदि पहलीबार में ही इसे साध्वाचार के कठोर नियम-उपनियम नहीं बताओगी और उचित शिक्षा नहीं दोगी, भविष्य के लिए यह ठीक नहीं रहेगा। वही गल्ती दुबारा करने का साहस करेगी। पू.दादीजी महाराज ने भी यही सोचा होगा कि आज यदि इस बात की उपेक्षा कर दूँगी तो इसका जैसा जीवन बनाना चाहती हूँ, वह नहीं बन पाएगा। वे साध्वीजी महाराज तो चली गईं अपने कमरे में और मैं रह गई अकेली और मेरे साथ थी संसारपक्षीय मेरी लघु सहोदराबहन कुमारी प्रेमलता (जो वर्तमान में सुदर्शनाश्री के नाम से जानी जाती है)। जैसे ही हम दोनों पू. गुरुवर्याश्री के कमरे में जाने लगी तो **पू. दादीजी महाराज खड़ी हुईं और डाँटते हुए कहा-"खबरदार! अगर कमरे में पैर रखा तो टांग तोड़ दूँगी। बस, दोनों खड़ी रहो बाहर। अन्दर आने की जरूरत नहीं। बिना पूछे कहाँ गई थीं ? जिनके साथ गई थीं, उनके पास चली जाओ। मेरे यहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं।" पू. दादीजी महाराज की आवाज सुनते ही पांडाल से उठकर सभी बहनें वहाँ आ गईं। हम दोनों नीचा मुँह किये खड़ी थीं चुपचाप। मैं तो थर-थर काँप रही थी और लघुबहन प्रेमलता की आँखों से पानी टपक रहा था। मैंने धीरे से कहा "मुझे तो अमुक साध्वीजी महाराज ले गयी थीं प्रदर्शनी दिखाने। अब कभी भी बिना पूछे नहीं जाऊँगी।" इतना कहते ही हम दोनों एक दूसरे के सामने देख रही थीं और आँखों से अश्रुकण गिर रहे थे।**

पू.दादीजी महाराज साहब का ऐसा कठोर अनुशासन देखकर वहाँ उपस्थित सभी बहनें

स्तब्ध रह गईं। उनमें से एक दो बहनें बोलीं "दादीजी महाराज साहब ! अब रहने दो ना ? बच्ची है अभी तो। अब दुबारा कभी ऐसी गल्ती नहीं करेंगे हमारे नए महाराज सा. !" सभी परस्पर बातें कर रहीं थीं। अभी तो दीक्षा लिए महीना भर भी नहीं हुआ है। बालबुद्धि है। मासूम बच्ची क्या जाने इनके कठोर नियमोपनियमों को ? **अभी से कितना कठोर अनुशासन रख रही हैं ? कितना जबर्दस्त प्रतिबन्ध लगा रखा है इस बेचारी पर ! अपने समुदाय की अपनी गुरुबहनों के साथ जाने पर भी इतनी डाँट-फटकार ! हो जाती है ऐसी सामान्य गल्ती तो किसी से भी ! किंतु बाप रे बाप ! दादीजी म.सा. तो पूरा आग का गोला है। तनिक-सी गल्ती हो जाने पर इतनी कठोर ! बहनों की काना-फूसी सुनकर पू. दादीजी महाराज साहब ने साफ शब्दों में कहा-"साध्वी बनने के बाद अब तुम्हें इसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है। इसे कैसे संस्कार देना है ? यह चिंता मुझे है। तुम्हें बीच में बोलने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। प्रोत्साहन देकर ये सब बिगाड़ने के धंधे हैं। मुझे किसी का भय नहीं है। आज तो सिर्फ डाँटा-फटकारा ही है इसे, लेकिन मौका आने पर...।"** बीच में एक बहन बोल उठी,"महाराज साहब ! ये तो संसारपक्षीय आपकी दोनों पौत्रियाँ हैं, इन्हें लाड़-प्यार में रखना चाहिए। आप दादी होकर भी इतनी कठोर ! हम तो स्वप्न में भी नहीं सोच सकतीं कि आप इतनी कठोर होंगी अनुशासन के मामले में।" दो टूक जवाब देकर पू.दादीजी महराज साहब ने उन्हें वहाँ से प्रतिक्रमण करने हेतु पांडाल में भेजा। लगभग आधा घंटा हम दोनों कमरे के बाहर खड़ी रहीं। फिर आप हमें अन्दर ले गयीं और प्रतिक्रमण करवाया। तत्पश्चात स्नेह- वात्सल्य उंडेलते हुए मीठी-मधुर भाषा में बोलीं "अब कभी भी ऐसी गल्ती मत करना। मैं तुम्हारे हित के लिए कह रही हूँ। अभी तो तुम्हें मेरी बात, डाँट-फटकार नीम जैसी कटु लगेगी, क्योंकि '**खारी बोली मावड़ी मीठा बोल्या लोग**', लेकिन जब अनुभव होगा, तब पता चलेगा।" इसप्रकार आधे घंटे तक हितशिक्षाओं का पीयूषपान कराती रहीं। वह दिन और आज का दिन। जीवन में उस भूल को हमने कभी नहीं दोहराया।

अब सब कुछ समझ में आता है उसके पीछे आपका क्या आशय था ? सचमुच कितनी **दीर्घद्रष्टा थीं पूज्या दादीजी म.सा. ! कितनी परमहितैषिणी थीं ! वास्तव में किसी को दादी मिले तो ऐसी दादी मिले ! गुरुमाता मिले तो ऐसी गुरुमाता मिले !**

संभव है उस समय तो बचपना व नूतन दीक्षिता होने के कारण मन-मस्तिष्क में यह भी विचार आया होगा कि ओफ्फोह ! ऐसी कौन सी भंयकर भूल कर दी, जो महाभारत खड़ा कर दिया। एक वरिष्ठा साध्वीजी के साथ चली गई तो क्या हो गया ? सभी अपनी ही तो गुरुबहनें थीं। दीक्षा लेते ही मुझ पर इतना कठोर प्रतिबंध ! इतना कड़ा अनुशासन ! न किसी से वार्तालाप और ना किसी से मिलने-जुलने की बात ! उस वक्त हम अल्पबुद्धि द्वारा उस अतल गहराई तक कैसे पहुँच पातीं। उस गहराई को तो हमारे अनुभवी दीर्घद्रष्टा परमहितैषी गुरुजन ही जानते थे।

त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र में कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य ने तो स्पष्ट कहा है-'गुर्वाज्ञाकरणं हि सर्वगुणेभ्योऽतिरिच्यते'-अर्थात् गुर्वाज्ञा का पालन करना सभी गुणों से बढ़कर हैं। इसी संदर्भ में रघुवंश महाकाव्य में भी कितनी सुंदरतम बात कही है-'आज्ञा ही गुरु णामविचारणीया'-गुर्वाज्ञा पर कभी विचार ही नहीं करना चाहिए। बिना ननुनच किए उसे सहर्ष शिरोधार्य कर लेना चाहिए। वहाँ तर्क-वितर्क या कुतर्क होता ही नहीं। लेकिन उस वक्त इतनी लम्बी सोच, इतनी अक्ल-बुद्धि ही कहाँ होती है?

धन्य है माँ तुझे ! तेरी सावधानी, तेरी दीर्घदृष्टि, तेरी हितैषिणी भावना और तेरे सुसंस्कारों ने हमें आज इस धरातल पर लाकर खड़ा किया है। इस योग्य बना दिया।

जैसे जौहरी पत्थर को तराशकर हीरा बनाता है। उसमें अधिक निखार लाता है। ठीक वैसे ही हम जैसे अनगढ़ पत्थर को सच्चा जौहरी मिल गया और उस अनगढ़ पत्थर को तराश कर अधिक निखार लाने का काम किया पूज्या करुणेश्वरी दादीमाँ ने। सच है गुरुकृपा के बिना जीवननिर्माण की कल्पना आकाश कुसुमवत् है।

सौ सौ सूरज उगवे, चंदा उगै हजार।
ज्ञान चांदणा हो तभी, गुरुबिन घोर अंधार।

सच तो यह है कि हमारे पास शब्द ही कहाँ है जिनके माध्यम से उस महान् आदर्श गुरुमैया के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर सकें ?

16. ज्ञानावरणीय कर्म बंधेगा

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आपके जीवन की यह विशिष्टता थी कि आप स्वावलम्बनप्रिय थीं। आपने अन्तिम समय तक स्वावलम्बी जीवन जिया। आपकी दृष्टि में कोई कार्य न तो बड़ा था और न कोई कार्य छोटा। छोटे से छोटा कार्य अथवा बड़े से बड़ा कार्य वे स्वयं उठकर कर लेती थीं। आपकी निश्रा में रहनेवाली अपनी शिष्याओं से या अन्य किसी से भी किसी कार्य के लिए नहीं कहती थीं। **'परस्पृहा महादुखं निस्पृहत्वं महासुखं' यह सूत्र आपके जीवन का मूलमंत्र था। वे मौके-बेमौके कहा करती थीं-'पराधीन सपने हु सुख नाँहि।'**

हमें एक प्रसंग याद आ रहा है। दिनभर हम अपने लेखन-पठन-पाठन-स्वाध्यायादि में लगी रहती थीं। एकबार हम आपके समीप बैठकर लेखन-कार्य कर रही थीं और आपश्री अपनी पुस्तक पढ़ने में लीन थीं। कुछ समय पश्चात् आपने पुस्तक टेबल पर रखी। हम तुरन्त समझ गईं, शायद महाराजजी को पानी वापरना है। दोनों में से एक उठी। पात्र भरकर पानी ले आई और पात्र आपश्री के हाथ में थमाया। तब आपने हम से जो शब्द कहें। उन शब्दों ने हमारे
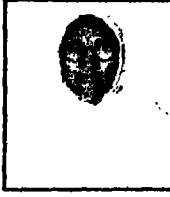
मन-मस्तिष्क को झकझोर दिया। **अन्तर्चेतना जाग उठी और इतने वर्षों के बाद आज भी वे शब्द हमारे कर्णकुहरों में गूँज रहे हैं। बड़ी आत्मीयता से बोलीं-"बहना ! लिखती-लिखती क्यों उठी ? क्या मेरे हाथ-पांवों में मेहंदी लगी है, जो मैं नहीं उठ सकती हूँ ? मुझे अन्तराय लगेगी ना !** ज्ञानावरणीय कर्म बंधेगा ! पूर्वजन्म में मैंने पढ़ने-लिखने में किसी को अन्तराय दी होगी। तो इस जन्म में मैं विशेष ज्ञानार्जन नहीं कर पायी। अब पढ़ने लिखने में अन्तराय डालूँगी, तो कर्म बाँधकर कहाँ जाऊँगी। **बस, तुम तो पढ़ो-लिखो, योग्य बनो। माता-पिता एवं गुरु के नाम को रोशन करो।**" लघुशंका, जलपानादि से सम्बद्ध प्रसंग तो एकबार नहीं, अपितु अनेकबार हमारे साथ घटित हुए।

तब हमें ऐसा लगा कि मस्तिष्क को पुस्तकों का संग्रहालय बना लेने मात्र से कोई ज्ञानी नहीं बनता। कोरे किताबी कीड़ें, तोतारट्टू बनने या अपने नाम के पीछे किसी विद्यापीठ, महाविद्यालय की उपाधियाँ हाँसिल कर लेने मात्र से कोई ज्ञानी-ध्यानी नहीं बना जाता।

कितना ही ज्ञानार्जन क्यों न कर लिया जाय, लेकिन वह ज्ञान यदि आचरण में आचरित नहीं हुआ तो उस ज्ञान की कोई कीमत नहीं। वह तो भार ढोते गधे जैसा हो जायेगा। यथार्थतः ज्ञान तो आचरण के दर्पण में प्रतिबिम्बित होना चाहिए।

ऐसा यथार्थज्ञान पू.दादीजी महाराज साहेब के व्यवहार में हम प्रत्यक्षः देखती थीं, तो मन-मस्तिष्क स्वतः ही अहोभाव से झुक जाता।

17. वाणी : मन का दर्पण

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आपश्री के हृदय में सबके लिए आदर और प्रेम की भावना थी। चाहे वह अमीर हो या गरीब, बच्चा हो या बुजुर्ग, छोटा हो या बड़ा। सब आपके लिए समान थे। चाहे वह कचरा निकालनेवाला या बर्तन साफ करनेवाला नौकर ही क्यों न हो। कभी किसी को तुच्छ या हल्के शब्दों से सम्बोधित नहीं करती थीं।

आपके आदरभाव का प्रतीक एक प्रसंग हमें याद आ रहा है। सन् 1980 में आप भोपाल विराजमान थीं। महावीर-भवन में तोलाराम नाम का एक नौकर रोज झाड़ूबुहारा-पोंछा लगाने का काम करता था। थोड़ा वह कामचोर भी था। ढंग से काम नहीं करता था। वहाँ के प्रमुख पदाधिकारीगण व्यवस्थित काम करने के लिए बार-बार उसे डाँटते रहते थे। अरे, तोल्या ! क्यों, यह काम नहीं किया ? वह काम नहीं किया ? ध्यान रखना, अगर काम व्यवस्थित नहीं किया तो छुट्टी कर देंगे। बोला-"हाँ, बाबूजी ! अब ऐसी गल्ती नही करूँगा।"

एकदिन वह झाड़ू-पोंछा करके अपने घर जा रहा था। अभी वह सीढ़ियों तक ही पहुँचा

था कि आपश्री ने पीछे से आवाज लगाई । **ओ तोलारामजी ! जरा इधर आना !** जब उसने पीछे मुड़कर देखा, तो देखता ही रह गया । वापस आपके पास आया । बोला-'महाराज साहब ! कहाँ आप और कहाँ मैं ? मैं तो आपके सामने एक तुच्छ आदमी हूँ । एक सामान्य नौकर हूँ । आप तो इतनी महान् हैं, फिर भी इतने आदर से पुकार रही हैं । **मुझ जैसे गरीब आदमी को आप 'ओ तोलारामजी' कहकर संबोधित कर रही हैं** । यह उचित नहीं है ।"

हाथ जोड़ कर बोला-"बताइए क्या काम है ?"

आपने फरमाया-"यह बाल्टी तेजराजजी के यहाँ देना है । क्या तुम पहुँचा दोगे ?" हाँ, महाराज साहब ! पहुँचा दूँगा ।

किन्तु एक निवेदन है आप से । आप आइंदा कभी मुझे ऐसे सम्मानित शब्दों से सम्बोधित कर शर्मिन्दा ना करें । मैं तो आपके चरणों का एक छोटा-सा सेवक हूँ । इसलिए **'तोल्या'** सम्बोधन ही मीठा लगता है । **वह आपकी वाणी-व्यवहार से अत्यधिक प्रभावित हो गया । सच है, वाणी मन का दर्पण है ।**

18. स्वाध्याय हमारा जीवन है

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

सन् 1999 के धाणसा चातुर्मास पधारने से पूर्व की ताजी घटना है । नब्बे वर्ष की अन्तिम अवस्था में भी आपश्री की ज्ञान के प्रति कितनी रूचि थी, कैसी लगन थी और आनेवाले दर्शनार्थियों को कितना सटीक, तर्कसंगत प्रत्युत्तर देकर सन्तुष्ट या चुप कर देती थीं । इसका केवल एक उदाहरण प्रस्तुत कर रही हैं ।

आप भीनमाल महावीरजी के विशाल प्रांगण में स्थिरवास किये हुई थीं । आपके जीवन का अन्तिम चातुर्मास धाणसा की धन्यधरा पर हुआ । धाणसा जाने से चार-पाँच महीने पूर्व '**श्री अभिधान राजेन्द्र कोश में सूक्ति सुधारस**' आदि पुस्तकों के प्रूफ देखने का कार्य द्रुतगति से चल रहा था । हमलोग दिनभर व्यस्त रहती थीं । प्रायः कमरा बंद करके बैठती थीं, ताकि लोगों का आवागमन न हो । हमारा ध्यान इधर-उधर बँटे नहीं । आपश्री हॉल में विराजमान थीं । दर्शनार्थ आनेवाले भक्तलोगों की ओर से हम एकदम निश्चिन्त थीं ।

बाहर से कोई भी दर्शनार्थी आता तो आपश्री सबकुछ निपटा लेती थीं । अगर हमारे बारे में कोई पूछता तो कह देतीं-अभी वे काम कर रही हैं और आवश्यकता महसूस होती तो हमें आवाज देकर बुला लेती थीं, वर्ना नहीं बुलातीं । उन दिनों बाहर से कोई दर्शनार्थी आए हुए थे । परिचित भी थे । काफी समय वार्तालाप करने के पश्चात् आपश्री से पूछा-वे दोनों कहाँ हैं ? आपने कहा-"पुस्तकों का प्रूफ देख रही हैं ।" हमें बुलाया गया । उन्होंने कहा-"क्या अभीतक पढ़ाई पूर्ण नहीं हुई है ? चोवीसों घंटे अध्ययन चलता ही रहता है ? जिंदगीभर क्या अध्ययन ही
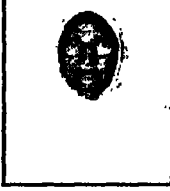
करती रहेंगी ?" पू.दादीजी महाराज साहब की तरफ इंगित करते हुए कहा- "आप भी इन्हें कुछ नहीं कहतीं ? दिन में भी अध्ययन और रात में भी अध्ययन ! हम लोग कुछ कहें, उससे पूर्व ही आपश्री ने प्रत्युत्तर दे दिया । बोलीं-"**पढ़ना-लिखना-स्वाध्याय करना तो हमारा धन्धा ही है । जैसे आपलोग अपने धन्धे-पानी में व्यस्त और मस्त रहते हैं । एकक्षण की भी फुर्सत नहीं मिलती है । ठीक वैसे ही हमारा भी यही काम है । पढ़े-लिखें नहीं, तो क्या गोरखधन्धा करें ? दुनिया की पंचायती करें ? अथवा फिर गप्पे मारें ? "बताइए, पढ़े-लिखे नहीं तो आखिर क्या करें ? 'खाली दिमाग शैतान का घर' । मन को तो हरवक्त स्वाध्याय में पिरोये ही रखना चाहिए, ताकि वह इधर-उधर भटके नहीं ।**

श्रमण-श्रमणीजीवन में तो पढ़ना-लिखना, स्वाध्याय करना कभी बन्द ही नहीं होता । शास्त्रों में तो साधु-साध्वी भगवन्त के लिए नित्यप्रति पन्द्रह घंटे ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय करने का विधान बताया है । यह तो विद्यार्थीजीवन है । ज्ञान अनंत है । उसका कोई पार नहीं है । एक जिन्दगी तो क्या अनंत जिन्दगियाँ बीत जाय, फिर भी कभी अध्ययन पूरा नहीं हो सकता । इसमें कभी सन्तोष नहीं मानना चाहिए । जीवन के अन्तिम समय तक अध्ययन की वैसी ही जिज्ञासा बनी रहनी चाहिए । जैसी भूखे-प्यासे को खाने-पीने की लालसा बनी रहती है । हमारे पू.दादा गुरुदेव ने तो जीवन के अन्तिम चातुर्मास में भी अट्ठाई की तपश्चर्या के साथ एकादशांगों की परावर्तना / अनुप्रेक्षा स्वाध्याय किया था ।" आपश्री के मुख से ऐसी सन्तोषप्रद सटीक बातें सुनकर वे लोग स्तब्ध रह गये । अब क्या जवाब देते वो । उनकी तो सिट्टी-पिट्टी ही गुम हो गई । बोले-"हम तो वैसे ही मनोविनोद में कह रहे थे । आपकी बातें बिल्कुल सत्य है ।"

यद्यपि वो महान् शक्ति हमारे मध्य नहीं है, परन्तु उनके आदर्श व शिक्षा हमारे लिए प्रतिक्षण मार्गदर्शन का कार्य करती है तथा प्रेरणा स्रोत बनी रहती है ।

19. 'ओ' सम्बोधन

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आपके बड़प्पन का तो क्या वर्णन करें ? आप प्रारम्भ से निरभिमानिनी रही हैं । नम्रता आपका स्वभाव था । सन् 1992 की चातुर्मास की घटना है ।

एकदिन की बात है । आप भीनमाल विराजी हुई थीं । गौचरी-पानी, प्रतिलेखनादि से निवृत्त होने के पश्चात् हमलोग कमरे में लेखन-कार्य कर रही थीं । अचानक आपश्री को कोई बात याद आयी तो हमें आवाज लगायीं-"**ओ प्रियदर्शना ! ओ सुदर्शना !! थोड़ी अठे आवजो तो ?**" हम दौड़कर आपके पास पहुँचीं । आपश्री हमें कुछ फरमाये, उससे पूर्व ही हमने निवेदनपूर्वक कहा-महाराजजी ! आपने हमें इस '**ओ' सम्बोधन** से सम्बोधित क्यों

किया ? क्या हम परायी हैं ? यह हमारे लिए बिल्कुल शोभास्पद नहीं है। आप हमें ऐसे पुकारती हैं तो हमें सुनने में बहुत ही अटपटा लगता है।

'पालथी हाथीपर ही सुशोभित होती है, गधे पर नही' । अत: आपश्री से हाथ जोड़कर निवेदन है कि आइन्दा कम-से-कम हमें तो इसतरह के सम्बोधन से नहीं पुकारें।

वो महान् थीं, वाणी पर पूर्ण नियंत्रण था उनका ।

20. आत्मशक्ति का चमत्कार

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

सन् 1988 का भरतपुर का चातुर्मास सम्पन्न कर आप भाण्डवपुर की तरफ विहार कर रही थीं। विहार करते हुए जयपुर पहुँचीं। एक-दो दिन स्थिरता करके संध्या को पुनः वहाँ से प्रस्थान किया। शहर से बाहर चार-पाँच किलोमीटर की दूरी पर रात्रि-विश्राम किया। दूसरे दिन प्रात: वहाँ से विहार कर आगे बढ़ रही थीं। जैसे ही आप सड़क पार कर रही थीं कि अकस्मात् एक ट्रक से टकरा कर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ीं।

प्रबल पुण्योदय था कि जहाँ पर गिरी थीं, वहाँ ज्यादा पत्थर नहीं थे, वर्ना पता नहीं क्या होता ? अधिक चोट नहीं आई। गुरुदेव की कृपा से बाल-बाल बच गईं आप। सिर में नुकीला कंकर घुसने से थोड़ा-सा गड्ढा हो गया और रक्त बहने लगा। यह देखकर हम एकदम घबरा गयीं कि अभी-अभी ये क्या हो गया ? आपको उठाकर व्यवस्थित बिठाया। तभी आपश्री ने कहा,''घबराने की जरूरत नहीं है। थोड़ी हल्दी और चूना मिलाकर लगा दो इस स्थान पर'' और हमने उसी क्षण जहाँ रक्त बह रहा था, वहाँ हल्दी और चूना मिलाकर भर दिया उस गड्ढे में। थोड़ी देर में रक्त बहना बन्द हो गया। आपको कुछ राहत मिली।

हमने आपश्री से निवेदन किया - आज यहीं रूक जायें अथवा अभी जयपुर श्रीमीठालालजी कुहाड़ एवं श्रीभँवरलालजी मुथा को खबर दे देवें तो वे आ जायेंगे। आपश्री ने कहा-''अरे! मुझे कुछ नहीं हुआ। तुम व्यर्थ क्यों घबरा रही हो ? चलो, आगे बढ़ो।'' सूचना करने के लिए सख्त मना कर दिया। बोलीं- ''उन लोगों को चिन्ता होगी और अभी भागदौड़ शुरू हो जाएगी।'' उसी वक्त उठ खड़ी हुईं और चलना शुरू किया। **गज़ब का आत्मबल था आप में**। ऐसी हालत में धीरे-धीरे विहार करती हुईं चार-पाँच दिनों में 'महलाग्राम' तक पधार गयीं। सुबह वहाँ से दूदू गाँव की ओर प्रस्थान किया। दूदू के निकट पहुँचते-पहुँचते एकाएक आपके पाँव अकड़ गए। पाँव इतने जकड़ गए कि एक-एक कदम उठाना भारी हो रहा था। दूदूग्राम के बाहर पुलिया पर आपने थोड़ी देर विश्राम किया। पर अब समस्या यह थी दूदू गाँव में कैसे पहुँचना ? सोच ही रही थीं, तबतक तो मदनगंज-किशनगढ़ श्रीसंघ के श्रावक-श्राविका खोजते हुए पुलिया के पास पहुँच गए। बड़े चिन्तित हो गए सभी। चलते-चलते एकाएक पैरों में क्या हो गया ?

उन्होंने हाथलारी, व्हीलचेअर, डोली आदि किसी भी वाहन में बैठकर मदनगंज पधारने के लिए आग्रहभरा खूब निवेदन किया, पर आपने किसी की भी नहीं मानी। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि-महाराज साहब! यहाँ ठीक से कोई भी (इलाज, गौचरी-पानी, ठहरने की) व्यवस्था नहीं हो पाएगी। अतः हमारा आपश्री से पुनःपुनः आग्रहभरा एक ही अनुरोध है कि आप मदनगंज पधारने की कृपा करें। आपने फरमाया-"आपलोग इतने विचलित और चिन्तित क्यों हो रहे हैं? कोई जंगल तो है नहीं! जैसा भी होगा एडजेस्ट कर लिया जाएगा। मुझे कहाँ डॉक्टरों की दवाइयाँ लेनी हैं? बात है गौचरी-पानी की। जो भी, जैसा भी मिलेगा। ये दोनों गाँव में जाकर ले आयेंगी। फिर क्या चिन्ता है? **धैर्य रखो! गुरुमहाराज की कृपा से धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा।"**

सड़क पर ही श्री लादूलालजी कोठारी की दुकान थी। हमारा हाथ पकड़ कर बड़ी मुश्किल से आप उस दुकान तक पहुँच पाईं। आठ दिन तक वहाँ स्थिरवास करना पड़ा। ऐसी विकट परिस्थिति में भी वाहन उपयोग में नहीं लिया। जबतक आप वहाँ विराजीं, मेला-सा लग गया। नित्यप्रति मदनगंज श्रीसंघ के अधिकांश लोगों का सुबह, दोपहर, शाम, जब देखो तब ताँता लगा ही रहा। सभी आपश्री की सेवा में उपस्थित थे।

प्रतिदिन तेलमालिश, आँबाहल्दी, विक्स-बाम, सिकाई आदि का प्रयोग चालू था। जैसे ही कुछ राहत मिली। थोड़ी चलने-फिरने की स्थिति हुई। तब वहाँ से विहार कर मदनगंज पहुँचीं। आपकी दृढ़ता के समक्ष सभी नतमस्तक थे। दो-चार दिन वहाँ संघ को लाभ देकर आगे की ओर प्रस्थान किया और प्रतिष्ठा के चार-पाँच दिन पूर्व ही भांडवपुर पहुँच गयीं।

धन्य है गुरुणीमैय्या! जिन्होंने इस तन की कभी परवाह नहीं की। न कभी वाहन का उपयोग किया और ना कभी अंग्रेजी दवाइयों का सेवन किया। आयुर्वेदिक औषधि भी अपरिहार्य स्थिति में ले लेती थीं, वह भी कभी-कभार।

यह है दृढ़ इच्छाशक्ति एवं आत्मशक्ति का अद्भुत चमत्कार।

21. साकार हुआ सपना

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आज ईस्वी सन् 1980 की अविस्मरणीय घटना स्मरण हो रही है। आज भी वह अद्‌भुत दृश्य आँखों के समक्ष तैर रहा है। भोपाल पहुँचने के पश्चात् जब वहाँ जैनसाहित्य उपलब्ध नहीं हुआ तो चातुर्मास काल में पूज्या दादीमाँ से विचार-विमर्श हुआ। शोध-कार्य करवाने की आपकी हार्दिक तमन्ना थी। अतः आपने पी-एच.डी. हेतु बनारस जाने की सहर्ष अनुमति प्रदान की। हमारे हृदय में भी इतना उत्साह था कि शीघ्रातिशीघ्र पी-एच.डी. का अध्ययन करके पुनः माँ के चरणों में पहुँचना है। जिस घड़ी की प्रतीक्षा कर रही थीं। वह बहुत करीब आ गई।

हालाँकि क्षणभर के लिए भी माँ से विलग होने का हमारा मन नहीं था और न हमें विहार करने की आज्ञा देने का हमारी वात्सल्यमयी माँ का मन ही था, किन्तु पी-एच.डी. करने का दृढसंकल्प कर रखा था हमने और आपको भी करवाना ही था। वहाँ साहित्य उपलब्ध था नहीं। इसलिए उन्हें बनारस भेजना अति आवश्यक हो गया था।
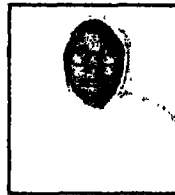
चातुर्मास पूर्णाहूति के पश्चात् आपश्री की ही प्रेरणा एवं निश्रा में श्रीवालचंदजी राजेशकुमार अगरबत्तीवालों की ओर से भोपाल से होशंगाबाद का सात दिवसीय छ:रीपालित पद-यात्रा संघ का भव्य आयोजन हुआ। पैदल-यात्रा संघ की समाप्ति के पश्चात् असीम स्नेह-वात्सल्यमयी माँ ने वासक्षेप, अन्तराशीष एवं मांगलिक प्रदान कर ढेरसारी हिदायतें देते हुए चन्द्रस्वर में हमें वाराणसी की ओर मंगल प्रस्थान करवाया।

विदाई-वेला का वह हृदयद्रावक दृश्य मन-मस्तिष्क में आज भी तरोताजा है। ममतामयी माँ की दिव्यप्रेरणा एवं आशीर्वाद से अनुप्राणित थीं हम दोनों। अदम्य उत्साह से भरी हुई थीं। **मन में बस एक ही लगन, एक ही धुन, एक ही ध्येय और एक ही लक्ष्य था-"कार्यं-साधयामि वा देहं पातयामि" का प्रण कर लिया था हमने।**

हमारा साहस और उत्साह देखकर आपको ऐसा लग रहा था जैसे रणबाँकुरेवीर जूझने जा रहे हैं। **आपने उत्साह भरते हुए विदाई के समय कहा था-"अभी उत्साह-उमंग में जा तो रही हो, पर ध्यान रखना। वहाँ पहुँचने के बाद चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ, प्रतिकूलताएँ, विघ्न-बाधाएँ क्यों न आएँ, पर घबरा मत जाना। सभी का सामना करते हुए कार्य पूरा करके ही आना। बीच में ही अधूरा छोड़कर भाग मत आना। नहीं तो तुम्हारी और मेरी दोनों की हँसी होगी। सभी यही कहेंगे-दादीमाँ ने पढ़ने भेजा और आ गईं वापस भागकर।"**

सुनो, भर्तृहरि ने कितनी अच्छी बात कही है :

"प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः।
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः॥
विघ्नैः पुनरपि प्रतिहन्यमानोत्तमाः।
प्रारभ्य च चित्तं जनाः न परित्यजन्ति॥"

अर्थात् प्रथम (अधम) प्रकार के व्यक्ति विघ्नों-कठिनाइयों के भय से कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते हैं। मध्यम प्रकृति के लोग कार्य प्रारम्भ कर देते हैं, किन्तु विघ्न आने पर उसे बीच में ही छोड़ देते हैं। इसके विपरीत उत्तम और महान् व्यक्ति होते हैं, वे कार्य को प्रारम्भ करने के पश्चात् चाहे कितने भी विघ्न, कठिनाइयाँ क्यों न आये, पूरा किए बिना नहीं छोड़ते।"

इसलिए हिम्मत मत हारना। हिम्मत हार जानेवाले का बल क्षीण हो जाता है, किन्तु उत्तम व्यक्ति कार्य सम्पन्न करने का दृढ़संकल्प कर लेता है, तो उसे कितनी भी विघ्नबाधाएँ आती हैं, पर वह कार्य अधूरा नहीं छोड़ता। विश्वास, लगन और धैर्य से ही वे बाधाएँ स्वयं भयभीत होकर
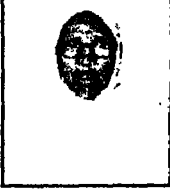
दूर हो जाती हैं तथा मंजिल स्वयं चलकर निकट आती है। असंभव संभव में बदलता है। आशा निराशा को ठोकर मारकर आगे बढ़ती चली जाती है। दृढ़विश्वासी के ही सफलता चरण चूमती है।"

महाराजजी ! आपकी असीम कृपादृष्टि, अद्भुत प्रेरणा और अन्तराशीष हमारे साथ हैं तो हम आपको पूर्ण विश्वास दिलाती हैं कि निश्चितरूप से यह कार्य पूर्ण करके ही आयेंगी। सफल होकर ही लौटेंगी। अन्यथा नहीं।

बस, तो जाओ ! मेरा मंगलमय आशीर्वाद, मेरी शुभकामना सदैव तुम्हारे साथ है। **"शिवास्ते सन्तु पन्थानः"। तुम्हारी यात्रा मंगलमय हो ! सुखद हो ! मुझे विश्वास है कि सफलता अवश्य मिलेगी। 'साहसे वसति सिद्धि नोपकरणे'-साहस में ही सफलता निहित है, न कि उपकरण में। तुम्हारे ऐसे अदम्य साहसपूर्ण उत्साह से सब संभव होगा।"** बस, माँ का आशीर्वाद लेकर साश्रुनयन और भारी कदमों से हम अपने मंजिल की ओर चल पड़ीं। रास्ते में अनेक कठिनाईयों का सामना करती हुई गुरु-कृपा से यथासमय सानन्द वाराणसी पहुँचीं। वहाँ पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान के परम माननीय डो. सागरमलजी जैन का सान्निध्य मिला। पूर्ण आत्मीयता के साथ अध्यापन करवाया। महिमावन्त पू. दादा गुरुदेवश्री की अचिन्त्य कृपा एवं ममतामयी माँ के द्वारा प्रदत्त अन्तराशीष से चोवीस महीने का कार्य दस महीने में ही संपन्न हो गया। तत्पश्चात् सम्मेतशिखरादि तीर्थों की यात्रा करती हुई माँ के श्रीचरणों में लौटीं। ज्यों-ज्यों गाँव-शहर समीप आता गया। आपकी प्रसन्नता बढ़ती चली गयीं। स्वाभाविक भी था कि चिरकांक्षित इच्छा सफल होने पर अपूर्व खुशी का अनुभव होना। आपका हृदय रोमाँचित हो गया। जब हमें देखा तो मन गद गद हो उठा और आपके नेत्रों से आनन्दाश्रु छलक उठे। स्वप्न को साकार पाकर हृदय हर्षविभोर हो उठा। ममतामयी माँ ने हमें मानो भरपूर आशीषों से नहला दिया। माँ के साक्षात् दर्शनों का लाभ प्राप्तकर हम तो प्रसन्न थीं ही, स्वयं माँ भी हमें अपने पास पाकर अत्यन्त आनंदित थीं।

22. टिफिन लेकर चला गया

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

जैनशास्त्रों में श्रमण-श्रमणी भगवंतों के लिए बैंतालीस दोषों को टाल कर गौचरी-पानी लाने का विधान बताया गया है। उनमें से एक दोष है-'अभ्याहृत दोष'-अर्थात् सामने लाया हुआ।

आपश्री सामने लाया हुआ आहार-पानी कत्तई पसंद नहीं करती थीं। इस विषय में आप एकदम जागरूक व संयमजीवन की चुस्त चाहक थीं। हमें आपके जीवन के ऐसे दो-चार नहीं, प्रत्युत अनेकानेक प्रसंग स्मरण हो रहें हैं। क्या छोड़ें, क्या लिखें ? फिर भी उनमें से यहाँ एक रोचक प्रसंग का उल्लेख कर रही हैं। विहार में जहाँ-जहाँ जैन समाज के घर नहीं आते थे और कहीं-कहीं जैनेतर घरों में भी गौचरी-पानी मिलना दुर्लभ प्रतीत होता था। ऐसी परिस्थिति में

मजबूरीवश आपको सामने लाया हुआ आहार-पानी लेना पड़ता था। उसमें भी आप खूब पश्चात्ताप करती थीं। **कहती थीं "कई करूँ म्हारा से अब लम्बो विहार नी वे। अणीवास्ते सामे लायेलो खानो पड़े। थाँने सबने तकलीफ देनी पड़े। यो पापी पेट एसोज हे। अणी पेट का खाड़ा ने नी भरा तो दूसरे दिन यो लंबो वेइने सुई जाय।"**
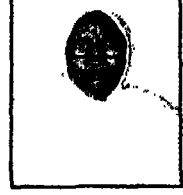
सन् 1980 में आप कुक्षी से विहार कर भोपाल पधार रही थीं। यह घटना तब की है। आप एक नगर में पधारीं। वह नगर न तो छोटा था और न बहुत बड़ा। गौचरी का समय हुआ।

हम दोनों गौचरी लेने गईं। गाँव बड़ा भद्रिक था। लोग श्रद्धालु थे। हमें साधु-साध्वी भगवन्त का कभी योग ही नहीं मिलता है। आज हमारा अहोभाग्य है कि कई वर्षों से साध्वीजी भगवन्त हमारे गाँव में पधारी हैं। इस भावना से वहाँ की भावुक बहनों ने अपने घरों में विविध पदार्थ बनाए थे। हमें जो जरूरत थी, वह ले लिया। एक-दो घर अभी रसोई बनने में कुछ देरी थी। बोले-महाराज साहब ! कुछ तो लाभ दीजिए। खाली मत पधारिए। उनके यहाँ कुछ लाभ देकर उपाश्रय आईं। कुछ देर विश्राम किया। आप से अभी बात कर ही रही थीं। तबतक टिफिन भरकर अपने बड़े बेटे को उसकी माँ ने भक्तिभाव से वहोराने के लिए उपाश्रय में भेजा। आप विराज रही थीं। वह लड़का हाँफता-हाँफता टिफिन लेकर आया। आपने पूछा-"कौन हो भाई ! कहाँ से आए हो ?" हाथ जोड़कर बोला-महाराज साहेब ! मैं दीपचंदजी के घर से आया हूँ। मेरा नाम सुभाष है। मैं उन्हीं का बेटा हूँ। "किसने भेजा है तुम्हें।" बोला-मम्मी ने। "क्यों?" आपको गौचरी वहोराने के लिए। आपने कहा-"गौचरी तो ये लेकर आई हैं न ?" हाँ, महाराज साहब ! लेकर तो आई हैं, पर जब महाराज साहब हमारे घर पधारी थीं, तब रसोई नहीं बनी थी। "तुम्हारे घर इन्होंने कुछ भी लाभ नहीं दिया ?" आपश्री ने उससे पूछा। हमारे घर से केवल एक चम्मच चीनी लेकर आई हैं। "लाभ तो मिल गया न ?" आप दाल-चावल, रोटी मत लीजिए। थोड़ा-सा दूसरा लाभ दे दीजिए। **आपने मुस्कराते हुए मनोविनोद में कहा- "भाई! दूसरा क्या मालपानी लाए हो ?" गरमगरम कचौड़ी, दहीबड़े और मालपूए लेकर आया हूँ। "वह तो हम नहीं लेंगी"**। बोला-क्यों ? महाराज साहब !

आपने कहा-"भाई ! जो चीज हमारे लिए बनायी जाती है, उसे हम नहीं लेती हैं और दूसरी बात अगर हमारे निमित्त नहीं भी बनायी हो, किंतु सामने लाई हुई गौचरी भी साधु-साध्वी भगवन्त को नहीं कल्पती है। अब भविष्य में कभी ऐसी गल्ती मत करना।" जी हाँ, महाराजश्री! अब फिर कभी नहीं लाऊँगा, पर आज तो थोड़ा-सा लाभ दे दीजिए। मैं कितनी दूर से आया हूँ। मम्मी ने कितनी भक्ति-भावना से भेजा है। बस, थोड़ा सा लाभ, महाराज साहब ! "नहीं लिया जाता है, अन्यथा हम ले लेतीं भाई !" आपश्रीने फरमाया।

गिड़गिड़ाते हुए बोला-महाराजश्री ! आपलोग हमें कहती हैं ना ? किसी का मन नहीं दुखाना चाहिए। दिल नहीं तोड़ना चाहिए। इसलिए थोड़ा-सा भी ले लेंगी तो मेरा मन प्रसन्न हो जाएगा। मधुर मिश्री घुली भाषा में कहा,"भाई ! हमें भी दोष लगता है और तुम्हें भी दोष लगता

है। लाभ के बजाय हानि होती है। पुण्योपार्जन के बजाय पापोपार्जन कौन मूर्ख करेगा ? मगर मम्मी ने मुझे भेजा है ना ? कहा था आग्रह करके वहोरा कर ही आना। आपने कहा-"हमारा साध्वाचार का भी तो नियम है। जानबूझकर सदोष आहार क्यों लेवें ?"

तो मैं इस टिफिन का क्या करूँ महाराज साहब ! "आप जो उचित समझे। हमने अपने सारे नियम बता दिए आपको।" वह भाई आपश्री की आचारसंहिता से बड़ा ही प्रभावित हुआ और टिफिन लेकर घर चला गया।

सच्चे अर्थों में साधु स्वादु नहीं होता, वरन् उसका जीवन त्याग, सादगी व संयम की त्रिवेणी में अवगाहन किये होता है, जो अभिवन्दनीय व स्तुत्य होता है।

23. वाह ! गजब का साहस था

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

श्रमण-श्रमणी जीवन में विहार चर्या में रमण करते हुए अनेक कष्ट-परिषह उपस्थित हुआ करते हैं। कभी प्रतिकूल कष्ट आते हैं तो कभी अनुकूल परिषह भी आते हैं। विहार-यात्रा का एक प्रसंग है। बात उस समय की है, जब सन् 1988 में भरतपुर का वर्षावास सानंद सम्पन्न कर आप जयपुर-किशनगढ़ होती हुई जालोर जिले में पधार रही थीं।

पन्द्रह किलोमीटर का विहार कर आप बेरी ग्राम पहुँचीं। सड़क के किनारे पर छोटी-सी धर्मशाला थी। आपने कहा-"शाम का समय है। सुबह पाँच बजे पुनः आगे बढ़ना है। इसलिए बेरी गाँव में जाकर क्या करना ? वहाँ से गाँव एक-दो किलोमीटर दूर था। रात्रि विश्राम ही तो करना है यहीं कर लें।"

धर्मशाला साधारण थी। वहीं पर छोटा-सा मंदिर था बालाजी का। समीप में एक कुँआ था। गाँव के अनेक लोग वहाँ सुबह स्नान करने आते और पूजा-पाठ करके चले जाते थे।

उस धर्मशाला की देखरेख पैंसठ-सित्तर वर्षीय एक भगवा वस्त्रधारी बाबा करता था। सूर्य ढल चुका था। साथ में कोई नौकर आदि था नहीं। **साथ में था केवल नवकार महामंत्र और परमाराध्यपाद दादा गुरुदेव की अचिन्त्य शक्ति।**

धर्मशाला के आसपास न था कोई मकान और न थी बस्ती। थोड़ी दूरी पर एक होटल थी।

धर्मशाला भी चारों ओर से खुली थी। उसमें न तो दरवाजे थे और न थीं खिड़कियाँ। बाहर बरामदा था और भीतर एक कमरा था बिना दरवाजे का। वहीं पर एक कुटिया थी जिसमें वह बाबा रहता था। (अब तो वहाँ बालाजी का बड़ा मंदिर और बहुत बढ़िया धर्मशाला बन गई है।)

आपने बाबा से पूछा-"यहाँ हम ठहर सकती हैं ?" बोले -हाँ, माताजी! संध्या प्रतिक्रमण करने के पश्चात् कुछ समय स्वाध्याय-जाप-माला आदि करके संथारा किया सभी ने। आपने

हम से कहा-"वैसे तो कोई चिंता की बात नहीं है, फिरभी सतर्क-सावधान रहना है, क्योंकि सड़क का रास्ता है और कमरा बिल्कुल खुला है।" बालाजी मंदिर में एक दीपक टिमटिमा रहा था। अमावस्या की रात थी। मृगसिर महीना था। सर्दी का मौसम था। रात्रि के ग्यारह बज चुके थे, किंतु अभी आपको नींद नहीं आई थी। पतली मलमल की चादर मुँह पर ढँककर आप सोई हुई थीं। उसमें से सब दिख रहा था। आप जागरूक थीं। आपको नींद आती कैसे ?
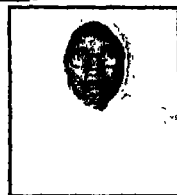
उधर बाबा के दिल-दिमाग में गंदे-कुत्सित विकारयुक्त विचार प्रविष्ट हो चुके थे। पता नहीं, उसने अपने मन में क्या सोच रखा था ? उसने पहले एकबार कमरे की तरफ झाँककर देखा। पुनः चला गया। आपको किसी आदमी की परछाई दिखाई दी, किंतु आप तनिक भी भयभीत नहीं हुईं, क्योंकि **आपके पास आपका महाबली महामंत्र नवकार और गुरुदेव की शक्ति थी। साथ ही उनका अपूर्व आत्मबल था, साहस था और थी निर्भीकता।** पुनः पन्द्रह-बीस मिनट के बाद वह बाबा पैरों की आहट किए बिना धीरे-धीरे कमरे में घुसा। जैसे ही आपने उसे अपने सन्निकट आता हुआ देखा। आप सारी परिस्थिति भाँप गईं। **आप एकदम उठ खड़ी हुईं, लिया डंडा हाथ में और सिंहनी की भाँति गरजते हुए कहा-"खबरदार ! हमारे समीप आया तो !" इतना दहाड़कर तीन-चार बार जमीन पर डंडा जोरों से मारा और फिर सिंहनी की तरह गरजी-"यहाँ क्यों आया रात को ? चुपचाप चला जा यहाँ से। नहीं तो खैर नहीं है।"** इतना सुनते ही वह घबराते हुए धीरे से दबी आवाज में बोला-अम्मा ! कुत्ता है, कुत्ता है। कुत्ता आया है अंदर। अंधेरे में दिखाई नहीं दे रहा है। इसलिए आया हूँ। आपने कहा-मुझे सब दिखाई दे रहा है। कुत्ता तू है। तू बाबा है या ढोंगी ? तू स्वयं संत-महात्मा होकर महात्माओं को बुरी निगाह से देखता है ? ठहर... अभी बुलाती हूँ होटलवाले को और अभी बताती हूँ, कुत्ता आया है या बिल्ला आया ? चल, बाहर हो जा। यहाँ एक क्षण भी खड़ा रहा तो तेरी खैर नहीं है। क्या समझ रखा है तूने ? आपकी ऐसी सिंह गर्जना सुनकर बाबा काँप उठा और हाथ जोड़ कर बोला-अम्मा ! गल्ती हो गई , क्षमा करना। मैंने आपको परेशान किया। अम्मा ! माफ कर दो। मैं अज्ञानवश यहाँ आ गया। अब कभी ऐसी भूल नहीं करूँगा। यह बात किसी से कहना मत। नहीं तो मुझे यहाँ कोई नहीं रहने देगा। माफी माँगता हुआ वह अपनी कुटिया में चला गया और आपने सारी रात जाप-माला में व्यतीत की। इतने वर्षों में हमने पहली बार उसदिन आपका चंडिका जैसा उग्र रूप देखा।

वाह ! गजब का साहस !
घबराना, डरना तो जिनके
जीवन-कोष से कोसों दूर था।
धन्य है तू माँ ! सीखा गई
और दिखा गई निर्भिकता को,
सच्चा मार्ग जो जीवन को बनादे निर्भय
और कर दे वीरता का संचार...।
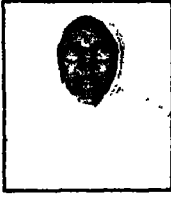
24. धन्य है आपका धैर्य एवं साहस !

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

सन् 1987 की घटना है। आप पू. श्रीमद् यतीन्द्रसूरि गुरुजन्मभूमि धौलपुर पधार रही थीं। वह मार्ग बहुत ही विकट एवं भयावह है। एकबार विहार में रास्ता भूल गयीं। संध्या का समय था। अंधेरा होनेवाला था। एक गाँव में पहुँचीं। ग्राम में पहुँचते ही सामने से आता हुआ एक व्यक्ति मिला। बड़ा सज्जन दीख रहा था। साधु-संत के प्रति आस्थावान् था। उसने आश्चर्य के साथ पूछा- महाराज ! आप यहाँ कैसे आये ? आप को कहाँ जाना है ? आपने कहा-"भाई ! हमलोग धौलपुर जा रही हैं ?" वहाँ क्या है ? क्यों जा रही हैं ? "वह हमारे गुरुमहाराज की जन्मभूमि है।" "पर यह धौलपुर का रास्ता नहीं है माताजी ? आपने धौलपुर की सड़क छोड़ दी और दूसरी सड़क पकड़ ली है।" फिर उसने धीरे से कहा- "मातेश्वरी ! यह डाकुओं का गाँव है। आप मेरे साथ चलिए। यहाँ ठहरने में तो बड़ा खतरा है।"

दो किलोमीटर पर उसका घर था। वहाँ ले गया। गर्मी के दिन थे। उसके बाहर आँगन में ठहर गयीं। हम दोनों थोड़ी घबरा रही थीं। अब क्या होगा ? आज तो बड़े उभयतोपाश में फंस गईं। इतने में गाँव से चार-पाँच लोग हाथ में लाठी लेकर आ गए। उन्हें देखकर हम दोनों थोड़ी भयभीत हो गईं। यद्यपि वे लोग हमारी रक्षा के लिए आए थे। वे बाहर बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। हमारी मन:स्थिति को भाँपकर आपश्री ने कहा-"अगर तुम्हें नींद आ रही हो तो चुपचाप सो जाओ। मैं बैठी हूँ। मुझे अभी माला भी गिनना है। **जिसके पास नवकारमंत्र है, उसे भय किसका है ?"** वास्तव में, रात्रि निर्विघ्न पूरी हुई। प्रात:काल उन लोगों ने सड़क पर पहुँचा दिया और ठीक से रास्ता भी बता दिया। दो-तीन घंटे में धौलपुर के निकट पहुँच गयीं आप। भरतपुर, किशनगढ़, भोपाल, आगरा, जैसलमेर आदि अनजान स्थलों पर विहार करते समय ऐसे कितने ही प्रसंग आए, परन्तु आप धैर्य से कभी विचलित नहीं हुईं और न कभी घबराईं। कैसी भी आपत्ति आ जाने पर, आप घबराती नहीं थीं।

धन्य है आपका धैर्य एवं साहस !

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि जब कर्मवीर व धर्मवीर व्यक्ति अपने सशक्त कदम साधना-मार्ग पर अग्रसर करता है तो व्यवधान व बाधाएँ स्वयं हट जाती हैं।

25. नियम में अडिग

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आकोली, जिला-जालोर (राज.) में एकबार आप अचानक अस्वस्थ हो गईं। प्रारंभ में कुछ दिन तो ज्वर से पीड़ित रहीं। फिर धीरे-धीरे अशक्त हो गईं। संथारे से उठने की हिम्मत नहीं रही। यहाँ तक कि स्थंडिल व मात्रा (लघुशंका व बड़ीशंका) के लिए उठना भी मुश्किल

हो गया था। घरेलू उपचार चल रहा था। आकोली श्रीसंघ ने अति आग्रह किया-डोक्टर सा. को लाने एवं अंग्रेजी दवाई लेने हेतु, लेकिन आपने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया। श्रीसंघ ने इस बात पर बल दिया कि यदि आप अंग्रेजी दवाई नहीं लेंगी तो कैसे काम चलेगा ? दिन-प्रतिदिन आपकी हालत बिगड़ती जा रही है। आपने एक ही जवाब दिया-"मुझे अंग्रेजी दवाई नहीं लेनी है, मेरा नियम है और डोक्टर को भी नहीं बुलवाना है। डोक्टर सा. क्या करेंगे ? जब अशातावेदनीय कर्म... समाप्त होगा तब शातावेदनीय कर्म का उदय होगा। सुख-दुःख तो कर्मजन्य है। फिर इससे घबराना क्यों ? कतराना क्यों ? अपने को दोनों से परे रहकर आत्मभाव में रहना है।"

कर्मसिद्धान्त के प्रति आपके मन में अपूर्व निष्ठा थी। इसीलिए उस वेदना में भी आप सदैव प्रसन्न रहती थीं तथा समभाव से व्यथा को सहती थीं। इसी बीच आपकी अस्वस्थता का पता लगने पर मदनगंज से श्रीज्ञानचंदजी, श्रीचंदजी, श्रीमाणकचंदजी आदि आये और उन्होंने भी आपको अंग्रेजी दवाई लेने के लिए खूब निवेदन किया।

किंतु आप पर किसी का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। आप सुनती थीं सभी की, पर करती थीं अपने मन की ही।

एकदिन आपकी हालत बहुत बिगड़ गई और मरणासन्न स्थिति में पहुँच गईं। उसीवक्त आपके ज्येष्ठ सुपुत्र श्री राजमलजी जमींदार और पुत्रवधू पुनीबहन को फोन करवाकर बुलवाया गया। इन्दौर से आने पर उन्होंने जब ऐसी गंभीर हालत देखी तो आपको खूब आग्रह किया अंग्रेजी दवाई लेने हेतु। **किंतु आप नहीं मानी सो नहीं मानी। चाहे संघ हो, चाहे बेटा हो। नहीं लेना सो नहीं ही लेना। किसी की हिम्मत नहीं, जो उन्हें अपने अडिग नियम-संकल्पों से तनिक भी विचलित कर सके !**

जब कभी इसतरह की छोटी-मोटी व्याधि, जैसे-ज्वर, जुकाम, सर्दी, [illegible] आदि आते तो उनकी सोच यही रहती कि यह सब मेरे पूर्वबद्ध कर्मोदय का ही परिणाम है। जब हमने हँस-हँसकर कर्म बांधे हैं तो भुगतान करते समय क्यों रोना ? इसतरह वे शान्त-समता भाव से हर वेदना को सहन करती थीं।

26. वाणी की छाप छोड़ दी

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आपका सन् 1992 का चातुर्मास भीनमाल नगरी में था। वहाँ के श्रावक-श्राविकागण आपकी कठोर चर्या से बड़े प्रभावित थे। वहाँ के दालढोकले और रोटी की बनी दालढोकली बहुत प्रसिद्ध है।

एकदिन प्रवचन समाप्ति के पश्चात् हम माघकालोनी गौचरी लेने गईं। एक घर में

'धर्मलाभ' कहकर प्रवेश किया। पर अभी वहाँ रसोई बनने में पाँच-दस मिनट की देरी थीं। भीतर से एक बहन बोली-"बावसी ! पासा वलता मोरे घरे जरुर लाभ देन जाजो। दाल ढोकली चूलाह माथे हे। आप जरूर-जरूर पधारजो। हो के बावसी।"

हम गौचरी लेकर महावीरजी आ गईं। बस, गौचरी करने बैठी थीं, तबतक दौड़ती-भागती, हाँफती-हाँफती वही बहन (नाम याद नहीं आ रहा है) एक स्टील की केटली में गरमागरम ढोकली लेकर आई। दरवाजा थोड़ा-सा बंद था। उसने आवाज लगाई-बावसी ! ओ बावसी !! आपने भीतर से पूछा-"क्यूं कई वात है ? गोचरी करवा बेठा हाँ।" "बावसी ! थोड़ो कमाड़ तो खोलो ने मने थोड़ो गोचरी रो लाभ दियो ने ?" इतना कहकर उसने दरवाजा खोला। आपने कहा-"अरे ! काणनो लाभ ? लाभ तो अमार देन आया हे न ? वरे काणनो लाभ।" वह बोलीं-"बावसी ! पण मने तो लाभ मलियो ज नी है। मूँ थोरे वास्ते गरम-गरम मसालावाली ढोकली लेन आई हूँ। आपरे ठीक रेइ ला। थोड़ी लियो न परी।"

आपने कहा-"साधु रे होमे लायोड़ी नी कल्पे। क्युं जिद करे रीया हो। मारे नी खपे।" बोली-"नी बावसी ! थोड़ी तो ढोकली लेनी स पड़ी। मुँ तो आपरे वास्ते लेन आई हूँ नी ? तब आपने स्पष्ट मना कर दिया और समझाते हुए कहा - "बेन ! युँ करवाथी थोने य दोष लागे ने मोने पण दोष लागे। कदीए युं नी करणो हो। करम बंधीजे।" उस बहन पर आपके वचनों की गहरी छाप पड़ी और उल्टे पावों से उस कठोरव्रती संयम-साधिका के आगे श्रद्धा से सिर झुकाती हुई लौट गई।

27. हँसकर सहा

- साध्वीद्वय डॉ. प्रिय-सुदर्शनाश्री

भीनमाल नगर की सन् 1998 की घटना है। वह दृश्य आज भी स्मृति पटल पर आते ही रोम-रोम सिहर उठता है।

एक रात की बात है। आपकी सुखपूर्वक संयम-यात्रा चल रही थी, **पर यह कर्मसत्ता बड़ी विचित्र है। कभी भी, कहीं भी और कैसी भी परिस्थिति में हमारे शातावेदनीय (सुख) को छीन सकती है।**

महावीरजी मंदिर के विशाल प्रांगण में एक बहुत बड़ा-हॉल था। उसके बाहर बरामदा भी था। रात्रि में संथारा (शयन) सभी बरामदे में करती थीं। संथारा करते वक्त हमेशा आप से विनम्र स्वरों में कहकर सोती थीं-महाराजजी ! जब भी आपको बाहर पधारना हो, जरा आवाज लगाकर उठा दीजिएगा, लेकिन नींद में से किसी को जगाना उनके स्वभाव में ही नहीं था। उनके जीवन का यह मूलमंत्र था कि वे किसी को यहाँ तक कि हमें (अपनी पौत्रियों को) भी तकलीफ नहीं देना चाहती थीं। स्वावलंबिता से उन्हें बड़ी संतुष्टि मिलती थी। पराधीनता-परावलम्बिता से वे

कोसों दूर रहती थीं।

वर्षावास प्रारंभ होने से तीन दिन पूर्व आषाढ़ शुक्ला एकादशी की रात को बाहर बरामदे में सभी ने संथारा किया। रात को आप प्रतिदिन की भाँति मात्रा (लघुशंका) करने हेतु उठीं। चारों ओर नजर दौड़ाई, पर मातरिया (प्लास्टिक प्याला) कहीं नजर नहीं आया। योग-संयोग की बात है, उस रात काफी हवा चल रही थी। अत: प्याला उड़कर नीचे गिर पड़ा था। आपने नीचे की ओर थोड़ा झुककर देखा तो वह दिखाई दिया। आपने हमें जगाया नहीं और स्वयं ही सीढ़ियाँ उतरकर नीचे जाने लगी। नजर चूक जाने से आप एकदम धड़ाम से औंधे मस्तक नीचे गिर पड़ीं, जिससे बाये हाथ की कलाई में चोट लगी, हड्डी टूट गई। उन्होंने उठने की काफी कोशिश की, परन्तु उठा ही नहीं गया। अत्यधिक पीड़ा होने लगी। तब आपने हमें आवाज लगाईं-"प्रियदर्शना! सुदर्शना!" आवाज कानों में पड़ते ही हम हड़बड़ाकर उठ बैठीं। दौड़कर नीचे भागीं। आपकी यह हालत देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो गये। बड़ी मुश्किल से उठाकर आपको पाट पर बिठाया। तीन बजे थे। सोचा, रात्रि में क्या करें? कहाँ जाएँ? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। तुरंत स्मरण हो आया डो. दूदराजजी जैन का। भोजनशाला में फोन था। अत: उसीवक्त किसी नौकर से कहकर उन्हें फोन करवाया। वे तुरंत आये। उन्होंने देखते ही कहा-यह तो फैक्चर हो गया है। उन्होंने अविलंब लकड़ी के चोकोर टुकड़े के सहारे कसकर कपड़े की पट्टी बाँध दी। पीड़ा बढ़ती जा रही थी। नव्वासी साल की आयु में असह्य पीड़ा सहन भी कैसे हो? इतना दर्द होने पर भी आप अपने आप में संतुलित थीं। सिर्फ इतना ही कहा-"**प्रियदर्शना! सुदर्शना! यो हाथ म्हारे घणो दु:खी रयो है।**" सामान्य वेदना में तो वे न किसी से कहती थीं और न कभी कुछ किसी को बताती थीं। सुबह पट्टा चढ़ाया गया, पर दर्द कम नहीं हुआ। डोक्टर सा.ने हाथ का एक्सरे करवाने के लिए कहा, किन्तु वह स्थान एक किलोमीटर दूर था। श्रावकों ने कहा - हाथलारी में ले चलें। असह्य पीड़ा में भी हाथलारी का नाम सुनकर आप नाराज हो गईं। बोलीं-"**जणी के बेठनो वे वो बेठ जावो, म्हारे तो नी बेठनो हे। छो दुखी रयो म्हारो हाथ।**" सभी ने समवेत स्वर में कहा- महाराज साहब! एक्सरे तो करवाना ही पड़ेगा। यदि आप हाथलारी का उपयोग करना नहीं चाहती हैं तो डोली या स्ट्रेचर में बिठाकर ले चलें। यह भी आपको कत्तई स्वीकार्य नहीं था। **आपने दृढ़ता के साथ कहा-"आजतक तो कोई वाहन नी लगायो। अब छेली उमर में क्यूँ वाहन को उपयोग करूँ? पूरवलाभव में अणी जीवे कोई पाप बाँध्या वेगा। वी अब उदय में आया हे। अणी जीवे हँसी-हँसीने बाँध्या तो अब रोवा से कई वेगा। जो बाँध्या हे वीतो भुगतना ज पड़ेगा। अणी में बीजा को कोई दोष नी। यो जीवी ज बाँधे, ने यो हीज भुगते। जितरा दिन का बांध्या वेगा, वतरा दिन तो भुगतना ज पड़ेगा। लाख दवई लेलो, लाख डोक्टर-हकीम या वैद्यने बुलइ लो पर कइ व्हेणो जाणो नी हे।**" इसका मतलब यह भी नहीं था कि उनमें हठवादिता थी। मगर उन्हें कर्मवाद पर पूर्ण विश्वास था।

सभी ने करबद्ध विनम्र निवेदन करते हुए कहा-बावसी ! आपकी सब बात सही है, किन्तु एकबार एक्सरे तो करवाना ही पड़ेगा । आपका जवाब था-"अगर एक्सरे करवाना ही पड़ेगा तो मैं धीरे-धीरे पैदल चलकर वहाँ जाऊँगी ।" ऐसे दर्द में भी उसी वक्त पैदल चलकर गईं और एक्सरे करवा कर पुनः मुकाम पर आईं । हाथ की हड्डी में फैक्चर था । अतः प्लास्टर चढ़ाकर पट्टा बाँधा गया, परन्तु राहत मिलने के बजाय और अधिक दर्द होने लगा । दूसरे दिन आपने फरमाया-"तत्काल निकलवा दो इसे, मुझे बिल्कुल चैन नहीं पड़ रही है ।" निकाल दिया गया । फिर भी दर्द में कमी नहीं हुई । जबर्दस्ती पुनः दूसरा पट्टा बँधवाया गया । कुछ दिन बाद उससे थोड़ी राहत मिली । पूरीतरह से आराम अभी भी नहीं हुआ था और होता भी कैसे ? सभी के कहने-सुनने के बावजूद भी आपने इंजेक्शन-कैप्सूल, दवाई अथवा टॉनिक-विटामिन जैसी किसी भी शक्तिवर्धक वस्तु का उपयोग नहीं किया ।

बहुत ज्यादा आग्रह करने पर देशी पुड़ियाँ और आठ-दस दिन गुड़की राब बड़ी मुश्किल से ली । पट्टा बँधा होने से उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे मैं बेड़ियों में जकड़ गयी हूँ । मुझे किसी ने बाँध दिया है । पराधीनता महसूस हो रही थी । इतना ही नहीं, हाथ इधर-उधर नहीं होने से प्रतिलेखन, संथारा आदि करवाने में उन्हें खूब अफसोस-पश्चात्ताप होता था । अन्तर्मन में ग्लानि-सी महसूस होती थी । हमारी आँखें छलछला आतीं और सोचतीं कि आजतक कभी भी हमें लेशमात्र भी आपकी सेवा-शुश्रूषा करने का मौका ही नहीं मिला । अभी भी कुछ नहीं कर पा रही हैं, फिर भी आप इतना पश्चात्ताप क्यों करती हैं ? क्या हमारा फर्ज नहीं है कुछ भी ? जो आपको इतना अफसोस करना पड़ रहा है । आप बारबार यह भी कहती थीं कि-"मेरे कारण तुम्हारे ज्ञान-ध्यान, पढ़ाई-लिखाई व स्वाध्याय में कितना व्यवधान हो रहा है ? मैं तो पूरीतरह से पराधीन बन गई हूँ ।"

पू. दादीजी महाराज साहब के बारे में हम कहाँतक बताएँ ? कितना बताएँ ? 'मुझे इनसे कुछ करवाना पड़ेगा' इस भय से उन्होंने गौचरी-पानी वापरना भी एकदम कम कर दिया था ।

असह्य पीड़ा में भी आपकी ऐसी अद्‌भुत सहिष्णुता देखकर श्रावक-श्राविकागण चकित रह गये । एक्सरे करवाकर जब आप मुकाम पर पहुँचीं तो विमला बहन भीमाणी ने कहा-बावजी ! आप में तो गजब की सहिष्णुता है ! इतनी सहिष्णुता मैंने आजतक किसी में नहीं देखी ! आपने उसी शांति के साथ कहा-"अरे ! मेरी क्या सहिष्णुता है ? हाथ की थोड़ी सी हड्डी ही तो टूटी है । हमारे पूर्वज महापुरुषों की तो समूचे शरीर की चमड़ी ही उतार दी गई थी । फिरभी उनके चेहरे पर शिकन नहीं आई । हमारे समक्ष तो सहिष्णुता और समता का वही आदर्श है ।"

आपको उपदेशात्मक मधुर वाणी सुनकर उपस्थित सभी लोग मुग्ध हो गये और आपकी अद्‌भुत सहिष्णुता की सराहना करने लगे ।

28. अब कौन ?

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री
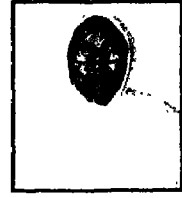
सन् 1995 की चातुर्मास काल की एक रोचक घटना है। हम गौचरी लेने गईं। 'धर्मलाभ' कहकर एक घर में प्रवेश किया। घर में अन्य कोई था नहीं। केवल एक बुढ़िया थी। उसके बहु-बेटे बोम्बे रहते थे। साधु-संतों के प्रति उसकी बहुत भक्ति-भावना थी।

पात्र रखा। बुढ़िया ने वहोराने हेतु कटोरदान में से एकसाथ तीन-चार रोटियाँ उठाईं। हमने कहा-"माँजी ! रोटी की बिल्कुल खप नहीं है। गौचरी आ चुकी है। आप सिर्फ एक चम्मच चीनी ले लो। लेकिन वह भी कम नहीं थीं। रोटी वहोराने (देने) के लिए जिद्द करने लगी। बोली-चाहे कुछ भी हो, आज तो मेरे हाथ से दो रोटी लेनी ही पड़ेगी। आपने कभी भी मेरे घर से रोटी नहीं ली। क्या रोटी ठंडी है ? मोटी है, कच्ची है या कम चुपड़ी हुई है ? क्यों नहीं लेते मेरे घर से ? आखिर बात क्या है ? आप जब भी मेरे घर आते हैं, दो दाने चीनी (शक्कर) के लेते हैं ? कुछ भी हो ! आज तो मैं आपको रोटी वहोरा करके ही रहूँगी।

अब बुढ़िया से पीछा कैसे छुड़ाया जाय ? समस्या खड़ी हो गई हमारे सामने। पशोपेश में पड़ गईं। क्या करें ? बुढ़िया को समझाया कैसे जाय ? उससे कुछ कहते भी, पर वह सहजता से समझनेवाली नहीं थी।

बात यह थी कि जब देखो तब, वह बुढ़िया तम्बाकू सूंघती रहती थी। इसलिए उसके हाथ से रोटी लेने में हमें घृणा हो रही थी। रोटी ठण्डी है या गरम। इसकी चिंता हमें नहीं थी। **वास्तविकता यह थी कि तम्बाकू बार-बार सूंघने के कारण बुढ़िया के नाखून व अंगुलियों पर तम्बाकू लगी हुई थी। इतना ही नहीं, उसकी नाक पर भी तम्बाकू इधर-उधर चिपकी हुई थी। देखकर जी खराब हो रहा था।**

बस डर यही था कि पात्र पकड़कर यदि माँजी ने दो रोटी जबर्दस्ती पात्र में डाल दी, तो इन्हें खायेगा कौन ? श्लेष्म, तम्बाकू व बड़े-बड़े नाखूनवाले हाथ आदि फूहड़ जैसी प्रवृत्तियाँ देखकर बचपन से ही हमें घृणा होती थी और आज तक वैसी ही घृणा बनी हुई है।

यद्यपि हम मानती हैं कि श्रमणी जीवन में ऐसा होना नहीं चाहिए। फिरभी हमारी यह बहुत बड़ी कमजोरी है।

कोई छूटने का रास्ता नहीं था। आखिर एक रोटी लेनी ही पड़ी। वह **'इकलौती रोटी'** अलग खाली पात्र में रख दी। गौचरी लेकर मुकाम पर पहुँचीं। कुछ समय बाद आप गौचरी करने बैठीं। **'इकलौती रोटी'** वाला पात्र खोला। हम हँसी को रोक नहीं पाईं। दोनों पेट पकड़-पकड़ कर खूब हँसने लगीं। आपने कहा-क्या बात है ? इतनी हँस क्यों रही हो आज ? क्या हुआ ? हँसी रोककर तम्बाकूवाली बुढ़िया की आद्योपान्त घटना सुना दी। आप भी खूब हँसी। आप हमारी आदत से अच्छीतरह परिचित थीं ही। जानती थीं इनसे खायी नहीं जाएगी। अगर किसीतरह खा भी ली तो वमन हो जाएगा। प्रसन्न व सहज मुद्रा में आपने कहा-"**लाव या रोटी**
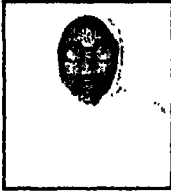
म्हंने दे दे। म्हें वापरी लूँगा। म्हंने कई नी वे। तुमारा से नी खवायगा।" आपने वह रोटी सहजभाव से बिना नाक-भौं-सिकोड़े वापर (खा) ली। हम तो देखती ही रह गईं। सच में उन्होंने घृणा पर विजय पा ली थी।

आज भी जब कभी गौचरी में ऐसी कोई चीज आ जाती है तो आप सामने बैठी हुई नजर आती हैं और आपके वे शब्द कानों में गूँजते हैं — **लाव या रोटी म्हंने दे दे। तुमारा से नी खवायगा।" ऐसी थीं हमारी ममतामयी दादीमाँ।**

अब कौन ?

धन्य है उस ममतामयी दादीमाँ को !

29. सत्संकल्पों की धनी

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

ईस्वी सन् 1998 की घटना है। माघ महीने की बात है। भीनमाल महावीरजी मंदिर के विशाल होल में आपश्री विराजित थीं।

एकदिन गाय दरवाजे पर आ गई और सहजभाव में आप दरवाजा बंद करने गईं तो वह उनके सम्मुख दौड़ आई। जैसे ही वे अन्दर की ओर भागीं तो गाय भी उनके पीछे-पीछे दौड़ी और उन्हें गिरा दिया। मैं (प्रियदर्शना) कमरे में पात्र साफ कर रही थी और सुदर्शनाश्रीजी वहाँ थी नहीं। आपश्री जोरों से चीख उठीं-प्रियदर्शना ! मैं दौड़ी और गाय को किसीतरह बाहर किया, पर आपश्री गुरुमहाराज के पाट से टकराकर ऐसी गिरीं कि चश्मा कहीं और आप कहीं ओर ! आप गिरते ही कुछ समय के लिए बेहोश-सी हो गईं। मैंने उसीक्षण आपके सिर को गोद में लेकर बाम से खूब मालिश की। सिर में अधिक चोट आने से चमड़ी रोटी के समान फूल गई थी। यह तो आपका पुण्य प्रबल था, जो बाल-बाल बच गईं। चन्द मिनटों में श्रावकगण वहाँ इकट्ठे हो गए। सभी ने एक ही बात कही-डॉक्टर को बुलाओ या अभी हॉस्पिटल ले चलो। होश आने पर डॉक्टर को बुलाने एवं हॉस्पिटल ले जाने की चर्चा आपके कानों में पड़ी। उसी वक्त आपने कहा-"न तो डॉक्टर को बुलाना है और न मुझे हॉस्पिटल ही जाना है। मेरा डॉक्टर तो मेरे पास है। आप तनिक भी चिंता न करें। आंबा हल्दी लाने का अवसर देखें। उसका कुछ दिन लेप करने से गुरुदेव की कृपा से सब ठीक हो जायेगा। बस, आंबा हल्दी का लेप और हल्के हाथ से तेल की मालिश करने से आपश्री कुछ ही दिनों में पूर्ववत् स्वस्थ हो गयीं। इसप्रकार आपश्री ने अपने सुदृढ़ आत्मबल के समक्ष शारीरिक कष्ट को सदा गौण ही माना।

आपकी चारित्रिक दृढ़ता को हमारी इन आँखों ने अनेकबार देखा है।

जिनके अडिग सत्संकल्पों के आगे सभी नतमस्तक हो जाते थे।

30. जाप का प्रभाव

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आज सन् 1999 की भीनमाल से धाणसा विहार दरम्यान की एक घटना स्मरण हो रही है।

धाणसा नगर प्रवेश करने के एक दिन पूर्व रास्ते में ठहरने लायक कोई उचित स्थान नहीं था। अत: टैंट में ठहरना पड़ा। वहाँ पहुँचने के एकाध घण्टे बाद भयंकर प्राकृतिक उपद्रव शुरू हुआ। करीबन दस बजे थे। जोरों से आँधी तूफान चलने लगा।

समस्या यह थी कि गौचरी कैसे की जाय ? बालूरेत-कंकर उड़ रहे थे। सभी के संथारा के कपड़े (ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र), उपधि, आसन आदि बुरीतरह से धूल-धूसरित हो गये थे। टैंट उड़ने लगे। लग रहा था टैंट अभी गिर जाएँगे। कुछ टैंट गिर भी गये थे। कुछ स्थिर रह गए। ऐसा होते-होते संध्या हो गई। संध्या को पुन: आँधी-तूफान ने जोर पकड़ा। घनघोर घटाएँ उमड़ने लगी। बिजली कड़कने लगी। वायु ने प्रभञ्जन का रूप धारण कर लिया। वायु के प्रबल वेग से एक टैंट पुन: गिर पड़ा। आप जिस टैंट के नीचे बैठी थीं। केवल वही सुरक्षित था। चारों ओर घना अंधेरा हो गया। पानी की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं। वर्षा आरंभ हो गई। हवा और पानी का प्रकोप कुछ देर चलता रहा।

आपश्री टैंट के नीचे लकड़ी के तख्ते पर विराजमान होकर जाप कर रही थीं। हम लोग भी उनके पास बैठ गईं। धाणसा से श्रीमाँगीलालजी हरखाजी आदि शाम को ही अपनी गाड़ी लेकर वहाँ पहुँच गए थे। उन्हें भी बड़ी चिंता हुई। अब रात को कैसे क्या करना ? क्या होगा ? श्रीमाँगीलालजी अत्यधिक व्यग्र हुए। आपसे कहा-बावसी ! इतना जोरों से आंधी-तूफान चल रहा है। वर्षा भी हो रही है। यदि मूसलधार बारिश शुरू हो गई तो कैसे क्या होगा ? यहाँ जंगल में तो कोई और व्यवस्था ही नहीं है। शान्त-सौम्य भाव से आपने उन्हें धैर्य बंधाते हुए निर्भयतापूर्वक कहा "घबराओ मत ! यहाँ अपनी सुरक्षा गुरुदेव ही करेंगे। हम और आप क्या कर सकते है ? सारी चिंता उन्हें ही करना है। आपके मधुर शब्दों को सुनकर वे चुप रह गये। मध्यरात्रि के बारह बजे तक प्रकृति का यह प्रकोप जारी रहा।

आप एकाग्र होकर गुरुदेव का जाप कर रही थीं। हमें भी जाप करने का निर्देश दिया तथा आगन्तुक श्रावकों को भी जाप करने हेतु कहा।

आपके आदेश से सभी जाप कर रहे थे। **नवकारमंत्र व गुरूदेव के जाप का ऐसा चमत्कार हुआ कि बारह बजे बाद आँधी-तूफान व बारिश का उपद्रव एकदम शांत हो गया। वह भयंकर प्राकृतिक उपद्रव भी नवकार व गुरूदेव के प्रभाव से किसी का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सका।**

पूर्णत: सभी को सुरक्षित देखकर उन श्रावकों का हृदय आनंदविभोर हो उठा। विषम परिस्थिति में भी आपके द्वारा धारित धैर्य, दृढ़ता एवं अटूट श्रद्धा की सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

31. अध्यात्म चेतना का पर्याय

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

ईस्वी सन् 1992 का प्रसंग है। चातुर्मासकाल में आप भीनमाल-महावीरजी-मन्दिर की विशाल धर्मशाला में विराज रही थीं। एकदिन गौचरी के बाद हमने सहजरूप से निवेदन किया महाराजजी ! चलिए, आपको उपाश्रय में थोड़ा घूमा दें। इस होल में ही आप दो-तीन चक्कर लगा लीजिए, आपके स्वास्थ्य के लिए ठीक रहेगा। दिनभर बैठे रहने से आपके पैरों में दर्द होता होगा। यह सुनते ही वे मुस्करा दीं। उन्होंने जो कुछ कहा था, वह आज भी यथावत् स्मृति-पटल पर अंकित है। उनकी हर बात में अध्यात्म का पुट होता था। वे बोलीं-"**यह जीव चिरकाल से चोवीस दंडकों में घूम रहा है। मार खा-खाकर यहाँ तक पहुँच पाया है, अब और कितना घूमना शेष रह गया है ?**

तुम मुझे होल में चक्कर लगाने का कह रही हों, पर चौरासी का चक्र तो सतत प्रवहमान ही है और यह चक्र तबतक रहेगा, जबतक यह आत्मा जन्म-मरण की इस श्रृंखला को तोड़ नहीं देगी ?

श्रमणीजीवन में घूमने या चक्कर लगाने का समय ही कहाँ रहता है ? अभी तो स्थंडिल जाना है, प्रतिलेखन करना है, और स्वाध्याय-माला-जापादि भी करना बाकी है। जैसे-गृहस्थों के पास पैसों की तंगी होती है, वैसे ही श्रमणी-जीवन में समय की तंगी रहती है। इसतरह समय बरबाद करने से क्या फायदा ? वे क्षणमात्र भी व्यर्थ खोना नहीं चाहती थीं।

शास्त्रों में गौचरी-पानी, स्थंडिल-मात्रा तथा विहारादि (आहार-निहार व विहार) विशेष कार्य के सिवाय साधु-साध्वी भगवन्त के लिए अपने आसन से उठने का विधान ही नहीं है। फिर घूमने और इधर-उधर चक्कर लगाने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? यथार्थतः श्रमण-श्रमणी-जीवन में 'घूमने' शब्द का प्रयोग ही नहीं होता है।"

हमने अपनी गुरुणीजी महाराज साहब के पास कभी भी किसी को घूमते हुए नहीं देखा। यह घूमने का फैशन तो आजकल चल पड़ा है।

32. परनिर्भरता से दूर

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

काफी पुराना संस्मरण स्मृति पटल पर आ रहा है। सन् 1975 की बात है। आप मंदसौर से विहार कर उज्जैन (म.प्र.) पधार रही थीं। विहार यात्रा प्रारंभ हुई। आपको रास्ते में यकायक सर्दी-जुकाम व खाँसी ने जकड़ लिया। अतः हमने आप से उपधि, आसन, वस्त्र व स्थापनाजी का थैला आदि उपकरण देने हेतु विनम्र निवेदन किया। वैसे सामान्यतः आप कभी भी देती नहीं थीं। विहार करने में अभी कुछ विलंब था। हम मंदिरजी दर्शन करने चली गईं। जैसे ही

पू. दादीजी म.सा. धार्मिक क्रिया करती हुई

पू. दादीजी म.सा. वासक्षेप प्रदान करती हुई

पू. दादीजी म.सा. से संसारपक्षीय सेवापरायणा पुत्रवधू श्रीमती पूनमदेवी मांगलिक श्रवण करती हुई

वहाँ से लौटीं। देखकर चकित रह गईं। आप तो हमारे आने से पहले ही कमरिया (कमर) कसकर तैयार खड़ी थीं। "जल्दी तैयार होओ। देर हो जाएगी।" हमने पुनः अनुरोधपूर्वक कहा-महाराजजी! उपधि, आसनादि हमें दे दीजिए न? आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। सर्दी-जुकाम से भी काफी परेशान हैं आप। हमारे पास भी कुछ विशेष उपकरण नहीं है। आपको उपकरण उठाकर चलने में तकलीफ होगी। आज इतनी सी सेवा का मौका हमें दीजिए। **आपने फरमाया-"मेरे पास है ही क्या? मुझे ही उठाने दो। सर्दी-जुकाम पुद्‌गल का धर्म है। यह तो चलता ही रहता है। इससे आत्मबल में क्या फर्क पड़ता है?**

दादा गुरुदेव के जीवन को देखो! बड़नगर से अंतिम वर्षावास पूर्ण कर राजगढ. (म.प्र.) की ओर पधार रहे थे। तब उनकी आयु अस्सी वर्ष की थीं और ज्वराक्रान्त हो गये थे। ऐसी स्थिति में शिष्यों के विशेष अनुरोध करने पर भी उन्होंने अपना कोई उपकरण उन्हें नहीं दिया। स्वयं अपना भार उठाकर राजगढ़ पधारे थे। अभी शरीर साथ दे रहा है। मनोबल सुदृढ़ है। गुरुदेव की महती कृपा से जबतक शरीर चल रहा है, वहाँ तक उठाने दो। फिर तुम्हें उठाना ही है।"

अपने जीवन से आप समय-समय पर हमें इसीतरह स्वावलम्बन की मूक शिक्षा देती थीं। कहती थीं-"परावलंबिता-परनिर्भरता मनुष्य को आलसी और निकम्मा बना देती है। स्वावलम्बन श्रमण-श्रमणी जीवन का अनिवार्य अंग है।

33. अथाह ज्ञानानुराग

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

यह घटना ईस्वी सन् 1994 की है। उन दिनों की बात है, जब आपश्री सूरा से विहार कर भीनमाल कन्या शिविर करवाने हेतु पधार रही थीं। भीनमाल शंखेश्वरजी में श्रीसंघ ने ग्रीष्मकालीन कन्याशिविर का आयोजन किया था। अत: श्रीसोमतमलजी, श्री मदनराजजी, श्रीभंवरलालजी, श्रीदौलतराजजी आदि ने आकर आप से निवेदन किया-आप शिविर प्रारंभ होने से हफ्तेभर पूर्व ही वहाँ पधार जाइए, ताकि व्यवस्था सुंदर व सुचारू रूप से हो सके।

आप विहार करती हुई बोरटा पहुँचीं। वहाँ पहुँचते ही आपका स्वास्थ्य यकायक इतना खराब हो गया कि कुछ पूछिए ही मत। गर्मी का भयंकर प्रकोप था। जेठ मास था। उन दिनों लू जोरों से चल रही थी। आप लू की चपेट में आ गईं। दस्त, उल्टी-दोनों एक साथ होने लगे। आप एक कदम भी चल पाने की स्थिति में नहीं थीं। लग रहा था कि इस वर्ष यह शिविर स्थगित ही करना पड़ेगा, क्योंकि समय एकदम निकट आ चुका था। उधर शिविर की तैयारी जोरशोर से चल रही थी। शिविर-पत्रिका भी लगभग सभी जगह पहुँच चुकी थी। देशी उपचार करने पर स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ। हमने आप से निवेदन किया-महाराजजी! अभी आपका स्वास्थ्य विहार के अनुकूल बिल्कुल नहीं है। एतदर्थ इस वर्ष यह शिविर स्थगित कर दिया

जाय। प्रत्युत्तर में आपका जवाब था-"मेरा स्वास्थ्य अब ठीक है। गुरुदेव की कृपा से सब बढ़िया होगा। कल ही यहाँ से विहार करो। धीरे धीरे चलूँगी।" तब बोरटा श्रीसंघ के प्रतिनिधियों ने डोली की व्यवस्था करने की बात कही। आपश्री ने स्पष्ट मना कर दिया। दूसरे दिन वहाँ से विहार हुआ और शिविर के एक दिन पूर्व शंखेश्वर-भीनमाल पहुँच ही गयीं। वहाँ भी भीषण गर्मी थी, जिससे आपको दिनरात घबराहट रहती थी। दूसरी ओर अस्वस्थता तो थी ही। **सभी के मुँह पर एक ही वाक्य था-"ऐसी भीषण गर्मी तो हमने कभी नहीं देखी !" धन्य है बड़े महाराज साहब को ! जो ऐसी गर्मी में भी पंखा, कूलर, हाथपंखा, ज्यूस या ग्लूकोज आदि का कत्तई उपयोग नहीं करती हैं। अस्वस्थ होते हुए भी चेहरे पर कितनी शांति है। इतना ही नहीं, आप हमें भी बार-बार कहती थीं-"जाओ, देखो और लड़कियों को पढ़ाओ।"**

इससे यह स्पष्ट होता है कि उन्हें ज्ञान-दान एवं शिविर के प्रति कितनी अथाह रूचि थी, लगन थी। उनकी प्रबल प्रेरणा तथा उनकी ही निश्रा में बीस-बाइस जितने भी शिविर हुए। उनमें हरतरह से आप पूर्ण सहयोगिनी बनीं। अन्यथा इतने शिविर सानंद हो पाना मुश्किल थे।

34. जीवन ही अनुशासन का पर्याय

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

संयम-मार्ग में आपको अनुशासनहीनता बिल्कुल पसंद नहीं थी। हम पर वत्सलता और करुणा बरसाने के साथ अनुशासनबद्धता भी पूर्ण थी।

शिष्याओं (पौत्रियों) के प्रति आप उन अर्थों में कठोर थीं, जहाँ अनुशासन का प्रश्न आता। जैसे कार चलानेवाला ड्रायवर कार चलाने के साथ आमने-सामने, ऊपर-नीचे, दायें-बायें सभी ओर ध्यान रखता है; तभी वह कुशल ड्रायवर कहलाता है। ठीक इसीतरह आप भले ही कहीं भी विराजतीं, किंतु ऊपर-नीचे, आमने-सामने, इधर-उधर हम कहाँ बैठी हैं ? क्या कर रही हैं ? हर दृष्टि से हमारा पूर्ण ध्यान रखती थीं।

ईस्वी सन्. 1966 की आपकी अनुशासनबद्धता से संबंधित एक घटना मुझे स्मरण हो रही है। मैंने (सुदर्शना) उस समय तो संयमजीवन ग्रहण भी नहीं किया था। मेरी संयम ग्रहण करने की भावना जरूर थी। अभी मुझे पू. दादीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में रहते हुए पूरा साल भर भी नहीं हुआ था।

सन् 1966 में आपने आहोर से प.पू.गुरुवर्याश्री मुक्तिश्रीजी महाराज साहब के साथ थराद की ओर प्रस्थान किया। आहोर से जालोर, बागरा होते आप गुरुवर्याश्री के साथ आकोली पधारीं। विहार में गुरुवर्याश्री के साथ थरादनिवासिनी तीन-चार वैरागिन बहनें थीं। मैं (सुदर्शना) भी साथ थी।

दोपहर के समय मैं (सुदर्शना) थराद निवासिनी दीक्षार्थिनी बहनों के अत्याग्रह करने पर, पू. गुरुवर्याश्री एवं. पू. दादीजी महाराज साहब को बिना कहे, बिना पूछे उनके साथ चाय पीने चम्पा बहन के घर चली गई। पन्द्रह-बीस मिनट के पश्चात् हम सभी उपाश्रय लौटीं। जैसे ही मैं पुस्तक लेकर स्वाध्याय करने बैठी। आपने (पू.दादीमाँ) तत्काल नाराजगी की मुद्रा में पूछा-"कहाँ गई थी ?" मेरी तो सिट्टी-पिट्टी ही गुम हो गई। क्या जवाब देती ? फिर दोहराया- "कहाँ गई थी ? सच बता कहाँ गई थी ?" काँपते- काँपते.... चाय पीने। "किसके साथ गई थी ?" इन वैरागिन बहनों के साथ। "किस से पूछकर गई थी ?" "बिना पूछे कहीं किसी के साथ जाना, दोपहर चाय लेना आदि प्रवृत्तियाँ मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। आइन्दा ध्यान रखना।" अन्यथा.....।
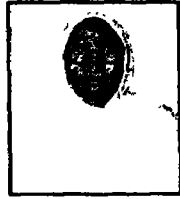
35. गज़ब की सहिष्णुता !

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

आपने भरतपुर, आगरा आदि क्षेत्रों में सर्दी-गर्मी एवं डांस-मच्छरों के भयंकर प्रकोप को समभावपूर्वक सहन किया। इन क्षेत्रों में भयंकर कोहरा / सर्दी पड़ती है और गर्मी भी उतनी ही। एकबार भरतपुर के गुरुभक्तों ने आपसे विनम्र शब्दों में निवेदन किया-महाराजजी ! कड़ाके की सर्दी पड़ रही है। अभी और भीषण सर्दी का प्रकोप होगा। अतः आप ऊनी कंबल (रंगीन कंबल) आदि का उपयोग कीजिए। आपने साफ मना कर दिया। जिसतरह आपने भयंकर सर्दी में किसी वस्तु का सेवन नहीं किया। वैसे ही वहाँ की भीषण गर्मी में भी कभी कूलर, पंखा, हाथपंखादि का उपयोग नहीं किया। इतना ही नहीं, बड़े-बड़े डांस-मच्छरों का उपद्रव होने पर भी आपने कभी मच्छरदानी का उपयोग नहीं किया।

इस संदर्भ में सन् 1987 का उनके जीवन का एक प्रसंग स्मरण हो रहा है।

ऊष्णताप्रधान भरतपुर जिले का एक छोटा सा ग्राम था। ज्येष्ठ मास का समय, अन्य स्थानों में जब आसमान से पानी की वर्षा होती है, वहाँ शुष्क राजस्थान में शरीर से पसीना टपकता है। पसीने से सारा शरीर तरबतर हो जाता है।

जिस ग्राम में स्थिरता किए हुए थीं आप। वहाँ हवा का नामोनिशान नहीं था। बंद पेटी पैक कमरा था। न था कहीं जंगला, न थी खिड़की और न कहीं से हवा आने की गुंजाइश ! फिर भी श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाओं का अत्याग्रह होने से आप वहाँ एक सप्ताह रूकीं। नित्यप्रति वहाँ आपको ज्ञान-ध्यान, माला व स्वाध्यायादि में निमग्न देखकर श्रद्धालु भक्तों के मन में विस्मय के साथ अनायास ही उनकी तपोनिष्ठा एवं कष्ट सहिष्णुता के प्रति श्रद्धाभाव जागृत हो उठा। हृदय बोल उठा -

"सच्चे संत का यही लक्षण है। ऐसी कसौटियों पर ही संत का जीवन कसा जाना

चाहिए।"

आपके उच्च व्यक्तित्व का कुछ ऐसा प्रभाव उन लोगों के मन-मस्तिष्क पर पड़ा कि वह दृश्य भुलाया नहीं जा सकता। ऊष्ण परिषह सहन करने की गजब की निष्ठा!

36. अंतिम समय की अविस्मरणीय घटना

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

धाणसा (राज.) की दिनांक 18 फरवरी 2000 से 1 मार्च 2000 के मध्य में घटित तरोताजा अविस्मरणीय घटना है। उन दिनों आप वहाँ विराज रही थीं। वर्षावास पूर्णाहूति के पश्चात् सर्दी का मौसम होने से धाणसा श्रीसंघ ने विहार नहीं करने हेतु विनम्र निवेदन किया। आपके जीवन का यह अन्तिम वर्ष था। आपके अंतिम समय के कुछ प्रसंग तो दिल को दहलानेवाले हैं।

आश्चर्य तो इस बात का होता है कि आपने देवलोक गमन से दस दिन पूर्व निरंतर नव आयंबिल किए। यह बात स्मृति पटल पर आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दस दिन पूर्व ही आपको अपनी मृत्यु का आभास मिल चुका था। फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा को नव आयम्बिल का पारणा हुआ। तत्पश्चात् दिन-प्रतिदिन आपका स्वास्थ्य बजाय सुधार के तीव्रगति से गिरता ही चला गया। मृत्यु-महोत्सव का समय निकट आ रहा था।

यह तो प्रकृति का अटल नियम है, चाहे योगी हो या भोगी, राजा हो या रंक, अमीर हो या गरीब, झोंपड़ी में रहनेवाला हो या महलों में रहनेवाला। इस मृत्यु का सामना सभी को करना ही पड़ता है। इस क्रूर काल के पंजे से कोई नहीं बच सका है आजतक और न बच सकेगा।

प्राय: लोग मृत्यु के नाम से घबराते हैं, भयभीत होते हैं। अब क्या होगा? ऐसे व्यक्तियों से आप कहती थीं-"अरे भाई! मौत से क्या डरना? एकदिन सभी को जाना है। दो दिन पहले या दो दिन बाद। इस मुसाफिरखाने को छोड़कर, इस घर को खाली करके जाना तो पड़ेगा ही। इसलिए अपना जीवन ऐसा सुव्यवस्थित बना लेना चाहिये कि जैसे ट्रेन आने से पहले यात्री जाने हेतु प्लेटफार्म पर तैयार रहता है, वैसे ही हम भी प्रतिक्षण जाने को तैयार रहें। यदि मौत सामने आकर खड़ी हो जाय, बिना किसी संकल्प-विकल्प के समाधिमरण के लिए सन्नद्ध रहें। जीने और मरने के लिए सदा तैयार रहना ही वास्तविक जीवन है।"

मृत्यु से भयभीत व्यक्ति के समक्ष आप बार-बार यह पंक्ति दोहराती थीं: **"लाखों वर्ष जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे"** कोई फर्क नहीं पड़ता। अरे भाई! मृत्यु से कौन डरता है? कायर! जिसने शुद्ध, सात्त्विक, संयम-सदाचारमय, निर्मल, आत्महितकारी जीवन जिया

है, तो उसे भय किस बात का ?"

आप चारित्र का पालन बड़ी मुस्तैदी, कठोरता, उत्साह और अहोभाव के साथ कर रही थीं । सिंह की भाँति संयम लिया और सिंह की भाँति ही जीवन के अन्तिम क्षणों तक पालन किया । इतना ही नहीं, आपने जिन्दगी में किसी को तकलीफ नहीं दी । तो आप मृत्यु से भला कब भयभीत होनेवाली थीं ? जिनके हृदय में धर्म का वास हो, जिनके रोम-रोम में परमात्मा का निवास हो, जिनाज्ञा जिनके हर श्वास में हो, वे भला मृत्यु से क्यों डरे ?

मौत ने भी सोचा यह पुण्यात्मा तो मेरा महोत्सव मनानेवाली है । मुझ से बिल्कुल भयभीत होनेवाली नहीं है । यहाँ तो मेरा स्वागत होनेवाला है । इसलिए मैं पहले से ही इस पुण्यात्मा को संकेत दे दूँ ? माघ शुक्ला पूर्णिमा को नव आयंबिल की पूर्णाहूति हुई और दूसरे दिन आप प्रातःकाल श्रीगोड़ीजी पार्श्वनाथमंदिरजी पधारीं । (श्रीगोड़ीपार्श्वनाथप्रभु आपको बड़े प्रिय थे । प्रारंभ से ही आपको पार्श्वनाथ परमात्मा के प्रति अटूट आस्था-श्रद्धा रही, चाहे फिर वे चिंतामणि हो या शंखेश्वर ! गोडीजी हो या फलवृद्धि !) हम दोनों नित्यप्रति आपके साथ ही मंदिरजी जाती थीं । धर्मशाला से मंदिर ज्यादा दूर तो नहीं था । फिर भी उस दिन लौटते वक्त रास्ते में दो-तीन जगह विश्राम लेकर जैसे तैसे आप मुकाम पर पहुँचीं । श्वास फूल रहा था । हम समझ गयीं आज आपका स्वास्थ्य कुछ नरम है । 'महाराजजी ! क्या घबरहाट हो रही है ?' आपने दुःखमिश्रित स्वर में कहा-

"**अबे म्हें मंदिर नी जइ सकूँगा ।**" हमने पूछा-क्यों नहीं जा सकेंगी ? आपका हाथ पकड़कर हमलोग धीरे-धीरे ले जाएँगी । बोलीं-"**नी, म्हांरा से अबे मंदिर नी जवायगा, प्रिय-सुदर्शना ! म्हंने पारसनाथ दादाए ने गुरुमहाराजए के द्यो हे के 'अबे तू मंदिर नी अइ सकेगा ।'**" हमने आश्चर्यपूर्वक पूछा-कब कह दिया आपको ? महाराजजी ! आप बिलकुल चिंता मत कीजिए । हम आपको धीरे-धीरे जरूर लेकर जाएँगी । मंदिर दूर थोड़े ही है क्या ? पुनः आपने वही बात दोहराते हुए कहा-"**म्हें कई झूठ थोड़ी बोली री हूँ । चैत्यवन्दन ने गुरुमहाराज का दर्शन करने जद म्हें मंदिर से बार अई री थी तो पिछाड़ी से एकदम म्हांरा कान में अवाज अई के 'अबे थूँ मंदिर नी अई सकेगा, इ थारा आखरी दरसन हे ।' म्हें पाछो फरीने य देख्यो पण कोई नजर नी आयो ।**"

आपकी भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई । उसके पश्चात् आप एकबार भी मंदिर नहीं जा सकीं । उसी दिन से धीरे-धीरे आपका स्वास्थ्य बिगड़ता गया । अन्न भी नहीं चल रहा था । देवलोक गमन के चार-पाँच दिन पहले से असह्य दर्द हो रहा था । दिन की अपेक्षा रात में अधिक पीड़ा हो रही थी आपको । फिरभी आप '**तन में व्याधि मन में समाधि**' के भावों को धारण किये हुए थीं ।

पूरा धाणसा श्रीसंघ, बाहर से आगन्तुक श्रद्धालुभक्त और हम सभी आपकी वेदना से अत्यन्त दुःखी थे, चिन्तित थे ।

सभी ने समवेत स्वर में उपचार के लिए आप से बार-बार करबद्ध सानुरोध विनम्र निवेदन

किया, किन्तु आपकी अपूर्व आत्म-शक्ति व आत्मबल के सामने किसी की भी नहीं चली। इतनी वेदना होने के बावजूद किसी डोक्टर को दिखाना मंजूर नहीं किया और ना ही कोई दवाई ली। सभी के हाथ-पैर कांप रहे थे। मगर आप सब कुछ समता, शांति से सहन कर रही थीं। **सभी को धैर्य बंधाते हुए आप कहती थीं-"इ तो म्हांरा पुरवलाभव का करम है म्हंने भुगतना ज पड़ेगा। अणी में दूजा रो कोई दोष नी हे।"**

'आंटो करमारो नवि दीजे बीजा ने दोष'-यो जीव हीज बाँधे ने यो इज छोड़े हे। 'हंसता बाँध्या कर्म रोता न छुटे रे प्राणिया।'

भाई ! यो शरीर धारण कर्यो हे तो अणी शरीर ने यो सब वेवा वालोज हे। अपणे सब मूरख हाँ, जो अणी शरीर ने जरा सो कई वेड़ जाय तो रोवाने बेठ जावाँ।"

**'देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मुरख भुगते रोय॥'**

"यो शरीर तो काचो माटी को घड़ो हे, जो एकदिन फूटवा वालोज हे। अणी में दु:ख कणिवात को मनावणो। नाम धरायो हे तो नास्ति तो वेवा वालीज हे। उमर भी पूरी वेड़गी हे तो जाणोज हे। यो जीव कोई अमरजड़ी खईने थोडी ज आयो हे भाई ! आदि-आदि तत्त्वभरी बड़ी मार्मिक हृदयस्पर्शी बातें समझाकर सभी के मन को तसल्ली देती थीं। आपको अपने दर्द की तनिक भी चिंता नहीं थी, परन्तु इस बात का खेद बार-बार हो रहा था कि मेरे पीछे सभी कितने हैरान-परेशान हो रहे हैं ? ये छोरियाँ भी रात-दिन मेरी सेवा में लगी हुई हैं, रात-रातभर जग रही हैं। मेरे कारण कितने व्यक्तियों को कष्ट हो रहा है ? आपको कष्ट-खेद होना स्वाभाविक भी था, क्योंकि **आपने तो शुरू से ही अपने जीवन का यह सिद्धान्त बना रखा था कि,'प्रतिकूल परिस्थितियों में भी संघ-समाज के किसी भी व्यक्ति को अपने लिए थोड़ा भी कष्ट नहीं देना।'** इतना ही नहीं, अपितु उस असह्य वेदना में भी आपका विवेक बराबर जागृत था। धाणसा की बहनों ने कहा कि-साहेबजी ! आपकी पीठ में इतनी पीड़ा हो रही है, बैठने में भी तकलीफ होती है, तो थोड़ा तकिये का सहारा ले लो। दर्द में थोड़ा आराम रहेगा। **प्रत्युत्तर में आपने मीठे शब्दों में कहा-"म्हें घर आराम करवा वास्ते नी छोड्यो हे। यो जीवन एश-आराम करवा वास्ते नी हे। अगर म्हारे आराम इज करनो वेतो तो म्हारे याँ आवा की कई जरूरत थी ? म्हें घरे ज भली थी। दूसरी वात यो जीव नरक में अनंत वेदना सेन करने आयो हे ओर अठे अइने सुखशेलियो वणी ग्यो हे।"**

जब श्रीसंघ से आपकी वेदना देखकर रहा नहीं गया तो वे बिना इजाजत के ही डोक्टर सा. को बुला लाए और दवाई लेने के लिए अत्यधिक आग्रह करने लगे तो आप बोलीं-**"एकदम पक्की वात केई र्‍या हो के आप ? डाक्टर साब म्हने वचई लेगा ? ठीक कर देगा कई? म्हांरा अशातावेदनी करमने मेट देगा ? आप गेरण्टी लेई र्‍या हो कई ? अगर या ज वात वे तो पछे म्हें कई विचार करूँ?"** आपने तो एक-के-बाद-एक प्रश्नों की बौछारें शुरू कर दीं। इन प्रश्नों का किसी के भी पास कोई जवाब नहीं था। सभी चुप्पी साधे हाथ जोड़े

खड़े थे। सभी हँस गए। क्या जवाब देते ? सभी का अन्तर्मन बोल उठा- **धन्य है ! धन्य है ऐसी दादीमाँ को !!**

दिवंगत होने के तीन-चार दिन पहले भीनमाल निवासी डो. दूदराजजी को पता लगा कि पू.दादीजी महाराज साहब अस्वस्थ हैं तो उसी वक्त भागकर आये। संध्या प्रतिक्रमण करके आप लेटी हुई थीं। जैसे ही उन्होंने कहा-'बावजी ! सुखशाता है ?' आवाज सुनकर आप उठ बैठीं। डोक्टर सा. आपको माँ के तुल्य मानते थे और आपके कठोर संयमी-जीवन से अत्यधिक प्रभावित थे। आपके स्वभाव से भी सुपरिचित थे। स्थानीय संघ के सभी श्रद्धालु भक्तों के आग्रह से डोक्टर सा. ने विनम्र शब्दों में निवेदन किया-'बावजी ! आप गोली-केप्सूल आदि नहीं लेते हैं, तो मत लीजिए, पर जब इतनी वेदना हो रही है तो एक इंजेक्शन लगवा लीजिए। इंजेक्शन में क्या हर्ज है ? रात को आपको नींद आ जायेगी। थोड़ी राहत मिलेगी। हालाँकि आपकी आवाज बहुत मंद हो गई थी, बोलने की शक्ति क्षीण हो चुकी थी, फिरभी ऊँची आवाज में आपने कहा-"डोक्टर सा. ! आप तो खुद ही समझो हो। म्हें आपने कई समझऊँ ? आप तो म्हंने यो वताओ कि डोक्टर कई भगवान् का बेटा हे, जो वचई लेगा ? वेदना वे तो वे अपणो कई ले। अपनी आत्मा के कई लागे वलगे। आत्मा से शरीर के कई लेणो देणो। शरीर शरीर हे और आत्मा आत्मा हे। शरीर अपणो काम करे और जीव(आत्मा) अपणो काम करे।" "डोक्टर सा. ! या तो म्हें थोड़ी ढीली हूँ। म्हारो मन कमजोर हे। सेन शक्ति कम हे। अणी से थोड़ी हाय-हाय करूँ? नींद नी आवे तो नी सड़, आखिर एक दिन जाणो तो हे ज अणी घरने खाली करीने। अणी शरीर रो अबे कई जतन करनो। घणा दिन अणी हाड़ रा लाड़ कर्या।"

इसतरह का तत्त्वसभर वार्तालाप आधे घंटे तक करती रहीं। ऐसी भेद-विज्ञान की बातें सुनकर सभी दंग रह गये। डोक्टर सा. तो पूरे ही श्रद्धावनत हो गये। उनके मुँह से शब्द निकल पड़े-धन्य है दादीजी म.सा. को ! ऐसी वेदना के क्षणों में भी अपूर्व आत्म-जागृति है। कितनी सीधी व सरल भाषा में सार रूप में गागर में सागर भर दिया। समझाने की शैली कितनी बढ़िया थी। अपनी सारी बात को नपे-तुले शब्दों में इसतरह कहा कि जैसे साँप सीधा अपने बिल में चला जाता है, वैसे ही आपकी वाणी का प्रत्येक शब्द गले के नीचे उतर गया। डोक्टर सा. तो नतमस्तक हो ही चुके थे। श्रीसंघ भी विस्मित था आपकी वाणी से।

तत्पश्चात् हम दोनों से भी आपने अत्यन्त सख्ती से कहा,"देखो, तुमाने तो सब मालम हे तो थें ध्यान राखजो। अंतिम समय में यदि म्हें बोलवा में असमर्थ वेइ जऊँ, होश में नी रुं या म्हने ध्यान नी भी रेवे, तो भी म्हारो नियम भंग मत करावजो। कोई अंग्रेजी दवाई-दारू म्हने मत दीजो कदी भी।" आदि-आदि कड़ी हिदायतें दीं।

आप अशक्त-कमजोर व अस्वस्थ जरूर हो गयी थीं। पर आत्मबल-मनोबल से तनिक भी कमजोर नहीं थीं। आत्म-जागरूकता भी यथावत् बनी हुई थी। अन्तिम समय तक शुद्ध चारित्रपालन व छोटी से छोटी क्रिया के प्रति भी आप पूरी सावधान व सजग थीं। चारित्र पालन

में सूक्ष्म दोष भी आप को पसन्द नहीं था। देवलोक होने के एक-दो दिन पूर्व संध्या के समय पूछा-"प्रियदर्शना ! सुदर्शना ! पाणी में चूनो डाल्यो ? सेक करवा की पाणी की थेली खाली करी के नी ? म्हांरा कपड़ा की पड़िलेहन करी के नी ?" आदि आदि।

अस्वस्थ अवस्था में उन दिनों जब हम आप से कोई वस्तु जबर्दस्ती लेने के लिए निवेदन करतीं-तो आप कहतीं-"कई करूँ प्रियसुदर्शना ! नी भावे तो। नी तो म्हें कदी मनवार करऊँ हूँ। म्हें थांने कदी भी ना देऊ हूँ। कदी बुखार आवे, माथो दुःखे या सर्दी लगे या कई भी वे तो भी चुपचाप जितरो भावे उतनो खई लूँ। **बेटा ! अन्न छूट्या वणी का घर छूट्या समझो।** अधिक थाने कई कूँ। अब तो म्हने थें चारी आहार को पच्चक्खाण करई दो तो ठीक रे।" पर हम इतनी भोली कि इतना सब कुछ साफ-साफ कहने के बावजूद भी आपके भावों, संकेतों व भाषा को ही नहीं समझ पायीं। इसका कारण यह था कि अभीतक हमारे जीवन में कभी ऐसा मौका ही नहीं आया था और दूसरी महत्त्वपूर्ण बात तो यह थी कि कभी भी ऐसा विचार ही नहीं आया दिल-दिमाग में कि आप सचमुच हमें छोड़कर चली जायेंगी।

देवलोक होने से दो-तीन दिन पहले हम दोनों मंदिरजी के दर्शन करके आयीं, आपको वंदन किया और छलछलाती आँखों से हमने पूछा-महाराजजी ! आपकी तबियत कब ठीक होगी ? कितनी अशक्ति आ गई आपको ? गौचरी में भी कुछ नहीं चलता है ? तब आपने बहुत ही मीठे-मधुर शब्दों में कई हितशिक्षाएँ दीं, हिदायते दीं और अन्त में बोलीं "**एक-दो दिन जो भी निकले वी नफा का।**" यह सुनकर हम सिसक-सिसक कर रोने लगी तो **आपने हम दोनों के सिर पर हाथ रखकर कहा -"अरे ! क्यूं रोवो हो ! म्हें तो यूं इ पछतवुं वात की तुमाने। कई मरूँ थोड़ी हूँ। मरूँ तो भी तुमारा गला में ज रूँगा। क्यूं घबराओ। बेटा ! एक दिन तो यो किराया को मकान खाली करनो ज पड़ेगा। अणी संसार में सबको इलाज हे, पर मौत की कोई दवा नहीं हे ! थाँने चिंता-फिकर कणी वात की हे जो रोवो हो। सबतरह से योग्य कर दिया थाँने। पर एक वात को जरूर ध्यान राखजो...।** आपके प्रति प्रशस्त राग ने हमें आपकी रहस्यमयी वाणी को समझने नहीं दिया; क्योंकि हमने सोचा भी नहीं था कि आप हमें सचमुच दो दिन बाद छोड़कर इस संसार से विदा हो जाएँगी ? हमें तो यही लग रहा था कि कमजोरी ज्यादा आ गई है तो धीरे-धीरे आप ठीक हो जाएँगी।

वेदना के क्षणों में भी आपके मुखारविंद से एक ही शब्द निकलता था-"**एक अरिहंत-एक अरिहंत**"। कई दिनों से आपके अन्तर्मन में अपनी गुरुवर्याश्री के दर्शनों की चाह थी, अभिलाषा थी। जहाँ चाह होती है, वहाँ राह स्वतः ही निकल आती है।

हम यह दावे के साथ कह सकती हैं कि आपके हृदय के कण-कण में, मन के अणु-अणु में अपने गुरुजनों के प्रति अटूट आस्था और दृढ़ श्रद्धा थी, अनन्य भक्ति थी और था अन्तरंग सेवा-भक्ति व समर्पण का भाव ! चाहे आप अपने गुरुजनों से दूर रहीं या निकट रहीं, पर आपकी स्थिति तो यह थी कि -

'कुमुदिनी जल बसे, चंदा बसे आकाश।
जो जाके हृदय बसे, सो ताहि के पास ॥'

आपके अन्तर्मन का संदेश विद्युत् की भाँति प.पू. शासनदीपिका प्रवर्तिनी पू. गुरुवर्या श्रीमुक्तिश्रीजी महाराज साहब को मिल गया। वे उन दिनों आहोर से विहार कर आसपास के गाँवों में विचरण करती हुई सूरा पधारी थीं उसी दिन। जैसे ही उन्हें आपकी अस्वस्थता के समाचार मिले। दूसरे ही दिन अविलम्ब उनके कदम तीव्रगति से धाणसा की ओर बढ़ गये। यद्यपि पू.गुरुवर्याश्री की आयु भी उस वक्त पचहत्तर-छिहत्तर वर्ष की थी और पैदल ही विहार करती हैं। पर पता नहीं, सूरा से इतना लम्बा अट्ठारह किलोमीटर का विहार करके एक ही दिन में वहाँ प्रातः लगभग दस बजे आप किसतरह पहुँच गईं ? किंतु यह भी सुनिश्चित है कि जहाँ हृदय की खरी पुकार होती है, वहाँ कुछ भी असंभव नही। **सच है-भगवान् भक्त के वश में होते हैं तो भक्त की सच्ची पुकार भगवान् को खींच ही लाती है।**

"श्रद्धा रख तो ऐसी रख, जो गुरु को रिझाए।
तू क्या गुरु के दर्शन को जाए, गुरु खुद चले आए ॥"

जब आपने सुना कि कल प्रातः पू. गुरुवर्याश्री लम्बा विहार करके आपको दर्शन देने के लिए पधार रही हैं तो आपका हृदयकमल खिल उठा, रोम-रोम पुलकित हो गया। मन प्रसन्नता से भर गया। हमने कहा-महाराजजी ! कल पू.गुरुवर्याश्री को लेने हेतु आप पधारेंगी ना ? **बोलीं-"हाँ, जाणो तो हे ज। पर कई करूँ ? प्रियसुदर्शना ! म्हांरा से इतरो लंबो तो जवायगा नी। थोड़ी दूर तो जऊँगा। थें दोई जणी म्हारो हाथ पकड़ीने धीरे-धीरे लई जाजो।"**

फाल्गुन कृष्णा एकादशी का प्रभात हुआ। प्रातःकाल दस बजे गुरुवर्याश्री शिष्याओं के साथ उपाश्रय में पधारीं। गुरुवर्याश्री ने आपको दर्शन दिये। दोनों के नेत्र सजल थे। आपने अपना मत्था श्रीचरणों में रख दिया। अन्तिम क्षमापना कर ली। हाथ जुड़े-के-जुड़े रह गये। **तन से तो वंदन नहीं किया जा रहा था, परन्तु आपका अन्तर्हृदय बोल रहा था-मेरे तन में शक्ति नहीं कि मैं उठकर वंदन करूँ, पर आप पूज्याश्री के श्रीचरणों में सश्रद्धा, सभक्ति सर्वात्मना मेरा तन-मन समर्पण है।**

तत्पश्चात् पू. गुरुवर्याश्री ने गौचरी की। आप कमरे में भी पाट पर नहीं विराज कर नीचे आसन पर ही बैठीं, क्योंकि गौचरी के पश्चात् पुनः गुरुवर्याश्री आपके पास आकर विराजीं और अपनी मधुरवाणी से दिनभर नवकारमंत्र का जाप, चतुःशरण व अन्य पाठ सुनाती रहीं तथा आप श्रवण करती रहीं ध्यानपूर्वक। आप से न तो ज्यादा बोला जा रहा था और न जोर से। **मन्द स्वर से नपे तुले शब्दों में बोलीं-"साहेबजी ! इतरो लंबो विहार करने पधार्या हे तो थोड़ो आराम करवा दो।"** सभी को आश्चर्य हो रहा था कितनी जागरूकता ! कैसी अंतरंग-भक्ति-बहुमान-अहोभाव ! गुरु के प्रति।

सूरज डूबने को था। श्वास चल रहा था। प्रतिक्रमण की तैयारी थी। आपने अपने मन में

पहले ही पच्चक्खाण व प्रतिक्रमण धार लिया था। हमलोग आपके पास थीं। स्थिति बिगड़ने लगी।

हमने गुरुवर्याश्री को आवाज लगायी-साहेबजी !! पधारिए ! दौड़कर पधारे और आपको पच्चक्खाण करवाए। पू.गुरुवर्याश्री, अन्य श्रमणी मंडल व हम सभी नवकारमंत्रादि उच्चस्वर से बोल रही थीं। सारा कमरा नवकारमंत्र से गूंज रहा था। वैद्यराज जी को बुलाया गया। बोले-महाश्वास चल रहा है, महाप्रयाण की तैयारी हो रही है। **अंतिम समय है। उस वक्त हृदय को वज्रवत् कड़ा करके हम दोनों आपके वक्षस्थल पर सिर रखकर नवकार बोलती चली जा रही थीं और बीच-बीच में कहती जा रही थीं - महाराजजी ! ओ महाराजजी !! 'एक अरिहंत, एक अरिहंत' तब आँख खोलकर देखतीं व इशारे से धीरे से कहतीं-'एक अरिहंत'। आपको 'एक अरिहंत' शब्द प्रिय था। प्रिय क्या, बहुत प्रिय था। उस समय हमने अपने हृदय को वज्र से भी अधिक कठोर बना लिया था, चूँकि मदनरेखा द्वारा अपने पति युगबाहु को करायी गयी अन्तिम मृत्यु समय की निर्यामणा हमने पहले कभी पढ़ रखी थीं।**

विक्रम संवत् २०५६ दिनांक 1-3-2000 की फाल्गुन कृष्णा एकादशी की रात्रि थी। आठ बजने ही वाला था। स्थिति बड़ी गंभीर और चिंताजनक होती चली जा रही थी। जीवन दीप मानो अन्तिम सांस ले रहा था। 1 मार्च की भयंकर और विकराल रात्रि ने कठोर संयम साधना की धनी, हमारी स्नेह-वात्सल्यमयी दादीमाँ को सदा के लिए अस्त कर डाला। फूल से भी कोमल और वज्र से भी कठोर हमारी दादीमाँ को क्रूरकाल हम से छीनकर ले गया। यह हमारा दुर्भाग्य है, किन्तु उनके द्वारा प्रदत्त हितशिक्षाएँ हमें गति प्रदान करती रहेंगी।

रूह में बसी है वह सूरत,
इजलाल[१] है जहान की।
ताजीमे[२] है उस महताब को,
जो शान है मेरे जान की॥

(१. प्रतिष्ठा, २. झुककर प्रणाम)

नब्बे वर्षीय सुदीर्घ संयमी जीवन-यात्रा करते हुए द्रुतगामी कदमों ने लंबी दूरियाँ तय कर लीं। राजस्थान की धन्य धरा धर्मनगरी धाणसा, जिला-जालोर की धरती पर आकर जीवन-यात्रा का अंतिम पड़ाव डाला। नियति की क्रूर प्रकृति ने उस दादीमाँ को हम से छीनकर हमें सदा-सदा के लिए अनाथ बना दिया।

"ऐ मौत ! तुझ से भी आखिर नादानी हुई।
फूल तूने वो चुना, जिससे गुलशन की वीरानी हुई॥"

उस ममतामयी माँ के अभाव में आज भी मन अशांत है, क्लांत है। हृदय व्यथा से पूरित है। दिल की भाषा बंद पिटारे की भाँति भीतर ही भीतर घुट रही है और वह पुण्यात्मा दूर..... अति दूर...... सदा के लिए बिलखती छोड़ चली गईं। रेगिस्तान के राहगीर की भाँति केवल सद्गुणरूपी चरणचिह्न छोड़कर.......

शेष रही उनकी मधुर स्मृतियाँ और जीवन की अनुभूतियाँ।
फाल्गुन वदि एकादशी की संध्या.....
उनके जीवन की संध्या....
...... हमारे गम की संध्या बन गई ..... ।
निहाल थी उस घड़ी, पीकर स्नेह-वात्सल्य के जाम को।
दिल आज भी रो रहा, याद कर उस शाम को ॥

सम्पूर्ण धाणसा नगर में सन्नाटा छा गया। देखते-देखते उपाश्रय खचाखच भर गया। जालोर जिले के लोगों की भीड़ दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। अग्निसंस्कार के समय तक आसपास एवं दूर-सुदूरवर्ती क्षेत्रों-मध्यप्रदेश, गुजरात, मारवाड़, दक्षिण आदि प्रदेशों से आगन्तुक संघों का मेला-सा लग गया था। वहाँ तिल रखने की जगह नहीं थी।

पूज्याश्री दादीजी महाराज साहब के कठोर संयम जीवन का जैन संघ-समाज पर ही नहीं, अपितु जैनेतर समाज-यहाँ के स्थानीय भोमिया-राजपूत समाज पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। बहुत समय से धाणसा में जो द्वेष-वैमनस्य, कटुता पल रही थी, वह समाप्त हो गयी।

ऐसा लगता है कि जाते-जाते वह पुण्यात्मा सभी को दिव्य संदेश देकर गयीं। पूरा भोमिया समाज अन्तिम दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। संघ में मंथन चल रहा था कि अग्निसंस्कार कहाँ किया जाय ? सब अलग-अलग स्थान का चयन कर रहे थे। सुंदरतम जगह की तलाश में थे, किन्तु पू.दादीजी महाराज साहब के प्रबलतम पुण्ययोग से राजपूतों को ऐसी सद्बुद्धि मिली की उन्होंने श्रीगोड़ीपार्श्वनाथ भगवान् के एकदम निकट का खुला मैदान पू.दादीजी महाराज साहब के अग्निसंस्कार हेतु सहर्ष, सश्रद्धा प्रदान कर दिया। **साथ ही उन्होंने यह भी कहा-पू. दादीजी महाराज साहब सिर्फ जैनों के ही नहीं हैं, हमारे भी हैं और बिना आनाकानी के जगह भेंट कर दी। इतना ही नहीं, उनका यह भी कहना था कि, "यहाँ दादीवाड़ी बनेगी" और 'पू.दादीजी महाराज साहब अमर रहे' के नारों से सारा गगनमंडल गूँज उठा।**

37. अनुभव बिन सब सून

- साध्वीद्वय डो. प्रिय-सुदर्शनाश्री

काफी लम्बे अन्तराल के पश्चात् 2004 के हरिद्वार (उत्तरांचल) वर्षावास में हमने योग्य अनुभवी शिक्षक के मार्गदर्शन में विधिवत् योगासन-प्राणायाम सीखना शुरू किया तो तत्काल पन्द्रह वर्ष पुरानी अतीत की एक घटना हमारे स्मृति-पटल पर उभर आयी।

बात है सन् 1988 भरतपुर वर्षावास की। योगासन की बुक पढ़-पढ़कर सुबह-सुबह हमलोग ताड़ासन, उष्ट्रासन आदि सीखने का प्रयास कर रही थीं। आप (पू. दादीजी म.सा.) कुछ दूर विराजी हुइ थीं। हमारे सारे क्रिया-कलापों को आप गौरपूर्वक देख रही थीं। ताड़ासन का अभ्यास करती हुई मैं (सुदर्शना) धड़ाम से नीचे गिर पड़ी। आप हंस पड़ी। बोलीं-"कहीं

चोंट तो नहीं आई है ना ?" पुन: कहा - "तुमलोगों ने ये प्रक्रिया किनसे सीखी है ?" योगासन की पुस्तिका आपके हाथों में थमाते हुए कहा - महाराजजी ! इससे। जैसा इसमें लिखा है तदनुरूप सीखने की कोशिश कर रही हैं।

आपने समझाते हुए कहा-"बहना ! पुस्तकों में तो बहुत कुछ लिखा होता है। कई तरह की बातें लिखी होती हैं, किंतु अनुभवी गुरु के मार्गदर्शन के बिना कोरी पुस्तकें पढ़कर सीखने की मूर्खता नहीं करना। अन्यथा कभी-कभी लाभ के बजाय हानि भी हो जाती है।"

जैसे-पुस्तकों में लिखा होता है-"मुँहपत्ति प्रतिलेखन करना" स्वयं पुस्तक पढ़कर, ज्ञान प्राप्त करनेवाले नोसीखिए को 'मुँहपत्ति प्रतिलेखन करना', बस इतना ही समझ में आता है। इससे अधिक नहीं, किन्तु मुँहपत्ति किसतरह प्रतिलेखन करना, किसलिए करना ? वह समझमें नहीं आता। अनुभवज्ञान के बिना वह समझा नहीं जा सकता।

"अनुभवज्ञान तो योग्य अनुभवी गुरुके पास ही होता है।" केवल पुस्तक पढ़कर प्रयोग करनेवाले की कैसी हास्यास्पद स्थिति होती हैं। इस सम्बन्ध में आपने हमें एक रोचक उदाहरण सुनाया था जो अद्यावधि हमारे स्मृति-कोष में सुरक्षित है।

ब्रिटिश सरकार के समय में एक अंग्रेज भारतदेश से आयुर्वेदिक ग्रंथ ब्रिटेन ले गया। उसमें लिखा था-"घी-दूध के सेवन से शरीर बलवान् और पुष्ट होता है। उसका वजन बढ़ता है।" यह बात उसने उस ग्रंथ में पढ़ी। इसलिए वह घी और दूध का सेवन करने लगा। योग-संयोग की बात है कि एकबार एक वैद्य भारत से ब्रिटेन गया। भारतीय वैद्यराजजी से उस अंग्रेज की मुलाकात हुई। वार्तालाप के दौरान आयुर्वेद सम्बन्धी चर्चा चल पड़ी। अंग्रेज ने कहा - "अरे ! वैद्यराजजी ! मुझे लगता है कि आपका यह आयुर्वेदशास्त्र तो कोरा ढोंग-धतींग है, बकवास है, झूठा है। ग्रंथ बताते हुए - देखिए न ? इसमें लिखा है कि घी-दूध के सेवन करने से शरीर सुपुष्ट होता है। इस में लिखे मुताबिक मैं काफी अर्से से घी-दूध का सेवन कर रहा हूँ, लेकिन तनिक भी शारीरिक पुष्टता प्राप्त नहीं हुई। वैद्यराजजी ने कहा - अजी ! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता है। आयुर्वेद शास्त्र तो बिल्कुल सत्य है। इस में आपकी ही कहीं कुछ त्रुटि रह गई होगी।

बताइए-आपने घी-दूध का सेवन कैसे किया ? अग्रंज ने कहा-प्रतिदिन नियमित रूप से दूध से स्नान करने के बाद सम्पूर्ण शरीर पर घी की मालिश करता हूँ।

वैद्यराजजी को मन-ही-मन हंसी आ गई। हंसी रोकते हुए बोले-श्रीमान्जी ! घी-दूध का सेवन ऐसे थोड़े होता है ? इनके सेवन से पूर्व पेट-शुद्धि करनी होती हैं। तत्पश्चात् नित्यप्रति पाचन हो, उतना थोड़ा-थोड़ा घी खाना चाहिए और दूध पीना चाहिए। फिर अंग्रेज ने वैद्यराजजी के बताए निर्देशानुसार किया। तब उसके शरीर का वजन बढ़ा और शरीर पुष्ट बना।

अपनी बात को समेटते हुए आपने फरमाया-"प्रियसुदर्शना ! चाहे व्यावहारिकज्ञान हो या

पू. दादीजी म.सा. अपने संसारपक्षीय ज्येष्ठ पुत्र राजमल व पुत्रवधू श्रीमती पद्मदेवी के साथ

पू. दादीजी म.सा. संसारपक्षीय पुत्र, पुत्रवधू, पौत्र, पौत्रवधू, प्रपौत्र-प्रपौत्री आदि परिवार के साथ

योगिक ! चाहे आध्यात्मिकविद्या हो अथवा मंत्र-तंत्र/यंत्र ! प्रत्येक क्षेत्र में गुरुगम की जरूरत पड़ती है। यहाँ 'गुरुगम' से तात्पर्य है-उस-उस विषय के विशेषज्ञ-अनुभवी जानकार व्यक्ति का समुचित मार्गदर्शन ! इसलिए कहा है-

जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि ।
जहाँ न पहुँचे कवि, वहाँ पहुँचे अनुभवी ॥

पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा अनुभव का ज्ञान अधिक उपयोगी होती है, किन्तु वह कड़वा होता है और ठोकरें खाने के बाद ही मिलता है।

38. क्या भूलूँ क्या याद करूँ ?

- राजमल जमींदार, इन्दौर (म.प्र.)
(पू. साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी म.सा. के संसारपक्षीय ज्येष्ठ पुत्र)

जब परम पूजनीया माताजी महाराज के सम्बन्ध में विचार करता हूँ तो मानस पटल पर अनेक बातें उभर आती हैं। फिर जब उनके लेखन पर आता हूँ तो यह समझ नहीं पाता कि क्या लिखूँ और क्या छोड़ूँ ? जब उनके जीवन पर सिलसिलेवार लेखन के लिये चिंतन करता हूँ कि उतना सब कबतक लिख पाऊँगा ? फिर किन-किन प्रसंगों को अपनी स्मृति से लिखने का प्रयास करूँ और किन प्रसंगों को विस्मृत कर दूँ। इसप्रकार का चिंतन करते समय मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जो जीवन के अमूल्य क्षण हैं, उन्हें ही लिपिबद्ध कर लेना श्रेयस्कर होगा। पू. माताजी महाराज के जीवन पर जब कभी अवकाश मिलेगा, विस्तार से लिखने का प्रयास किया जायेगा। अस्तु, यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ अपने जीवन के पाँच अविस्मरणीय प्रसंगों को। यथा :-

पू. माताजी से वार्तालाप एवं दीक्षोत्सव

वि.सं. २००८की ग्रीष्म ऋतु का समय था। मैं राजगढ़ से कुछ दूर स्थित अपनी जमींदारी के गाँव किसानों से सरकारी लगान वसूली तथा साथ ही अपने निजी लेन-देन की वसूली के लिये गया हुआ था। लगभग एक माह के अन्तराल के पश्चात् लौटकर घर आया और आते ही घर पर पू. माताजी की दीक्षा की तैयारियाँ देखीं तो मैं विस्मित रह गया। मैंने माताजी से पूछा- "यह सब क्या है ?"

पू. माताजी ने शांतभाव से कहा-"आओ ! मेरे पास बैठो और मेरी पूरी बात ध्यान से सुनो, समझो और इस शुभकार्य को हंसते-हंसते सम्पन्न करो । वर्षों से मेरी यह भावना थी । अतः इसे पूर्ण कर मुझे सांसारिक-बंधनों से मुक्त करो ।" इतना कहकर माताजी कुछ क्षण के लिये मौन रहीं। मैं तो यह सुनकर स्तब्ध रह गया ! तत्पश्चात् उन्होंने समझाते हुए कहा कि-"तुम्हारे पिताजी के स्वर्गगमन के पश्चात् से ही चारित्र अंगीकार करने की मेरी दृढ़ भावना थी, किन्तु तुम्हारी अल्पायु और जमींदारी का भार वहन करने के लिये मैं अभी
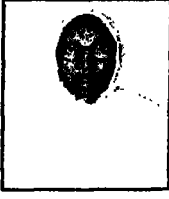
तक संयम-मार्ग नहीं अपना पायी। मैंने अपने मुनीमों के माध्यम से सारा कार्य सम्हाला। साथ ही तुम्हें भी पढ़ा-लिखाकर सर्वथा योग्य बनाया। तुम अब अपना पैतृक कारोबार भलीभांति सम्हाल सकते हो। इतना ही नहीं, मैंने तुम दोनों भाइयों का विवाह भी करवा दिया है। तुम अपना गृहस्थ जीवन सुखपूर्वक धर्माराधना करते हुए व्यतीत करो, यह मेरा अंतर का आशीष है। मैं अब अपना समय सांसारिक कार्यों में लगाकर व्यर्थ गवाँना नहीं चाहती हूँ। विशेष सुअवसर यह है कि इससमय अपने गुरुगच्छ के दो मुनि भगवंत पू. मुनिराजश्री वल्लभविजयजी म.सा. एवं पू. मुनिराजश्री कल्याणविजयजी म.सा. के साथ ही प.पू. गुरुवर्याश्री कमलश्रीजी म.सा., प.पू. प्रशान्तमूर्ति गुरुणीजीश्री हेतश्रीजी म.सा., एवं प.पू. गुरुणीजीश्री मुक्तिश्रीजी म.सा. यहाँ विराजमान हैं। मैंने इन सभी के समक्ष दीक्षा अंगीकार करने की बात प्रकट कर दी है, उन्हें निवेदन कर दिया है। इस सम्बन्ध में सभी आवश्यक तैयारियाँ भी कर ली गई हैं। मेरे निवेदन पर पू. मुनि भगवंतों ने आहोर नगर (राज.) में विराजित परम पूज्य आचार्य भगवंत श्रीमद्‌विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब से पत्राचार कर दीक्षा की आज्ञा तथा शुभ मुहूर्त्त आदि सब मंगवा लिये हैं। मैं तुम्हें बुलवाने के लिये नौकर को भेजने ही वाली थी कि तुम स्वयं ही आ गए, यह प्रसन्नता का विषय है। अब तुमसे यही आग्रह है कि मुझे सहर्ष आज्ञा-प्रदान कर तुम इस शुभ कार्य को सम्पन्न कर मेरी भावना को साकार करो /सफल करो।"

"माताजी ! यदि कुछ समय होता तो मैं अट्ठाई महोत्सव आयोजित कर आपकी भावना को सफल करता।" मैंने निवेदन किया।

"बेटा ! तुम्हारा कथन सत्य है। ऐसे उत्सव-महोत्सवों से जैनशासन और गुरुगच्छ की महिमा में अभिवृद्धि होती है, किन्तु अब इतना समय नहीं है। मात्र दो दिन ही शेष है। इन दो दिनों में तुम जो भी करना चाहो, कर लो।" पू.माताजी ने फरमाया।

मैंने त्वरित कार्रवाई करते हुए अपने रिश्तेदारों और मित्रों के सहयोग से दो दिन वरघोड़े, वर्षीदान का भव्य वरघोड़ा और स्वामीवात्सल्य आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था की और वैशाख शुक्ला दसमी विक्रम संवत् २००८ के दिन शुभ मुहूर्त में राजगढ़ नगर (श्री मोहनखेड़ा तीर्थ) में हजारों धर्मप्रेमी व्यक्तियों की साक्षी में अपनी हर्ष-मिश्रित अश्रुधारा के साथ पू. माताजी का दीक्षोत्सव सम्पन्न करवाया। जब माताजी साध्वीवेश धारण करके जनसमूह के बीच पधारीं और पू. मुनि भगवंत ने उनका नाम साध्वीजी श्री '**महाप्रभाश्रीजी**' महाराज साहब घोषित किया तो नूतन साध्वीजी की जय जयकार से गगनमंडल गूँज उठा। उस समय जैनधर्म की जय, महावीर स्वामी की जय, गुरुदेवश्री की जय के निनादों से भी गगन मंडल गूंज उठा था।

उसी समय उस धर्म-सभा में मैंने पू. माताजी महाराज से निवेदन किया कि आपने जिस उत्साह एवं उमंग के साथ चारित्र अंगीकार किया है। उसी के अनुरूप आप साध्वाचार का पालन करते हुए श्री मोहनखेड़ा तीर्थ के निर्माता संघवी सेठ लूणाजी के कुल का नाम उज्ज्वल करें। साथ ही हमारे परिवार के सदस्यों को भी समय-समय पर

प्रतिबोध प्रदान करते हुए हमारे जीवन का भी उद्धार करने के प्रति अपना लक्ष्य रखें ।

मेरी विनती के प्रत्युत्तर में पू. माताजी महाराज ने फरमाया कि जैसी तुम्हारी कामना है, मन की भावना है, वैसा ही दादा गुरुदेव की कृपा एवं आशीर्वाद से मेरा प्रयास रहेगा और जैसा पू. माताजी म. ने उस समय फरमाया था, आगे गुरुदेव की कृपा से परिवार के सदस्यों के जीवन का उद्धार भी प्रारम्भ हुआ।

चारों सुपुत्रियाँ जिनशासन को समर्पित

पू. माताजी महाराज साहब की दीक्षा के बारह वर्ष पश्चात् का प्रसंग है। वि.सं. २०२० फाल्गुन माह। इस माह में प.पू. व्याख्यान वाचस्पति आचार्य देवेश श्रीमद् विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब की प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा हुई और उसी दिन प्रतिष्ठा के तत्काल बाद मनोनीत आचार्य श्रीविद्याविजयजी महाराज साहब का आचार्य पद प्रदानोत्सव के पूर्व का कार्यक्रम समारोहपूर्वक उत्साह एवं उल्लास के साथ चल रहा था। इन दोनों कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करवाने के लिये मैं भी श्री मोहनखेड़ा तीर्थ के वहिवटकर्ता के रूप में प.पू. श्री विद्याविजयजी म. के निर्देशानुसार प्राणपण से जुटा हुआ था। ग्यारह दिवसीय समारोह प्रारम्भ होने से पहले पू. माताजी महाराज ने मुझे बुलाकर कहा-"तुम दोनों कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये प्राणपण से लगे हुए हो, लेकिन इधर मेरी प्रथम पौत्री (पुष्पलता कुमारी) इसी कार्यक्रम में चारित्र अंगीकार करके मेरी सेवा करने के लिये अत्यधिक आग्रह कर रही है। इसलिये इस कार्यक्रम को त्रिवेणी संगम का स्वरूप प्रदान कर **'सोने में सुगन्ध'** वाली बात चरितार्थ कर दो। प्रतिष्ठा महोत्सव, पाट गादी महोत्सव और दीक्षा महोत्सव।

कुछ क्षण मौन रहकर मैंने कहा-"आप यह क्या फरमा रही हैं ? इतनी शीघ्रता में यह सब कुछ कैसे सम्भव हो पायेगा ? आपकी पौत्री आपकी सेवा में आना चाहती है। इसके लिये मेरी सहर्ष स्वीकृति है। आपके चरणों में मैं उसे समर्पित करता हूँ, किन्तु मेरी इच्छा है ये कार्यक्रम सम्पन्न हो जाने के पश्चात् राजगढ़ में ही अट्ठाई महोत्सवपूर्वक मैं उसे आपके चरणों में समर्पित कर दूँगा।"

पू.माताजी महाराज ने फरमाया — "नहीं, महोत्सव का यह अवसर खोना उचित नहीं है। जो कार्य बाद में करना है, उसे इस शुभ अवसर पर ही सम्पन्न कर दो तो अच्छा रहेगा। इस महामहोत्सव के अवसर पर हजारों की संख्या में गुरुभक्तों की उपस्थिति रहेगी और पू. साधु-साध्वी भगवंतों की भी पावन निश्रा रहेगी। कार्यक्रम की भव्यता के समय जो आनन्द उत्पन्न होगा वह बाद में सम्भव नहीं है। सबसे मुख्य बात तो यह है कि आचार्य भगवंत के आचार्य पदग्रहण के साथ ही उनके वरद हस्तों से सर्वप्रथम साध्वी बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा, जो जीवन में स्मरणीय होगा। तुम जो भी व्यय करना चाहते हो उसका योगदान इसी महोत्सव में कर दो।"

माताजी महाराज ने मुझे अच्छीतरह समझाया और बात मुझे भी समझ में आ गई। मैंने

अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। मेरी स्वीकृति के साथ ही चारों ओर यह प्रसारित हो गया कि दोनों कार्यक्रमों के साथ इसी दिन आचार्य भगवंत के कर कमलों से पिता राजमल जमींदार और माता पूनमबाई की सुपुत्री कु. पुष्पलता भागवती प्रव्रज्या अंगीकार कर रही है। जिसने भी यह समाचार सुना उसके मुख से बरबस ही निकल गया-"**अरे यह तो त्रिवेणी संगम हो गया। ऐसे समारोह बहुत ही कम देखने को मिलते हैं।**" चारों और हर्ष और उल्लास की लहर व्याप्त हो गई। मनोनीत आचार्य भगवंत के आदेशानुसार एवं पू. माताजी महाराज के निर्देशानुसार कु. पुष्पलता के दीक्षोत्सव की तैयारियाँ भी प्रारम्भ हो गई। वि.सं. २०२० फाल्गुन शुक्ला तृतीया की शुभ वेला में सर्वप्रथम गुरुदेव व्याख्यान वाचस्पति आचार्यश्रीमद्‌विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. की मूर्ति का प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ और उसके तत्काल पश्चात् प.पू. मुनिराज श्री विद्याविजयजी महाराज साहब का आचार्य पद ग्रहण समारोह सम्पन्न हुआ और उसके ठीक बाद ही नूतन आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब के वरद हस्तों से कु. पुष्पलता ने ओघा (रजोहरण) ग्रहण कर चारित्र अंगीकार किया और **नूतन आचार्य भगवंत के द्वारा दीक्षित प्रथम साध्वी का नाम साध्वीजीश्री 'प्रियदर्शनाश्रीजी' म. घोषित किया गया।** उस अवसर पर हजारों की संख्या में उपस्थित गुरुभक्तों ने जयजयकार के निनादों से गगन मंडल गुंजा दिया। आज जब उससमय के दृश्य को याद करता हूँ तो सारा दृश्य चलचित्र की भाँति आँखों के सामने तैर जाता है।

साध्वीजी श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. की बड़ी दीक्षा वि.सं. २०२१ फाल्गुन माह में हुई। उस अवसर पर सपरिवार मैं सियाणा, जिला-जालोर (राज.) गया था। बड़ी दीक्षा सम्पन्न होने के पश्चात् समीपस्थ डूडसी गाँव में प्रतिष्ठा महोत्सव था। प.पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी म. ने हमें भी साथ ही चलने का आदेश दिया। प्रतिष्ठोत्सव सानन्द सम्पन्न होने के पश्चात् मैंने पू. माताजी महाराज से राजगढ़ (जिला-धार) जाने की आज्ञा माँगी। तब पू. माताजी महाराज ने फरमाया—"तुम जाने की बात कर रहे हो, किन्तु मेरी दूसरी पौत्री (कु. प्रेमलता) तो मेरे और अपनी बड़ी बहन साध्वी प्रियदर्शना के पास रहना चाहती है। तुम इसे हमारे पास छोड़ जाओ।"

"आप सहर्ष इसे अपने पास रखें। मुझे किसीतरह की कोई आपत्ति नहीं है।" मैंने कहा।

चार वर्ष तक कु. प्रेमलता को अपनी सेवा में रखते हुए पू. माताजी महाराज की विहार यात्रा चलती रही। उस अवधि में उनका विहार राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात के पालनपुर, राधनपुर आदि क्षेत्रों में भी हुआ। अपनी विहार यात्रा के अनुक्रम में तीनों का पदार्पण पू. गुरुणीजी श्री हेतश्रीजी महाराज साहब की सेवा में आहोर हुआ। इस अवधि में कु. प्रेमलता की वैराग्यभावना परिपक्व हो चुकी थी और वह शीघ्रातिशीघ्र भागवती दीक्षा अंगीकार करना चाह रही थी। उसके दीक्षा ग्रहण करने की बात समाज में प्रसारित हो गई। आहोर के समाज में घर-घर यह चर्चा होने लगी। तब आहोर समाज के एक प्रतिष्ठित परिवार के श्रीमान् छगनराजजी

माँडोत को किसी ने ऐसा कुछ विशेष सुझाव दिया कि इस बालिका को आप अपनी पुत्री मानकर इसका दीक्षोत्सव सम्पन्न करवाओ और इसे जैनशासन को समर्पित करो। ऐसा करने से आपको हर प्रकार का लाभ प्राप्त होगा। श्रीमान् छगनराजजी और उनकी धर्मपत्नी को यह सुझाव पसंद आया। उन्होंने पू. गुरुणीजी म. एवं पूज्या माताजी म. से निवेदन किया कि आप दीक्षार्थी कु. प्रेमलता के पिताश्री को बुलाकर उन्हें समझा कर यह दीक्षोत्सव मुझे सम्पन्न करने के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे। मैं उनका आजीवन कृतज्ञ रहूँगा।
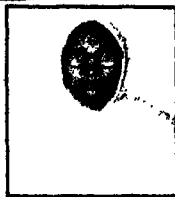
पू. माताजी महाराज ने मुझे आहोर बुलवाया। सबसे पहले श्रीमान् छगनराजजी सा. ने अपनी भावना से मुझे अवगत कराया और फिर विनयपूर्वक इस शुभकार्य को सम्पन्न करने के लिये आग्रह किया। तत्पश्चात् उन्होंने पू. माताजी म. से निवेदन किया कि आप श्रीमान् राजमलजी सा. को समझाने का कष्ट करें।

पू. माताजी महाराज ने मुझ से कहा-"क्या विचार कर रहे हो ? प्रेमलता की तीव्र भावना है। पू. गुरुणीजी श्री हेतश्रीजी म.सा. की भी भावना यही है कि इसकी दीक्षा यहीं पर मेरे पास हो। इसकी भावनानुसार इसे दीक्षा तो देनी ही है। रहा प्रश्न स्थान का तो राजगढ़ न सही, आहोर ही सही। यहाँ और वहाँ में क्या अन्तर पड़ता है। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि तुम दीक्षोत्सव के लिये श्रीमान् छगनराजजी सा. को अपनी स्वीकृति दे दो।"

मेरे लिये करने और कहने के लिये कुछ भी शेष नहीं था। मैं नतमस्तक हो गया और श्रीमान् छगनराजजी से कहा-"आपकी जैसी भावना हो, वैसा आप कर सकते हैं। पू. माताजी महाराज के निर्देशानुसार मेरी ओर से अनुमति है।"

पू. माताजी महाराज ने मुझ से कहा-"समीप ही सियाणा में प.पू. आचार्य भगवंत श्रीमद्विजय विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब मुनिमंडल सहित विराजमान हैं। तुम उनकी सेवा में जाओ और इस शुभकार्य को सम्पन्न करने के लिये उनसे आहोर पधारने की विनती करो। साथ ही उनसे शुभ मुहूर्त्त भी लेकर आओ।" मैंने पू. माताजी महाराज की आज्ञानुसार कार्य किया और फिर राजगढ़ आया। यहाँ से अपने परिवार के सदस्यों तथा अन्य रिश्तेदारों को लेकर पुनः आहोर पहुँच गया।

श्रीमान् छगनराजजी ने बहुत ही गरिमामय ढंग से दीक्षोत्सव का आयोजन किया। प.पू. आचार्य भगवंत भी अपने मुनिमंडल के साथ यथासमय पधार गये थे और **प.पू. आचार्य देवेश श्रीमद् विजय विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. ने निश्चित शुभ मुहूर्त्त में अपार जनसमूह की उपस्थिति में कु. प्रेमलता को दीक्षा प्रदान कर उन्हें साध्वीजीश्री 'सुदर्शनाश्रीजी' महाराज साहब के नाम से प्रसिद्ध किया। दीक्षोपरांत उपस्थित जन-समूह ने जय जयकार के निनादों से गगन मंडल गूंजा दिया था।**

प्रसंग विक्रम संवत् २०३० का है। पू. माताजी म.सा. मन्दसौर-नई आबादी विराज रही थीं। उनकी दोनों पौत्रियों का एम.ए. का व्यावहारिक शिक्षण का कार्य चल रहा था। मैं

ग्रीष्मावकाश में सपरिवार पू. माताजी म.सा. के दर्शनार्थ गया था। जब पुनः घर लौटने लगे। तब उनकी चौथी पौत्री आशाकुमारी पू. माताजी म. से जिद्द करने लगी कि अभी छुट्टियाँ चल रही हैं। अतः मैं आपके पास रहूँगी। उसने घर जाने से इन्कार कर दिया। तब पू. माताजी म. ने मुझे समझाते हुए कहा – "आशा कुछ दिन हमारे पास रहना चाहती है। तुम इसे यहीं छोड़ जाओ। जब तक यह अपनी इच्छा से यहाँ रहना चाहेगी, रहेगी और जब भी आना चाहेगी, तुम्हें सूचना दे दी जाएगी। तब तुम आकर इसे ले जाना।"

वि.सं. २०३४ के फाल्गुन माह में श्री मोहनखेड़ातीर्थ में चल रहे जीर्णोद्धार का कार्य लगभग पूर्ण होने से प्रतिष्ठा महोत्सव का शुभ समय आ गया। सभी साधु-साध्वी भगवंत विभिन्न क्षेत्रों से विहार कर श्री मोहनखेड़ा तीर्थ पधार चुके थे। इस महामहोत्सव के शुभ अवसर पर आशा कुमारी की दीक्षा अंगीकार करने की तीव्र भावना हुई। पू. माताजी म. ने मुझे बुलाकर बहुत ही शांति के साथ समझाते हुए कहा कि तुम्हारे पितृपुरुष दादाजी श्री लूणाजी सेठ के तीर्थ में ही पुनः ऐसा शुभ अवसर उपस्थित हुआ है। अपने मन को मजबूत करके हंसते हंसते महालाभ उठाने का प्रयास करो। जिसप्रकार त्रिवेणी संगम में मेरी प्रथम पौत्री को इस तीर्थ में दीक्षा दिलवाई। उसीतरह इस महामहोत्सव के पावन प्रसंग पर मेरी चोथी पौत्री को भी दीक्षा दिलवाओ।"

"यह तो मेरा सौभाग्य है कि मेरी चौथी पुत्री भी आपकी सेवा में आना चाहती है। आपके निर्देशानुसार मैं इसको दीक्षोत्सव का आयोजन करने के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान करता हूँ, किन्तु यह दीक्षोत्सव दो माह बाद, आपकी तीसरी पौत्री साधना की सगाई कर दी गई है और अक्षय तृतीया पर उसका शुभविवाह भी है। तो राग और वैराग्य की एक अनूठी मिसाल समाज के सामने रखते हुए दोनों बहनों का पंचान्हिका महोत्सव पूर्वक धूमधाम के साथ कार्य करने का मुझे अवसर प्रदान करने का कष्ट करें।" मैंने कहा।

जब इस सम्बन्ध में प.पू. आचार्य भगवंत से चर्चा की तो उन्होंने फरमाया कि अक्षय तृतीया का मुहूर्त्त बिना देखे भी श्रेष्ठ होता है। बस, अपने सोचे अनुसार सभी कुछ करते हुए वि.सं. २०३५ की अक्षय तृतीया को शुभ मुहूर्त में **आशाकुमारी को श्री मोहनखेड़ा तीर्थ में आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब ने दीक्षा प्रदान कर उनका नामकरण साध्वीश्री 'आत्मदर्शनाश्रीजी' म. किया** और इसके साथ ही जय जयकार के निनाद गूँज उठे। फिर इसी दिन सन्ध्या के समय मेरी तृतीय पुत्री कु. साधना का विवाह कार्यक्रम भी सानन्द सम्पन्न हुआ।

वि.सं. २०३७ की बात है। पू. माताजी म.सा. ने अपनी दोनों बड़ी पौत्रियों (साध्वी प्रिय-सुदर्शनाश्री) को भोपाल से पी-एच.डी. के अध्ययनार्थ बनारस भेजा और स्वयं अपनी चोथी पौत्री साध्वीश्री आत्मदर्शनाश्रीजी म. के साथ भोपाल से विहार कर मार्गवर्ती ग्राम-नगरों में जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करते हुए इन्दौर पधारीं। इन्दौर में आपकी कुछ समय तक स्थिरता

रही। उस समय हम राजगढ़ के बजाय इन्दौर में रहने लगे थे। जब पू. माताजी म. का इन्दौर से विहार होनेवाला था, तब पू. माताजी म. की अंतिम पौत्री सुधा कुमारी ने माताजी म. से अत्यधिक आग्रहपूर्वक साथ रहने के लिए निवेदन किया। माताजी म. का हृदय पसीज गया। उन्होंने उसी समय मुझे और मेरी धर्मपत्नी को बुलाकर शांतिपूर्वक समझाया और फरमाया कि तुम्हारी अंतिम पुत्री सुधा भी हमारे साथ रहने के लिए हठ कर रही है। यह जितने दिन रहना चाहेगी, रखेंगे और जब भी तुम्हारे पास आना चाहेगी, हम सूचना दे देंगे, तो आकर ले जाना। मेरा ऐसा मानना है कि इसमें तुम्हें किसीतरह की आपत्ति नहीं होगी।

मैंने पू. माताजी म. से कहा – "मुझे नहीं लगता कि आपकी यह पाँचवीं पौत्री हमारे घर वापस आयेगी। इससे पूर्व तीन पौत्रियाँ क्रम से आपकी सेवा में रहीं, उनमें से कौनसी वापस घर आई ? खैर ! भावी प्रबल है। समय पर जो होगा, तदनुरूप किया जायेगा। अभी तो आप इसे इसकी भावनानुसार अपने पास रखें।"

इसके पश्चात् इन्दौर से विहार हो गया और मार्गवर्ती विभिन्न ग्राम-नगरों को पावन करती हुई आप अपनी पू. गुरुणीजी श्रीहेतश्रीजी म. साहेब की सेवा में आहोर पहुँचीं। वि.सं. २०३८ एवं वि.सं. २०३९ ये दोनों वर्षावास आहोर में सम्पन्न हुए। वि.सं. २०४० के आषाढ़ माह में आहोर में एक मुमुक्षुभाई का दीक्षोत्सव सम्पन्न होनेवाला था। इस अवसर पर सुधाकुमारी की इच्छा भी चारित्र अंगीकार करने की हुई। भावना अति प्रबल हो गई।

पू. माताजी म. ने मुझे आहोर बुलवाया। मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। उन्होंने फरमाया–"तुम्हें तत्काल बुलाने का कारण यह है कि यहाँ एक मुमुक्षु भाई की दीक्षा हो रही है। इस अवसर पर सुधा भी दीक्षा अंगीकार करने के लिये आग्रह कर रही है। मेरी यह अंतिम पौत्री भी तुम्हारे घर आनेवाली नहीं है। तुम्हें इसे भी दीक्षा अंगीकार करने की अनुमति देनी पड़ेगी। हम कब मालवा आवे और कब क्या हो ? कुछ कहा नहीं जा सकता। शुभकार्यों में विलम्ब करना भी उचित नहीं है। **"मा पडिबंधं करेह"-धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो**। अत: मेरा कहना मानो और दीक्षोत्सव के निमित्त तुम जो भी व्यय करना चाहते हो वह करके दीक्षोत्सव यहीं सम्पन्न करवा दो। इसकी दीक्षा के पश्चात् तुम्हारे पितृपुरुष श्री मोहनखेड़ा तीर्थ के निर्माता संघवी सेठ लूणाजी के कुल में चार चाँद लग जायेंगे। तुम दोनों माता-पिता के साहस और त्याग की गच्छ के साधु-साध्वी भगवंत भी काफी सराहना करेंगे। समाज भी तुम दोनों और तुम्हारे कुल को धन्य कहेगा। तुम अविलम्ब वापस इन्दौर जाओ और अपने परिवार तथा रिश्तेदारों को जो आना चाहे, साथ लेकर पुन: यहाँ आ जाओ और इस शुभकार्य को सानन्द सम्पन्न करो।"

पू. माताजी म. के निर्देशानुसार अपनी आँखों में आँसू लिये इन्दौर आया और सभी को साथ लेकर पुनः आहोर पहुँचा। यहाँ यथाशक्ति अपनी ओर से योगदान कर वि.सं. २०४० के आषाढ़ माह में **सुधा कुमारी ने प.पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी**

महाराज साहब के कर कमलों से भागवती दीक्षा अँगीकार की। आचार्यदेव ने नवदीक्षिता साध्वीजी का नाम दिया—साध्वीश्री 'सम्यग्दर्शनाश्रीजी' म. । दीक्षोपरांत जय जयकार के निनादों से आहोर का गगनमंडल गूंज उठा।

इसप्रकार एक के बाद एक मेरी चार पुत्रियों की दीक्षा सम्पन्न हुई। मुझे आज संतोष है कि चारों साध्वीजी शासन सेवा में दत्तचित्त होकर लगी हुई हैं। साथ ही वे ज्ञानाराधना में भी तत्पर बनी रहती हैं। उनके उज्ज्वल भविष्य के लिये परम कृपालु गुरुदेव से हार्दिक प्रार्थना है।

पू. माताजी म. से जीवनोद्धार हेतु निवेदन

अपनी अंतिम पुत्री सुधाकुमारी की दीक्षा के पश्चात् एक दो बार माताजी म. की सेवा में जाने का अवसर उपस्थित हुआ। वैसे उनकी सेवा में तो समय-समय पर जाना होता ही रहता था, किंतु जिस समय की मैं बात कर रहा हूँ। उस समय पू. माताजी महाराज से एक दो बार हम दोनों पति-पत्नी ने हमारे जीवन का भी उद्धार करने के लिये निवेदन किया। हमने आग्रह किया कि अब सबके साथ हम दोनों के जीवन का भी उद्धार कीजिये। हमारी भावना भी आपके बढ़ाये हुए कदम दर कदम पर चलकर संयमी जीवन व्यतीत करने की है। हमारा आग्रह है कि आप अपने प्रिय पौत्र को सहमत कीजिये कि वह हमें इस मार्ग पर जाने की अनुमति प्रदान कर दें।

पू. माताजी महाराज ने फरमाया कि तुम दोनों की भावना उत्तम ही नहीं, अति उत्तम है और अपनी इस उत्तमोत्तम भावना को दृढ़ बनाये रखो। मुझे तुम्हारी भावना का पूरा-पूरा ध्यान है। मैं भी यही चाहती हूँ कि तुम्हारी भावना सफल हो। इसके लिये मैं जब जब भी पुष्पेन्द्र (पौत्र) मेरे पास आयेगा, मैं उसे अच्छीतरह समझाने की कोशिश करूँगी। इस सम्बन्ध में मैंने उसे एक दो बार समझाने का प्रयास भी किया था। उसका एक ही उत्तर रहता है कि मुझे इनकी छत्रछाया की आवश्यकता है। ये मुझे अपनी छत्रछाया में रखते हुए तन, मन और धन से जो भी धर्माराधना करेंगे उससे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होगी। इस बात से मुझे ऐसा लगता है कि अभी तुम्हारे चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ है। समय भी परिपक्व नहीं हुआ है। जब समय परिपक्व हो जाता है और चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो जाता है तो प्रतिकूल वातावरण भी अनुकूल बन जाता है। इस बात पर तुम विश्वास रखो। हाँ, निश्चय दृष्टि से यह बात है कि तुम नादान/ नासमझ नहीं हो, परिपक्व आयुवाले हो, किसी की अनुमति के बिना भी तुम स्वयं दीक्षा अंगीकार कर सकते हो। किन्तु जल्दबाजी में एकाएक ऐसा कदम उठाना यह व्यवहार दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता है। ऐसा करने से अपने पीछेवाले की भावना देव, गुरु व धर्म के प्रति अरुचिकारक हो सकती है। इसलिये समय परिपक्व होने तक तुम दोनों अपना समय अधिक से अधिक धर्माराधना में व्यतीत करो। इसमें पौषध करने की ओर विशेष लक्ष्य रखो। पौषध एक प्रकार से संयमी जीवन का अंग कहा गया है। मैं तुम्हारी भावना की सफलता के

लिये प्रयत्न करती रहूँगी। इसतरह हमारी दीक्षा अंगीकार करने की भावना पूरी नहीं हो सकी।

पू. माताजी म. द्वारा प्रदत्त सान्त्वना

विक्रम संवत् २०४८ की बात है। हमने आसोज मास में इन्दौर से बस द्वारा तीर्थ-यात्रा का संघ निकाला था। यात्रा के अभी चार पाँच दिन ही व्यतीत हुए थे कि मार्ग में एक दुर्घटना में मेरी धर्मपत्नी पूनमबाई का अनायास स्वर्गवास हो गया। सभी शोकग्रस्त हो गये और यात्रा अधूरी छोड़कर वापस इन्दौर आ गए। उस समय पू. माताजी म. जालोर (राज.) में विराजमान थीं। वहाँ उन्होंने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने हमें परिवार सहित जालोर बुलाया। हम कार्तिक पूर्णिमा के दिन उनकी सेवा में जालोर पहुँचे। पूरे परिवार को अपने सामने उपस्थित देखकर उन्होंने शांतिपूर्वक साहस, धैर्य और शांति रखने की सामयिक शिक्षा प्रदान की। पू. माताजी म. ने उस समय जो हितप्रद शिक्षा प्रदान की उसे मैं कभी भी भूल नहीं सकता। वह शिक्षा तो मुझे याद आती रहती है। आज उनकी वह शिक्षा मेरे जीवन की सम्बल बनी हुई है। पू. माताजी महाराज साहब की आत्मशक्ति को धन्य है।

पू. माताजी म. ने समझाते हुए कहा था कि "घटना जो घटित हो गई है, निश्चय ही दुःखद है, किंतु इससे अधिक दुःखी होने की आवश्यकता नहीं हैं। इस संसार में जिसने भी जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है, यह अटल नियम है। इस बात को तुम स्वयं भी अच्छीतरह जानते हो। मृत्यु के मुँह में तुम दोनों तो एक साथ जाते नहीं। मान लो अगर तुम पहले चले जाते तो वह दुःखी होती और वह पहले चली गई तो तुम दुःखी हो रहे हो। दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। टूटी की कोई बूटी नहीं है। अच्छा यही होगा कि उसे भूलने का प्रयास कर तुम जो भी आराधना, साधना धर्म-ध्यान कर रहे हो, उसमें अधिक से अधिक मन लगाओ। खूब-खूब स्वाध्याय करो। स्वाध्याय से तुम्हें कई महापुरुषों के जीवन की ऐसी-ऐसी घटनाएँ पढ़ने को मिलेंगी कि जिन्हें पढ़ते हुए तुम स्वयं सोचोगे कि अरे ! इन घटनाओं के सामने तो अपना यह दुःख कोई अर्थ नहीं रखता। इससे तुम्हें काफी शांति मिलेगी।"

पू. माताजी म. ने उस समय जिस ढंग से समझाया वह सब कैसे लिखूँ, कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। लिखते समय उस समय की उनकी छबि आँखों के सामने उपस्थित हो जाती है और मेरी आँखों से बरबस ही अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है।

पू. माताजी म.का अपूर्व आत्मबल

पूज्या माताजी महाराज का विक्रम संवत् २०५६ का अन्तिम वर्षावास धाणसा नगर में था। उस समय की यह घटना है। प्रतिवर्षानुसार इस वर्ष भी वर्षावास की अवधि में पू. माताजी म. के पावन सान्निध्य में नौ दिवसीय नवकार महामंत्र एवं पर्यूषण महापर्व की आराधनाओं के अवसर पर मैं धाणसा में ही रहा और यथाशक्ति आराधनाएँ सम्पन्न कीं। प्रतिदिन कम या अधिक जितना भी समय मिलता पू. माताजी म. से बातचीत तो होती ही थी।

एकदिन बातचीत के दौरान मैंने पू. माताजी म. से कहा कि आपका शरीर बहुत थक गया है। फिरभी धाणसा श्रीसंघ के अत्याग्रह से आप अपनी पौत्रियों के साथ भीनमाल से अत्यन्त धीमी गति से चलते हुए धाणसा पधारीं। **"आप अपनी इन पौत्रियों की सेवा से पूर्ण संतुष्ट हैं"**, यह जानकर मैं अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ, परन्तु अब इस चातुर्मास के पश्चात् यदि आप अनुमति दें तो मैं डोली से या व्हीलचेअर से जिससे भी आप फरमावे उससे आपको मालवा ले जाऊँ। उधर के सभी लोग-परिवार-रिश्तेदार आदि आपको बहुत याद करते हैं और मुझे भी बार-बार कहते रहते हैं। यहाँ से मालवा तक के पूरे विहार काल में अन्य लोगों के साथ मैं भी रहूँगा। आपको बिना किसी कष्ट के ले जाऊँगा। बस, आप आज्ञा करें। वैसे भी आपको मालवा क्षेत्र से विहार करके इधर आये लगभग बीस वर्ष हो गये हैं।

मेरे कथन के प्रत्युत्तर में पू. माताजी म. ने फरमाया कि-"राजमल ! तुम्हें नहीं मालूम कि मुझे किसी भी वाहन या डोली में बैठकर विहार करने का त्याग है ? मैं वाहन में बैठकर विहार करना अपनी शान नहीं समझती और बुद्धिमानी भी नहीं समझती। मुझ से अब लंबा विहार नहीं होता।"

मैंने कहा कि अन्य साधु-साध्वी भगवंत तो इनका उपयोग करते हैं।

"जो उपयोग करते हैं, उनकी वे जाने। मैं तो अपनी बात करती हूँ। मुझे अन्य की तरफ नहीं देखना है। मैं तो अपने उपकरण भी किसी को उठाने के लिये देना नहीं चाहती हूँ।" पू. माताजी म. ने उत्तर में फरमाया।

उस समय मैं सिर झुकाकर उनकी बातों को सुनता रहा और मुझे उनके सामने निरुत्तर भी होना पड़ा। उम्र के इस पड़ाव पर उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति, अपूर्व आत्मबल देखकर मैं स्वयं स्तब्ध था। उनके पावन चरणों में कोटि-कोटि वंदन।

39. जंगल में मंगल

– लक्ष्मीचंद प्रतापजी कांकरिया, मोदरा

जालोर जिले के छोटे-छोटे गाँवों और नगरों में विचरण करती हुई पू. दादीजी महाराज साहब हमारे मोदरा गाँव में भी अनेक बार पधारी थीं। इसलिए मुझे कईबार उनके दर्शन-वंदन का सुअवसर प्राप्त हुआ।

मुझे जहाँतक स्मरण है-जब वे भीनमाल पधार रही थीं। उस समय भीषण गर्मी का प्रकोप था। वृद्धावस्था के कारण आपसे विहार अधिक लम्बा नहीं होता था। स्थान की दूरी अधिक थी। मोदरा और भीमपुरा स्टेशन के बीच ठहरने योग्य कोई स्थान नहीं था। केवल जंगल ही जंगल ! ऐसी स्थिति में एक पड़ाव जंगल में ही करना पड़ा एक वृक्ष के नीचे। पूज्या दादीजी

महाराज साहब किसी को भी परेशान नहीं करना चाहती थीं। **'अपने कारण किसी को कष्ट उठाना पड़े', यह तो उनके स्वभाव में ही नहीं था।** संघ के लोगों ने जंगल में टैंट लगाने का अनुरोध किया, पर पू. दादीजी म.सा. ने साफ मना कर दिया। साथ में न कोई व्यवस्था, न आदमी। रात को हम कुछ लोग पुनः वहाँ पहुँचे और पू. दादीजी महाराज साहब से पुनः पुनः निवेदन किया कि रात्रि का समय है जंगल का मामला है। हम कुछ लोग यहाँ रूक जाएँ, किन्तु उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया। इसके बावजूद भी एक-दो व्यक्ति वहाँ रूके रहें। उनकी वाणी में निर्भीकता और आत्म-शक्ति झलक रही थी। करीब एकाध घंटे तक उनसे जो वार्तालाप हुआ, उसे सुनकर सभी श्रद्धाभिभूत हो गये।

इसप्रकार पू. दादीमाँ का संपूर्ण जीवन गौरवपूर्ण रहा है। उनका 'महाप्रभा' नाम सार्थक था। उन्होंने अपनी सद्गुणरूपी सौरभ से चारों और महान् प्रकाश फैलाया है।

40. पारसमणि

– नीतू चौधरी, भरतपुर

पूज्या दादीमाँ के नाम स्मरण के साथ ही सन् 1988 की मेरे जीवन की वह प्रेरक घटना याद आ जाती है।

मेरे जीवन को कुसंस्कारों से सुसंस्कारों में मोड़नेवाली नींव का पत्थर वे पू. दादीजी महाराज साहब ही थीं। आपकी मीठी मधुर चमत्कारिणी वाणी ऐसी थी कि एक बड़ा पोथा बन सकता है। श्रीमद्राजेन्द्रसूरि गुरु-जन्मभूमि-भरतपुर में पू.दादीजी महाराज साहब ने अपनी दोनों पौत्रियों के साथ निरंतर दो चातुर्मास किए (सन् 1987 व 1988 में)। तभी मेरा उनसे परिचय हुआ। सन् 1988 में उन्होंने मुझे मदिरापान नहीं करने का संकल्प दिलवाया था। मैं उनके उपकार से कभी भी उऋण नहीं हो सकता।

एकदिन मैं दादीमाँ के पास बैठा था। उन्होंने मुझे पूछा-"क्या कभी भगवान् का नाम लेते हो ?"

हाँ, ले लेता हूँ महाराजजी !

"राम का नाम लेते हो, यह तो ठीक है, पर दूसरा तो कुछ भी नहीं लेते हो ना नीतूजी ?" मेरी तो सिट्टी-पिट्टी ही गुम हो गई ! क्या बोलता मैं ?

उन्होंने फिर दोहराया-"नीतूजी ! मैं तो यह पूछ रही हूँ कि तुम्हारे जीवन में किसी प्रकार का कोई व्यसन तो नहीं है ना ?" अब सच बोले बिना कोई चारा ही नहीं था।

झूठ तो कैसे बोलूँ संतों के सामने ? दूसरी जगह तो चल सकता है, किंतु आपके सामने तो मिथ्याभाषण कर ही नहीं सकता। मैंने दबी हुई आवाज में कहा -

हाँ, महाराजजी ! और तो कुछ नहीं, कभी-कभी मदिरापान कर लेता हूँ। मेरी बात सुनकर न तो वे नाराज हुईं और न ही उन्हें घृणा हुई मुझ से। बल्कि आत्मीयतापूर्ण शब्दों में मदिरापान

नहीं करने के बारे में अच्छीतरह समझाया और अन्त में उन्होंने मुझे एक ऐसा वाक्य कहा जो आज भी मेरी स्मृति में तरोताजा है।

"नीतूजी ! शराब पीनेवालों पर कभी कोई विश्वास नहीं करता। इस बात पर थोड़ा चिंतन करना।" उनकी यह अमृतमयी दिव्यवाणी सीधे मेरे अन्तर्मन को छू गयी और उसीसमय मैंने जीवनभर के लिए पू. दादीजी महाराज साहब से मदिरापान नहीं करने का संकल्प ले लिया। अद्यावधि इस संकल्प का पालन पूरी दृढ़ता के साथ कर रहा हूँ। पू. दादीमाँ के प्रति मेरा मस्तक नत है। **धन्य हो उपकारिणी दादीमाँ तुम !**

41 कठिनाइयों का घर

– श्रीमती पिंकी-निलेशकुमार जैन, बाग (म.प्र.)
(पू. साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. की संसारपक्षीय भतीजी)

परम ज्योतिपुञ्ज साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब (बुआ महाराज सा.) परम त्यागी, सहनशीला एवं संयम साधना की जीवन्त प्रतिमूर्ति थीं। मैं जब भी आपके दर्शनों के लिए जाती थी और उनसे निवेदन करती कि आप इन्दौर चातुर्मास करने की कृपा करावें। वे सरलमन से प्रत्युत्तर देतीं कि-"मुझ से इतना लम्बा सफर तय नहीं हो सकता। डोली, व्हीलचेअर, लारी आदि किसी भी वाहन का उपयोग नहीं करने का मुझे त्याग है।" यह सुनकर मैंने कहा कि मैं आपको अपने कन्धे पर उठाकर ले चलूँगी। उन्हें मेरी यह बात सुनकर हँसी आ गयी। उनकी वह हँसी आजतक मेरे स्मृति-पटल पर अंकित है। इसीप्रकार एकबार उनका चातुर्मास भीनमाल में था। वहाँ हम उनके दर्शनार्थ गये। उनके पास उपाश्रय में एक लड़की अध्ययन कर रही थी। वह करीब मेरी उम्र की थी। मैंने पूछा-क्या यह दीक्षा लेगी ? बुआ महाराजजी ने मुझसे कहा कि -हाँ, यह दीक्षा लेगी। तुझे भी लेना है क्या ? **हाँ, बुआमहाराज ! लेकिन तुझे पता है, श्रमणीजीवन की संयम-साधना कितनी कठोर होती है ? श्रमणीजीवन कोई खिलौना नहीं है। 'श्रमणीजीवन अर्थात् कठिनाइयों का घर !' यह सुनते ही मैं तो स्तब्ध रह गई। 'कठिनाइयों का घर' ये शब्द आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं।**

वे कितनी निर्मम थीं। धन्य है उन्हें, जिन्होंने मुझे बजाय फुसलाने के शुद्ध साध्वाचार की कठोरता बताई। आज मैं, चतुर्दिक् देख रही हूँ। मुझे आज कहीं ऐसी बुआमहाराज दृष्टिगत नहीं हो रही है।

मेरे प्रति उनका प्रारंभ से ही वात्सल्यभाव था। मैं जब भी उनके दर्शन करने जाती, मेरे नेत्रों में अश्रुकण छलकने लगते। मैं सोचती अब पुनः कब मुझे बुआजी महाराज साहब के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होगा ? मेरी दशा देखकर वे मुझे सान्त्वना देतीं-**"पगली ! जो इस संसार में आया है, उसे जाना ही पड़ेगा।' 'जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग तो होना ही है।"** उनकी **मधुर स्मृतियाँ आज भी मेरे मानस में ज्यों-की-त्यों अंकित है।**

42. उपयोग बदल दो

– रिखबचन्द जैन, इन्दौर

(पू.साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. का संसारपक्षीय लघुभ्राता)

परम श्रद्धेया परमपूज्या, परमोपकारिणी, चन्द्र-सी शीतल, सूर्य-सी तेजस्वी, कष्टसहिष्णुता की प्रतिमूर्ति साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब (मेरी संसारपक्षीय बड़ी बहन महाराज) के सान्निध्य की अतीत की कई स्मृतियाँ जीवित हो उठीं !

संयमधर्म के पालन में उपस्थित परिषह (कष्ट) सहने में आप जैसी धीर-वीर, कष्ट सहिष्णु दिव्यात्माएँ विरली ही होती हैं।

परमपूज्या दादीजी महाराज साहब जब मन्दसौर विराज रही थीं, तब जनवरी महीने में दर्शनार्थ मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। सर्दी अपनी चरम सीमा पर थी। रात को रजाई ओढ़कर सोया, तब भी सर्दी से राहत नहीं मिली। मैं ठिठुर रहा था। प्रातः उठकर बहन महाराज से कहा-आप इतने कम साधन में (अल्प वस्त्रों में) रात को कैसे सोते होंगे ? नींद कैसे आती होगी ? क्या आपको सर्दी का अनुभव नहीं होता ? बहन महाराजश्री ने फरमाया-"**जरा चिंतन करो ! सर्दी किसे लगती है ? आत्मा को या पुद्गल को। उपयोग बदल दो तो सर्दी की अनुभूति होगी ही नहीं। बिस्तर पर बैठकर चिन्तन करो। स्व-पर का भेदज्ञान करो। जड़-चेतन के स्वभाव को समझो, तो कुछ भी कष्ट की अनुभूति व अहसास नहीं होगा।**"

सच है सहिष्णु व्यक्ति ही समभाव से परिषहों (कष्टों) को सहन करते हैं। आपके समान इतनी सहनशक्ति रखनेवाले मैंने तो अभीतक नहीं देखे।

वास्तव में, कठोर संयम- जीवन का पालन करनेवाली चारित्रशील आत्माएँ ही, उपसर्ग-परिषहों को निर्जरा का कारण मानकर समभाव में रह सकती हैं।

ऐसी तत्त्व-चिन्तनात्मक दृष्टि थी हमारी पू. बहनमहाराजश्री के पास !

43. सुमेरू की भाँति अडिग

– रिखबचंद जैन, इन्दौर

(पू.साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. का संसारपक्षीय लघुभ्राता)

संयम-साधना से समृद्ध महान् आत्माओं को संसार के लुभावने मनमोहक तत्त्व मोहमुग्ध नहीं कर सकते, स्वयं के पथ से डिगा नहीं सकते। वैराग्यवासित मन प्रतिपल और प्रतिक्षण संयमसाधना के लिए समर्पित होता है। दृढ़प्रतिज्ञ होता है और दृढ़प्रतिज्ञ को राह मिलती ही है।

बहन लीलावती भी अपनी बात पर अडिग थी। घटना सन् 1951 की है। बहन

लीलावती के लघुभ्राता पूनमचंद की शादी का मुहूर्त्त विक्रम संवत् २००८ जेठ शुक्ला प्रतिपदा को तय हुआ और बहन लीलावती की दीक्षा विक्रम संवत् २००८ वैशाखशुक्ला दशमी को निश्चित हुई।

वैराग्य को दीप्त बनानेवाले दिव्य क्षण के स्वागत के लिए बहन लीलावती का मन क्षण-क्षण ललक रहा था। राग से ऊबा उनका मन रागात्मक झमेलों में रूकने के लिए अब आंशिक रूप से भी तैयार नहीं था। आखिर अपनी अडिग भावना स्वजनों के मध्य व्यक्त की।

भाई, बहन, माँ आदि पारिवारिक जनों ने दीक्षा-तिथि परिवर्तन के लिए इनसे खूब कहा। केवल बीस-पच्चीस दिन की अवधि बढ़ाकर अपने छोटे भैया की शादी के पश्चात् दीक्षा लेने का आग्रह किया। परिवार के एक-एक सदस्य ने अपने-अपने ढंग से समझाने की पूरी कोशिश की। और तो और! स्वयं जन्मदात्री माँ की आँखों से भी अश्रु छलक पड़े। उसने भी खूब समझाया, पर सब व्यर्थ! ममता की मूरत माँ का मन द्रवित देखकर भी बहन का दिल नहीं पसीजा। चूँकि आपके रग-रग में वैराग्य-रस का स्रोत बह रहा था। अत: वे तिलमात्र भी विचलित नहीं हुईं। उनकी मुखाकृति व मनोभावों से सभी के मन में पूर्णरूप से यह अहसास हो गया था कि वे वैशाख में ही निश्चित रूप से संयम के महामार्ग को स्वीकार करेंगी। वे सुमेरू की भाँति अपने विचारों पर अडिग-अटल है। उनका वैराग्य रंग इतना कच्चा नहीं था कि वह कपूर की तरह उड़ जाये। वे शांत मन से सभी की बातों को सुनती रहीं।

दृढ़ निश्चयी लीलावती ने मधुर शब्दों में कहा-"आखिर आपलोग इन सांसारिक झमेलों में रखकर मुझे कौन-सा सुख देना चाहते हैं? निरर्थक विघ्न डालकर अंतराय कर्मों को क्यों बाँध रहे हैं? आप व्यर्थ ही मुझे विवश क्यों कर रहे हैं? आप तो पन्द्रह-बीस दिन की अवधि बढ़ाने की बात कह रहे हैं, पर क्षण का भी भरोसा नहीं है। अगले क्षण क्या होनेवाला है? मुझे इस मंगल मार्ग पर बिना किसी व्यवधान के चलने के लिए आप सहर्ष आज्ञा प्रदान करें। मैं आपका उपकार जीवनभर नहीं भूलूँगी।" बहन लीलावती की सटीक बातें सुनकर सभी खामोश हो गये। कहने के लिए हमारे पास अब कुछ भी शेष नहीं रह गया था। सभी पारिवारिकजनों ने अनुमति प्रदान कर दी।

आखिर उन्होंने अपनी तर्क बुद्धि से सभी को संतुष्ट कर सहर्ष आज्ञा प्राप्त कर ही ली और निश्चित मुहूर्त में चारित्र अंगीकार कर लिया।

सच है दृढ़ संकल्पी और सुदृढ़ मनोबली व्यक्ति अपने मार्ग में आनेवाले हजारों हजार अवरोधों, मुश्किलों व बाधाओं को सहज ही सरलता में बदल देता है। बशर्ते कि व्यक्ति का निश्चय अकम्प-अचल हो!

44. दिव्यविभूति - साध्वी श्रीमहाप्रभाश्रीजी

– जीवनसिंह मेहता, उदयपुर (राज.)

विशुद्ध संयम की प्रतिमूर्ति, सरलमना परम पूज्या दादीजी. म.सा. श्री महाप्रभाश्रीजी तथा उनकी दो प्रखर विदुषी सतियाँ डो. श्री प्रिय-सुदर्शनाश्रीजी म. के दर्शनों का लाभ ईस्वी सन् 1987 में गुरु-जन्मभूमि-भरतपुर में मिला- जब मेरी पदस्थापना भरतपुर में ही केन्द्रीय सेवा में थी।

दर्शन एवं सान्निध्यता का एक अनूठा प्रसंग : भरतपुर में हम अग्रवाल परिवार के यहाँ किरायेदार के रूप में रहते थे। सड़क के उस पार ओसवाल श्वेताम्बर जैन मंदिर था। मैं स्थानकवासी होने के नाते मंदिर बहुत कम आता जाता था, किंतु मेरी धर्मपत्नी मंदिरमार्गी होने से मेरा वहाँ जाना कभी कभार होता था। एकदिन बाजार से लौट कर आ रहे थे। पत्नी ने इच्छा व्यक्त की कि मंदिर में दर्शन करते चलें। मंदिर में गये। वहाँ पू. साध्वीत्रय के प्रथम बार दर्शन हुए और श्रद्धा के भाव जागृत हुए। हमने उनसे घर पधारने हेतु आग्रहभरा निवेदन किया।

दूसरे दिन पूज्या दादीजी महाराज साहब अपनी शिष्या के साथ गौचरी के लिए घर पधारीं और बताया कि ओसवाल मंदिर में किसी प्रसंग को लेकर समाज में कुछ विवाद हो गया। अत: वे वह स्थान छोड़ना चाहती थीं। मकान बहुत बड़ा था। चूँकि हम वहाँ किरायेदार थे। अत: मकान मालिक से पूछकर हमने वहीं पर उनको स्थिरता करने हेतु नम्र निवेदन किया। दादीजी महाराज साहब ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। हमारा अन्तर्मन प्रसन्नता से भर गया।

मैंने तो कभी श्रीराजेन्द्रगुरुदेव का नाम भी नहीं सुना था। पूज्या साध्वीत्रय ने श्रीमद राजेन्द्रसूरि गुरुदेव के जीवन-दर्शन एवं व्यक्तित्व की जो अमिट छाप हमारे ऊपर छोड़ी, उसके लिए हम आज भी कृतज्ञ हैं और प्रतिवर्ष दर्शनार्थ व तीर्थयात्रा पर जाते हैं।

चातुर्मास पूर्णाहूति के पश्चात् पू. साध्वीत्रय का सान्निध्य निरंतर चारमाह तक मिला। इन चारमाह में दादीजी महाराज साहब की विशेष कृपा तथा आशीर्वाद रहा। दर्शनार्थी आपके दर्शन पाकर ही अपने आपको धन्य समझते थे। मकान मालिक श्रीअग्रवाल पू.महाराजश्री के रहने से, आनेवाले दर्शनार्थियों की हल चल के कारण पहले मना कर रहे थे, किंतु बाद में विभिन्न प्रसंगों पर पू. दादीजी महाराज साहब के दिव्य एवं भव्य व्यक्तित्व से अभिभूत हो गए तथा अपने कार्यों की फलीभूतता के कारण गद गद होकर बार-बार वहीं रूकने के लिए अनुरोध करते रहें।

दोनों विदुषी साध्वियों के गुरुभूमि हेतु चन्दनबाला-सा अभिग्रह पूरा होने पर प.पू.राष्ट्रसंत आचार्यदेव श्रीमद् जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब भरतपुर पधारें और गुरुसप्तमी का शानदार आयोजन हुआ। बाद में पू. साध्वीत्रय का सन्. 1988 का पुन: भरतपुर में अभूतपूर्व चातुर्मास हुआ।

चातुर्मास में पू. दादीजी. महाराज साहब का सान्निध्य एक अनुपम अवसर था। उनके द्वारा दिया जानेवाला मांगलिक निश्चित रूप से विघ्नहरण तथा पापों का नाश करनेवाला था।

स्वच्छ जीवन की प्रेरणा : जब जब भी मुझे दादीजी महाराज साहब के दर्शनों का

अवसर मिला-वह अवसर स्वर्णिम था । पू. दादीजी महाराज साहब के जीवन का आदर्श कम खाना, गम खाना तथा नम जाना था और यही शिक्षा वे बार-बार दिया करती थीं । स्वच्छ जीवन के लिए स्वच्छ / शुद्ध खान-पान पर बहुत बल देती थीं । हमारा प्याज खाना, फूलगोभी तथा बैंगन खाना उन्हीं की प्रेरणा से छूट गया है । रात्रि भोजन नहीं करने की सदैव प्रेरणा दिया करती थीं।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरि गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा और समर्पण भावना रखनेवाली दादीजी महाराज साहब आज हमारे बीच नहीं हैं, किंतु उनका आशीर्वाद और सद्प्रेरणा हमारी मार्गदर्शिका है । हम आज राजेन्द्रसूरिगुरुदेव के प्रति अत्यन्त विनम्रभाव से नतमस्तक हैं । पू. दादीजी महाराज साहब की प्रेरणा से प्रात: प्रतिदिन माला का जाप किये बिना पानी भी ग्रहण नहीं करते हैं ।

नहीं भूल पायेंगे ऐसी दिव्य विभूति को, जिन्होंने हमारे जीवन में नया संचार किया है-नयी ऊर्जा भरी है । उन्हें शत-शत वन्दन ! और नमन !

45. कई नी बिगड़े

– जीवनसिंह मेहता, उदयपुर (राज.)

परम श्रद्धेया परमपूज्या **'दादी-पौत्री'** के नाम से सुविख्यात साध्वीजी श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब का जीवन दर्शन मानव मात्र के लिए अनुकरणीय है । उनकी वाणी में मधुरता, वत्सलता एवं आत्मीयता झलकती थी । उनके सान्निध्य में आते ही आत्मा पवित्र बन जाती थी। उनके दर्शनमात्र से ही जीवन धन्य हो जाता था और आशीर्वाद मिल जाता तो कार्य लाभ शत-प्रतिशत संभव हो जाता था । बशर्ते उनके द्वारा बताये नियम/संयम को अंगीकार कर लिया जाता तो !

मेरे जीवन में कई ऐसे अवसर आए हैं, जिनकी स्मृति मेरे हृदय-पटल पर सदैव अंकित रहती है। सियाणा में गुरुदेव की जन्म-स्वर्गारोहण जयन्ती के शुभावसर पर पृज्या दादीजी महाराज साहब के दर्शन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ । मेरे हृदय में उद्विग्नता थी । कोर्ट में एक केस चल रहा था । उसमें हार की गुंजाइश न होने के बावजूद भी प्रतिकूलता की पूरी आशंका बनी हुई थी । मैंने वैसे ही दादीजी म.सा. के सम्मुख जिक्र किया । उन्हें तो उससे कोई लेना देना या पक्ष-विपक्ष था नहीं । **बस इतना ही कहा-'कई नी बिगड़े'** मुझे संतोष नहीं हुआ । थोड़ी देर बाद पुन: पुन: विस्तार से बात बतायी-तब भी उनका यही प्रत्युत्तर था **'फिकर मत करो, कई नी बिगड़े' पण एक वात को ध्यान राखजो-गुरुदेव का नाम की पाँच माला रोज सवेरे जरूर गिणजो'** । मैंने स्वीकार कर लिया और तभी से नियमित रूप से पाँच माला गुरुदेव के नाम की जपता हूँ । यह मेरा नियमित क्रम सा बन गया है । सुबह कभी लेट

उठना हो, तब भी इतना किये बिना मुहँ में पानी भी नहीं लेता। केस का निर्णय भी पूर्णतः हमारे पक्ष में हुआ। मेरी धर्मपत्नी भी सदैव दादीमाँ के गुणानुवाद गाती है और भरतपुर में आपके सान्निध्य में बिताये क्षणों को भुलाया नहीं जा सकता।
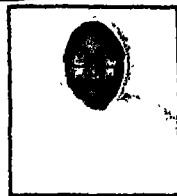
सचमुच जब भी आपके दर्शनार्थ आता था। दादीजी महाराज साहब एक प्रसाद (शायद पारसमणि) अवश्य देती थीं। वर्षभर आनंद से बीतता था और पुनः दर्शन की जिज्ञासा बलवती हो जाती थी।

ऐसी परम उपकारिणी सब की हितचिन्तिका यद्यपि पूज्या दादीमाँ आज हमारे मध्य नहीं है, किंतु उनके स्वर आज भी हमारा मार्ग प्रशस्त करते हैं।

46. मौन आशीर्वाद का चमत्कार

– जीवनसिंह मेहता, उदयपुर (राज.)

ममतामय आशीर्वाद : परमपूज्या दादीजी महाराज साहब का दर्शन ही ममतामय आशीर्वाद होता था। जिस सहृदयता से वे बात करती थीं, उससे लगता था कि अपने प्रश्नों/समस्याओं का समाधान स्वतः मिलता जा रहा है। एकबार भीनमाल में महाराजश्री के दर्शनार्थ जाना हुआ। उससमय मेरी माताजी भी साथ थीं। (जो वैसे तो श्वेताम्बर मंदिरमार्गी हैं, किन्तु पिताजी का कानजीस्वामी गुरु से संपर्क होने के कारण वह भी उनके मत में विश्वास रखती हैं तथा श्वेताम्बर साधु-साध्वियों को नमन / वन्दन नहीं करती हैं।")

पूज्या दादीजी महाराज सा. को भी उन्होंने वंदन नहीं किया, फिरभी दादीजी महाराज साहब ने उनको धर्मलाभ दिया और बैठने को कहा। दादीजी महाराज साहब से निकट की संपर्कता के कारण मैं अपनी समस्या उनके सामने रख **दिया करता था। उसदिन सहज ही कह दिया-महाराज सा. ! एक पोती तो है, अब पोता कब होगा ?" (पारसमणि तो दे दी, किंतु अब पारसमणा कब देंगे ?)** मेरी माताजी सुन रही थीं। महाराजश्री मुस्करा दिए ! कुछ भी जवाब नहीं दिया। लेकिन मौन आशीर्वाद मिल गया है, ऐसा लगने लगा। समय आने पर पोता हुआ। तब मेरी माताजी ने पूछा कि वो दादीजी महाराज साहब कहाँ हैं ? (यह बात अप्रेल २००० की है) मैंने कहा पू. दादीजी महाराज साहब का तो स्वर्गवास हो गया है। यह सुनते ही उनको बहुत धक्का लगा और कहने लगी कि उनके दर्शन करने की बहुत इच्छा थी मेरी-अब पूरी नहीं हो सकेगी।

ऐसा था पूज्या ममतामयी दादीमाँ के मौन आशीर्वाद का चमत्कार !
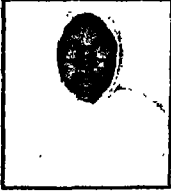
47. चमत्कार को नमस्कार

– जीवनसिंह मेहता, उदयपुर (राज.)

पूज्या दादीजी म.सा. की प्रेरणा से श्रीमद् राजेन्द्रगुरुदेवश्री को हमने जाना, पहचाना और माना। मानव निःसंदेह स्वार्थी है और जब भावना या इच्छापूर्ति हो जाती है, तब श्रद्धा और अधिक बलवती हो जाती है। ऐसा ही एक प्रसंग मेरे जीवन में आया। प्राचार्य होने के नाते जब प्राचार्य संमेलन में गया, तब मालूम हुआ कि नियम बदल गये हैं और मेरा निर्णय गलत था। यद्यपि वह जनहित में था। सप्ताह बाद सूचना मिली कि बड़े अधिकारी नब्बे किलोमीटर दूर एक केन्द्रीय विद्यालय में निरीक्षण पर आये हैं और दूसरे दिन मेरे विद्यालय में निरीक्षणार्थ आयेंगे। गलत निर्णय होने पर उसका पालन किये जाने से अन्तर्मन दुःखी था और अधिकारी के आगमन की सूचना से भय लगा कि कहीं सेवा पर आँच न आ जाय। हताश मन में राजेन्द्रगुरुदेव के नाम स्मरण का एकमात्र उपाय था। सच्चे मन से दादा गुरुदेव व दादी माँ का स्मरण किया। दूसरे दिन विद्यालय जाने पर पता चला कि अधिकारी महोदय को हल्का दिल का दौरा पड़ जाने से मुख्यालय चले गये हैं और अब नहीं आयेंगे।

भगवान् की मूर्ति हो या गुरु की, प्रत्यक्ष में गुरु हो या अप्रत्यक्ष रूप में हो, हमारी उनके प्रति अटूट श्रद्धा ही कार्यकारी होती है। परमपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरि गुरुदेव तथा दिव्य विभूति पू. दादीजी महाराज सा. के प्रति अनन्य श्रद्धाभाव से वंदन।

48. भविष्यवाणी सत्य हुई

– विमलचंद जैन, अटलबंद मण्डी, भरतपुर

यह प्रसंग ई.सन् 1987 का है। चातुर्मास की पूर्णाहूति के पश्चात् प. पूज्या दादीजी म.सा. भरतपुर ही विराज रही थीं। मेरे पूजनीय पिताश्री का देहावसान प.पूज्या श्री महाप्रभाश्रीजी म.सा. के सान्निध्य में हुआ।

एक दिन साध्वीजी श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. मेरे घर पधारी थीं। पिताजी को मांगलिक सुनाई। पुनः उपाश्रय पहुँचीं और वहाँ मुझे कहा–"विमलजी ! पिताजी का पूरा ख्याल रखना।" इसका मतलब ? मैं नहीं समझा। "मतलब यही कि इनका जीवन अब आगे नहीं है।" क्या बात करती हैं महाराज सा. ? "हाँ, देख लीजिए आप।" यह बात पू. दादीजी महाराज साहब ने मुझ से सात दिन पूर्व ही कह दी थी। मुझे विश्वास ही नहीं हुआ, पर हुआ ठीक वैसा ही। फिर रोज घर पधारती थीं और पिताजी के सिर पर वासक्षेप डालकर तथा मंगल पाठ सुनाकर जाती थीं। वे कहती थीं–"अब पाँच दिन, चार दिन, तीन दिन शेष रहे आदि-आदि।" पूछने पर

पूज्या साध्वीश्री ने पिताजी को हास्पिटल भर्ती करने से मना कर दिया। "क्या करेंगे डोक्टर सा.? क्या आयुष्य बढ़ा देंगे वे ?" मुझे भी उन पर पूर्ण विश्वास था। सब कुछ उनसे पूछता रहता था। जब केवल उनके जीवन के दो दिन शेष रहे, तब पू. दादीजी महाराज साहब ने कहा-"इनका किन से मिलना बाकी है ?" मैंने कहा-और तो किसी से नहीं मिलना। हाँ, आपकी दोनों शिष्याओं-डो. प्रियसुदर्शनाश्रीजी के दर्शन जरूर बाकी है। दोनों साध्वीजी परम पूज्य राष्ट्रसंत वर्तमान आचार्यभगवन्तश्री को पहुँचाने के लिए किशनगढ़, अजमेर पधारी हुई थीं। वे पिताजी के देवलोक होने के एकदिन पूर्व ही उग्रविहार करके पुनः पू.दादीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में पहुँच गयी थीं। पू. दादीजी म. के आदेश से उन्होंने भी पधारकर पिताजी को मांगलिक सुनायी। तत्पश्चात् सुबह दस बजे से रात्रि दस बजे तक पू. दादीजी म. की प्रेरणा से बारह घंटे का श्रीनवकार महामंत्र का अखण्ड जाप प्रारंभ किया। जाप की पूर्णाहूति के पश्चात् उसी रात को सुबह 3.45 पर पू. पिताजी श्रीमटोलीरामजी इस संसार से महाप्रयाण कर गए।
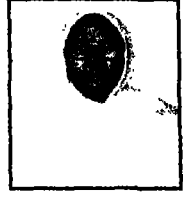
धन्य है पूजनीया उन दिव्यात्मा दादीजी म.सा. को, जिन्होंने सात दिन पूर्व ही भविष्यवाणी कर दी थी।

49. सबसे बड़ी दवाई

– रोशनलाल जैन, भरतपुर

परम श्रद्धेया परमपूजनीया साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) म.सा. की शांत प्रकृति, गंभीरता, हृदय की समुज्ज्वलता एवं वाणी की मधुरता आदि गुणों से चुंबक की भाँति हर व्यक्ति आकर्षित हो जाता था। आपकी वाणी एवं व्यवहार में विनम्रता, सरलता, सादगी एवं वात्सल्य प्रतिबिंबित होता था।

आपके दर्शन करने का सौभाग्य मुझे भरतपुर में ही मिला था। मैंने स्वयं देखा-आप अपनी शिष्याओं के होते हुए भी अपना कार्य स्वयं करती थीं। प्रायः प्रतिदिन एकासना करती थीं। उसमें भी रूखा-सूखा-नीरस पदार्थ ग्रहण करती थीं। चटपटे, मसालेदार व तले-गले-गरिष्ठ पदार्थों से तो आप कोसों दूर रहती थीं। अंतिम समय तक कभी भी आपने किसी भी वाहन का उपयोग नहीं किया और न आपने जीवनपर्यन्त अंग्रेजी दवाई का उपयोग किया।

आपकी सबसे बड़ी दवाई थी-नवकार महामंत्र। जब भी देखा नवकारमंत्र के जाप में तल्लीन रहती थीं आप। आपकी यह दृढ़ आस्था थी कि इस विश्व में नवकामंत्र से बढ़कर अन्य कोई मंत्र नहीं है। बाल्यकाल से ही आपको नवकारमंत्र पर अटूट विश्वास था।

एक दिन मैंने उनके चरणों में बैठकर अपनी विभिन्न समस्याओं का समाधान करना चाहा। उन्होंने मुझे नवकार का अद्‌भुत प्रभाव बताया और कहा "एकबार मैं इतनी अस्वस्थ हो गई थी कि बचने की कोई संभावना नहीं थी। कई लोगों ने मुझे अंग्रेजी दवाई लेने के लिए काफी जोर दिया, किंतु मैंने स्पष्ट मना कर दिया। **'चाहे मेरे प्राण चले जाय, पर मैं अंग्रेजी दवाई का उपयोग कभी नहीं करूँगी।' मेरे पास नवकार मंत्र रूपी औषधि है। उस औषधि के सेवन करने से मैं निश्चितरूप से स्वस्थ हो जाऊँगी। उसी नवकार के प्रभाव से कुछ दिनों में ही मैं पूर्णतः स्वस्थ हो गई। बशर्ते कि नवकार का जाप पूर्ण श्रद्धा, एकाग्रता व समर्पण के साथ किया जाय।"**

आपने हमारे मन-मस्तिष्क में नवकार के प्रति अटूट आस्था दृढ़ीभूत करते हुए कहा-"रोशनलालजी ! रोग-शोक, दुःख-दारिद्‌यादि कैसी भी सम-विषम परिस्थिति में नवकार ही एकमात्र शरण है और वही हमें दुःखों से मुक्त करता है। आप अपने जीवन में अनुभव करके देखना ?" उसी वक्त हम दोनों पति-पत्नी ने पू. दादीजी महाराज साहब से नवकार का जाप करने का संकल्प ले लिया। जब हमारे सामने ऐसी कोई परिस्थिति आती है तो हम नवकाररूपी औषधि का सेवन करते हैं।

एकबार मेरी पत्नी के पैर की हड्डी टूट गई। पैर में सूजन आ गई, चलने- फिरने में असमर्थ हो गई। इस बीच मैंने कई डोक्टरों से सलाह ली। उन्होंने एक्सरे कराने के बाद प्लास्टर चढ़वाने की बात कही। पत्नी ने साफ मना कर दिया। उसने कहा पू. दादीजी म.सा. भी तो नवकार के प्रभाव से एकदम स्वस्थ हो गई थीं, तो क्या मेरा पैर ठीक नहीं होगा ? मुझे नवकारमंत्र पर पूरा विश्वास है। वह मेरा पैर जरूर ठीक करेगा ! हम दोनों ने पूर्ण श्रद्धा-निष्ठा के साथ नवकार-जाप शुरू किया और अन्तर्मन से प्रार्थना की। नवकार के जाप का ऐसा चमत्कार हुआ कि अपने आप पैर की सूजन उतर गई और दर्द गायब हो गया। पैर सामान्य स्थिति में आ गया। उधर हमारे जमाई सा. को पैर की हड्डी टूटने के समाचार मिले तो दो-तीन दिन बाद खेड़ली से आए। आते ही पूछा-पैर का क्या हाल-चाल है ? उन्होंने सोचा था कि वे पैर-दर्द के कारण चारपाई पर लेटी होंगी। परंतु उन्होंने देखा कि वे तो स्वस्थ व्यक्ति की तरह चल रही हैं। घर के कार्य कर रही हैं। यह सब देखकर वे हैरान हो गए और कहने लगे-आपका पैर कहाँ टूटा है ? आप तो खूब चल फिर रही हैं। पत्नी ने कहा-बस, यह तो नवकार महामंत्र का ही अद्‌भुत चमत्कार हुआ है। पू. दादीजी महाराज साहब ने ही हमें नवकार का प्रभाव बताया।

धन्य है उन महान् व्यक्तित्व की धनी पू. गुरुवर्याश्री को, जिन्होंने हमें नवकार के जाप का माहात्म्य बताकर हम पर महान् उपकार किया।

हम उनके अनगिनत उपकारों को कभी भी भूल नहीं सकते।

50. जीवन सफल कर लो

— बहादुरमल करनावट (मन्दसौरवाले) बड़नगर (म.प्र.)

परम श्रद्धेया परम पूज्या साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. के साथ मेरा कईबार वार्तालाप हुआ था। उनका समझाने का तरीका अतिसरल था। उनकी भाषा एकदम सीधी-सरल और सहज थी। उसमें कृत्रिमता का कहीं नामोनिशान नहीं था। उनकी मधुरवाणी का इतना प्रभाव था कि उनके मुखारविंद से जो वचन निकलते थे। वे सीधे हमारे हृदय को स्पर्श करते थे।

मुझे मन्दसौर चातुर्मास में पू. साध्वीश्री महाप्रभाश्रीजी म.सा. द्वारा प्रदत्त सुन्दर मार्गदर्शन एवं उनके साथ हुए वार्तालाप का प्रसंग इसप्रकार है-जो अभी भी मेरी स्मृति पटल पर ज्यों-का-त्यों अंकित है।

एकदिन बातचीत के दौरान मैंने पू. दादीजी म.सा. से पूछा कि मूर्ख लोगों को गधा क्यों कहते हैं? और उसके साथ मूर्ख की तुलना क्यों की जाती है ? **सीधी-सरल भाषा में उन्होंने समझाते हुए कहा "ग=गलत और धा=धारणा। जिसकी गलत धारणा होती है, वह गधा है। मिथ्याधारणा का सूचक 'गधा' शब्द है। इसलिए मूर्ख को गधा कहते हैं।"**

दूसरी बात उन्होंने समझायी-"मूर्ख और समझदार में यही अंतर है कि मूर्ख अपनी भूल को भूल नहीं मानता है और समझदार अपनी भूल को स्वीकार कर लेता है।

मूर्ख दूसरों के अवगुणों को देखता है, वह मक्खी के समान है, जो मिष्टान्न को छोड़कर गंदगी पर बैठती है और समझदार दूसरों के गुणों को देखता है, वह मधुमक्खी के समान है जो सभी फूलों में से मकरन्द लेता है।"

फिर मैंने उनसे निवेदन किया-पूज्या महाराजजी ! मुझे अपने जीवन में क्या करना चाहिए?

उन्होंने कहा-"करनावटजी ! यह आर्यक्षेत्र, यह मनुष्यभव, जैनकुल, जैनधर्म, देव-गुरु व धर्म का समागम और रत्नत्रय की आराधना यह सब पुण्यानुबंधिपुण्य से ही मिलता है। इसको व्यर्थ मत खो देना।" जैसा कि कहा है -

"दिवस गँवाया खाय के, रात गँवाई सोय।
हीरा जैसा मनुष्य भव, कौड़ी बदले जाय ॥"

इसी बात को उन्होंने एक छोटे से उदाहरण के माध्यम से समझाया कि अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछा-यह बताओ-मेरी हथेली में बाल क्यों नहीं है ?

बीरबल ने उत्तर दिया-जहाँपनाह ! आपने इतना दान दिया कि दान देते-देते आपकी हथेली के बाल घिस गये। तो तपाक से दूसरा प्रश्न किया-तेरी हथेली में बाल क्यों नहीं है ? हजूर ! आपने दान दिया और मैंने लिया और दान लेते-लेते मेरी हथेली के बाल घिस गये। इसलिए मेरी हथेली में बाल नहीं है। फिर एकदम तीसरा प्रश्न किया-"मैंने दान दिया, तूने दान

लिया, सो ठीक है, परन्तु दुनिया के सभी प्राणियों की हथेली में बाल क्यों नहीं है ? बीरबल तो हाजिर जवाब थे। बोले-हुजूर ! आपने दान दिया, मैंने लिया, परन्तु दुनिया के लोग-ईर्ष्या से यह देख-देखकर हथेली को मसलने लग गये। **ऐसे लोग 'दाता दे और भंडारी का पेट दुःखे'** वाली कहावत को अपनाते हैं। इसलिए उनकी हथेली के सारे बाल घिस गए। यह सुनकर बादशाह बहुत खुश हुए।

पू. दादीजी म. ने इस कथा का मर्म समझाते हुए कहा-"**इसका मतलब यह है कि हम भी इस संसार में आये हैं तो हाथ मसलते-मसलते कहीं खाली हाथ न चले जायें। इसलिए दान देते रहो। जीवन मिला है तो देवगुरुधर्म की सुंदर आराधना कर लो। जीवन में दान देने की सदा भावना रखो। यह सुनहरा अवसर फिर हाथ आनेवाला नहीं है।**

धर्माराधना के द्वारा जीवन को सफलीभूत बना लो।

धन्य है पू. दादीजी म.को, जिन्होंने मुझे इतना सुन्दर जीवन- दर्शन दिया। मैं उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता।

51. यह शरीर तो गधा है

— श्रीमती कुसुम जैन, भोपाल

एकबार मैं दादीजी म.सा. के दर्शन करने गई। मैंने देखा वे कुछ कार्य कर रहीं थीं। उनकी सक्रियता, कार्यशीलता देखकर मैं तो दंग ही रह गई। मैंने दादीजी म.सा. से निवेदन किया-आप रहने दीजिए। आप इतना श्रम क्यों ले रही हैं ? आप विराजिए। ये शिष्याएँ आपकी सेवा में तैयार हैं ना ? आप बोलीं "हाँ वो तो हर समय तैयार ही हैं, पर थोड़ा बहुत तो सक्रिय रहना ही चाहिए न ? श्रमणी जीवन में आराम कैसा ?

यह शरीर तो गधा है। इससे कुछ-न-कुछ काम लेते रहना ही श्रेयस्कर है। नहीं तो यह सूखे काष्ठ के समान अकड़ जायेगा। ऐसी आपकी दृढ़ मान्यता थी।

52. दृढ़ मनोबल की स्वामिनी

— श्रीमती विमला भिमाणी, भीनमाल

स्वनामधन्या पूज्या दादीजी म.सा. का जीवन निर्विवाद रूप से आडम्बरहीन एवं वास्तविकता से ओतप्रोत था। यह बात मैं औपचारिक रूप से नहीं, बल्कि स्वानुभव से कह रही हूँ। यों तो मैं सन् 1992 के भीनमाल चातुर्मास से ही आपके जीवनादर्शों से सुपरिचित थी। प्रथम दर्शन में ही पूज्या दादीजी म. के मृदुल व्यक्तित्व की अमिट छाप जो मुझ पर पड़ी। सचमुच हृदय और

मस्तक दोनों ही श्रद्धावनत हो गये।

तत्पश्चात् हर चातुर्मास में आते रहें हमलोग और शेषकाल में जब भी स्मृति हो उठती, जहाँ भी आप विराजमान होतीं, खोजकर पहुँच जाते। आज भी उनके जीवन प्रसंग, उनकी हितशिक्षाएँ समय-समय पर हृदय में उभरती रहती हैं। उनका स्नेह-प्रेम स्मरण हो आता है तो हृदय गद गद हो जाता है।
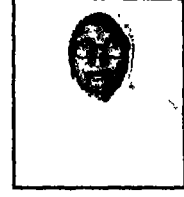
दादीजी म.सा. की कठोर संयम-साधना का सबसे बड़ा प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि शारीरिक दृष्टि से अत्यन्त वृद्ध होते हुए भी उन्होंने स्थिरवास नहीं किया।

मैंने देखा है नब्बे वर्ष की वृद्धावस्था में शारीरिक बल कमजोर होने पर भी आपका मनोबल बड़ा मजबूत था। आत्मशक्ति अद्‌भुत थी। मैं तो देखकर ही अभिभूत हो जाती थी। वि. सं. २०५६ में भीनमाल से धाणसा की ओर जब पूज्या दादीजी म. का विहार हुआ। मैं कईबार उनके साथ विहार में रही। इतना ही नहीं, उनकी अंगुली पकड़कर साथ-साथ चली हूँ। चलते हुए श्वास फूलता था। मैं उनसे कहती थोड़ा विश्राम कर लो। तो कहतीं-"विमलाजी! धीरे-धीरे मुकाम पर पहुँच जायें, फिर बैठना ही है। व्यर्थ धूप चढ़ाकर क्या करना?"

विहार दरम्यान का मुझे एक प्रसंग स्मरण हो रहा है। कभी वो मनोविनोद भी कर लिया करती थीं। शाम को जैसे ही प्रतिक्रमण का समय हुआ। बोलीं-"विमलाजी! प्रतिक्रमण करना है ना?" हाँ जी, दादी माँ!

"तो आ जाओ जल्दी। सामायिक ले लो!"

प्रतिक्रमण-विधि तो आती नहीं थी मुझे। जैसे उन्होंने किया। मैंने भी कर लिया। रात्रि में उन्होंने संथारा पोरिसी पढ़ाई। वो मुँहपत्ति प्रतिलेखन कर रही थीं। मैं क्या पड़िलेहन करूँ? दादीजी महाराज! मैंने उनसे पूछा।

"अपने पहनने के कपड़े पड़िलेहन करो?" बड़े सहज भाव से दादीमाँ ने कहा।

मैं क्या जानूँ साधु-साध्वी भगवन्त के विधि-विधान? मैं करने लगी पड़िलेहन। साड़ी की पड़िलेहन की। ब्लाउज निकालने लगी कि सभी महाराज साहब अपनी हँसी को रोक नहीं पाये। जोरों से हँस पड़े सभी। मैं सब कुछ समझ गई। वे क्यों हँस रहे हैं। मैं भी उस हँसी में शामिल हो गई। फिर तो सब मिलकर हँसकर लोटपोट हो गए।

ऐसी मनोविनोदी स्वभाव की थीं मेरी वो दादी माँ।

53. आशीर्वचन का सुफल

— श्रीमती कान्ता जैन, बैंग्लोर

वह दिन मैं अपने जीवन में कभी भूल नहीं सकती। वह सौम्य छबि मेरी स्मृति पटल पर आज भी यथावत् अंकित है। पू. दादीजी महाराज साहब के दर्शन ही पुण्यकारक थे। उनका संयम, तप-त्याग देखकर मेरा मस्तक स्वतः नत हो गया।

मैंने एक दिन उन से कहा-महाराज साहब ! मुझसे आयम्बिल नहीं होता है। या यों कह लीजिए कि रूखा-सूखा गले से नीचे नहीं उतरता है। कोशिश बहुत करती हूँ, पर भाता ही नहीं है। क्या करूँ ? आप मुझे ऐसा वासक्षेप व आशीर्वाद दीजिए ताकि मैं आसानी से आयम्बिल कर सकूँ। नवपद ओली भी शुरू करने की मेरी प्रबल भावना है।

पू. दादीमाँ ने फरमाया -"कान्ताजी ! स्वाद पर विजय पाने का सर्वश्रेष्ठ नुस्खा आयम्बिल तप ही है। आयम्बिल तप से इन्द्रियों का दमन होता है। जितना भाये उतना ही खाओ, पर छोड़ो मत। कोशिश करते रहो। निश्चितरूप से अंतरायकर्म टूटेगा।" उस दिन से उनकी बात को मैंने गांठ में बाँध ली। अगले दिन गुरुसप्तमी थी। आयम्बिल करना ही था। आपके पास पहुँची। वन्दन करने के पश्चात् उनके मुख से आयम्बिल का पच्चक्खाण लिया। फिर वासक्षेप व आशीर्वाद भी लिया।

गुरुसप्तमी का इतना बढ़िया आयम्बिल हुआ कि कुछ महसूस ही नहीं हुआ। यह सब आप ही की कृपा व आशीर्वचन का सुफल है। आपकी कृपा से मेरी नवपद की ओली भी आनन्दपूर्वक सम्पन्न हो गई।

अनेक गुणों की खान पूज्या दादीमाँ ने तप की ज्योति प्रोज्ज्वलित करके मुझ पर महान् उपकार किया है। उस महोपकारिणी गुरुवर्याश्री को कोटिश: नमन है।

54. सिद्धवचनों का प्रभाव

— श्रीमतीदेवी हुकमचंदजी जैन, भरतपुर

पूज्या मेरी दादीजी महाराज साहब के सन् 1987-88 में लोहागढ़ भरतपुर की धन्य धरा पर दो चातुर्मास हुए। तब मुझे इतनी अधिक खुशी हुई मानो भागीरथ के भाग्य से घर बैठे गंगा आई हो। प्यासे को पानी मिला हो, भूखे को भोजन मिला हो और अंधे को रोशनी मिली हो।

मैं कुछ भी नहीं जानती थी। हरवक्त मैं पूज्या दादीजी महाराज से छोटी-से-छोटी एक-एक बात पूछती रहती थी। वे बड़े प्रेम से मुझे हर बात समझाती थीं।

एकदिन आपने पूछा-"श्रीमतीजी ! सामायिक-प्रतिक्रमण के सूत्र याद है या नहीं ?" मैंने कहा-साहेबजी ! पूर्वजन्म में ऐसा ज्ञानावरणीय कर्म बाँधा है कि ज्ञान चढ़ता ही नहीं है। एक भी सूत्र याद नहीं है। न तो याद होता है और न अब याद रहता है।

दादीमाँ ने बड़े मधुर-मृदुल शब्दों में कहा -

"करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात के, सिल पर पड़त निशान॥"

मन लगाकर थोड़ी मेहनत करो। सब याद रहने लग जाएगा। काले माथे का

मानवी क्या नहीं कर सकता है ? सब कुछ सम्भव है । तुम एकबार कण्ठस्थ करना तो शुरू करो ।"

वचनसिद्ध दादीमाँ के सुवचनों को हृदयंगम करके **'शुभस्य शीघ्रम्'** की उक्ति के अनुसार उसीसमय आपके मुखारविन्द से गाथा ली और कण्ठस्थ करने का प्रयत्न शुरु किया । थोड़े ही दिनों में प्रतिक्रमण कण्ठस्थ कर लिया ।

यह था दादी माँ के सिद्ध वचनों का प्रभाव !

जहाँ मुझे एक भी सूत्र नहीं आता था । उनकी पावन प्रेरणा व मंगलमय आशीर्वाद से सामायिक-प्रतिक्रमण मूलसूत्र व सम्पूर्ण विधि सीख गई और आज दोनों समय प्रतिक्रमण, देववन्दन, चैत्यवंदन, गुरु-भक्ति, प्रभुभक्ति, पूजा-पाठ आदि सब कुछ नियमित रूप से कर रही हूँ ।

मुझे, मेरे पतिदेव व बच्चों को जो कुछ विवेक, व ज्ञान प्राप्त हुआ है । निश्चित रूप से वह सब पूज्या मेरी दादीमाँ के आशीर्वाद का ही सुफल है ।

मेरी उपकारिणी पू. दादीमाँ के इस उपकार को मैं कभी भी नही भूल सकती हूँ ।

धन्य है वचनसिद्ध उस पुण्यात्मा दादी माँ को !

धन्य है महाप्रभावी उस महान् संयमी जीवन को !

आशीर्वाद का चमत्कार :

मेरी लड़की पिंकी एम.एस.सी. करके पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर आज डॉ. पद पर कार्य कर रही है । बचपन से वह उनके पास जाती रही है । आज भी पूर्णरूप से श्रद्धान्वित है । सब उन्हीं का आशीर्वाद व चमत्कार है ।

मेरा सुपुत्र भुवनेश, जो जैनधर्म को बिल्कुल नहीं मानता था । अन्य देवी देवताओं में विश्वास करता था । वह आज कट्टर गुरुभक्त बन चुका है तथा आर.एस. के पेपर में बिना रिश्वत (डोनेशन) के सफल बनकर आगे की तैयारी कर रहा है ।

मुझे पूर्ण विश्वास है मेरी पूज्या दादी-पौत्री महाराज साहब के आशीर्वाद से पूर्ण सफलता प्राप्त करके अपने गुरुदेव व अपने माता-पिता का नाम रोशन करेगा ।

मैं नित्यप्रति गुरुदेव व दादीजी महाराज साहब से यही प्रार्थना करती थी-हे दादीमाँ ! आप भुवनेश को अपना गुरुभक्त बना लो । वास्तव में भक्ति में शक्ति है । चट मंगली पट काम पूरा हुआ और आगे भी होगा । **यह सब पू. दादीजी महाराज साहब के आशीर्वाद का चमत्कार ही तो है । जिन्होंने मुझ में धर्म की ज्योति प्रोज्ज्वलित की है, उन पू. दादी महाराज साहब के जितने गुण गाऊँ, उतने कम है ।**

55. उद्बोधक प्रेरणा

– सुषमा, सीमा व कविता त्रय, सूरा (राज.)

हमारे यहाँ वर्षावास होने से पहले ही हमने अनेकबार आपका नाम सुना था, पर कभी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं किये थे । आपको जालोर जिले के छोटे-बड़े सभी लोग '**दादीपौत्री**' के नाम से जानते, पहचानते और मानते हैं ।

आपके दर्शनों के लिए हम कई दिनों से बड़ी आतुर थीं । योग-संयोग कह लीजिए । अपनी पौत्रियों-डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म.सा. एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी म.सा. के साथ विचरण करती हुई आप सूरा पधारीं । यतीन्द्र भवन में ठहरीं ।

हमने आपको कुछ दिन अपने यहाँ रूकने का अत्याग्रह किया । आपने हमारी आग्रहभरी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया । करीबन एक सप्ताह स्थिरवास किया । उससमय हम तीनों बहनें (सुषमा, सीमा, कविता) आयु में बहुत छोटी थीं । रोज दोपहर को सामायिक के उपकरण और माला का डिब्बा लेकर यतीन्द्र-भवन में जाती थीं और सामायिक लेकर बैठ जातीं । उठायी माला और सामायिक का काल पूरा न हो, तबतक गिनती रहती थीं ।

प्रथमबार आपके दर्शन किए थे । इसलिए कुछ झिझक सी लगती थी बोलने में और आप भी हमसे परिचित नहीं थीं । हम सब एक दूसरे को देखतीं और मुस्करा देतीं । यों दो-तीन दिन बीत गए । चौथे दिन सामायिक लेने के पश्चात् दादीमाँ ने मुस्कराहट बिखेरते हुए मीठी मृदुल अपनी मालवी भाषा में जो कुछ कहा, अभी भी हमें यथावत् याद है ।

''छोरियाँ ! अबार तो सीखवारी-याद करवारी उमर है । हाथ में माला लई-लई ने क्युं बैठी हो । माला तो पछे गिणई जायगा । अभी तो गुरुवन्दन, चैत्यवन्दन, प्रतिक्रमण का सूत्र सिखवारा दन है । याद करो, जो पछे काम आवेगा । नी तो दूसरा को मुंडो ताकणो पड़ेगा । थांकी उमर में तो म्हें पाँच प्रतिक्रमण सीख ल्या था ।''

पू. दादीमाँ की बातें सीधी गले से नीचे उतर गईं । दूसरे दिन प्रतिक्रमण की पुस्तक लेकर गईं । दादीजी महाराज साहब ने गाथा दी । आपकी उद्बोधक प्रेरणा एवं आशीर्वाद से पंच प्रतिक्रमण सीख लिया ।

शैशवकाल का वह सजीव चित्र आज भी हमारी स्मृति-पटल पर तैर रहा है । आपका स्मरण आते ही हम सभी आनंद-विभोर हो जाती हैं ।

56. दृढ़ निश्चयी दादीमाँ !

– मदनगंज-किशनगढ़ श्रीसंघ, श्रीचंद कोठारी

दृढ़निश्चयी पू. दादीजी महाराज साहब किसी भी वाहन में बैठने की सख्त विरोधी थीं । आपने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक विकट-से-विकट परिस्थिति में भी एम्बुलेंस गाड़ी, हाथलारी, व्हीलचेअर, यहाँ तक कि डोली आदि का उपयोग भी कभी नहीं किया ।

हमने देखा है कुक्षी, राजगढ़, पारा, आलोट, नागदा, इन्दौर आदि मालवप्रदेश के श्रावकगण तथा आपश्री के पारिवारिकजन जब भी पधारते, सभी अपने-अपने गाँव/नगर में पदार्पण करने हेतु भावपूर्ण आग्रहभरी पूरजोर विनती करते और हमलोगों ने भी एक दो बार नहीं, बल्कि प्रतिवर्ष आपश्री की सेवा में पहुँच कर अत्यधिक आग्रहभरा निवेदन किया कि-आपश्री एकबार हमारे यहाँ पधारने की कृपा करें। तब आपने कहा "अब मुझ से इतना लम्बा विहार नहीं होता है।" हमने पुनः निवेदन किया-इस उम्र में लम्बा विहार तो आपश्री से नहीं होगा, यह बिल्कुल सच है। अब तो आपको व्हीलचेअर या हाथलारी का उपयोग करना चाहिए। इसमें क्या हर्ज है ? आपने स्पष्ट शब्दों में कहा-"भाग्यशाली! वाहन का उपयोग तो मुझे करना ही नहीं है, क्योंकि मैंने अपने बावजी (पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी महाराज साहब)से किसी भी वाहन में नहीं बैठने का नियम लिया है।" हमने दबे स्वर में धीमी आवाज में कहा,"महाराजजी ! डोली में बैठने का नियम तो नहीं लिया है न ? हम पू. आचार्य भगवंतश्री से आदेश ले आएँ और यदि वे आज्ञा-प्रदान कर दें, तब तो डोली में बैठकर पधारेंगी ना ?" आपके सटीक शब्द थे-"आप लोग चाहे किसी से भी आज्ञा ले आओ। डोली भी वाहन ही है। दूसरी बात डोली उठानेवाली बहनों को भी कितना कष्ट होता है ? मेरे बिना क्या कोई शासन प्रभावना का कार्य रूक रहा है?" हम सभी निरुत्तर हो गये। पू. दादीजी म.सा. को क्या कहते ? हमने ही नहीं, आपश्री को भीनमाल में स्वयं प.पू. राष्ट्रसंत आचार्यभगवंतश्री ने भी कहा था-"साध्वीजी ! जब श्रावकलोग बार-बार इतना आग्रह कर रहे हैं तो डोली में बैठने में क्या हर्ज है ? बैठ जाओ। मैं आलोचना ले लूँगा !" उन्हें भी बड़ी विनम्रता से मीठे शब्दों में अंजलिबद्ध हो निवेदन किया-"**बावजी ! म्हारे तो डोली में भी नी बैठनो हे। म्हें तो सौगन्ध ले ल्या हे। म्हारा वगर शासन को कोई काम थोड़ी अटकी र्‍यो हे सो बेठणो पड़ो। शासन प्रभावना रा अनेकानेक कार्य तो आप के करना हे। आप तो गच्छ का मालिक हो, अणवास्ते नी चाता हुआ भी आपने सब कुछ करणो ज पड़े।**"

हमलोगों की पुनः एकबार पू. दादीजी म.सा. को अपने यहाँ ले जाने की प्रबलतम भावना थी। अतः हमने दूसरा विकल्प रखते हुए कहा,"अच्छा, महाराजजी ! आपको डोली का भी त्याग है न ? कोई बात नहीं। दो-चार किलोमीटर जितना भी आप चल सकें, पैदल विहार करके पधारिए। विहार में हमारे संघ के दो-दो, चार-चार व्यक्ति आपके साथ रहेंगे। इतना ही नहीं, दो-दो किलोमीटर पर टैंट व गौचरी-पानी आदि की सारी व्यवस्था रहेगी। फिर तो कोई दिक्कत नहीं है न ? पर एकबार पधारकर हमारे क्षेत्र को पावन कीजिए। उस क्षेत्र में आपको पधारे हुए पूरा एक युग (१२ वर्ष लगभग) बीत गया। कई वर्षों से हमारी दिली तमन्ना है।

आपने हमारी बातों को गौरपूर्वक सुना और मधुर शब्दों में बोलीं-"आप वठे आवा की वात को हो। पण मदनगंज कई अठे हे ? अठे से मदनगंज चार-सो किलोमीटर वेगा। रोज चार-पाँच किलोमीटर विहार करूँ तो भी तीन-चार मइना में जइने रस्तो पार वे।

वइने चार-पाँच किलोमीटर तक नी तो कोई घर आवे ने नी कोई ढंग से ठेरवा की जगा आवे । वठे तक आखा रस्ता में कितरा टैंट ने कितरी व्यवस्था करनी पड़े । बाप रे बाप ! विना काम से संघ को इतरो खरच करइ ने माथा पे म्हारे इतरो भार नी चढ़ावणो । जठे जऊँगा वठेइ संघ इज हे । इतरो लवाजमो हाथे राखिने वठा तक अउँ यो तो म्हारा से नी वई सके । नी म्हारे नी आवणो अबे । अणा दोई ने लई जावो ।

भाग्यशाली ! म्हांरा बाबजी केता था के विना कामे अपणा निमित्त संघ को एक पैसो भी खरच करावा तो अपणाने भरुच का पाड़ा वेइने पाणी भरनो पड़े । अणीवास्ते भागशाली ! म्हांरे तो कठेइ आणो-जाणो नी हे । जतरी वई जाय वतरी संयम-यात्रा करनी हे । बस, अइने ज आस-पास क्षेत्र में पगा से चालीने जवाय वतरो जाणो । बाकी म्हांरे कणीने य तकलीफ नी देणी ।" उनकी अमृतोपम मीठी-मधुरी वाणी सुनकर हम सभी गद गद हो गये । हमारे पास कहने के लिए अब कोई शब्द नहीं बचा था । उस दृढ़निश्चयी महान् आत्मा को कोई भी तनिक मात्र न हिला सका और न डिगा सका । यही कारण था कि आप अंतिम समय तक नब्बे वर्ष की आयु में भी पैदल दो-चार किलोमीटर का विहार कर जालोर जिले में ही विचरण करती रहीं । भीनमाल से धाणसा पैदल विहार करके पधारीं । ई.सन् 1999 का आपके जीवन का अन्तिम वर्षावास धर्मनगरी धाणसा जिला-जालोर हुआ ।

आपकी अद्भुत इच्छा-शक्ति, दृढ़ मनोबल एवं दृढ़संकल्प के सामने सबको झुकना पड़ा । अंतिम क्षण तक आप इस कसौटी पर पूर्णतः खरी उतरीं । आपको अपने संकल्प से कोई विचलित नहीं कर सका ।

शत-शत नमन है उस महान् संयम-साधिका को !

57. शरीर ही तो ढँकना है

— ज्ञानचंद करनावट, मदनगंज-किशनगढ़

मुझे आपश्री के दर्शन का सौभाग्य प्रथमबार आहोर जिला-जालोर में प्राप्त हुआ । हृदय गद गद हो गया । मैंने पाया कि आपके विचार उच्च थे । शांति की आप सजीव प्रतिमा थीं और आपके हृदय में अतिशय कोमलता थी । पू. दादीजी महाराज साहब जब भी बोलती थीं तब ऐसा प्रतीत होता था कि उनकी वाणी में मिश्री घुली हुई है । उनका रहन-सहन बड़ा ही सादा और सीधा था ।

मुझे स्मरण हो रहा है वह दिन जब मैं आपके दर्शनार्थ पाली पहुँचा था । दोपहर का समय था । इतनी वृद्धावस्था में भी आप सुई-धागा लेकर फटी चादर सिल रही थीं । मैंने जाते ही आपसे विनम्र निवेदन किया दादीजी महाराज साहब ! इतनी जीर्ण-शीर्ण, फटी-पुरानी चादर आप क्यों सिल रही हैं ? मैं अभी नई चादर ले आऊँ ? मेरी गुरुणीजी होकर आप ऐसी जीर्ण-

शीर्ण चादर ओढ़े, यह मुझे अच्छा नहीं लगता है। **मेरी बात सुनकर वे मुस्कराती हुई बोलीं-"ज्ञानजी ! अच्छा क्या लगना ? शरीर ही तो ढँकना है। वस्त्र नया हो या पुराना।"**

मैं उनकी मृदुल वाणी सुनकर नतमस्तक हो गया। हर एक दो महीने में आपश्री के श्रीचरणों में पहुँचता रहा हूँ। विगत इक्कीस वर्षों से आपश्री से मेरा सम्पर्क रहा है। इस अवधि में अनगिनत ऐसे अवसर आए हैं जो अविस्मरणीय बन गये हैं। आज जब लिखने की बात आई तो मैं उन क्षणों को याद कर विचार करता हूँ कि **उन्हें किन शब्दों में अभिव्यक्ति करूँ? कारण कि कुछ बातें तो ऐसी हैं, जो गूँगे के गुड़ खाने के समान है। गूंगा व्यक्ति गुड़ खाकर मन ही मन आनन्दित हो जाता है, किन्तु अभिव्यक्ति नहीं कर पाता है। ठीक यही स्थिति मेरी भी है।**

58. दवाइयाँ छूट गई

— नारंगी जैन, दुंदाड़ा

दुन्दाड़ा चातुर्मास की बात है। मैं बहुत दिनों से अस्वस्थता के कारण काफी परेशान थी। कभी पेट-दर्द होता तो कभी सिर में दर्द होता, कभी पाँवों में दर्द तो कभी अशक्ति महसूस होती। कई डॉक्टरों से इलाज करवा लिया, पर कोई राहत नहीं मिली। दवाइयाँ करवा कर थक चुकी थी मैं।

पर्यूषणपर्व पूर्ण होने के पश्चात् एकदिन मैं आपके पास आई और अपनी अस्वस्थता की कहानी सुनाते हुए मैंने आपसे कहा,"महाराज साहब ! मैं तो दवाइयाँ खा-खाकर परेशान हो गई हूँ। परन्तु न तो दर्द जाता ही है और न रोग किसी के पकड़ में आता है। कुछ-न-कुछ उपाय बताइये आप ? अब मैं क्या करूँ ?" आप बोलीं,"**नारंगीबहन ! छोड़ो ये सब दवाइयाँ ! प्रभु पर विश्वास रखो और जबतक हम यहाँ हैं, रोज एकबार वासक्षेप ले लिया करो। पूर्ण श्रद्धा रखो। गुरुमहाराज की कृपा से सब ठीक होगा।**"

आपके कथनानुसार मैंने सभी दवाइयाँ बन्द कर दीं। नित्यप्रति वहाँ जाती और श्रद्धापूर्वक आपसे वासक्षेप लेती। **श्रद्धा सबसे बड़ी चीज है। उससे असंभव भी संभव हो जाता है।** चातुर्मास की पूर्णाहूति तक तो मैं पूर्णत: स्वस्थ हो गई। सारी दवाईयाँ छूट गईं।

59. वासक्षेप का चमत्कार

— वालचंद राजेशकुमार जैन अगरबत्तीवाले, भोपाल

सन् 1980 में आपका वर्षावास भोपाल था। चातुर्मास की पूर्णाहूति के पश्चात् मैंने भोपाल से होशंगाबाद का छ:री पालित पदयात्रा संघ का आयोजन आपकी पावन प्रेरणा से एवं आपकी

निश्रा में किया था। मालारोपण के दिन स्वामीवात्सल्य भी रखा गया था। भोजन की सुन्दर व्यवस्था थी। तीन सौ यात्रियों का भोजन बनवाया था, किन्तु उस दिन भोपाल व अन्य जगह से स्वधर्मी बंधु बहुत ज्यादा आ गये। छ:सौ लोग हो गये। मैं घबरा उठा। अब अचानक जल्दी में कैसे क्या किया जाय ? भागते-भागते आया आपके श्रीचरणों में ! निवेदन किया-महाराज साहब ! आज तो हमारी शान चली जाएगी ? किए-कराए पर सब पानी फिर जाएगा। हमने तो तीन सौ लोगों का खाना बनवाया है और स्वधर्मीबंधु ज्यादा आ गये। अब जल्दबाजी में कैसे क्या व्यवस्था करना ? आपने फरमाया-"वालचंदजी ! आप इतने घबरा क्यों रहे हो ? **चिंता मत करो। गुरुदेव की कृपा से सब अच्छा होगा।"**

मैंने कहा-आपश्री वासक्षेप कर दीजिए, ताकि शान्ति से सारा काम निपट जाय। आप वासक्षेप लेकर रसोईघर में पहुँचीं। भोजन के बर्तनों में मंत्रित वासक्षेप कर दिया और कहा "ढँक दो इन्हें वस्त्र से। गुरुदेव की तस्वीर विराजमान कर देना। चिंता छोड़कर आप तो प्रसन्नता से सभी को भोजन करवाओ।" आगन्तुक सभी स्वधर्मी बन्धुओं ने भोजन करना प्रारम्भ किया। एकाध घंटे में सारा काम निपट गया, पर कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि सभी ने भोजन कर लिया। फिर भी चालीस-पचास लोगों का भोजन बच गया। मैं आपके पास आया और प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा-महाराज साहब ! आज तो आपके वासक्षेप ने कमाल कर दिया। ऐसा चमत्कार हुआ कि भोजन अभी बचा हुआ है। यह सब आप की कृपा का फल है। **आपने लाज रख ली मेरी...! धन्य है आप और आपकी साधना ! स्वीकार करें मेरा विनम्र भाव-भरा नमन !**

60. आधुनिक वरघोड़ा

– अक्षयकुमार जैन, आगरा (उ.प्र.)

परम श्रद्धेया पूजनीया साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म.सा. एवं. डो. सुदर्शनाश्रीजी म.सा. का सन् 1984 में हमारे यहाँ चातुर्मास हुआ था। दोनों से परिचित होने के नाते मुझे प.पू. साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फिर विहार करते हुए आप हमारे यहाँ पधारीं। तब आपको निकट से देखने-परखने का अवसर मिला। आप आगरा से शौरीपुर एवं धौलपुर पधार रही थीं। उससमय आपने संघ के प्रमुख पदाधिकारियों से हृदय को छू जानेवाले जो शब्द कहे थे। वे मुझे आज भी यथावत् याद है। वह प्रसंग याद आते ही मैं हँस पड़ता हूँ। बात यह थी कि किशनगढ़ से जैसलमेर हो या आगरा से धौलपुर। आप सभी जगह निर्दोष गौचरी लेने की पक्षधर थीं। कभी-कभी विहार में सौ-पचास किलो मीटर तक जैनसमाज के घर नहीं आते थे। व्यवस्था साथ रखना भी आपको पसन्द नहीं थी।

आपने आगरा से शौरीपुर एवं धौलपुर जाने का मानस बनाया। श्रीसंघ के प्रमुख

पदाधिकारियों ने विहार में व्यवस्था हेतु एक हाथलारी और दो-तीन नौकर साथ में रखने का प्रबन्ध किया। जैसे ही आपको इस बात का पता चला। आपने उसीसमय श्रीसंघ के प्रमुख व्यक्तियों को बुलाया और मीठी चुटकी लेते हुए उनसे कहा - "**भाग्यशाली ! वरघोड़े की सारी तैयारी हो गई ना ?" पदाधिकारीगण आपके कहने के आशय को समझ नहीं पाये। बोले-कैसा वरघोड़ा महाराजश्री ! आप जोरों से हँस पड़ीं। मुस्कराते हुए आपने बहुत मजेदार बात कही। "हमेशा भगवान् के वरघोड़े (जुलूस) में हम साथ गई हैं, पर अब यह जोरदार आधुनिक सुख-सुविधाओं से युक्त (राशन-पानी का लवाजमा) वरघोड़ा हमारे साथ चलेगा या हम इसके साथ चलेंगी ? बहुत बढ़िया जचेगा यह वरघोड़ा और आपलोग भी इसमें....?** यह सुनते ही हँसी के फव्वारे छूट गए। सभी पेट पकड़-पकड़कर हँसने लगे। सारी व्यवस्था निरस्त कर दी गई। बिना किसी व्यवस्था के आप यथासमय शौरीपुर, धौलपुर पधार गईं।
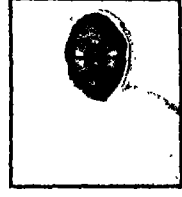
आपकी निर्दोष आचार-सम्पन्नता को देखकर सभी गद-गद हो उठे।

61. स्नेह-वात्सल्य की सरिता

–ज्ञानचंद करनावट, मदनगंज-किशनगढ़

विगत कई वर्षों से मैं आपके सम्पर्क में रहा हूँ। मैंने आपको बहुत निकट से देखा-परखा है। दादीमाँ ! आप चली गईं, पर आपकी चमक नहीं गई। जैसे फूल मुरझाते हैं पर उसकी महक नही जाती। आज वे हमारे बीच नहीं हैं, पर उनकी याद आज भी हमारे दिलों में जिंदा है, उनकी बात हमारे व्यवहारों में जिंदा है तथा दादीमाँ का तप-त्याग और बलिदानों को तरोताजा बनाये रखने वाली उनकी पौत्रियाँ (हमारी गुरुणीजी) जिंदा हैं।

आपका हमारे संघ-समाज पर तो असीम उपकार है ही, परन्तु मुझ पर विशेष उपकार है। जिसे मैं ताजिंदगी नहीं भूला सकता।

मुझे आपसे हमेशा मातृतुल्य स्नेह-वात्सल्य मिलता रहा है। इसलिए मेरी कोई भी समस्या होती तो मैं आपके समक्ष निःसंकोच रख देता। आपके सिद्धवचनों के प्रभाव का, मेरे जीवन का अनुभूत प्रत्यक्ष प्रसंग मुझे याद आ रहा है। जब से मैं आपके सम्पर्क में आया हूँ। समय-समय पर आपके दर्शन करता रहा हूँ।

एकबार मैं सपरिवार आपके दर्शनार्थ पहुँचा। दोपहर के समय आपके श्रीचरणों में बैठा था। वार्तालाप के दौरान मैंने उन से कहा-दादीमाँ ! मेरी एक नहीं, छः-छः लड़कियाँ हैं। जमाना बड़ा नाजुक है। आज के जमाने में एक लड़की की शादी करने में भी कितना पसीना आता है, कितनी परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं। अगर लड़की को घर-वर अच्छा नहीं मिलता तो लड़की भी दुःखीऔर माता-पिता भी दुःखी। मुझे समझ में नहीं आता कि मेरा क्या होगा ? किसको

कैसा वर, कैसा घर-परिवार मिलेगा, दिन रात यही चिन्ता मुझे सताती रहती है।

मुझे चिन्तित देखकर **मेरी दादीमाँ ने मुझे कहा-"ज्ञानजी ! आपको चिन्तित होने की जरा भी आवश्यकता नहीं है। तुम्हें जरा भी परेशानी नहीं आयेगी। लड़कियाँ बड़ी भाग्यशालिनी हैं। लड़कियाँ देहली दीपिकाएँ होती हैं। दोनों कुलों को उजागर करती हैं। गुरुदेव पर पूरा विश्वास रखो। देखते जाओ, समय आने पर गुरुदेव की असीम कृपा से सब कुछ स्वतः ही अच्छा होगा। दादीमाँ ने मुझे पूर्ण विश्वास दिलाकर निश्चिन्त बना दिया।**

समय आने पर ठीक वैसा ही हुआ। जैसा दादीमाँ ने उस दिन कहा था। मुझे कुछ भी परेशानी नहीं हुई। छहों लड़कियों का विवाह प्रतिष्ठित खानदान में हुआ और वे सब वहाँ अमन-चैन से सुखपूर्वक जीवन बीता रही हैं। वे भी आपके प्रति बड़ी श्रद्धान्वित हैं।

मैं भी यह कहता हूँ कि जो व्यक्ति सच्चे दिल और पूर्ण विश्वास से एकबार गुरुचरणों में समर्पित हो जाये तो उसका जीवन स्वतः ही सफल हो जाता है।

दादीमाँ के बाद आज मेरा जीवन मेरी गुरुवर्या डॉ. प्रियदर्शनाजी म.सा. एवं डॉ. सुदर्शनाजी महाराज के चरणों में समर्पित है। उन्हीं के आशीर्वाद और धर्मलाभ से मैं और मेरा परिवार खुशहाल है। धन्य हैं वो दादीमाँ ! जिनके सान्निध्य में ये दोनों पौत्रियाँ सुयोग्य बनीं और धन्य हूँ मैं और मेरा परिवार जिन्हें ऐसी पौत्रियों से सम्पर्क हुआ !

यह सब आपकी महती कृपा का सुफल है।

62. सिद्धवाणी-बंद कवर का चमत्कार

-भंवरलाल मुथा, जयपुर (भीनमाल)

विभिन्न गुणों से परिपूर्ण पूज्या दादीजी महाराज साहब की सिद्धवाणी की एक घटना मेरे अन्तर्मानस में स्मृतिरेखा के रूप में उभर रही है। वह है जोधपुर वर्षावास की। बात १९९० की है।

उन दिनों सावन भादों की झड़ी लगी हुई थी। मुसलधार बारिश हो रही थी। जोधपुर मेरे साले जामतराजजी बाफना के यहाँ हम रूके हुए थे। दोनों साध्वीजी (प्रियदर्शनाश्रीजी एवं सुदर्शनाश्रीजी) म.सा. उनके यहाँ गौचरी हेतु पधारीं। मुझे देखकर पूछा-"भंवरजी ! आप यहाँ कैसे ?" तब मैंने कहा- मेरे बेटे दिनेश की जून में शादी हुई है। दिनेश की पत्नी के भाई (ताऊजी के लड़के मांगीलालजी धोकड़) अपनी बहन को पहली बार लेने हेतु जयपुर आए थे। दोनों भाई-बहन भीनमाल जाने के लिए जयपुर से बस द्वारा जोधपुर रवाना हुए और उन्हें जोधपुर से भीनमाल जाना था। तीन-चार दिन हो गए हैं। दोनों भाई-बहन अभीतक भीनमाल नहीं पहुँचे तथा उनका कोई फोन भी नहीं आया। हम उन्हें ढूंढने हेतु जोधपुर आए हैं। समदड़ी, जालोर के आसपास भयंकर बाढ़ आई हुई है। नदी-नाले बह रहे हैं। इतनी बारिश हुई है कि

यातायात के सभी रास्ते भी बंद हैं, ट्रेने भी बंद हैं। अखबार में पढ़ा है कि बाढ़ में कई लोग बह गए हैं। कइयों की गाड़ियाँ, जीपें फँस गई हैं। कुछ लोग पानी में तैरकर बाहर आ गए हैं। हमने सभी जगह उनकी खोजबीन की, पर उनका कहीं कुछ भी पता नहीं लग रहा है।

भीनमाल से भी दिनेश के ससुरजी हरजीमलजी धोकड़, मांगीलालजी के ससुरजी कुन्दनमलजी मास्टर तथा पृथ्वीराजजी नाहर आदि हरजगह उनकी तलाश करते हुए यहाँ आए हैं। तीन दिन से काफी तलाश की जा रही है, किन्तु कहीं भी अभीतक उनका पता नहीं चल पाया। अब समझ में नहीं आ रहा है कहाँ जाएँ ? क्या करें ? कहाँ तलाश करें ? कैसे पता लगाएँ ? बस एक ही चिन्ता है उनका क्या हुआ होगा ? कहीं उनकी गाड़ी भी तो.... । कहते-कहते मेरी आँखें भर आईं।

दोनों साध्वीजी म.सा.ने हम से कहा कि पू. दादीजी महाराज साहब राजेन्द्र-भवन में विराजमान हैं। आप वहाँ पधारिए और उनके दर्शन कीजिए।

हम सभी जामतराजजी बाफना के साथ राजेन्द्र-भवन पहुँचें। पूज्या दादीजी महाराज साहब को वन्दन-नमन किया। आप बोलीं-"आप सभी इतने उदास क्यों हैं ? हमने विस्तार से उपर्युक्त सारी बात उन्हें बताई। सहज-सरलभाव से सान्त्वना देती हुई वे बोलीं -"भंवरजी ! इतने चिन्तित क्यों हो ? गुरुदेव पर पूर्ण विश्वास रखो ना ? उनकी असीम अनुकंपा से सब अच्छा ही होगा। धैर्य रखो। अभी शुभ समाचार ही मिलेंगे। आप सभी गुरुदेव के नाम की माला गिनो।" इतना कहकर आप अन्दर कमरे में पधारीं। कुछ देर पश्चात् वापस आकर हमें एक बंद लिफाफा देते हुए आपने फरमाया-"**शुभ समाचार मिलने पर इसे खोलना।**"

और कहा - "जाओ, गुरुदेवश्री के वहाँ दीपक करने का अवसर देखो।"

मैंने उठकर गुरुदेव के सामने दीपक प्रज्वलित किया तथा गुरुदेवश्री के दर्शन कर वापस पू. दादीजी महाराज साहब के श्रीचरणों में आकर बैठा।

उस सरलहृदया की सिद्धवाणी का प्रभाव समझें या योग-संयोग कहें। एकाध घंटे में ही उनकी सिद्धवाणी और बंद कवर का ऐसा चमत्कार हुआ कि जामतराजजी बाफना के यहाँ से लड़का कहने आया कि अभी-अभी भीनमाल से फोन आया है कि-"दोनों भाई-बहन सकुशल भीनमाल पहुँच गए हैं।"

इस सुखद समाचार से हम सभी प्रसन्न हो गए और पूज्या दादीजी महाराज साहब के प्रति हृदय से नतमस्तक हो गए।

'हार' स्वीकार करने की फितरत नहीं थी उनकी,
विजयहार में बदलने की अपूर्वशक्ति थी जिनकी,
संयम अरु साधना की प्रतिमूर्ति थी पूजा निरन्तरता की,
सरलता, सादगी की अवतार, पर्याय बनी अनुशासन की।

वस्तुओं को याद रखने की एक कला है और उन्हें भूलने की भी एक कला है। दूसरों में जो अच्छाई दिखाई दी हो वह तथा उन्होंने तुम्हारी जो भलाई की हो उसे याद रखो। दूसरों में जो बुराई दिखाई दी हो वह तथा उन्होंने तुम्हारा जो बुरा किया हो, वह भूल जाओ, ऐसी याददाश्त आनन्दमयी होती है।

ऐसा कभी मत बोलो कि 'मेरा स्वभाव ऐसा है, मैं इसी तरीके से बड़ा हुआ हूँ। मैं कुछ रद्दो-बदल नहीं कर सकता हूँ।' खड़े हो जाओ, जागो और कमर कसो, उससे आपका स्वभाव नियन्त्रण में आएगा।

लोभी मनुष्य रेगिस्तान के बंजर रेतीले मैदान की तरह होता है, जो लालच के वश तमाम वर्षा और ओस को चूस लेता है। लेकिन कोई भी फलदायक जड़ें अथवा पौध दूसरों के फायदे के लिए पैदा नहीं करता है।

चतुर्थ खंड

विज्ञता

पूज्या दादीजी महाराज साहब ज्ञान-पिपासु थीं । वे कभी किसी विद्यालय में अध्ययन करने के लिये नहीं गईं, किंतु वे एक ऐसी साध्वीरत्ना थीं जिन पर सरस्वती की अपूर्व कृपा रही । पूज्याश्री ने अपने गुरुजनों से समय समय पर ज्ञानार्जन किया और अनुभव की पाठशाला से भी उन्होंने बहुत कुछ सीखा । गुरुजनों से प्राप्त ज्ञान को और अनुभवजन्य ज्ञान को उन्होंने मुक्तकंठ से अपने अनुयायियों में बाँटा । परिणाम यह हुआ कि उनका वह ज्ञान परिपक्व होकर समाज के सामने आया । पूज्याश्री के गहन चिंतन-मनन का ही परिणाम था कि वे साध्वाचार में सुदृढ़ रहीं, अपने नियमों में अडिग रहीं । कोई भी परिस्थिति उन्हें अपने हिमालयी संकल्प से विचलित नहीं कर सकी । इतना ही नहीं, उन्होंने अपने पास चारित्र अंगीकार करनेवाली मुमुक्षु आत्माओं के लिये अपनी ओर से एक आचारसंहिता भी बना रखी थी जिसे वह स्वीकार हो, वह उनके पास चारित्र अंगीकार करे, अन्यथा नहीं।

पूज्याश्री का चिंतन भी विशिष्ट था । यह उनके चिंतन बिन्दुओं को देखने से ज्ञात होता है । प्रस्तुत खण्ड में कुछ ऐसी ही ज्ञानगर्भित सामग्री देने का प्रयास किया जा रहा है ।

1. पूज्याश्री द्वारा उच्चारित कुछ चिंतन-कण

पूज्याश्री के द्वारा विभिन्न स्थलों पर समय-समय पर उच्चारित कतिपय सुवचनों को संचित कर चिंतन-कण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। ये अमृत तुल्य विचार-कण श्रद्धालुओं के जीवन-मार्ग के पथ-प्रदर्शक सिद्ध होंगे, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

चिंतन-कण

- मनुष्य का जीवन तो पानी का बुलबुला है।
- धर्म आचरण की चीज है, न कि उपदेश की।
- कभी भी अपने मुँह से अपनी प्रशंसा मत करो।
- कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जो हिम्मत से न हो सके। **सफलता का मूलमंत्र ही है - हिम्मत।**
- याद रखो, तुम्हें कोई भी सुख और दुःख नहीं दे सकता।
- यह सदैव स्मरण रखो, जिसने जन्म लिया है, उसे एक दिन अवश्य ही मरना है।
- अनुभव से जो कार्य हो सकता है, वह केवल पढ़ने से नहीं हो सकता।
- कर्मों की विचित्र लीला है। जो जैसा करता है उसे वैसा प्राप्त होता है। "**अपनी अपनी करणी पार उतरणी।**"
- कुपात्र को दिया गया ज्ञान भी अज्ञान बन जाता है। अतः पात्रता आवश्यक है।
- पढ़ाई केवल पुस्तकों में ही न रहे। वह जीवन-व्यवहार में भी आनी चाहिए।
- एक छोटी-सी सीख को भी यदि हृदय में धारण कर लें, तो जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हो सकता है।
- एकदम किसी पर भी विश्वास मत करो।
- ज्ञान कहीं भी हो, उसे लेने में आपत्ति क्यों ?
- कर्मराजा जैसा नाच नचाये, वैसा नाचना ही होगा।
- कभी अपने उपकारी के उपकार को मत भूलो।
- क्रोध आने पर मुँह में पानी भर लो।
- कोई भी काम कल पर मत टालो। कल किसने देखा।
- सभी पर दया भाव रखो।
- हमेशा बड़ों के अनुशासन में रहो।
- सहनशील बनो।
- **कामचोर मत बनो।**
- कठिनाई से कभी मत घबराओ।

- हम अच्छे तो सब अच्छे। **'आप भला तो जग भला'**।
- संतोषी सदा सुखी होता है।
- अपने द्वार पर आए हुए को कभी खाली हाथ मत लौटाओ।
- आपत्तियाँ-विपत्तियाँ मनुष्य पर आती हैं, जानवर पर नहीं।
- स्वावलम्बी बनो।
- सत्साहित्य को नियमित रूप से पढ़ो।
- किसी की भलाई न कर सको, तो बुराई भी मत करो।
- एक क्षण का भी प्रमाद मत करो।
- सामनेवाला आग बन रहा हो तो आप पानी बन जाओ।
- घर पर आए हुए अतिथि का सत्कार करो।
- कोई भी कार्य सावधानी से करो।
- कभी किसी की निंदा मत करो।
- गुणानुरागी बनो।
- दूसरों के दोषों की तरफ मत देखो। अपने आपको देखो।
- बड़े बनने का प्रदर्शन मत करो।
- आहार, प्रमाद, नींद और भय घटाने से घटते हैं और बढ़ाने से बढ़ते हैं।
- जीवन संयम के लिए है। जीना है तो संयम के लिए जीओ।
- यह संसार पानी का बुलबुला, बादल की छाया और स्वप्नवत् सम्पत्ति है।
- कोरा ज्ञान उस मशीन की तरह है जिसके पुर्जों को तेल नहीं दिया गया। कोरी श्रद्धा उस तेल की तरह है जिसके पास कोई मशीन ही नहीं। तेल और मशीन दोनों हों, तब कार्य चलता है। इसीतरह ज्ञान और श्रद्धा का मिलाप हो, तभी सफलता मिलती है।
- आनेवाले कल का भी भरोसा न करके अविलम्ब साधना के कार्य करो।
- देवदर्शन नियमित करो।
- किसी के साथ विश्वासघात मत करो।
- हमेशा अपने परिणामों को निर्मल रखो।
- विनाश का समय जब आता है, तब बुद्धि मारी जाती है।
- अपने कारण किसी को परेशान मत करो।
- नियम-संयम का पालन करो।
- खुद का कार्य खुद करो।
- दूसरों की अपेक्षा मत रखो।
- हाथ हमेशा उल्टा रखो।
- अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखनेवाला व्यक्ति जीवन में कभी दुःखी नहीं हो सकता।

- धर्म का आचरण करो।
- अजीर्ण होने पर कभी भी भोजन मत करो।
- मन में हमेशा अच्छे विचार रखो।
- किसी के भी प्रति बुरा मत सोचो।
- मनुष्य भव बड़े ही पुण्य से प्राप्त होता है।
- जीवन में कभी अहंकार मत करो।
- हमेशा करुणाभाव बनाये रखो।
- दीन-दु:खियों की सेवा करो।
- सत्य-अहिंसा का पालन करो।
- कभी सुख में प्रसन्न और दु:ख में खेदयुक्त नहीं होना चाहिए।
- कभी दूसरों को सुखी देखकर ईर्ष्या मत करो।
- कृतघ्नता इतना बड़ा पाप है कि वह सारी पवित्रता को नष्ट करके जीवन को कालिमा से ढँक देता है।
- लोभ पाप की आधारशिला है। यह एक ऐसा राक्षस है जो मनुष्य को हत्यारा, दंभी, कामी-क्रोधी और धर्मभ्रष्ट बना देता है।
- चंचल मन को एक स्थान पर केन्द्रित करो। मन के स्थिर हुए बिना आत्मा के दर्शन नहीं होते।
- पहले सोचो, समझो, फिर करो।
- स्त्रियों के लिए सबसे बड़ा आभूषण है-शील और लज्जा।
- संतोष के बिना बढ़ती हुई इच्छाओं-कामनाओं और तृष्णा का कोई भी इलाज नहीं है।
- जितना भोग, उतना रोग।
- मनुष्य जीवन एक अमूल्य रत्न है।
- एकदम बिना विचारे कोई कार्य मत करो, क्योंकि अविचार सब आपदा-विपदाओं का घर है।
- सांसारिक सुख (विषय-सुख) मधुलिप्त असिधारा के समान है।
- सुख का मूल संतोष है और दु:ख का मूल तृष्णा है।
- कृतघ्नता एक प्रकार का जहर है, जो अमृत-सम सभी सद्‌गुणों को जहरीला बना देता है।
- जहाँ लोभ का निवास है, वहाँ धर्म नहीं रहता।
- मनुष्य की इच्छाएँ व कामनाएँ बहुत विशाल होती हैं। यही अनियंत्रित कामना-तृष्णा है, जो मानव के जीवन में विविध जटिलताएँ, दु:ख एवं परेशानियाँ बढ़ाती हैं।
- संतोष के बिना सच्चा सुख नहीं मिल सकता।
- जहाँ संतोष है, वहाँ आनंद है और जहाँ आनंद है, वहाँ स्वर्ग है।
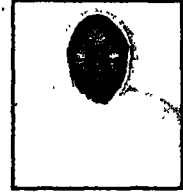
- '**शरीर का भरोसा नहीं**' इसलिए शुभकार्य को कल पर मत टालो।
- जिसप्रकार फल लगने पर वृक्ष की शाखा नम जाती है, वैसे ही ज्ञान और सम्मान बढ़ने पर विद्वान् विनम्र हो जाते हैं।
- संसार में रहते हुए भी मोह-माया में मत फंसो।
- बाहर उजले और भीतर काले मत बनो।
- धर्मात्माओं के साथ वात्सल्य भाव रखो।
- यदि तुम किसी की प्रशंसा नहीं कर सकते तो निंदा तो मत करो।
- घिसने और जलाने पर भी चंदन सुगन्ध फैलाता है, वैसे ही सज्जन पुरुष अपकारी के प्रति भी सद्भावना ही रखते हैं।
- विश्वास देकर ठगना सबसे बड़ा पाप है।
- गुणग्राही हंस बनो, दुर्गुणग्राही जोंक मत बनो।
- चापलूसी, बकवास और आलस्य से सदैव दूर रहो।
- यदि आहार-(खाने-पीने)में विवेक नहीं तो पशु और मनुष्य समान है।
- दूसरों की पीड़ा देखकर दयार्द्र होकर मोम की भाँति पिघलनेवाले सहृदय बनो।
- विपत्तियों, कष्टों एवं प्रतिकूलताओं के थपेड़े खाते रहने की स्थिति में भी चट्टान के समान दृढ़ एवं ठोस बने रहो।
- अपनी भूल का विचार करो, दूसरों की भूल मत देखो।
- संतोष ही परम धन है।

2. पूज्याश्री द्वारा दिए गए उपदेश-अंश

पूज्याश्री (पू.दादीजी म.सा.)न कोई लेखिका थीं, न शास्त्रज्ञविदुषी थीं और न ही आपकी गणना वक्ताओं की कोटि में थी, किन्तु आप जो कुछ समझाती थीं या उपदेश देती थीं, वह उनका स्वानुभूत और हृदय से निःसृत होता था। इसलिए वह जैन-जैनेतर श्रद्धालु श्रोताओं के मानस को छूता था। उनका समृद्ध अनुभव और सरल-सुबोध भाषा, उपदेश को रोचक बना देती थी। आप छोटे-छोटे संतुलित वाक्य बोलती थीं। इतना ही नहीं, आपकी भाषा सर्वथा सरल और निरलंकृत थी। आपका एक-एक शब्द अनमोल मणि की तरह एवं साधना की आँच में तपा हुआ था। आपका उपदेश संक्षिप्त व सारगर्भित होता था। जैसे श्रोता होते थे, उन्हें उनकी समझ और ज्ञान के अनुसार ही उपदेश देती थीं।

आपके उपदेश की यह विशेषता थी कि आगन्तुक श्रद्धालुओं को, चाहे फिर वे

दो-चार-छह ही क्यों न हो ? बड़े प्रेम से मालवी भाषा में समझाती थीं । उसमें मारवाड़ी शब्दों का भी किंचित् पुट होता था । उच्चारण साफ था । आवाज मीठी-मधुर थी । बिना किसी प्रयत्न के सभी के समझ में आ जाता था । जैन ही नहीं, जैनेतर भी आपकी उपदेश-शैली से प्रभावित हो, घण्टों आपके श्रीचरणों में बैठकर आत्मतोष का अनुभव करते थे । उनमें से कतिपय उपदेश-अंश यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।
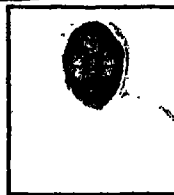
अनमोल जीवन

पूज्याश्री अत्यन्त सरल भाषा में अहिंसा, सत्संग, मनुष्य जीवन की विशेषता तथा दुर्लभता के विषय में समझाती थीं कि यह मानव जीवन बार-बार सरलता से मिलनेवाला नहीं है भाई ! और यह प्रतिपल कम होता चला जा रहा है । इसलिए इसका समय रहते ही लाभ उठा लेना चाहिए । जैसा कि कहा है -

"काल चरैया चुग रही निशदिन आयुष्य खेत ।"

यह बात मैं ही नहीं कह रही हूँ, वरन् सदा से ऋषि-महर्षि कहते आए हैं कि

"बड़े भाग मानुष तन पावा" ।

यह मनुष्य का शरीर बड़े भाग्य से मिला है । इसके द्वारा मदिरापान, माँसभक्षण, हिंसा, झूठ, चोरी आदि करके इसे खोओ मत । सत्संग, प्रभु का स्मरण-जाप, जीवों पर दयाभाव, दीन-दुखियों की सेवा, घर आए अतिथि का सत्कार, साधु-संतों की सेवादि जैसे पुण्यकाम करके लाभ उठा लो, नहीं तो —

"अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत ।"

अन्त समय में पछताना पड़ेगा कि इस दुर्लभ-रत्न रूपी शरीर को हमने कौड़ियों के मोल गँवा दिया । कवि ने कहा है -

**"दिवस गँवाया खाय के, रात गँवाइ सोय ।
मनुष्य जनम अनमोल है, कौड़ी बदले जाय ॥"**

यह शरीर इस जन्म में मिला है और इसी जन्म में समाप्त हो जाएगा । इसे साबुन से मलो या इत्र-तेल से, इसे सरस भोजन खिलाओ या मीठे पक्वान्न, इसे रेशमी कपड़ों में लपेटें या भव्य प्रासादों में रखो । अन्त में यह जायेगा अवश्य । यह तुम्हारा साथी नहीं । यह तो बिल्कुल जैसे नदी को पार करते समय किसी ने लकड़ी का तख्ता पकड़ लिया हो । दूसरे किनारे पर वह तख्ते को छोड़ देगा, तख्ता उसको छोड़ देगा ।

बहुत संघर्ष होते हैं इसके लिए, बहुत झगड़े होते हैं । आकाश-पाताल एक किया जाता है, परन्तु यह है तो मिट्टी । इसका मूल्य पूछना हो तो उस बेटे से पूछो जो अपने पिता के मृत शरीर

को अपने हाथ से आग लगा देता है। उस पत्नी से पूछो जो मरे हुए पति को देखकर रोती है, बिलखती है, परन्तु साथ ही-साथ यह भी कहती है- "**उठाओ इसे, बहुत देर हो गई है**" क्योंकि अब वह केवल शरीर है, उसका पति नहीं। यह शरीर तुम्हारा साथी भी नहीं। यह तो कुछ दिनों का साधनमात्र है।

यह है मानव-शरीर की वास्तविकता। जिसको हम अपना समझ बैठे हैं, अपना साथी मान बैठे हैं। यह अपना नहीं, बहुत समय का साथी भी नहीं। यह केवल कुछ दिनों का खेल है।

मृत्यु से मत डरो

यह संसार है, इसमें सुख भी है, दुःख भी है। कर्म के फल भोगे बिना यहाँ से मुक्ति नहीं होती।

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय॥

जब भुगतना ही है तो फिर रोना किसलिए ? हँसकर भुगत लो और फिर चिंता की बात इस संसार में है ही क्या ? महत्त्वपूर्ण बात है मृत्यु। तो वह सुनिश्चित है। रोते रहिये तो भी मरना है, हँसते रहिये तो भी।

रोवन हारे भी मरे, मरे जलावन हार।
हा-हा करते वे मरे, काहे करूँ पुकार॥

रोनेवाले बचे नहीं। हाहाकार करनेवाले भी बचे नहीं, फिर यह हायतोबा किसलिए ? यह तो चला-चली का मेला है भाई, और यहाँ चिंता करने से मिलेगा भी क्या ?

फूला सो कुम्हलाय।
जो आया सो जाय॥

जाना तो है ही, चिंता करके जाओ या बिना चिंता करके जाओ,
जाये बिना निर्वाह नहीं -

"पानी केरा बुलबुला अस मानस की जात।
देखत ही छिप जात है ज्यों तारा परभात॥"

नहीं, मृत्यु से भी डरो मत। इसकी चिंता भी मत करो। चिंता से कभी कुछ होता नहीं।

आश्चर्य

एक दिन किसी भक्त ने आपश्री से पूछा - संसार में आश्चर्य क्या है ? आपने बताया - इस संसार में जितने भी मनुष्य हैं वे किसी-न-किसी दुःख से दुःखी हैं। कोई तन से दुःखी है तो कोई मन से दुःखी है। किसी को धन की आवश्यकता है और वह धन-प्राप्ति में अपने अनमोल जीवन को लगा रहा है। किसी को संतान की आवश्यकता है, किसी को स्त्री की कामना है तो किसी को अपने नाम की भूख है।

संसार के जितने भी मनुष्य हैं। उन सब की अलग-अलग आवश्यकताएँ हैं और उनकी पूर्ति में ही मानव जीवन व्यतीत करता जा रहा है, फिरभी उसकी आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पा रही है।

मनुष्य की आवश्यकताएँ व इच्छाएँ द्रौपदी के चीर की भाँति अनंत हैं। यह बात तो सभी को मालूम है कि संसार की प्रत्येक वस्तु के समान यह जीवन भी क्षणभंगुर है, नश्वर है। यह भी सभी जानते हैं कि यह शरीर भी एक दिन नष्ट हो जाएगा, फिरभी व्यक्ति संसार में ऐसे कार्य करता है कि जैसे उसे सदा इस संसार में ही रहना हो, शाश्वत रहना हो।

प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन अनेक वृद्धों, युवकों एवं बालकों को मौत के मुँह में जाते हुए भी देखता है, परंतु फिरभी उसका प्रत्येक कार्य ऐसा ही होता है जैसे कि वह कभी भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा। वह अपने जीवन की क्षणभंगुरता को भूल जाता है तथा पापकार्यों में लगे रहकर जीवन समाप्त कर देता है। बस यही आश्चर्य है कि मानव सब कुछ देखते हुए और समझते हुए भी मृत्यु से डरकर सत्कर्म की ओर अग्रसर नहीं होता।

मन को रोकने का उपाय

जाप कर रहे हैं नवकार का या परमात्मा का और यह मन श्रीमान् चल पड़ता है कहीं ओर ! ज्ञानी भगवंत कहते हैं कि यह मन ऐसा ही है। परंतु ऐसा होना नहीं चाहिए :

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुखमाँहि।
मनीराम चिहुँ दिशि फिरे, यह तो सुमिरन नाँहि ॥

सचमुच यह स्मरण नहीं। माला के मनके अँगुलियों पर फिसलते जा रहे हैं। जिह्वा प्रभु के नाम का सुमिरण कर रही है और मन महाराज बाजार, चौपाटी व दुकान आदि का चक्कर लगा रहे हैं। इसप्रकार स्मरण नहीं होता। बहुत बड़ी रूकावट है यह, बहुत बड़ी हानि। किंतु इस मन को रोकें कैसे ? इस रूकावट को हटाने के लिए परमात्मतत्त्व का अभ्यास करो। नवकार का जाप करो। लगातार करो। किसी भी प्रकार से करो। निरंतर जाप करने से अन्त में कृपा होगी

अवश्य। चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय परमात्मा का, अरिहंत का नाम लो। '**ॐ अर्हन्नमः**' का लगातार जाप करते जाओ। मन को रोकने का यह सरल उपाय है। निरंतर अभ्यास करने से यह निश्चित रूप से रूकता है।

जीवन का लक्ष्य

देखो भाई, इस शरीर को सुख से रखो या दु:ख से, एक दिन इसे जाना है अवश्य।

कबिरा नौबत आपनी, दस दिन लेओ बजाय।
ये पुर पट्टन ये गली, बहुरि न दीखन आय॥

यह सब कुछ जायेगा अवश्य, बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं का चला गया, योद्धाओं व सेठ-साहूकारों का चला गया, बलदेव, वासुदेव एवं चक्रवर्तियों का भी चला गया, फिर दूसरों की कौन कहे? इस शरीर का अभिमान किसलिए ? इसे एक दिन -

हाड़ जले ज्यों लाकड़ी, केश जले ज्यों घास।
सब तन जलता देखकर, भया कबीर उदास॥

परंतु उदास होने से लाभ क्या ? यह तो कच्चा है भाई, टूटेगा अवश्यमेव-

यह तन काचा कुम्भ है, लिये फिरे तू साथ।
ठपका लागा फूटिगा, कछू न आया हाथ॥

और फिर थोड़ी देर के लिए मान लो शरीर का सुख मिल गया, तो भी हुआ क्या ? वास्तव में यह सुख मिला नहीं, कुछ सरलताएँ / सुविधाएँ मिली हैं अवश्य, पर सुख नहीं मिला। किन्तु यदि मिल भी जाय तो इस सुख का मूल्य क्या ? सुख और दु:ख की वास्तविक अनुभूति तो मन में होती है। मन में सुख न हो, मन में शांति न हो तो शरीर के सुखों का एक कौड़ी भी मूल्य नहीं। अब यह मानसिक सुख और मानसिक शांति आपके पास है या नहीं, यह स्वयं सोचकर देखो, अपने हृदय में झाँकों, और देखो कि क्या आपके मन में शांति है, सुख है ? प्रत्येक हृदय में दु:ख की ज्वाला है, प्रत्येक आँख में आँसू हैं। प्रत्येक घर में आग जल रही है। देखो या न देखो, प्रत्येक घर से धुआँ उठ रहा है। शारीरिक सुख मिला नहीं, मानसिक शांति मिली नहीं और आत्मिक आनंद तो कोसों दूर है ? किंतु मनुष्य अपने आप को इसप्रकार भूल गया है, जैसे सरकस का खेल देखकर बच्चा थोड़ी देर के लिए प्रसन्न हो जाता है।

किन्तु इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि यह शरीर केवल साधन है, लक्ष्य(साध्य) नहीं। मानवजीवन का लक्ष्य है-आत्म-दर्शन, प्रभु-दर्शन, प्रभु-पूजा, माला-जापादि। यह शरीर परमात्मा को पाने के लिए मिला है, क्योंकि अन्य किसी भी शरीर में परमात्म-पद प्राप्त नहीं होता।

स्वाध्याय क्या है ?

आजकल कतिपय व्यक्तियों ने स्वाध्याय का भी सीमित अर्थ समझ लिया। **'स्वाध्याय' का वास्तविक अर्थ है-'स्व' अर्थात् आत्मा को और 'अध्याय' अर्थात् पढ़ना यानि आत्मा को पढ़ना, जानना, देखना और समझना या ऐसे ग्रन्थों का पाठ करना जिनसे आत्मा का ज्ञान मिलता हो ।**

'स्वाध्याय' का अर्थ है - मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है ? अपने-आपको पढ़ना, यह देखना कि अपने अंदर क्या है ? कितने गुण हैं ? कितने अवगुण हैं ? और गुणों को बढ़ाने का प्रयत्न करना, बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना । साथ ही साथ यह चिंतन करना कि करने लायक कार्य मैंने कौन से नहीं किये और क्या करना शेष है ?

जैनागम-जैनधर्म के सुन्दरतम ग्रंथों का / सत्साहित्य का ध्यानपूर्वक चिंतन-मनन कर न केवल पढ़ना, बल्कि उन उपदेशों को अपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न करना। यह है स्वाध्याय का, अपने आपको पढ़ने का अर्थ !

परन्तु जो व्यक्ति इसप्रकार स्वाध्याय नहीं करते, उन्हें भी एक दिन यह '**अपने आप का चिंतन करने की**' पुस्तक पढ़नी होती है अवश्य । एक दिन :-

दस द्वारे का पींजरा, तामें पंछी पौन ।
रहने में अचरज नहीं, जाये अचम्भा कौन ॥

एक दिन जाना पड़ता है और तब मानव जीवन की यह पुस्तक पन्ना-पन्ना करके खुलती है। एक के बाद दूसरा पन्ना आत्मा की आंखों के सामने आता है। मनुष्य उसे देखता है और रोता है, परन्तु उस समय यह पुस्तक रोने की परवाह तो नहीं करती । पढ़ते-पढ़ते, पन्ना उलटते-उलटते अन्तिम पन्ना आ जाता है जिस पर इस मानव चोले से निकलने और दूसरे चोले में जाने की आज्ञा कर्मराजा ने लिखी है।

स्वाध्याय का महत्त्व

सत्साहित्य / सद्शास्त्रों-सद्ग्रंथों का स्वाध्याय अमृत मंदाकिनी के समान होता है। सत्साहित्य-सद्ग्रंथों का दैनिक स्वाध्याय संपूर्ण पापों का विनाशक है।

सच कहा है :

एक चरण हूँ नित पढ़े, तो काटे अज्ञान ।
पनिहारी की नेज सों, सहज कटे पाषाण ॥

यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन सद्ग्रंथों का पूरा पेज न पढ़कर केवल एक पंक्ति भी पढ़े अथवा यदि कोई व्यक्ति नित्यप्रति पूरी एक गाथा (श्लोक) कण्ठस्थ न करके, वह केवल
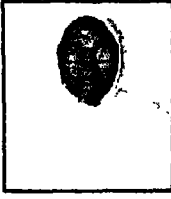
गाथा का एक चरण भी कण्ठस्थ करें तो अज्ञान नष्ट हो जाता है। जैसे पनिहारी की रस्सी बार-बार के प्रयोग से पत्थर को सहज ही काट देती है।

जीवन में दैनिक अभ्यास का यही फल है। घड़े से निकल कर बूँद जहाँ टपकती है, वहाँ छेद हो जाता है। पत्थर में भी सूराख उत्पन्न हो जाता है। तो फिर क्या हम सभी चैतन्य मनुष्य होकर कुछ पढ़ नहीं सकते ? कुछ याद करने का नित्यक्रम सा नहीं बना सकते ?

करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान ॥

इस स्वाध्याय का महत्त्व कितना है ? यह समझना हो तो शास्त्र के निम्नांकित शब्दों पर ध्यान दीजिए :-

"सम्पूर्ण पृथ्वी को उसके समुद्र और पर्वतों के सहित यदि कोई स्वर्ण से ढंक दे तथा इस स्वर्णयुक्त पृथ्वी का दान कर दे तो इस दान का जो फल होता है, वह स्वाध्याय का फल है।"

दान-धर्म

'दानं एकं कलौ युगे' - महर्षि मनु

कलियुग में दान-धर्म सबसे महान् साधन है। मृत्यु के पश्चात् भी निष्काम भाव से दिया हुआ दान ही काम आता है, किन्तु आजकल किसी व्यक्ति को दान देने की बात कहो तो वह कहेगा-साहब, अपनी ही आवश्यकता पूरी नहीं होती तो दान कहाँ से दें ? **"यह आवश्यकता पूरी नहीं होती" भी एक विचित्र तमाशा है।** बुद्धिमत्ता की बात तो यह है कि जितनी आय हो, व्यय उससे कम करो। अपनी आवश्यकताओं को कम करो। आय कम हो या अधिक, उसमें से एक हिस्सा दान के लिए अवश्य सुरक्षित रखो।

परंतु आज 'खाओ, पिओ, ऐश करो' का सिद्धांत संसार का सिद्धान्त बन गया है। हर समय प्रत्येक स्थान पर एक ही ध्वनि सुनाई देती है-**'और लाओ, और लाओ'**। ऐसी अवस्था में दान कौन करे ? किंतु यह कहना ठीक नहीं है।

जो लोग मन की शांति चाहते हैं, उन्हें समझना चाहिए कि जो व्यक्ति अन्धाधुन्ध खर्च करता है और अपनी आवश्यकताओं को निरंतर बढ़ाए चला जाता है। जो आय से अधिक व्यय करने के बाद आय को बढ़ाने का प्रयत्न करता है, उसे शांति कभी नहीं मिल सकती। मन की शांति के लिए आवश्यक है कि व्यय को आय के नीचे रखो। आत्मा की उन्नति के लिए जरूरी है कि जो गरीब और दुःखी है, उन्हें दान देकर उनकी निष्काम सेवा करो।

दौलत का चमत्कार

'दौलत' शब्द में दो विशेषताएँ रही हुई हैं। आप अच्छीतरह जानते हैं। **यह 'दौलत' है-दो लातोंवाली।** आती है तो एक लात मनुष्य की छाती पर मारती है और वह इसप्रकार अकड़ जाता है कि अपने अतिरिक्त उसे कुछ दिखाई ही नहीं देता। जाती है तो एक लात पीठ पर मारती है और मनुष्य इसप्रकार झुक जाता है जैसे उसकी कमर टूट गई हो, जैसे संसार समाप्त हो गया हो। परन्तु सुनो, दौलत के आने-जाने से संसार समाप्त नहीं होता। दौलत को संसार या संसार का सुख समझनेवाला व्यक्ति उस यात्री की भाँति है जो डूबती नौका में बैठा हो।

'अति' का फल

किसी भी कार्य में '**अति**' मत करो।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप्प।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धुप्प॥

यह '**अति**' सदा कार्य को बिगाड़ती है। इसीलिए तो कहा गया है-'**अति सर्वत्र वर्जयेत्**'।

बहुत रूपवती होने से सीता संकट में फँसी। बहुत अभिमानी होने से रावण मारा गया। बहुत ज्यादा दान करने से राजा बलि बांधे गये। यह अति अच्छी नहीं है।

'**अति**' हर बात में बुरी है।

आनन्द किस में ?

"चंदन की चुटकी भली, गाड़ी भरा न काठ॥"

अनेक से परिचय होने की अपेक्षा समान विचार, समान आचार, समान चर्चा एवं समान ज्ञानवाले की मैत्री अधिक आनंदप्रद एवं अधिक लाभप्रद होती है। जैसे गाड़ीभर लकड़ी की अपेक्षा चंदन का एक छोटा-सा टुकड़ा महत्त्वपूर्ण व लाभदायक होता है। वैसे ही अनेक विरोधी विचारवाले बुद्धिहीनों की अपेक्षा एक चतुर मित्र की मैत्री तथा परिचय ज्यादा आनंदप्रद सिद्ध होता है।

दुर्लभ साधु-संत

शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे-गजे ।
साधवो: न ही सर्वत्र, चंदनं न वने-वने ॥

जैसे प्रत्येक पहाड़ एवं पहाड़ की प्रत्येक चट्टान पर माणिक्य की चट्टान नहीं होती । प्रत्येक हाथी के मस्तिष्क में मुक्ता का कोष नहीं होता और प्रत्येक जंगल में चंदन के वृक्ष नहीं होते । इसीतरह साधु-संत भी जहाँ-तहाँ सब जगह नहीं मिलते ।

निर्लिप्त रहो

मनुष्यों का मन ही बंध और मोक्ष का कारण है। उदाहरण के तौर पर श्री प्रसन्नचंद्र राजर्षि ने एक क्षण में ही शुद्ध अध्यवसाय से सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया । जबतक मन शुभ विचार में लगा हुआ रहेगा, तब तक कर्म का बंध नहीं होगा । जैसे पनिहारी पानी का बेड़ा भर कर आती है । रास्ते में कोई सखी मिल जाती है, उससे वह बातें करती है, हंसती है, ताली भी देती है, किन्तु उसका चित्त तो पानी के बेड़े में ही रहता है । उसीतरह तुम संसार का सब कार्य करो, परन्तु तुम्हारा लक्ष्य तो समभाव में रहना चाहिए । जैसाकि संत आनन्दघन ने कहा है :

मनाजी तूं तो जिन चरणे चित्त लाय,
चार पाँच साहेली मलीने, हिल मिल पाणी जाय ।
ताल दिए ने खड़ खड़ हंसे रे, वाँकुं चित्तडुं गगरिया माँय ॥ मनाजी० ।

जैसे धाय माता बालक को दूध पिलाती है, उसको खाना खिलाती है, प्यार करती है, परन्तु दिल में समझती है कि यह बच्चा मेरा नहीं है, दूसरे का है । इसीतरह संसार में रहते हुए अपना फर्ज समझ करके सब कार्य करो, लेकिन उसमें रचे-पचे मत रहो ।

रे रे समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल ।
अन्तर से न्यारो रहे, ज्यों धाय खिलावे बाल ॥

मन को वश में करने का उपाय

'मन साध्युं तेणे सघलुं साध्युं, ए वात नहि खोटी' ।

जिसने मन को अपने अधीन कर लिया है, उसने सब कुछ साध लिया है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । यह मन अत्यन्त चंचल है ।

चाहे दिन हो या रात, बस्तीवाला स्थान हो या निर्जन, रसोई घर हो या धर्मस्थान,

आकाश हो या पाताल सब जगह यह मन चला जाता है। जैसे सर्प मनुष्य को काटता है, परन्तु उसका मुँह तो खाली का खाली रहता है। उल्टा मनुष्य का जहर उसको चढ़ता है। ऐसा विपरीत न्याय है। इसीतरह यह मन की गति है। यह मन किसीतरह वश में नहीं होता है। सन्त आनंदघन ने ठीक ही कहा है :-

रजनी वासर वसति उज्जड़ गयण पायाले जाय।
साप खाय ने मुखडूं थोथुं एह उखाणो न्याय हो।
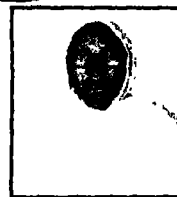
यह चंचल मन अभ्यास और वैराग्य द्वारा वश हो जाता है। इसलिए मन को हर समय शुभविचारों में रखना चाहिए।

निरपेक्षता

यह जीवन तो संघर्षमय है। सुख-दुःखमय है। संसार एक चलचित्र के समान है। यहाँ तो प्राय: ऐसे प्रसंग कदम-कदम पर उपस्थित होते ही रहते हैं। उन प्रसंगों पर क्या हँसना, क्या रोना ? क्या खुशी, क्या अप्रसन्नता ? हमें इन सभी प्रसंगों में बहना नहीं है, अपितु ज्ञाता-द्रष्टा बनकर हर स्थिति को निरपेक्षभाव से देखते रहना है। यदि जीवन व्यवहार में कभी किसी से कहा सुनी हो जाये या मनमुटाव हो जाये तो "**कहना नहीं, सहना सीखो**" इस स्वर्णिम सूत्र से अपने मन को समझाना है।

पैसे का चमत्कार

'दादा बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रूपया'।

जिन्होंने धन-दौलत को ही जीवन समझ लिया है, जिन्होंने पैसे को ही सब कुछ मान लिया है और पैसे को ही परमेश्वर मानकर अपने आपको उसका दास समझ लिया है। ऐसे व्यक्तियों के लिए ही कहा जाता है –

'पैसो म्हारो परमेसर, हूँ पैसारो दास'।

ऐसे व्यक्ति समझते हैं कि इस दुनिया में यदि कोई सारतत्त्व है तो वह एकमात्र पैसा ही है। पैसे से बढ़कर कोई जीवन नहीं है, पैसा ही सब कुछ है। लेकिन जिस पैसे की तुम भगवान् की भाँति पूजा-अर्चना करते हो, वह पैसा भगवान् नहीं, पिशाच है, राक्षस है, जिसका भूत तुम पर सवार हो गया है। जो रात-दिन तुम को हैरान-परेशान करता रहता है और तनिक भी आराम नहीं लेने देता। पैसे रूपी पिशाच को तुम भगवान् तुल्य समझ कर कब तक पूजते रहोगे और नमस्कार कर कब तक अपनी नाक रगड़ते रहोगे ? आपने तो माना है कि जिन्दगी में पैसा, पैसा

और पैसा ही सब कुछ है। लेकिन पूछा, पैसेवालों को, वे कितने सुखी हैं ? सुख पैसे से नहीं मिलता, सुख संतोष से मिलता है।

मैं आप से पूछती हूँ कि पैसे के लिए जीवन है कि जीवन के लिए पैसा है ? जीवन कीमती है या पैसा ? क्या साध्य पैसा है और जीवन साधन है ? या जीवन साध्य है और पैसा साधन है ? क्या है ?

हाय पैसा.... हाय पैसा करते दौड़ रहे हैं, किन्तु पैसा आपके साथ चलनेवाला है ! आपको सुखी बनानेवाला है ! आपका नाम स्थायी रखनेवाला है ! आज पैसे के पीछे मनुष्य इतना पागल बना है कि उसको किसी की परवाह नहीं है। आज तो जिसके पास पैसा है वही बुद्धिमान् -गुणवान् माना जाता है।

'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते'-यानि सभी गुण धन में रहे हुए हैं। इतना ही नहीं, 'यस्यास्ति वित्तम् स नरः कुलीनः'-अर्थात् जिस व्यक्ति के पास धन है, वह व्यक्ति कुलीन, धर्मज्ञ और शास्त्रज्ञ माना जाता है चाहे वह निकम्मा, बुद्धिहीन ही क्यों न हो ? धन का अपना चमत्कार है।

कृतघ्नता

किसी के द्वारा किये गए उपकार को भूल जाना, उपकारी के उपकार को नहीं मानना और उपकारी का प्रत्युपकार (समय आने पर) नहीं करना 'कृतघ्नता' कहलाती है। ऐसी कृतघ्नता की वृत्ति जिसमें हो, वह 'कृतघ्न' कहलाता है।

कृतघ्न व्यक्ति हृदय का इतना कठोर होता है कि दूसरा व्यक्ति उस पर दुःख या विपदा पड़ने पर चाहे करोड़ों उपकार कर दे, चाहे अपना सर्वस्व तन, मन और धन लगा दे, तो भी वह उस उपकारी को उपकारी नहीं कहेगा और न मानेगा।

यथार्थतः कृतघ्न व्यक्ति दूसरों के गुण ग्रहण नहीं करता, उसकी दृष्टि में दूसरों के दोष ही नजर आते हैं। वह दूसरों के द्वारा किये गए उपकारों को स्मृति से बिल्कुल ओझल कर देता है। जिस व्यक्ति में कृतघ्नता आ जाती है, वह चाहे कितना ही सम्पन्न क्यों न हो जाए, चाहे उसमें गुण भी क्यों न हो, वह लोगों की दृष्टि में अधम, निकृष्ट और पापी समझा जाता है। एक कृतघ्नता ही उसके सभी गुणों पर पानी फिरा देती है। अतः कृतघ्नता महापाप है।

संतोषी सदा सुखी

सुख का मूल स्रोत संतोष है। संतोष एक ऐसा धन है, जिसके आगे सभी धन नगण्य है। जैसा कि कहा है -

गौधन गजधन, वाजिधन और रतनधन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूल समान।

संतोषी व्यक्तियों का जीवन ही सुखी होता है। संतोषी जीवन हर हाल में खुश होता है। हर हाल में मस्त रहने की, संतोष की कला जिसे आती है, वह साधारण व्यक्तियों को ही नहीं, परमात्मा को भी प्रसन्न कर सकता है।
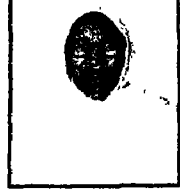
एकबार एक संतोषी व्यक्ति से किसी ने पूछा-"आप कष्टप्रद स्थिति और थोड़ी-सी आय में भी कैसे प्रसन्न और संतुष्ट रह लेते हैं ?" उसने हँसकर कहा,"जैसा, जो कुछ मिला है, उसी में गुजर-बसर न करके अगर मैं लोगों के सामने अपना दु:ख रोता फिरूँ, मन में कूढ़ता रहूँ, घर के लोगों को कोसता रहूँ और डाँटता फिरूँ तो मैं स्वयं अधिक दु:खी तथा मानसिक रोगी बन जाऊँगा। इससे बेहतर तो यही है, प्रत्येक परिस्थिति को शान्ति और धैर्य से सहकर सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर जीऊँ। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं अपनी परिस्थिति को सुधारने के लिए यथाशक्य प्रयत्न नहीं करता। करता हूँ, किन्तु प्रयत्न करने पर भी विशेष सुधार नहीं होता तो मैं कूढ़ता नहीं, वरन् प्रसन्नतापूर्वक उसका वरण कर लेता हूँ। **संतोष मेरी साधना है।**" वह प्रभावित होकर नमस्कार करके विदा हुआ।

यह है संतोषी जीवन का ज्वलन्त उदाहरण ! वस्तुत: संतोष समस्त सद्गुणों का मूलाधार है। जहाँ संतोष आ जाता है, वहाँ बाह्य दृष्टि से अभाव दिखाइ देने पर भी अंतरात्मा में किसी भी सुख के अभाव का अनुभव नहीं होता। शांति-सुख और स्वानुभूति ही नहीं, स्वास्थ्य, साधनों का विकास और शक्ति का आधार भी संतोष ही है। **जहाँ संतोष है, वहाँ सब कुछ है, सभी सुख है।**

मानवजीवन की महत्ता

मानव जीवन एक अनमोल रत्न है, किंतु मूर्ख इस रत्न को पाकर इसका मूल्य और इसका सही उपयोग नहीं जानता, वह मूर्खतावश इसे फैंक देता है। यों ही विषय-भोगों और लड़ाई-झगड़ों में इसे व्यर्थ गँवा देता है, निरर्थक खो देता है। किंतु अमित पुण्यों के संचय होने पर जीव को मनुष्यभव मिलता है। फिर इसमें भी दीर्घ आयु, स्वस्थ शरीर, आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल, उत्तम जाति, धर्म में रूचि, परमात्मा का शासन और सद्गुरु का समागम आदि प्राप्त होना अति दुर्लभ है। देवगण भी ऐसे अमूल्य मानव जीवन के लिए तरसते हैं।

ऐसा उत्तमोत्तम मानव जीवन हमें मिला है, जो देवताओं को दुर्लभ है। यदि मानव बनकर भी हमने सद्गुणों का संचय नहीं किया, दया धर्म नहीं अपनाया। दुर्गुणों को ही अपनाते रहे, विषय-वासनाओं के जाल में फँसे रहे तो इस मानवभव को पाने की क्या सार्थकता ? अमूल्य और बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुए अवसर यूँ ही नादान बनकर खो दिया। कहावत है-**'डाल का चूका बंदर और अवसर का चूका नर' जीवनभर पछताता रहता है**। इतना ही नहीं, आत्मा की उन्नति का अवसर चूकनेवाला तो अनेक जन्मों तक पश्चात्ताप करता रहता है।

जीवन के लिए भोजन

अन्न का कभी अनादर मत करो, क्योंकि अन्न एक ऐसी अमूल्य वस्तु है, जो जीवन के लिए अमृत का काम करती है; किन्तु वह अमृत का काम तभी करती है जब वह शुद्ध, सात्त्विक और पवित्र हो। भोजन का, खान-पान का हमारे मन-मस्तिष्क पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। इसीलिए यह कहावत भी है -

जैसा खाए अन्न, वैसा रहे मन।
जैसा पीवे पानी, वैसी बोले वाणी॥

कबीर ने भी यही बात कही है -

"जैसा अन्न जल खाइए, वैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिए, तैसी बानी होय॥"

मनुष्य को अपना खान-पान शुद्ध और सात्त्विक रखना चाहिए।

यह सही है कि मनुष्य अन्न का कीड़ा है। भोजन उसके लिए आवश्यक है। बिना खाए पिये जीवन टिक नहीं सकता। शरीर-यात्रा के लिए भोजन जरूरी है। बड़े-से-बड़ा साधक या तपस्वी भी बिना भोजन के साधना नहीं कर सकता है। साधक को भोजन का निषेध नहीं है, वह भी भोजन कर सकता है। भोजन करना, खाना-पीना कोई पाप नहीं है। वह भी साधना का एक अंग है। पर हमारा खान-पान ऐसा होना चाहिए कि जो सात्त्विक हो, जिसके खाने से मन में विकार पैदा न हो, तन में रोग उत्पन्न न हो, जो हमारे जीवन को दूषित न करें और हमारे भावों को कलुषित न करें।

भोजन / खान-पान की भी एक मर्यादा होती है। जीवन के लिए भोजन है, न कि भोजन के लिए जीवन।

लेकिन आज के इस कलियुग में भोजन के लिए जीवन बन गया है। आज के मनुष्य ने ऋषि- महर्षियों द्वारा बनाये गए सभी नियम भूला दिए हैं।

जिह्वा के वशीभूत बनकर आज के मानव ने पेट को गोदाम या कचरापेटी बना दिया है। जो आया, डाल दिया इस पेट की पेटी में। जब आया, जैसा आया डाल दिया पेट में। उसने माल अपना और पेट पराया समझ लिया है।

उसे न स्थान का ध्यान है और न समय का खयाल है। किसी भी समय और किसी भी स्थान पर पेट में डालना चाहता है। न भक्ष्य का ध्यान है, न अभक्ष्य का। न दिन का ध्यान है, न रात का। जब भी देखो, सुबह नींद खुलने से लेकर रात को नींद आने तक भी उसके खाने का कार्य समाप्त ही नहीं होता। कभी चाय तो कभी दूध, कभी ठण्डा तो कभी गरम, कभी नमकीन तो कभी मीठा और कभी पान-पराग तो कभी तम्बाखू-जर्दा आदि मुँह में चलता ही रहता है। दिन रात चोवीस घंटें पशु की भाँति चरता ही रहता है।

आज का स्वादलोलुपी मनुष्य आवश्यक अनावश्यक की परवाह किए बिना, बिना

जरूरत के भी पेट में ठूँसे जाता है। इसके अतिरिक्त स्वादलोलुपी लोग आवश्यक भोजन के सिवाय तरह-तरह के व्यंजन, मिष्टान्न, चटनी, अचार, मुरब्बे और न जाने क्या-क्या इस पेट में जबर्दस्ती ठूँसते रहते हैं।

रसलोलुपता के चक्कर में पड़ा हुआ मानव धर्म के साथ-साथ स्वास्थ्य की भी चिन्ता नहीं करता है। ऐसे लोग स्वास्थ्य की घोर उपेक्षा करके भी केवल पेट भरने को ही अपना लक्ष्य मानते हैं। वास्तव में उनका लक्ष्य जीने के लिए खाना नहीं, बल्कि खाने के लिए जीना है।

आठों प्रहर गाय-भैंस या बकरी की तरह चरते रहना, शरीर के साथ अत्याचार-अन्याय करना है। **नीतिकारों ने कहा है-"पेट के साथ कभी अन्याय मत करो।"** बुद्धिमान् वही है, जो शांति से धीरे-धीरे खाता है। उतना ही खाता है, जितना कि जीवन जीने के लिए आवश्यक है। जैसे औषधि का सेवन नाप-तौल के साथ किया जाता है। वैसे ही स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए हमारा आहार / खान-पान नपा-तुला होना चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय पर हमारा कठोर नियन्त्रण होना जरूरी है, ताकि आवश्यकतानुसार उससे काम लिया जा सके।

स्वस्थ व्यक्ति का सुख धन-सम्पत्ति से मिलनेवाले सुख की अपेक्षा कहीं सौगुना अधिक है। इसीलिए तो कहा जाता है -

'पहला सुख निरोगी काया।'

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रह सकता है। पर आज मनुष्य की हालत तो यह है कि मन भी स्वस्थ नहीं और तन भी स्वस्थ नहीं। जब दोनों ही स्वस्थ नहीं, तब आत्मा की स्वस्थता तो कोसों दूर है। पर आज तो बार-बार खाना, ठूंस-ठूंस कर खाना, जब मन में आवे तब खाना, यह सब फैशन-सा बन गया है।

सबसे पहले अपने खान-पान को शुद्ध करो। आहार की शुद्धि होने पर तन-मन एवं आत्मा की शुद्धि होगी।

तृष्णा : दु:ख का मूल

आज सारे संसार की स्थिति ही बदल गई है। कैन्सर की भाँति यह तृष्णा बढ़ती ही चली जा रही है। इस तृष्णा की अग्नि में सब प्रज्वलित है। सुख शान्ति कहीं दृष्टिगोचर ही नहीं हो रही है। यह लोभ दु:ख की खान और सभी पापों का मूल है। सचमुच, इस लोभ ने सर्वनाश कर दिया है।

लोभी व्यक्ति को संसार की सम्पूर्ण सम्पत्ति भी क्यों न मिल जाए, फिर भी उसकी तृष्णा की तृप्ति नहीं होती। वह सदैव अतृप्त ही बना रहता है। कबीर ने कहा भी है -

कबीरा औंधी खोपड़ी, कबहुँ धापे नाय।
तीन लोक की सम्पदा, जो आवे घरमाय॥

मनुष्य कितने वर्ष तक जी सकता है। अधिक-से अधिक सौ वर्ष तक, परन्तु वह भविष्य की सैकड़ों योजनाएँ गढ़ता रहता है। अनेक मनोरथ करता रहता है। हजारों वर्ष की तैयारी में लगा रहता है। रातदिन इसी उधेड़बुन में रहता है कि कैसे अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा हो ?

"सामान सौ वर्ष का, कल की खबर नहीं ।"

परन्तु कालराज आकर ऐसा झपट्टा मारता है कि मनुष्य को क्षणभर का अवकाश दिए बिना उठा ले जाता है। उसके सम्पूर्ण मनोरथ और योजनाओं पर पानी फिर जाता है। मन के मनोरथ मन में ही त्यों के त्यों धरे रह जाते हैं।

सौ वर्ष तक जीवित रहनेवाला मनुष्य हजार वर्ष की सामग्री एकत्र करने के लिए आकाश-पाताल एक कर देता है और दुःखी होता रहता है। यह दुःख की ज्वाला, तृष्णा की भट्टी में से निकलती है। सन्त आनन्दघनजी ने तृष्णा का स्वरूप बताते हुए कहा है कि, **"ढाई द्वीप की चारपाई बना ली जाए। आकाश को तकिया बना दिया जाए और सम्पूर्ण पृथ्वी को ओढ़ने की चादर बनी दी जाए, तब भी असंतोषी मनुष्य यही कहेगा कि मेरे पाँव तो बाहर ही है।"**

बुढ़ापा आ जाता है। सारा शरीर शिथिल हो जाता है। सिर के बाल पक जाते है। दाँत गिर जाते हैं। आँखों से कम दिखाई देने लगता है। हाथ में लकड़ी लेकर चलना पड़ता है। फिरभी यह आशा तृष्णा नहीं छूटती। वह हर समय जवान की जवान बनी रहती है। कैसी विचित्र स्थिति है।

लाखों, करोड़ों की सम्पदा होने पर भी यदि तनिक भी शांति नहीं मिलती है तो इसका एकमात्र कारण असन्तोष एवं बढ़ती हुई तृष्णा ही है।

असंतोषी मनुष्य उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते तृष्णा की आग में झुलसता रहता है। उसका मन हरघड़ी-हर समय बेचैन रहता है। तृष्णा के कारण वह अत्यधिक दुःखी बना रहता है। कदम-कदम पर उसके समक्ष दुःख के काँटे बिछे रहते हैं। मानव की यह चमत्कारी खोपड़ी कभी तृप्त नहीं होती है। उसे तृप्त करने का एक ही उपाय है त्याग एवं संतोष। इसी से ही इस आशातृष्णा पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

यदि आत्मानंद प्राप्त करना चाहते हैं। सच्चा अव्याबाध सुख पाना चाहते हैं और दुःखों से मुक्ति चाहते हैं, तो इस आशा-तृष्णा को कम कीजिए। अपनी बढ़ती हुई इच्छाओं, आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को कम करें। लोभवृत्ति को कम करें। तभी सच्चे सुख का रसास्वादन कर सकते हैं। दुःखों का निवारण हो सकता है।

3. पूज्याश्री द्वारा दीक्षा पूर्व निर्धारित अनुशासन-नियम

पूज्या दादीजी महाराज साहब द्वारा दीक्षा लेने से पूर्व ही मुमुक्षु आत्मा को बताए जानेवाले निर्धारित कठोर अनुशासन नियम इसप्रकार हैं :-

● **दीक्षा लेते ही पाँच वर्ष तक मौन साधना करना अत्यन्त जरूरी है, ताकि वह श्रमणी जीवन में रंग जाए व रम जाए।**

नोट : अपने गुरुजनों से कुछ पूछना हो या वे कुछ पूछें तो वार्तालाप की छूट। कोई बुजुर्ग साधु-साध्वी भगवन्त कुछ पूछें अथवा उन्हें कुछ कहना हो तो वार्तालाप की छूट। इसके अलावा अपने गुरुजन की अनुमति मिलने पर ही दूर से आनेवाले पारिवारिक सदस्यों से आधा घण्टा / 15 मिनट वार्तालाप की छूट। इससे अधिक नहीं। मौन में बार-बार लिख-लिख कर भी किसी से वार्तालाप नहीं करना है, क्योंकि इससे शक्ति-समय का अपव्यय होता है।

● **साधु भगवन्त से वंदन के अलावा बातचीत, संपर्क / परिचय नहीं रखना / पत्र व्यवहार नहीं करना है। उनके पास कभी भी अकेले नहीं जाना है।**

● **पाँच-दस साल तक विशेष परिस्थिति को छोड़कर साध्वीजी-भगवंत से भी वार्तालाप व पत्र व्यवहार नहीं करना है।** समुदाय में वरिष्ठा बुजुर्ग अनुभवी साध्वीजी भगवंत हो, तो उनके श्रीचरणों में बैठकर उनके अनुभूत जीवन से कुछ सीखने-समझने का प्रयास करना और उनकी सेवा-शुश्रूषा करने का लक्ष्य रखना है।

● **श्रमणी जीवन में पाँच-दस साल तक तो गृहस्थों से बिल्कुल परिचय-संपर्क व पत्र व्यवहार नहीं करना है।**

● **अपने गुरुजनों की बिना अनुमति के पाँच-दस साल तक किसी भी भाई-बहन/लड़के-लड़कियों से भी कत्तई बातचीत, पत्र व्यवहार व संपर्क-परिचय नहीं करना है।**

● चाहे पारिवारिक सदस्य हों / माता-पिता हों या अन्य कोई भी श्रद्धालु भक्तवर्ग हो, पाँच-दस साल तक किसी को भी बिल्कुल पत्र नहीं लिखना है। यदि अत्यन्त जरूरी कार्य हो और अपने गुरुजन अगर आदेश दें, तब दो शब्द लिखकर फिर उन्हें दिखाकर ही देना है। गुरुजनों को क्या पता चलेगा ? ऐसा सोचकर बिना उनकी इजाजत के यदि किसी से भी पत्र व्यवहार किया अथवा वार्तालाप किया अथवा कोई भी वस्तु बिना पूछे ले ली, किसी को दे दी और यदि अपने गुरुजनों को इस बात की जानकारी हो गयी तो इससे उन्हें सख्त नाराजगी और नफरत हो जाएगी। फिर जीवन दु:खदायी बन जाएगा।

● **चारित्र जीवन अंगीकार करने के पश्चात् ऐसा बिल्कुल महसूस नहीं होना चाहिए कि मुझ पर इतना कड़ा प्रतिबंध क्यों ? इतना कठोर अनुशासन क्यों ? क्या मुझ पर विश्वास नहीं है ? गुरुजनों के अनुशासन के बजाय स्वानुशासन होना अत्यन्त श्रेयस्कर है।**

● अपना जीवन एक खुली पुस्तक होना चाहिए, जिससे किसी को शंका-कुशंका न हो।

● कोई कुछ भी कहे या पूछे, वह सब पुनः अपने गुरुजन को निःसंकोच बताना होगा। मान लो नहीं बताया और बाद में उन्हें पता लग गया तो इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि हम उनके दिल-दिमाग से बिल्कुल हट जायें।

● किसी के द्वारा कुछ पूछने पर या कहने पर कुछ विसंगति-विरोधाभास जैसा लगे तो तत्काल निःसंकोच अपने गुरुजनों से पूछकर उसका निराकरण-स्पष्टीकरण करना जरूरी है। यह नहीं सोचें कि यह बात इनसे कैसे पूछूँ? कोई कितना ही उकसाए या अपने गुरुजनों के विपरीत कुछ कहे तो सारी बातें उनसे पूछकर निराकरण करना उचित है। अपने गुरुजन से छिपाकर कुछ भी नहीं रखना है। अन्यथा धीरे-धीरे अपने प्रति विश्वास खत्म होता चला जाता है।

● अपने गुरुजन को पूछे बिना अथवा बिना उनकी अनुमति के सुई जितनी चीज भी किसी साधु-साध्वी भगवन्त या किसी गृहस्थ से लेना और देना नहीं है।

● जिनकी निश्रा में रहना हो, जिनके पास रहना हो, उनकी हर दृष्टि से आचार-विचार-व्यवहार-स्वभाव आदि की भलीभाँति परीक्षा दीक्षा लेने से पहले ही खूब कर लेनी चाहिए। चारों ओर से ठोक-बजाकर के ही फिर उन्हें 'गुरु' रूप में स्वीकार करना हितावह है। 'गुरु' रूप में स्वीकार कर लेने के पश्चात् उनकी आज्ञाओं को सहर्ष शिरोधार्य करने में आनाकानी या तर्क-वितर्क नहीं करना है। रघुवंश महाकाव्य में कहा है - "आज्ञा ही गुरुणामविचारणीया"-गुर्वाज्ञा पर कभी विचार ही नहीं करना चाहिए। बिना ननूनच किए उसे सहर्ष शिरोधार्य कर लेना चाहिए। वहाँ तर्क-वितर्क या कुतर्क को स्थान ही नहीं होता। कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य ने तो स्पष्ट कहा है -

"गुर्वाज्ञाकरणं हि सर्वगुणेभ्योऽतिरिच्यते"-अर्थात् गुर्वाज्ञा का पालन करना सभी गुणों से बढ़कर है। जिनकी निश्रा में रह रहे हैं, उन्हें ही पूर्णरूप से महत्त्व देना सर्वथा योग्य है।

● साध्वी जीवन में अपने घर की बात किसी भी गृहस्थ / साधु-साध्वी भगवन्त से नहीं कहना है।

● लोक-निंदा हो, वैसा कोई कार्य अपने से न हो जाय, इसकी पूरी सावधानी रखनी है।

● कोई भी कीमती वस्तु अपने उपयोग में नहीं लेनी है।

● गृहस्थ के द्वारा लाए गए, सर्दी में ओढ़ने हेतु, बिना धर्मलाभ दिए हुए, वापस देना पड़े ऐसे, नहीं उठाए जा सकनेवाले रंगीन या सफेद ऊनीकंबल गृहस्थों के उपयोग में लिए हुए बिल्कुल नहीं वापरना है।

● बाजार की मिठाई-नमकीन नहीं लेना है।

● चोकलेट, पीपरमेंट, बाजार के बिस्कुट, ब्रेड आदि अभक्ष्य वस्तुएँ नहीं वापरना है।

● स्नान करने के साबुन का उपयोग बिल्कुल नहीं करना है।

● विहार में गाडी-हाथलॉरी, व्हीलचेअर आदि नहीं रखना है।

● अपना स्वयं का सामान स्वंय को उठाना है, किसी नौकर को नहीं देना है।

● संक्षिप्त दैनिक डायरी लिखना जरूरी है।

● चीकन, फूलवायल, क्रेप आदि कीमती वस्त्र नहीं वापरना है।

● किसी गृहस्थ-भाई-बहन अथवा नौकरानी से अपने कपड़े नहीं धुलवाना है। (अपने कपड़े का काप नहीं निकलवाना किसी से) अपना काम स्वयं करना, लड़कियों व बहनों से भी नहीं करवाना है।

● प्लास्टिक की चीजें यथासंभव नहीं वापरना। (स्थंडिल-मात्रा हेतु प्लास्टिक शीशी-प्याला-ग्लास को छोड़कर)

● जानबूझकर फोटो नहीं खिंचवाना। दीक्षा ग्रहण करते समय छूट।

● पन्द्रह दिन पहले विशेष परिस्थिति को छोड़कर अपने कपड़े का काप नहीं निकालना है।

● विशेष परिस्थिति को छोड़कर बनती कोशिश खुले मुँह नहीं वापरना।

● घर की बनी हुई मिठाई-नमकीन महीने में पाँच बार से अधिक नहीं वापरना है।

● विशेष अपरिहार्य परिस्थिति को छोड़कर अंग्रेजी दवाई नहीं लेना है।

● पंखा-कूलर आदि का उपयोग नहीं करना है।

● सभी के बीच बैठे हों, बातचीत हो रही हो और अपने को पता भी हो, तब भी बिना बुलाए जाना नहीं, बिना पूछे बोलना नहीं, सुनते रहना है। अपनी बघारना नहीं कि हम जानती हैं। मौका आने पर ही अपनी बात कहना है, बोलना है। अन्यथा सबके बीच बार-बार बोलने से अपनी कीमत घटती है। **दो व्यक्तियों के बीच बिना बुलाए जाना मूर्खता का लक्षण है।**

अगर गुरु-कृपा से पढ़-लिखकर होशियार भी बन जाय, फिर भी अपने गुरुजनों, पूज्य आचार्यभगवंत और साधु-साध्वी भगवन्त को अपनी भाषा-व्यवहार व आचरणादि से ऐसा न लगे कि ये खूब पढ़ी-लिखी हैं। **अहं नहीं झलकना चाहिए। ज्ञान का अजीर्ण नहीं होना चाहिए। इस बात का जीवनभर ध्यान रखना है। अभिमान बिल्कुल नहीं, पर स्वाभिमान होना चाहिए।**

यदि आगे बढ़ना है तो उपर्युक्त नियमों का पालन करना जरूरी है। फिर तो आगे जैसा देश, क्षेत्र, काल व भाव होगा, तदनुरूप हम सभी को वर्तना होगा।

कम-से-कम दस-पन्द्रह साल तक तो इन कठोर नियमों का पालन प्राणप्रण से करना ही है, फिर तो व्यक्ति उस वातावरण में ढल जाता है। धीरे-धीरे परिपक्वता आती जाती है और सब कुछ सहज हो जाता है।

नोट : किसी विशेष परिस्थिति में अपने पूज्य गुरुजनों के द्वारा उपर्युक्त कठोर अनुशासन नियमों में परिवर्तन किया जाय तो-बिना ननूनच किए सहर्ष उन्हें मान्य कर लेना चाहिए। ताकि जीवन सुन्दर-सुखद व आनन्दमय बन जाए।

4. पूज्याश्री द्वारा प्रदत्त जीवनोपयोगी महत्त्वपूर्ण हितशिक्षाएँ

पू. दादीजी महाराज साहब का ऐसा अद्‌भुत संबल हमें मिला, जिन्होंने समय-समय पर महत्त्वपूर्ण सटीक, सुंदर एवं मननीय हितशिक्षाएँ प्रदान की थीं, जो आज भी हमारा पथ प्रशस्त कर रही हैं और करती रहेंगी।

● विपत्ति में कभी घबराना नहीं। धैर्य रखना। धैर्य का फल मीठा होता है। ये परीक्षा की घड़ियाँ हैं।

● एकदम किसी पर विश्वास नहीं करना।

● सदैव सत्य और न्याय का पक्ष लेना।

● **अपने सामने जब कोई ऐसी विषम परिस्थिति आए तब यही मानकर चलना कि जो कुछ भी हुआ वह अच्छे के लिए हुआ और जो कुछ भी होगा वह भी अच्छे के लिए होगा। इसमें न खिन्न होना और न प्रसन्न।**

● लोग चाहे कुछ भी कहे, कोई कितना ही ऊँचा चढ़ावे, पर अपने आपको हमेशा छोटा व सामान्य ही मानना। तो कहीं कोई दिक्कत नहीं आयेगी।

● **अपने क्रिया-कलापों / चारित्रिक आचरण से शासन, गुरुगच्छ, मेरी व माता-पिता की बदनामी न हो, इसका सदैव खयाल रखना।**

● जल्दबाजी या आवेश के क्षणों में कोई निर्णय नहीं लेना। खूब धैर्य, साहस, सूझ-बूझ व समझदारी से निर्णय लेना। जो निर्णय कर लिया फिर उस पर दृढ़ / अटल रहना।

● **अपनी मान-मर्यादा अपने ही हाथ है। अनुशासन व मान-मर्यादा-ये ही संघ-रथ के दो पहिये हैं। ये दोनों सही सलामत रहें, तो कहीं कोई परेशानी नहीं आनेवाली है।**

● कच्चे कान के नहीं बनना। सुनना सबकी, करना समझ की।

● अगर किसी ने अपने विपरीत कुछ कह दिया तो अपना क्या बिगड़ा? यह चिन्तन करना। ऐसी स्थिति में उत्तेजित नहीं होना।

● इस संसार में दो ही पत हैं-एक राखपत और दूसरा रखापत।

● अपने मनोबल पर दृढ़ विश्वास रखना।

● मनुष्य क्या नहीं कर सकता? सब कुछ अपने हाथ में हैं। हम जैसा संकल्प करें, वैसा बन सकते हैं।

● अपना बाह्य जीवन सादा और आन्तरिक जीवन सद्‌गुणों एवं सद्‌विचारों से भरपूर रखना।

● अपना कार्य अपने हाथों करना, दूसरों की अपेक्षा नहीं रखना।

● **ज्ञानियों ने अपने ज्ञान में जो देखा है, वही होनेवाला है। उसमें हम तिलमात्र भी इधर-उधर नहीं कर सकते। इस बात को हमेशा ध्यान में रखना।**

● अपने ज्ञान-ध्यान में मस्त रहना । दुनिया की पंचायती में नहीं पड़ना ।

● कभी किसी की होड़ाहोड़ नहीं करना ।

● कोई कुछ कहे तो चुपचाप सुनते रहना । सुनने जैसा दुनिया में कोई सुख नहीं है । नहीं बोलने में नवगुण और एक बोलने में तेरह अवगुण निकलते हैं ।

● बिना किसी के पूछे बीच में कभी लाड़े की बुआ नहीं बनना, अन्यथा कभी अपमानित होना पड़ सकता है।

● कभी कामचोर नहीं बनना, क्योंकि 'दुनिया में काम प्यारा है, चाम नहीं' ।

● अपने आप को स्वाध्याय में सदा व्यस्त रखना, ताकि यह मन-मर्कट इधर-उधर उछल-कूद नहीं करे और अशुभ संकल्प-विकल्पों से परे रहे ।

● दूसरों की अपेक्षा रखनेवाला सदा दुःखी होता है ।

● तुम अपने आपको संभालना । अपने आप में रहना ।

● कोई आये उसका भी भला और न आये उसका भी भला । 'ये नहीं आये, वो नहीं आये' इसका कभी रंजगम नहीं करना । बस, अपने में मस्त रहना ।
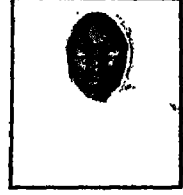
5. पूज्याश्री द्वारा कही जानेवाली कहानियों में से कतिपय कहानियों का संग्रह

पूज्याश्री अपनी मालवी देशी व सीधी सरल-सुबोध भाषा में धर्मकथा के माध्यम से उपदेश देती थीं । जब कभी आपके श्रीचरणों में कोई श्रद्धालु पहुँच जाता, उन्हें आप आदर्श महापुरुषों की प्रेरक-उद्‌बोधक सरल-सुबोध कहानियों का पीयूषपान कराती थीं । सरल हृदय भक्तों पर उनका सीधा प्रभाव पड़ता था ।

ऐसा प्रतीत होता था कि श्रमण भगवान् महावीर ने लोकभाषा में उपदेश देने की जो परंपरा प्रारंभ की थी । यह उसका वर्तमानरूप है । आपके द्वारा कही जानेवाली कतिपय कहानियों का संग्रह करके यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

नोट : आप जब भी श्रोताओं को कहानियों का पीयूष-पान कराती थीं, वह मालवी-मारवाड़ी मिश्रित (घरेलू) भाषा में ही कराती थीं । जिनमें से हमने यहाँ कुछ कहानियाँ सरलतम हिन्दी भाषा में प्रस्तुत की है । इस अनुवाद में कोई शब्द न्यूनाधिक या इधर-उधर होने की त्रुटि होना स्वाभाविक है ।
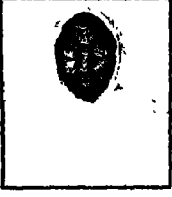
असंगत तुलना

किसी को बैंगन वायड़ा, किसी को बैंगन अपच्च ।
किसी को चढ़ता आफरा, किसी को चढ़ता मच्च ।।

बेगम साहिबा को जब सन्तान होने का समय निकट आता तो वे बादशाह के पास दवाइयों का पाँच हजार रूपये का नुस्खा लिखकर भिजवा देतीं । सारी दवाइयाँ खरीद कर बेगमसाहिबा के पास समय पर भिजवा दी जाती थीं । सन्तान होने के पश्चात् वे दवाइयाँ उनके उपयोग में आतीं और वे महीनों तक आराम फरमातीं ।

एक दिन बादशाह जंगल में शिकार खेलने गया । उसने देखा एक जाटनी को जंगल में बच्चा हुआ है । बादशाह ने उस जाटनी से पूछा बहन ! कुछ जरूरत हो तो बताओ ? इस जंगल में हम तेरी क्या मदद करें ? उसने कहा - हुजूर ! और तो कोई आवश्यकता नहीं है, मगर एक काम है ।

बोलो-मेरे लायक क्या सेवाकार्य है ? हुजूर ! मुझे एक गाड़ी में बिठाकर घर पहुँचाने की व्यवस्था कर देवें । ठीक है, मैं अभी इन्तजाम करवा देता हूँ । उसीवक्त बादशाह ने अपने सेवकों द्वारा गाड़ी का इन्तजाम करवा दिया । वह आराम से घर पहुँच गई ।

बादशाह हप्तेभर बाद पुनः उधर से गुजर रहा था, तो वही जाटनी अपने छोटे बच्चे को ओड़ी में लिए जंगल से लौट रही थी । बादशाह ने उसे पहचान लिया । पूछा- क्यों बहन ! तुम वही हो ना ? हप्तेभर पहले जिसे जंगल में लड़का हुआ था । हाँ, हुजूर ! मैं वही हूँ । बादशाह ने पूछा-तूने क्या दवाई ली जो इतनी जल्दी स्वस्थ हो गई ? हुजूर ! मैंने तो खूब तेल खाया और कुछ दवाई नहीं ली ।

बादशाह घर आ गया । बेगमसाहिबा को संतान होनेवाली थी । उन्होंने पाँच हजार रूपये की दवाइयों का नुस्खा लिखकर बादशाह के पास भिजवा दिया । बादशाह ने दवाइयों के लिए मना कर दिया, और सेवकों के द्वारा कहलवा भेजा कि तेल खूब खा लेना । हप्तेभर में ठीक हो जाओगी, भली चंगी बन जाओगी । बेगमसाहिबा ने उस जाटनी का किस्सा सुन रखा था किसी सेवक के द्वारा । उन्होंने तुरन्त अपने बागवान को बुलवाया । उसे हुकम दिया कि हप्तेभर अपने बगीचे के किसी पेड़ को पानी नहीं पिलाया जाय । बगीचे में पानी पिलाना बंद कर दिया गया । सात दिन में तो बगीचे की हरियाली समाप्त सी हो गई । बगीचा सूख गया । बादशाह बगीचे की ओर गया । बगीचे की ऐसी हालात देखकर बागवान से बगीचा सूखने का कारण पूछा । उसने कहा, हुजूर ! बैगम साहिबा ने बगीचे में पानी देने से मना ही कर दी । इसलिए पानी नहीं पिलाया गया । बगीचा सूख गया । बादशाह ने बेगम से पूछा, उन्होंने कहा, जी हाँ, हुजूर ! मैंने हुकम दिया है । क्यों ? उन्होंने कहा, जहाँपनाह ! जंगल में खेजड़ी आदि को कौन पानी पिलाता है ? जब वह नहीं सूखती है तो बगीचे के दरख्त भी कैसे सूखेंगे ? बादशाह ने बेगम से कहा - जंगल के खेजड़ी आदि की तुलना बगीचे के दरख्तों से कैसे हो सकती है ? बेगम साहिबा

तपाक से बोली-तो जंगली जाटनी की तुलना मुझ से कैसे हो सकती है ? बादशाह शर्मिन्दा हो गया। तभी पाँच हजार रूपयों की दवाइयों का नुस्खा मंगवाने का हुकम दे दिया।

इसलिए उपर्युक्त यह कहावत चरितार्थ हुई है -

किसी को बैंगन वायड़ा, किसी को बैंगन अपच्च।
किसी को चढ़ता आफरा, किसी को चढ़ता मच्च॥

बड़े व्यक्ति की पहचान

बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोले बोल।
हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल॥

सच है संतजन अपने आचार-विचार एवं व्यवहार से उत्तम व्यक्ति सिद्ध होते हैं और वे सदा आत्मश्लाघा से दूर ही रहते हैं। उनकी पहचान तो उनके व्यवहार से ही होती है। उनकी प्रकृति में कभी विकृति नहीं आती। वे कभी अपनी सज्जनता को नहीं छोड़ते हैं। चाहे उन्हें कोई फूलों से पूजे या पत्थरों से मारे।

महात्मा दादू नगर के बाहर रहते थे। वे भक्ति से भरे गीत गाते, और कोई भक्त आता तो उसे भक्ति का उपदेश देते। जगह-जगह उनकी ख्याति फैलने लगी। शहर में भी उसकी खुशबू पहुँची। शहर का कोतवाल भक्ति में कुछ-कुछ रूचि रखता था। वह घोड़े पर बैठा। शहर से चल पड़ा। सोचा आज दादू महाराज के दर्शन कर आयें, और उनसे भक्ति का अमृत ले आयें। भक्ति में रूचि रखते हुए भी आखिर था तो वह कोतवाल ही। शहर से बाहर जंगल में पहुँचा। काफी दूर निकल गया। कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। तभी एक व्यक्ति पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह मार्ग में लगी काँटदार झाड़ियों को काट-काट कर दूर हटा रहा था।

कोतवाल ने बड़े रूबाब से पूछा - अरे! तू जानता है कि महात्मा दादू कहाँ रहते हैं ?

वह व्यक्ति अपने कार्य में मस्त था। कुछ नहीं बोला। कोतवाल क्रुद्ध हो गया। गाली देते हुए बोला "मैं तेरे बाप का नौकर नहीं, जो बकवास करता रहूँ। जानता है तू मुझे ? मैं शहर का कोतवाल हूँ। जल्दी बता! कहाँ रहते हैं दादू ?" उस व्यक्ति ने अब की बार सुना। आश्चर्य से कोतवाल की ओर देखा, धीरे से मुस्करा दिया। कोतवाल ने समझा-यह मूर्ख मेरी हंसीठट्ठा कर रहा है। जिस चाबुक से घोड़े को चला रहा था, उसी से उसे पीट डाला। वह चाबुकें खाता रहा, फिर भी मुस्कराता रहा। कोतवाल ने उसे जोर से धक्का दिया। वह व्यक्ति पत्थर पर जा गिरा। उसके सिर से रक्त बहने लगा। कोतवाल जल्दी में था, उसे वैसा ही छोड़कर आगे चल दिया। कुछ दूर जाने पर उसे एक और व्यक्ति दूसरी ओर जाता हुआ मिला। उससे पूछा,"अरे भाई! दादू महाराज कहाँ मिलेंगे, तू जानता है ? उसने कहा, हाँ, दादू महाराज इसी मार्ग में थे, जिधर से आप आ रहे हैं। अभी-अभी कुछ देर पूर्व मैं उन्हें देखकर आया हूँ। वे मार्ग में लगी काँटदार झाड़ियों को काट रहे थे। आपने क्या उन्हें मार्ग में नहीं देखा ? कोतवाल ने आश्चर्य से कहा, अरे!

क्या कह रहे हो ? "वे दादू थे ?" पथिक ने कहा, हाँ, वे ही दादू थे।

कोतवाल घोड़े को मोड़कर दौड़ते हुए वापस आया। वहाँ देखा कि दादू ने अपने सिर पर पट्टी बाँध ली है। वैसे ही झाड़ियाँ काट रहे हैं, जैसे पहले काट रहे थे। कोतवाल तुरन्त घोड़े से उतरा, दादू के चरणों में गिर पड़ा और रोते हुए बोला, "मुझे क्षमा कर दो महात्मन्! मैं तो आप ही को खोजता फिर रहा था। मेरी बुद्धि पर परदा पड़ गया, आपको ही पीट डाला। दादू हंसते हुए बोले, "मैं जानता हूँ कि तुम दादू को खोज रहे थे।" कोतवाल ने कहा,"मुझे क्षमा कर दीजिए महाराज! मुझसे बहुत बड़ा पापकार्य हो गया।" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा कुछ नहीं किया तुमने। **सुनो, एक व्यक्ति एक घड़ा खरीदता है तो उसे भी ठोक पीटकर देख लेता है। तुम गुरु को खोज रहे थे, ठोक पीट कर देख लिया तो हर्ज क्या हुआ ?**

यह है पहुँचे हुए संतजन की पहचान। यह है बड़े व्यक्ति की पहचान।

दान का महत्त्व

होनी अनहोनी हुवे, अनहोनी होनी होय।
संतकृपा से देख लो, इस गाथा में जोय॥

एक सेठ था। उसे एक भी पुत्र नहीं था। पुत्र-प्राप्ति के लिए उसने एक महात्मा की खूब सेवा की। महात्मा ने प्रसन्न होकर अपने योगबल से बताया। बेटा! तुझे पुत्र-प्राप्ति तो हो जाएगी, और सत्रहवें वर्ष में प्रवेश करते ही उसकी शादी भी होगी, किन्तु शादी होते ही पहली रात में जब वह अपनी पत्नी के पास महल में जाएगा, उस वक्त उसे दरवाजे पर सर्प डसेगा और वह मर जाएगा। अगर तुझे यह दु:खद स्थिति मंजूर हो तो पुत्र हो सकता है। सेठ ने कहा - जो होना होगा, हो जाएगा। पुत्र रत्न तो जन्मे। आप ऐसा आशीर्वाद दे दीजिए। महात्मा के आशीर्वाद से पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। दूज के चाँद की भाँति वह बड़ा होने लगा। योग्य होने पर लड़के की माँ ने अपने पति से अपने लाड़ले बेटे की शादी करने की बहुत जिद्द की, तो पिता ने एक धर्मपरायणा लड़की से उसकी सगाई की और सत्रहवें वर्ष के प्रवेश के दिन उसका विवाह भी हो गया। लड़के का पिता बड़ा ही चिन्तातुर था। इसलिए कि उसका इकलौता बेटा अपनी नवविवाहिता पत्नी को छोड़कर आज ही मर जाएगा, परन्तु यह बात उसने आजतक किसी से नहीं कही थी। सिर्फ सेठ और वे महात्मा ही जानते थे।

रात्रि में लड़के की नवविवाहिता पत्नी जब अपने महल में पहुँची। उसने गवाक्ष से अपने महल के नीचे से गुजरते हुए भूखे-प्यासे एक महात्मा को देखा, जो अन्न-पानी माँग रहा था। यह देखकर उसके हृदय में करुणाभाव उभर आया। उसने उसे बड़ी श्रद्धा से पानी पिलाया और महल में रखे हुए लड्डुओं में से कई लड्डू लेकर साधु-महात्मा को खिला दिए। महात्मा बड़ा सन्तुष्ट हुआ और अन्तराशीर्वाद दिया-बेटी! तेरा सौभाग्य अखण्ड रहेगा और तू बालबच्चों के साथ आनन्दपूर्वक रहेगी।

लड़का जब रात्रि को ऊपर महल में जाने लगा तब पिता बड़ा उदास व खिन्न था। उसने अपने पिता से उदासी का कारण पूछा। पिता ने सुनी-अनसुनी कर दी। उसे यह नहीं बताया कि ऊपर जाते ही तुझे काला नाग डस लेगा, और तू मर जाएगा। लड़का जैसे ही ऊपर पहुँचा तो महल के दरवाजे के बाहर एक काला नाग उसके पाँव के ऊपर से होकर बिना काटे ही जल्दी से चला गया। लड़के ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ आनन्दपूर्वक रात बिताई। सुबह जल्दी नीचे जाकर अपने पिता को प्रणाम किया। पिता तो आश्चर्यचकित रह गया। उसने अपने पुत्र से महात्मा द्वारा कही गई सम्पूर्ण घटना बता दी। तभी पुत्रवधू को बुलाकर पूछा-तब उसने साधु को दान देने की और उससे प्राप्त अन्तराशीष की रात्रि की बीती घटना (गाथा) सुना दी। तब बात समझ में आ गई कि साधु के आशीर्वाद से अनहोनी होनी हो गई।

कुछ वर्ष बाद वे महात्मा पुनः पधारे, जिन्होंने सेठ को पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया था और कहा था - सत्रहवें वर्ष में विवाह होते ही सर्पदंश से पुत्र मर जाएगा। उन महात्मा ने घर में नन्हे-मुन्ने बच्चों को देखकर सेठ से पूछा - सेठजी ! ये बच्चे किसके हैं ? तब उसने सारा बीता इतिहास खोलकर रख दिया। महात्मा ने कहा-वे महात्मा जिन्हें दान दिया गया था वह उच्चकोटि की महान् आत्मा थीं।

ऐसे महात्मा / संतों की कृपा से होनी अनहोनी और अनहोनी होनी हो जाती है। एतदर्थ अपने द्वार पर आये हुए किसी को भी निराश नहीं लौटाना चाहिए। जैसा कि कबीर ने कहा है-

साँई इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

किसी को दुःख नहीं दूँगा

पोथियाँ सारी बाँच के, बात निकाली दोय।
सुख दिए सुख होत है, दुःख दिये दुःख होय॥

भगवान् महावीर का कर्मवाद का एक अनूठा सिद्धान्त है - शुभकर्म का शुभ फल और अशुभ कर्म का अशुभ फल मिलता है। जो जैसे बीज बोएगा वैसी ही फसल काटेगा। सुख देने पर सुख मिलेगा और दुःख देने पर दुःख मिलेगा। अतः मन-वचन-काया से किसी को कष्ट नहीं देना।

किसी गाँव में रामू नाम का एक आदमी रहता था। वह स्वभाव से बड़ा क्रूर तथा स्वार्थी था। उसकी क्रूरता के कारण सभी लोग उससे भयभीत रहते थे। वह इतना स्वार्थी था कि सभी को उससे नफरत थी।

एकदिन शाम के समय वह अपने किसी मित्र से मिलने जा रहा था। उसे पैदल जाना था। अतः उसकी पत्नी ने उसे साथ में भोजन और एक दीपक दे दिया। जैसे-जैसे अंधेरा होने लगा तो रास्ता दिखना बन्द हो गया। उसने अपना दीपक जलाया। उसके प्रकाश में वह अपनी

मंजिल पार करने लगा।

उसके पीछे-पीछे दो राहगीर भी चल रहे थे। उनके पास प्रकाश नहीं था। वे रामू के प्रकाश से रास्ता पार कर रहे थे। कुछ दूर चलने के पश्चात् रामू ने मुड़कर देखा कि उसके पीछे दो यात्री चल रहे हैं, परन्तु उनके पास दीपक नहीं है। वे उसके दीपक के प्रकाश का लाभ उठा रहे हैं। वह बड़ा स्वार्थी था। इसलिए वह बड़ा दु:खी और बेचैन हो गया। उसने सोचा यह दीपक तो उसका है और प्रकाश का लाभ ये उठा रहे हैं। ऐसा कैसे हो सकता है ? इसे वह कैसे बर्दाश्त कर सकता है ? उसने अपनी गति तेज कर दी। वे दोनों पथिक भी उसके पीछे-पीछे तेज गति से चलने लगे। वह एकदम रास्ते के बीच खड़ा हो गया। कहने लगा-क्यों भाई ! यह कितनी गलत बात है कि मेरे दीपक के प्रकाश का लाभ तुम ले रहे हो ? तुम मेरे प्रकाश के पीछे क्यों चल रहे हो ? तुम्हें तो अपने घर से दीपक लेकर आना चाहिए था? उन दोनों पथिकों ने बड़ी नम्रता से कहा, भाई ! आप नाराज मत होइए। आज हम दीपक साथ लाना भूल गए। इसलिए हम आपके पीछे-पीछे चल रहे हैं। इतना सुनते ही रामू आगबबूला हो गया। गुस्से में बोला-क्या मैं तुम्हारे बाप का नौकर हूँ जो तुम्हारे आगे-आगे चलता रहूँ ? इसे उठा भी मैं रहा हूँ। इतना ही नहीं, अपितु तेल भी मेरा जल रहा है, दीपक भी मेरा है और इस प्रकाश का फायदा तुम उठाओ, यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

वे दोनों बोले-भाई ! अगर हम तेरे दीपक के उजाले में चल रहे हैं तो इसमें तुझे क्या नुकसान हो रहा है ? बल्कि तू तो अकेला है। वीरान जंगल का मार्ग है। यहाँ यदि कोई तकलीफ आ जाय तो हम दो हैं। जी-जान से तेरी मदद करेंगे ! इसलिए क्रुद्ध मत होओ भाई!

यह सुनते ही क्रूर और ईर्ष्यालु रामूने सोचा कुछ ऐसा उपाय किया जाय कि इन्हें नानी-दादी याद आ जाय। उसने दीपक बुझा दिया और अपनी चाल बहुत तेज कर दी। किसी को सुख मिलते हुए देख पाना रामू के लिए बड़ा कठिन था। दूसरों को कष्ट पहुँचाने के लिए वह स्वयं को भी कष्ट दे रहा था। बड़ा निष्कृष्ट दृष्टिकोण था उसका। दूसरों को कष्ट पहुँचाने में उसे बड़ा आनन्द मिलता था। वह सोच रहा था कि ऐसे अन्धेरे में ये गिर पड़ेंगे।

उन दोनों पथिकों ने सोचा शायद हवा के झोंके से दीपक बुझ गया होगा। अभी जला लेगा, परन्तु उसने दीपक जलाया ही नहीं और फटाफट आगे बढ़ रहा था। इतने में एक बहुत बड़ा और गहरा गड्ढा आया और रामू उसमें धड़ाम से गिर पड़ा। आवाज सुनते ही दोनों पथिक सतर्क हो गए कि आगे गड्ढा है। रामू कि हड्डी पसली एक हो गई, दाँत टूट गए। दीपक भी चूर-चूर हो गया। दर्द के मारे कराह रहा था। बोला-बचाओ-बचाओ। मुझे गड्ढे से बाहर निकालो।

यह सुनते ही दोनों पथिकों के हृदय में करुणा उभर आई। उसे बड़ी मुश्किल से बाहर निकाला। बाहर निकलते ही रामू जोर-जोर से रोने लगा। उसका हृदय पश्चात्ताप से भर गया। रोते हुए उसने कहा मैंने तो तुम्हें दु:ख देना चाहा था, किन्तु वह दु:ख तो मुझ पर ही आ गिरा।

आज से मैं संकल्प करता हूँ अब से मैं किसी को दुःख नहीं दूँगा।

सच है, जो दूसरों के लिए गड्डा खोदता है वह स्वयं ही उसमें गिर पड़ता है ।

पुण्योदय का खेल

सूर्य जब उदित होता है तो लोग उसे झुक-झुक कर प्रणाम करते हैं, लेकिन जब वह अस्त होने लगता है तब उसकी तरफ कोई देखता भी नहीं । वैसे ही जब शुभकर्मों का उदय होता है, पुण्य का उदय होता है तो सब लोग उसका मान-सम्मान करते हैं । परन्तु जब अशुभ कर्मों का उदय शुरू होता है । पुण्य राशि खत्म हो जाती है और पाप का उदय प्रारम्भ हो जाता है तो सभी रूठ जाते हैं ।

शुभकर्मों के उदय से अनुकूलताएँ ही प्राप्त नहीं होती, बल्कि औंधा भी सीधा हो जाता है । बिल्कुल उल्टा भी सुलट जाता है । जिसका पुण्य प्रबल होता है । उसका कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता ।

शुभकर्म (पुण्य) के उदय से किसप्रकार अनुकूलताएँ प्राप्त होती हैं । इस पर एक दृष्टांत सुनाती हूँ :-

सेठ चिरंजीवलाल के पिता का स्वर्गगमन हो गया । वे बहुत ही नामी वैद्य थे । दूर-दूर तक उनकी ख्याति फैली हुई थी । रोगियों की सेवा करके उन्होंने खूब धनोपार्जन किया, परन्तु उनके बेटे चिरंजीवलाल में वैसी योग्यता नहीं थी । उसने कभी अपने पिता से कुछ भी वैद्य का कार्य सीखा नहीं था और न कभी उसे सीखने की कोशिश की । पिता द्वारा अर्जित धन भी धीरे-धीरे समाप्त हो गया । एकदिन परिस्थिति ऐसी आ गई कि खाने के भी लाले पड़ने लगे । बड़ी दयनीय हालत हो गई उसकी । उसी शहर में एक बुढ़िया रहती थी । उसका नाम था गंगा । उसके पेट में कई दिनों से दर्द हो रहा था । उसने सोचा गाँव में न तो हास्पिटल है और न कोई वैद्य । क्या किया जाय ? दूसरे ही क्षण विचार आया-अपने गाँव के नामी वैद्यराजजी के बेटे चिरंजीवलाल ने कुछ तो अपने बाप से सीखा ही होगा । इसलिए क्यों न उससे एकबार मिला जाय ? और पेट दर्द के बारे में पूछा जाय ? वह बुढ़िया वैद्यराजजी के घर पहुँची । बोली- बेटा । पेटदर्द की कोई दवाई हो तो बताओ ना ? पेटदर्द की शिकायत के बारे में चिरंजीवलाल को मालूम था कि पिताजी किसी भी रोगी की मलशुद्धि के लिए सबसे पहले त्रिफला चूर्ण की पुड़िया देते थे । पेट का मल साफ हो जाने के बाद अन्य दवाओं का असर शीघ्रता से होता है । बुढिया को पेट का दर्द था । इसलिए चिरंजीवलाल ने भगवान् का नाम लेकर त्रिफलाचूर्ण की तीन पुड़ियाँ बनाकर दे दीं, और उस बुढ़िया को समझा दिया कि सुबह उठते ही प्रतिदिन एक-एक पुड़िया गर्म पानी के साथ ले लेना । पुड़िया लेने के पश्चात् पाँच घंटे तक कुछ भी खाना मत । पेट-दर्द मिट जाएगा । बुढ़िया ने ठीक वैसे ही किया । दर्द सचमुच गायब हो गया ।

चिरंजीवलाल का पुण्योदय प्रारम्भ हुआ। उसे बिना पैसे की प्रचारिका मिल गई। अब तो गाँव में वह जहाँ भी जाती, वहीं यही चर्चा करती कि चिरंजीवलाल तो वाकई में बहुत ही अच्छा वैद्य है। **'बाप से बेटा सवाया'** निकला। मेरे पेट का दर्द सिर्फ तीन पुड़ियों में ही गायब हो गया। जिसके भी घर जाती, उस वैद्य के ही गुण गाती रहती।

एकबार एक कुम्हार का गधा खो गया। उसने चिरंजीवलाल की तारीफ तो सुन ही रखी थी। वह भी चिरंजीवलाल वैद्य के पास पहुँचा। बोला-वैद्यजी ! मेरा गधा खो गया है ! यदि कोई ऐसी दवाई हो आपके पास, तो बताओ ना ? जिससे मेरा खोया हुआ गधा मिल जाय। चिरंजीवलाल तो बड़ा मुसीबत में फँस गया। उसने उसे भी वे ही तीन पुड़ियाँ दे दीं भगवान् भरोसे। कहा-गरम-गरम जल के साथ ले लेना। कुम्हार ने पहली पुड़िया ली कि थोड़ी देर में उसे हाजत हुई। वह लोटा लेकर गाँव से बाहर निकला। जहाँ शौच के लिए बैठा था। थोड़ी देर में गधा कहीं से घूमकर वहीं आ गया। उसे देखकर वह खुश-खुश हो गया। उसे घर ले आया। गधा कोई बिलायत थोड़े ही गया था। घर पर सभी से कहा-वास्तव में पुड़िया बड़ी चमत्कारी है।

एक ओर गंगा माँ तो दूसरी तरफ कुम्हार। वैद्यजी के अब एक नहीं, दो-दो प्रचारक हो गये। दो-चार दिन में तो सारे शहर में खूशबू फैल गई कि वैद्य चिरंजीवलाल की दवाई बहुत ही असरकारक है। बात फैलते-फैलते राजमहल के अन्त:पुर तक पहुँची। राजा अपनी एक रानी से प्रेम नहीं करता था। रानी ने अपनी दासी द्वारा वैद्य को अन्त:पुर में बुलवाया। उसके सामने अपनी समस्या रखी। वैद्य चिरंजीवलाल तो बड़ा पशोपेश में पड़ गया। वह तो केवल एक ही इलाज जानता था त्रिफला की पुड़ियाँ। उसने रानी को भी त्रिफलाचूर्ण की तीन पुड़ियाँ दे दीं और कह दिया ये पुड़ियाँ गरम जल के साथ ले लेना। इनके प्रभाव से राजा तुम्हारे वश में हो जाएँगे। तुमसे पहले जैसा प्रेम रखने लगेंगे। इतना कहकर वैद्य चला गया। एक-एक करके रानी ने तीन पुड़ियों का सेवन किया। उसे दस्तें लगने लगी। शरीर शिथिल हो गया। एकदम कमजोर हो गई और उसने खाट पकड़ ली। मंत्रीमंडल ने राजा को सलाह दी कि आपकी रानी मृत्यु शैय्या पर पड़ी है। इसलिए आपको उससे मिलने जाना चाहिए। महाराज ! मृत्युशैय्या पर तो लोग दुश्मन को भी माफ कर देते हैं। फिर आपकी तो वह अर्द्धांगिनी है। आपके जाने से उसे आश्वासन मिलेगा और शांति से वह अपने प्राण छोड़ सकेगी। आप उससे मिलने नहीं गये और वह मर गई तो लोग यही कहेंगे कि आप उससे प्रेम नहीं करते थे, इसलिए वह मर गई, और इससे आपकी भयंकर बदनामी होगी। यदि आप अन्तिम समय में उससे मिलने जायेंगे तो लोगों में आपकी इज्जत बढ़ेगी। राजा को मंत्रियों की बात जँच गई। वह रानी से मिलने गया। रानी ने इसे वैद्यराज की पुड़ियों का प्रभाव माना। धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य सुधरने लगा। राजा के दर्शनों के लिए वह तरस रही थी। दो वर्षों से दर्शन हुए थे। आज अप्रत्याशित रूप से राजा

को सामने देखकर प्रेम और हर्षातिरेक से उसकी आँखों से आँसू बरसने लगे तो राजा का हृदय भी द्रवित हो गया। उसकी आँखें भी गीली हो गईं। राजा ने अपने दुर्व्यवहार के लिए रानी से क्षमा चाही। दोनों का मनोमालिन्य दूर हो गया और वे आनन्दपूर्वक रहने लगे। रानी के आग्रह से चिरंजीवलाल वैद्य को **'राजवैद्य' के पद से विभूषित कर दिया गया।** राजकोष से उसे भारी वेतन मिलने लगा।

कुछ दिन पश्चात् एक दुश्मन राजा ने पाँच हजार सैनिकों की विशाल सेना के साथ इस राज्य पर आक्रमण कर दिया। शत्रुराजा ने गुप्तचरों से पहले ही पता लगवा लिया था कि उस राजा के पास केवल तीन हजार सैनिक हैं। इसलिए पाँच हजार सैनिक वह अपने साथ लाया। वहाँ के राजा के पास उसने दूत से संदेश भिजवा दिया कि कल दोपहर तक आप मेरी अधीनता स्वीकार कर लें, अन्यथा युद्ध छिड़ जाएगा तथा आपकी मुट्ठीभर सेना को हराकर राज्य छीन लिया जायेगा। राजा ने वह संदेश सुनते ही इमर्जेंसी मीटिंग बुलाई। विचार विमर्श हुआ कि दुश्मन के सन्देश का उत्तर क्या दिया जाय ? किसी ने सुझाव दिया कि महाराज ! इस सम्बन्ध में अपने राजवैद्य से राय ले ली जाय तो क्या हर्ज है ? राजा ने स्वीकृति प्रदान कर दी।

राजवैद्य चिरंजीवलाल को बुलाया गया। सलाह माँगी गई-वैद्यराजजी ! पाँच हजार सैनिकों के साथ शत्रुराजा ने अपना नगर घेर लिया है चारों तरफ से। अपने पास कुल तीन हजार सैनिक हैं। इस समय शत्रु को पराजित करके अपने राज्य की सुरक्षा का आपके पास कोई इलाज हो तो तत्काल बताइए।

वैद्यराजजी को अब तक त्रिफला चूर्ण की पुड़ियों के बल पर सफलता मिलती चली आ रही थी। इसलिए यहाँ भी उन्होंने उन्हीं पुड़ियों के उपयोग करने का सुझाव दिया।

राजा ने वैद्यराजजी से पूछा - पुड़ियों का उपयोग कैसे करना ? बोले-यदि आज अपनी सेना के प्रत्येक सैनिक को रात के समय दो-दो घंटे के अन्तराल में गरम जल के साथ एक-एक पुड़िया तीन बार दे दी जाय, तो मेरे ख्याल से यह संकट टल जाएगा।

राजवैद्य के कहे अनुसार रात को दो बजे, चार बजे, और छह बजे एक-एक पुड़िया प्रत्येक सैनिक ने गरम जल के साथ ले ली। फलतः सबको दस्तें लगने लगीं। हरेक सैनिक लोटा लेकर तीन-तीन बार शौच से निपटने नगर से बाहर गया। उधर शत्रु राजा के सेनापति ने अपने कुछ गुप्तचरों को सैनिकों की गिनती के लिए तैनात कर दिया था। जब संख्या नौ हजार तक पहुँच गयी। तब एक गुप्तचर ने जाकर राजा को सूचित कर दिया। महाराज ! अपने को तीन हजार सैनिक की जो सूचना मिली थीं, वह बिल्कुल गलत थी। नौ हजार सैनिक की गिनती तो अबतक हो चुकी है। इसके अतिरिक्त ओर भी सैनिक हो सकते हैं। अतः युद्ध में अपनी पराजय निश्चित है। गुप्तचर से समाचार सुनते ही शत्रुराजा बिना युद्ध किए ही भाग गया। नगर पर आया संकट टल गया। वैद्यराजजी का बड़ा भारी राजसम्मान किया गया।
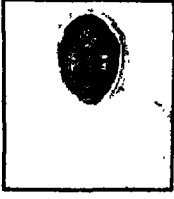
शुभ कर्मों का उदय होने पर सर्वत्र इसीप्रकार अनुकूलताएँ मिलती जाती हैं।

यह सब पुद्‌गल का खेल है

इस जीभ को चाहे कितना ही स्वादिष्ट-सरस माल-मिष्टान्न या विविध पकवान्न क्यों न खिलाये जाय। पर वास्तव में हैं तो वे सब एकेन्द्रिय जीवों के कलेवर ही न ? उन पर खुशी कैसी ? मुर्दे पर खुशी / उत्सव तो कौएँ-गीध मनाते हैं। बिना खाये-पिये चल नहीं सकता। यह पुद्‌गल टिक नहीं सकता। तो सिर्फ भाड़ा देने के रूप में इसे कुछ डाल देना चाहिए।

जैसा कि कबीर ने भी यही कहा है -

"कबीरा क्षुधा कुकरी, करत भजन में भंग।
ताको टुकड़ा डारिके, प्रभु को भजो निसंग॥"

खाने-पीने की चीजें, चाहे वे अच्छी हो या बुरी। **अन्त में तो वे मिट्टी रूप ही बनती हैं। गुजराती में एक कहावत है,"उतर्युं घाटी ने थयुं माटी" अर्थात् कितना ही बढ़िया पदार्थ क्यों न हो, ज्यों ही गले से नीचे उतरता है कि मिट्टी के रूप में परिणत हो जाता है। ये तो सब पुद्‌गल के खेल हैं भाई ! गटर के पानी को फिल्टर करके सुवासित बनाकर दे दिया जाय तो क्या वह बहुत बढ़िया पदार्थ है ? नहीं, इसमें प्रशंसा क्या करना ? और मुँह क्या बिगाड़ना ?**

जितशत्रु राजा ने एकबार दावत दी। भोजन करते-करते राजा व्यंजनों की प्रशंसा करने लगा, खाने-पीने की चीजों की खूब तारीफ करने लगा और उसके सैनिक-सामन्तवर्ग आदि सब हाँ में हाँ मिलाने लगे। मात्र उनका सुबुद्धिमंत्री मौन था। राजा ने पूछा-मंत्रीजी ! आप चुपचाप क्यों बैठे हैं ? आप कुछ भी क्यों नहीं बोल रहे हैं ? मंत्री ने सोचा-"राजा मूढ़ बना हुआ है और मुझे पूछ रहा है तो यह अवसर बहुत अच्छा है। जरा इसकी आँखें खोल दूँ ? ताकि खाने-पीने की चीजों के पीछे रही हुई आसक्ति घटे, और मूढ़ता (जड़ता) मिटे।" यहाँ पर इकट्ठे हुए ये सब मूढ़ता में हाँ में हाँ मिला रहे हैं, लेकिन मुझे तो राजा की मूढ़ता समाप्त हो, वैसा जवाब देना चाहिए। ऐसा सोचकर मंत्री ने कहा-महाराज ! इसमें भला क्या बोलना ? इन खाने-पीने की चीजों की क्या तारीफ करना ? **ये तो सब पुद्‌गल के खेल हैं ?**

राजा ने पूछा-पुद्‌गल के खेल कैसे ? मंत्री बोला -"यह अवसर आने पर बताऊँगा महाराज !"

भोजन कर चुकने के पश्चात् राजा अपने मंत्री, सैनिक व सामन्तों के साथ राजवाटिका की ओर चल पड़ा। नगर से बाहर निकलते हुए, पास में ही नगर के लोगों के मल-मूत्र आदि का गंदा नाला बह रहा था। उसकी बदबू नाक में घूसने पर सब का माथा फटने लगा। राजा और सैनिकों ने अपनी नाक-भौंह सिकोड़कर नाक को कपड़े से ढँक लिया। लेकिन एकमात्र मंत्री

ने न तो मुँह बिगाड़ा और न नाक के आगे रूमाल रखा। आगे बढ़ने पर राजा ने पूछा-क्यों मंत्रीजी ! आपको बदबू नहीं आई ? आपने नाक नहीं ढँका ?

मंत्रीजी ने पुनः उपयुक्त अवसर देखकर कहा-"महाराज ! इसमें भला नाक क्या ढँकना ? **यह तो सब पुद्‌गल का खेल है ?"**

यह भी पुद्‌गल का खेल ? वह भी पुद्‌गल का खेल ? बताइए ! आखिर यह खेल क्या है ?

मंत्री ने जवाब दिया - यह भी अवसर आने पर बताऊँगा।

एकदिन मंत्री ने मौका देखकर राजा को अपने घर भोजन का निमंत्रण दिया। भोजन करते वक्त बीच में पानी पीते हुए राजा ने कहा-मंत्रीजी ! इतना अच्छा, स्वादिष्ट, सुवासित पानी कौन-से दिव्य कुँए का है ? अहाहा !!! कितना बढ़िया पानी ! तुम कितने कंजूस हो कि कभी मुझे ऐसा स्वादिष्ट पानी भी नहीं पिलाया ?

मंत्री ने पुनः कहा, "महाराज ! इस पानी की क्या प्रशंसा करना ? **यह भी पुद्‌गल का खेल है !"**

अरे ! फिर तुम्हारा यह पुद्‌गल का खेल आ गया ? अब तो स्पष्ट बताना ही पड़ेगा कि क्या है ये पुद्‌गल के खेल ? रहने दीजिए महाराज ! जिद्द मत कीजिए आप। इसमें कुछ बताने जैसा नहीं है।

राजा ने कहा-"नहीं, आज तो तुम्हें बताना ही होगा। अन्यथा लो, मैं यह भोजन करना बन्द करता हूँ।"

मंत्रीजी ने कहा महाराज ! बात बड़ी कटुसत्य है। मेरे स्पष्टीकरण करने से पहले आप मुझे यह लिखकर दीजिए "मैं तुझे अभयदान देता हूँ तो फिर मैं बात स्पष्ट करूँ ?"

राजा को जानने की बड़ी उत्सुकता तो थी ही, इसीलिए अभयदान-पत्र लिखकर दे दिया ! फिर मंत्री ने कहा - माफ कीजिए महाराज ! यह पानी उसी गटर का है, जहाँ पर सभी ने नाक ढँकी थी।

अरे ! ऐसा हो सकता है ? क्यों मिथ्याभाषण कर रहे हो ? वह पानी तो कैसा गंदा, काला और भयंकर बदबू मार रहा था ? वह कहाँ ? और यह कहाँ ? सच-सच कहो।

मंत्रीजी ने कहा-महाराज ! जरा अन्दर पधारिये। मैं आपको पुद्‌गल का खेल बताता हूँ। राजा को अलग-अलग तीन कमरों में ले जाकर बताया। तीनों कमरों में पानी के तीन-तीन मटके एक के ऊपर एक रखे हुए थे। पहले कमरे में सबसे ऊपरी मटके में नाले का गंदा पानी था और उस मटके के नीचे के छोटे से छेद में से पानी उससे नीचेवाले मटके में टपक रहा था। किन्तु यह मटका बारीक कोयलों की भूकी (चूर्ण)से भरा था। ऊपर से गिरते हुए गंदे पानी का कचरा वह चूस लेता और कुछ शुद्ध हुआ पानी नीचे के छेद में से उसके नीचेवाले कोयले से भरे हुए मटके में टपक रहा था। उसमें से भी फिल्टर हो नीचे टपकता हुआ पानी एक बरतन में इकट्ठा हो रहा था। यह पानी दूसरे कमरें में ले जाकर इसीतरह बारीक कोयले से भरे तीन मटकों
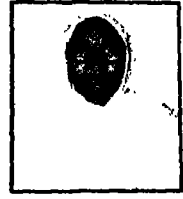
द्वारा शुद्ध किया जा रहा था। वह जब एकदम स्वच्छ जैसा ही हो जाता था। फिर भी उसे तीसरे कमरे में ले जाकर और कोयलों से शुद्ध किया जाता था। वहाँ पर उसके इर्द-गिर्द-गुलाब, मोगरा, जाई-जूही, केवड़ा आदि सुगन्धित पदार्थ रखे हुए थे, जिन्हें अन्तिम बर्तन में रखा गया था। उससे बूँद-बूँद करके एकत्र हुआ स्वच्छ जल सुगन्धित भी होता था।

मंत्री ने कहा देखिए महाराज! माफ कीजिए। यही पानी आपके समक्ष पीने के लिए सोने के गिलास में रखा गया था, लेकिन भ्रमवश उसे ही आप किसी दिव्य कुँए का पानी समझ रहे थे।

राजा चौंक उठा। बोला-अरे! तुमने मुझे गटर का पानी पिलाया? मंत्री ने कहा-महाराज! इसमें आप उद्विग्न मत होइए। यह तो दिखने का जहर है। बाकी हम सब नदी-कुँए का पानी पीते है, वह भी क्या है? लोगों के मल-मूत्र के पुद्गल कहाँ जाते हैं? वर्षा के द्वारा इन्हीं नदी-कुँए-तालाबों में खींचे जाते हैं और हम उसे अच्छा जल मानते हैं। लोग जो लड्डू, पेड़ा, बर्फी आदि पकवान्न भी खाते हैं। उसकी मिट्टी (विष्ठा) बनती है। उस पर हमें घृणा होती है। लेकिन वही विष्ठा के पुद्गल खाद के रूप में खेतों में जाते हैं। बाद में उन खेतों में बीज आदि दूसरे पुद्गलों में से गेहूँ आदि उगते हैं। उसे हम अच्छा माल मानकर, उससे बननेवाली मिठाई, व्यंजन आदि बड़ी खुशी के साथ खाते हैं। यह सब किसका सूचन करता है? यही कि 'पानी का पेशाब' और पेशाब का पानी, मिष्ठान्न की विष्ठा और विष्ठा का मिष्ठान्न, हीरा-माणिक्य से धूल और धूल से ही हीरा-माणिक्य। इसतरह सारे जगत् में जड़-पुद्गल के परिवर्तन होते रहते हैं।

जितशत्रु राजा सुनते ही चौंक उठा। बोला मंत्रीश्वर! इतना बढ़िया तत्त्वज्ञान आप कहाँ से सीख आए?

'यह सब पुद्गल का खेल है' वह खेल सारे जगत में अच्छे या बुरे दिखावे प्रकट करता रहता है तो उसमें एक तरफ आकर्षण है और दूसरी तरफ खिन्नता? इसमें क्या हर्ष मनाना और क्या दुःखी होना?

इसे तो पुद्गल के नाटक समझकर हमें राग-द्वेष से परे रहना चाहिए।

इस घटना के पश्चात् राजा के ज्ञानचक्षु खुल गये। उन्होंने मंत्री से जैनधर्म के तत्त्वों का सुंदर ज्ञान पाया। तत्त्वरसिक बन गया और भगवद्भक्ति में लग गया।

जैसी करनी वैसी भरनी

कर भला होगा भला, कर देखो रे भाई।

इस प्रकृति का यह अटल नियम है - जो हम देते हैं, वही हमें मिलता है। जो नहीं देंगे, वह कभी नहीं मिलेगा। सुख देने पर सुख, और दुःख देने पर दुःख मिलेगा। शान्ति देने पर शान्ति ही मिलेगी।

जो दूसरों का बुरा चाहता है उसका स्वयं का बुरा होता है। दूसरों के लिए बुरा सोचनेवाला, बुरा करनेवाला स्वयं ही उस गड्ढे में गिर पड़ता है अर्थात् करेगा सो भरेगा,

खोदेगा सो पड़ेगा। इस सूत्र में अनूठा जीवन सत्य छिपा हुआ है।

एक फकीर था। बड़ा सीधा और सरल स्वभावी। वह हमेशा बस्ती में जाता और भिक्षा माँगकर लाता था। जितना मिलता उसमें से आधा तो दान में देता था और आधे से अपनी उदरपूर्ति करता था।
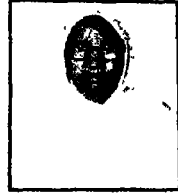
वह बस्ती में घूमते हुए सदैव गाया करता था "जो दे उसका भी भला, जो न दे उसका भी भला। अथवा कर भला होगा भला कर देखो रे भाई।" भलाई का फल भला होता है, और बुराई का फल बुरा होता है। यदि किसी को इस बात पर विश्वास न हो तो स्वयं आजमा करके देख ले।

उसी गाँव में एक बुढ़िया रहती थी। उसके चार बेटे थे, जो सेना में भर्ती हो गए थे और ट्रेनिंग ले रहे थे। बुढ़िया का हृदय शुद्ध-स्वच्छ नहीं था। उसका स्वभाव बड़ा ही कुटिल था। जब वह फकीर बस्ती में घूमते हुए गाता तो उसे बड़ा अखरता था। न जाने क्यों उसे बड़ी चिढ़ थी उससे। एकदिन उसने सोचा-**यह फकीर रोज व्यर्थ ही चिल्लाता है 'भले भलाई, बुरे बुराई कर देखो रे भाई' अथवा 'कर भला होगा भला, कर देखो रे भाई '**। तो क्यों न परीक्षा करके देखा जाय।

उसने एकदिन फकीर को मार डालने के लिए आटे में जहर मिलाकर चार लड्डू बनाये और फकीर की झोली में डाल दिये। सोचा मैंने फकीर के साथ बुराई की है तो मरेगा फकीर ही। मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा और फकीर की बात झूठ सिद्ध हो जाएगी।

फकीर बेचारा भोलाभाला और सरलहृदयी था। उसे क्या पता कि बुढ़िया उसके साथ कुटिलता कर रही है।

फकीर भिक्षा में अन्य खाद्य सामग्री और बुढ़िया द्वारा प्रदत्त चारों जहरीलें लड्डू लेकर गाँव बाहर अपनी कुटिया में चला गया। कुटिया पर पहुँचने पर उसने सोचा भिक्षा में प्राप्त अन्य खाद्य सामग्री रोटी- खिचड़ी आदि खा लेना चाहिए। लड्डू तो बाद में भूख लगने पर खा लूँगा।

दूसरी सामग्री पर्याप्त थीं। अत: उसका पेट भर गया और लड्डू बच गये। उसने लड्डुओं को एक छोटे झोले में लेकर खूंटी पर टांग दिया।

संयोग की बात है बुढ़िया के चारों नौजवान बेटे लौटकर अपने माँ-बाप से मिलने आ रहे थे। रात के बारह बज चुके थे। अत: गाँव के बाहर फकीर की कुटिया के निकट पहुँचे। रात कुटिया में ही रैन बसेरा करने का निश्चय किया। क्यों रात में माँ को परेशान किया जाय। सुबह चले जायेंगे।

ऐसा सोचते हुए उन्होंने फकीर बाबा का दरवाजा खटखटाया। फकीर ने किंवाड खोल दिया। बोले-क्या बात है बैटे ? उन्होंने कहा-महात्मन्! हम यहीं के निवासी हैं ? चारों सहोदर दो साल पूर्व सेना में भर्ती हुए थे। अब छुट्टियों में अपने माँ-बाप से मिलने आए हैं। रात काफी हो गई। अत: रातभर यहीं सोने की इजाजत चाहते हैं। सुबह अपने घर चले जायेंगे।

फकीर ने बड़े प्रेम से उन्हें अपनी कुटिया में ठहरने की अनुमति दे दी। आतिथ्य सत्कार
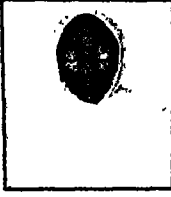
के लिए बुढ़िया के दिए हुए चारों लड्डू उन्हें खाने के लिए दे दिए। फकीर बोला-बेटा! और तो कुछ है नहीं यहाँ। ये एक-एक लड्डू आपलोग खाकर सो जाओ।

लड्डू खाकर वे सैनिक विष के प्रभाव से सदा के लिए सो गये। प्रातःकाल हुआ। फकीर उठा। दिन काफी चढ़ आया, किन्तु सैनिक नहीं जागे तो फकीर ने उन्हें आवाज लगायी, किन्तु वे अब क्या उठते? वे तो जहर के प्रभाव से चिर-निद्रा में सो चुके थे। फकीर ने देखा। बड़ा दुःखी हुआ। उसने अपनी झोली उठायी। बस्ती में भागा और गाने लगा -

"कर भला होगा भला, कर देखो रे भाई।
लड्डू दिए माई ने, मर गये चार सिपाई॥"

फकीर की जब यह वाणी उस बुढ़िया ने सुनी तो उसे शंका हुई कि मेरे चार बेटे सेना में भर्ती हुए थे। कहीं वे तो नहीं मर गए। आशंकित हो वह अपने पति के साथ फकीर की कुटिया पर पहुँची। देखा तो तत्काल पहचान लिया। हाय! ये चारों मेरे ही बेटे हैं। वह फूट-फूट कर रोने लगी। रोते रोते जोर से बोली-हाय! मैं पापिन् हूँ, अभागिन् हूँ। मेरी करनी ने ही मेरे पुत्रों को मारा है। जहर देकर मैंने अपने ही हाथों अपने बेटों की हत्या की है। धिक्कार है मुझ हत्यारिन को। मैंने मारना चाहा था फकीर को और मर गये मेरे चारों बेटे। मेरी करनी ने ही मुझे डुबोया है। फकीर का यह सूत्र शत-प्रतिशत सही है-

"कर भला होगा भला, कर देखो रे भाई।"

वास्तव में कुटिल कर्म अपने कुटिल परिणाम देते ही हैं। उससे मुक्ति नहीं मिल सकती। वृद्धा ने जैसा किया वैसा पाया। उसकी कुटिलता ने ही उसका विनाश किया। फकीर सरल हृदयवाला था। उसकी सरलता ने स्वयं ही उसको बचाया।

अपनी अपनी करनी का फल, आज नहीं तो निश्चय कल।

माँ की बेटी को चार सीख

शास्त्रों में गार्हस्थ्य जीवन का बड़ा माहात्म्य बताया गया है। उसका ठीक उपयोग करने के लिए बड़ी समझदारी, विवेक-संयम और चातुर्य की जरूरत है। सांसारिक सुख का आधा हिस्सा दाम्पत्य सुख है। दाम्पत्य जीवन कोई हंसी ठट्ठा नहीं है, बल्कि जीवन का सौदा है। असिधारा पर चलना उतना कठिन नहीं है, जितना कि दाम्पत्य जीवन।

दाम्पत्य जीवन की शोभा तभी है, जब पति-पत्नी परस्पर प्रण करके एक दूसरे के प्रति न्यौछावर हों। सुख-दुख में साथी बनें तथा सेवाभाव व त्यागवृत्ति को अपनाएँ, वही घर नन्दनवन बन सकता है।

माँ चंपा ने सर्वप्रथम ससुराल के लिए विदा होनेवाली अपनी पुत्री चमेली को अनेक हितशिक्षाएँ दीं।

बोली - बेटी चमेली ! मेरा हृदय नहीं चाहता है कि तू एक क्षण के लिए भी हमारी आँखों से ओझल हो !

पर लड़की की शोभा तो अपने ससुराल में ही है। इसीलिए आज हम तुझे विवश हो दु:खी मन से विदा दे रहे हैं।

अब तुम पराये घर जा रही हो। ससुराल में सास-श्वसुर, देवर-जेठ, ननंद-जेठानी आदि छोटे-बड़े घर के सभी सदस्यों की सेवा-सुश्रूषा का दायित्व तुम पर है। तुम इसे जी जान से अच्छी तरह निभाना। अपने धैर्य, अपने स्नेह से व्यवहार-वाणी, प्रसन्न वदन, परिश्रम एवं सेवा-भाव से उस घर को स्वर्ग बनाकर माता पिता के नाम को रोशन करना।

बेटी ! मैं तुम्हें अधिक क्या कहूँ ? तुम स्वयं बुद्धिमती और सुज्ञ हो। **श्वसुर कुल और मातृकुल की शोभा तुम्हारे आदर्श जीवन पर ही निर्भर है। लड़की तो देहलीदीपिका होती है। वह दोनों कुलों को उजागर करती है।**

बेटी ! आज मैं तुम्हे अपने अनुभूत जीवन की अनमोल बातें बतलाती हूँ। इन्हें तू हृदयंगम कर उन पर पुन: पुन: चिन्तन करना। यदि मेरी इन चार सीखों को तू अपने हृदय में अंकित कर उसका यथावत् पालन करेगी, तो जहाँ भी जायेगी, वहाँ तेरा जीवन सुख शान्ति आनन्दपूर्वक बीतेगा। परिवार के सभी सदस्य तेरा मान-सम्मान करेंगे। घर-परिवार में सभी की प्रिय बन जाएगी। परिवार के सभी लोग तुझे देखकर फूले नहीं समायेंगे। सारा परिवार तेरे वशवर्ती हो जाएगा।

इन सीखों से अनभिज्ञ लड़की कभी अपने जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकती है। सुखी जीवन जीने का महत्त्वपूर्ण रहस्य निम्नांकित चार सीखों में छिपा हुआ है :

१. लेना सब का, देना किसी को नहीं।

२. अपना आँगन सदा स्वच्छ रखना।

३. सूर्य-चन्द्र की पूजा करना।

४. अग्नि की पूजा में पर्याप्त सावधानी रखना।

लाड़ली बेटी चमेली इन चारों सीखों को लेकर ससुराल पहुँची और तदनुरूप अपने जीवन को ढाल लिया। फलत: उसने अत्यल्प समय में अपने परिवार के सभी सदस्यों का मन जीत लिया और सभी की प्रिय पात्रा बन गई जिससे घर का वातावरण नंदनवन बन गया। यह स्वाभाविक भी है कि ऐसी अमूल्य शिक्षाओं को हृदयंगम करने से हर किसी का घर स्वर्ग बन सकता है। सभी का जीवन बड़ी ही सुखशांति व आनंदमय बीत रहा था। एकदिन श्वसुरजी ने अपनी पुत्रवधू से पूछा -बेटी ! इतने अल्प समय में तुमने सभी के हृदय में अपना स्थान बना लिया। घर को साक्षात् स्वर्ग बना दिया ! आखिर तुम्हारे पास ऐसा कौन-सा जादू है ? ऐसा कौन-सा वशीकरण का सिद्ध मंत्र है ? उसने विनम्र शब्दों में कहा- पिताजी ! मेरी माँ ने मुझे चार

सीखें दी थीं और कहा था इनको जीवन में अपनाने से घर सुखशांति का सदन बन जाएगा।

(१) पहली सीख में माँ ने कहा था-बेटी ! "लेना सबका, देना किसी को नहीं ।" इसका रहस्य यह है कि यदि कोई तुझे अपशब्द कहे, तेरी निंदा करे तो उसे तू शांति से, प्रेम से सुन लेना, किंतु बदले में कोई अपशब्द मत कहना। नाराज मत होना। सामने जवाब मत देना। इतना ही नहीं, यदि तेरे पर कोई गालियों की बौछारें भी कर दें तो सहर्ष उन्हें ले लेना, पर पुन: उन्हें गालियाँ मत देना।

(२) दूसरी सीख में माँ ने कहा था-बेटी ! "अपना आँगन तू सदा स्वच्छ रखना ।" इसका तात्पर्य यह है कि हे बेटी! तू हमेशा अपने शील-सदाचार को पवित्र रखना। अपने चरित्र पर तनिक भी दाग-धब्बा मत लगने देना। अपने घर-परिवार के अनुरूप सदा मान-मर्यादा में रहना। इससे तुम्हारे दोनों कुलों की शोभा में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी।

(३) तीसरी सीख में माँ ने कहा था-"बेटी ! सूर्य-चन्द्र की सदा पूजा करना ।" इसका मर्म यह है कि तुम्हारे सास-श्वसुर दोनों ही सूर्य व चन्द्र के समान है, पवित्र और पूजनीय है। उनकी सेवा-शुश्रूषा में कभी भी कमी मत आने देना। उन्हें अपनी ओर से सदा प्रसन्नचित्त रखने की कोशिश करना। उनकी आज्ञाओं को संपूर्णरूप से सहर्ष शिरोधार्य करना।

(४) चौथी सीख देते हुए माताजी ने कहा था-बेटी ! "अग्नि की पूजा में पर्याप्त सावधानी रखना ।" इसका तात्पर्य यह है कि हे बेटी ! अपने पति को अग्नि तुल्य समझना। अग्नि जैसे पवित्र और प्रकाशमय होती है, वैसे ही अपने पति को परम पावन परमेश्वर मानकर उनकी आराधना करना यानि अपने पतिदेव को सतत प्रसन्नमना रखने का प्रयत्न करना। उन्हें आराध्य मानकर उनके सुख-दु:ख में सच्ची सहधर्मिणी बनकर रहना। यदि तुम अपने पतिदेव के सुख में भागीदार न बन सको तो कोई हर्ज नहीं, पर उनके दु:ख में तो जरूर भागीदार बनना। सन्नारियों के लिए पति ही परमेश्वर है। अत: तू अपने पतिदेव की आज्ञा के विरुद्ध एक पाँव भी आगे मत बढ़ाना।

पिताजी ! मैंने इन चारों शिक्षाओं को यथासंभव अपने जीवन में उतारने का प्रयास किया है। उसी के फलस्वरूप अपने घर में सुख-शांति का साम्राज्य छाया हुआ है।

प्रत्येक माता-पिता का परम कर्तव्य है कि वे अपनी बेटी को ये अमूल्य मणि-रत्न के समान चार सीखें दहेज में देना न भूलें। प्रत्येक बेटी का भी दायित्व है कि वे इन सीखों पर खूब गहराई से चिंतन-मनन कर अपने जीवन में उतारें, ताकि पारिवारिक जीवन सुन्दर-स्वस्थ व प्रसन्नता से भर जाय ।

प्रत्येक महिला को पृथ्वी की तरह सहनशील, सागर की तरह गंभीर, सुमेरु की भाँति अडिग और अग्नि की भाँति पवित्रतम रहना चाहिए ।

नियम का महत्त्व

जीवन में कोई-न-कोई व्रत-नियम / प्रतिज्ञा अवश्य होनी चाहिए। छोटा-सा नियम भी जीवन में बड़ी मदद करता है।

एक सेठ किसी महात्मा की कथा में गया। महात्मा ने उससे कहा :

"जीवन में कोई-न-कोई नियम ले लो।"

उस पेटू सेठ ने कहा : बाबाजी ! और तो कोई नियम नहीं ले सकता, लेकिन जब भी मैं दोपहर का भोजन करूँगा, मेरे घर के सामने रहनेवाला बूढ़ा कुम्हार जिन्दा रहेगा, तब तक उसका गंजा सिर देखकर ही दोपहर का भोजन करूँगा।" यह नियम ले सकता हूँ।" बाबा : "चलो.... ठीक है। इतना ही नियम ले लो, भाई !" यह नियम तो आसान था। बूढ़ा कुम्हार घर के सामने ही रहता था। इस नियम को पालने में कोई श्रम भी नहीं था। दूर से देख ले, तब भी काम बन जाता था।

एकदिन बूढ़े का लड़का ससुराल चला गया। बूढ़ा गधे लेकर जंगल में मिट्टी लेने चला गया। सेठ घर पर भोजन करने आया तो वह बूढ़ा नहीं दिखा। कुम्हार की पत्नी से पूछा-"कहाँ गया कुम्हार चाचा ?" पत्नी ने बताया-"गधे लेकर मिट्टी लेने गये हैं।" सेठ-"कब आयेगा?"

बुढ़िया : "अभी ही गये हैं। थोड़ी देर लगेगी।"

सेठ : "कहाँ गया है ? बुढ़िया ने जगह बता दी। सेठ को जोरों से भूख लग रही थी। इसलिए वह भागा उस जगह की ओर, जहाँ बूढ़ा कुम्हार गया था। सेठ ने तो दूर से ही उस कुम्हार का गंजा सिर देख लिया और जोरों से चिल्ला उठा : "**देख लिया, देख लिया, देख लिया !!!**" इतना कहकर सेठ वापस अपने घर लौटने लगा। उसका तो केवल दूर से कुम्हार का गंजा सिर देखने का ही नियम था। जिस समय सेठ चिल्लाया, उस वक्त वह बूढ़ा मिट्टी खोद रहा था। बात यह थी कि बूढ़े को मिट्टी खोदते-खोदते अशर्फियों का घड़ा मिला था और वह घड़े को व्यवस्थित ही कर रहा था कि उसी वक्त सेठ का कहना हुआ कि '**देख लिया-देख लिया।**' ये शब्द बूढ़े के कानों से टकराये और उसी क्षण सेठ को लौटते हुए देखकर उसे लगा कि 'निश्चित रूप से सेठ ने अशर्फियों से भरा हुआ यह घड़ा देख लिया है और वह घड़ा देखकर जा रहा है पुलिस को बताने। सरकार में चला जायेगा यह घड़ा। इससे अच्छा तो यह की आधा इसका और आधा मेरा...' यह सोचकर उसने सेठ को आवाज लगायी :

"सेठजी ! अरे सेठजी ! इधर आओ, इधर आओ। 'देख लिया' तो कोई बात नहीं।"

जीवन में नियम का महत्त्व कितना है ? यह इस कहानी से साबित होता है। सेठ ने स्वेच्छा से एक बूढ़े कुम्हार का सिर्फ गंजा सिर देखकर दोपहर के भोजन करने का छोटा-सा नियम लिया तो अशर्फियों का आधा घड़ा सहज में बिना परिश्रम किये मिल गया। यदि वह बाबाजी के कथनानुसार कोई बड़ा नियम लेता तो महात्मा के पूरे अनुभव का घड़ा भी उसके हृदय में छलकने लग जाता।

6. कबीर-तुलसी के अनुकरणीय दोहें, लोकोक्तियाँ-कहावतें

संस्कृत के श्लोक, लच्छेदार हिन्दी, दार्शनिक चर्चा आदि पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए भले ही हो, किन्तु उनका हृदय पर सीधा असर नहीं पड़ता।

कबीर, रहीम, तुलसीदास के सीधे-सादे दोहें, लोकोक्तियाँ व कहावतें आदि श्रद्धालु श्रोताओं के हृदय को जितना तरंगित करते हैं, उतना शंकराचार्य आदि विद्वज्जनों का शब्दजाल नहीं कर सकता।

यथार्थतः पूज्याश्री हृदय की भाषा में उपदेश देती थीं, बुद्धि की भाषा में नहीं। आपके समझाने का ढंग बड़ा प्रभावशाली व कहीं-कहीं रहस्यपूर्ण भी था। आप अपने उपदेश में जन-साधारण में प्रचलित लोकोक्तियाँ, दोहें तथा कहावतों का प्रसंगोचित्त प्रयोग करके अपनी बात को अधिक से अधिक सर्वजन सुगम-सुबोध बना देती थीं।

ये दोहें, कहावतें व लोकोक्तियाँ न तो संस्कृत में हैं और न प्राकृत में। बल्कि जन साधारण में खूब प्रचलित होने से आप इनका बारबार उपयोग करती थीं। अतः उनके द्वारा उच्चारित कतिपय दोहें, लोकोक्तियाँ व कहावतों का संचयन करके यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जो श्रद्धालुओं के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होंगे।

कबीर, तुलसी, रहिम आदि के दोहे

- एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में भी आध।
तुलसी संगत साध की, कटे कोटि अपराध॥
- पीपल पान खरे तो, हँसती कुपलियाँ।
मुझ बीती तुझ बीत से, धीरे धीरे बापलियाँ॥
- काल करे जो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करेगा कब।
- दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो दुःख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे होय॥
- ऐसा न बेठिये तुम, कोई कहे उठ।
ऐसा न बोलिए तुम, कोई कहे चूप॥
- घोड़ा सो भूंके नहीं, भूंके सो गधा।
भर्या सो छलके नहीं, छलके सो अद्धा।
- दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छांडिये, जब लग घट में प्रान॥

- पोथी पढ़ि-पढ़ि पंडित मुआ, भया न पंडित कोय।
  ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥
- जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
  मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान ॥
- प्रभु नाम की औषधि, खरा भाव से खाय।
  रोग-शोग व्यापे नहीं, संकट सब टल जाय ॥
- मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक।
  जो मन पर असवार है, सोई लाखों में एक ॥
- सूजा सुधि पायी नहीं, घर आये थे राम।
  दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम ॥
- माला फेरत जुग भया, गया न मन का मैल।
  कर का मन का छोड़ के, मन का मनका फेर ॥
- माला तो मन की भली, और सब काष्ठ का भारा।
  जो माला से गरज सरै, तो क्युं बेचे मणियारा ॥
- माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुखमाँही।
  मनीराम चिहुंदिशि फिरे, यह तो सुमिरन नांही।
- 'अति' का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
  अति का भला न बरसना, अति की भली न धुप्प ॥
- जननी जणे तो ऐसा जण, कै दाता कै शूर।
  नहीं तो रहिजै बांझणी, मती गंवाजे नूर ॥
- ज्ञानी से ज्ञानी मिले, करे ज्ञान की बात।
  मूरख से मूरख मिले, धक्कम धक्का लात ॥
- देह धरे का दंड है, सब काहू को होय।
  ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय ॥
- पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
  दाबी दूबी ना रहे, रूई लपेटी आग ॥
- दांते लुण जो वापरे, कवले ऊणु खाय।
  डाबे पडखे सुई रहे, ता घर वेद कबहु न जाय ॥
- बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
  जो दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय ॥
- जो तोकूं कांटा बुवै, ताहि बोव तूं फूल।
  तो हि फूल को फूल है, वांको है तिरसूल ॥

- नहीं नवकारसी, नहीं पौरसी, नहीं भणवानो खप।
  लीधा झोली पातरा ने, आवी उभा टप॥
- मुंड मुंडाये तीन गुण, सिर की मिट जावे खाज।
  खाने को लड्डू मिले और, लोग कहे महाराज॥
- जैसा खाये अन्न, वैसा होय मन्त्र।
  जैसा पीये पानी, वैसी होय वाणी॥
- पान सड़ै घोड़ा अड़ै, विद्या बीसर जाय।
  जगरा में बाटी बलै, कहो चेला किण न्याय ?॥
- दिवस गँवाया खाय के, रात गँवाइ सोय।
  हीरा जनम अनमोल है, कौड़ी बदले जाय॥
- कीड़ी सींचे तीतर खाय, पापी रो धन पर लै जाय।
- भूखे भजन न होय गोपाला, ये लो अपनी कंठी और माला।
- पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घने रे॥
- शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
  साधवो: न ही सर्वत्र, चंदनं न वने वने॥
- करना हो सो कीजिए, काले केशा काम।
  जब धोला सिर आयगा, मिलती नहीं छदाम॥
- पोथिया सारी बाँच के, बात निकाली दोय।
  सुख दिए सुख होत है, दु:ख दिए दु:ख होय॥
- चंदन की चुटकी भली, गाड़ी भरा न काठ।
- बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोले बोल।
  हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल॥
- करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
  रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान॥
- बहता पानी निरमला, पड़्या सो गंदा होय।
  साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय॥
- साधु भूखा भावका, धन का भूखा नाँय।
  जो धन का भूखा फिरे, सो तो साधु नाँय॥
- साधुनां दर्शन पुण्यं, तीर्थभूता हि साधव:।
  कालेन फलति तीर्थ:, सद्य: साधु समागम:॥
- बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
- गुरू गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पाय।

बलिहारी गुरू आपरी, मारग दियो बताय ॥

- एक साधै सब सधै, सब साधै सब जाय ।
  रहिमन सींचे मूल को, फूलहि फलहि अघाय ॥
- देखा देखी साधे जोग, छीजै काया ने वधे रोग ॥
- जहाँ आव नहीं, आदर नहीं, नहीं नैनों में नेह ।
  तस घर कबहुं न जाइए, कंचन बरसे मेह ॥
- चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह ।
  जिसको कछु ना चाहिए, सोई शाहंशाह ॥
- साँचे साँप न लागई, साँचे काल न खाय ।
  साँचे को साँचा मिले, साँचे माँहि समाय ॥
- कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे ।
  लाखों वर्ष तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे ॥
  अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे ।
  तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥
- रहिमन जो नर मर चुके, जे कछु मांगन जाहिं ।
  उनसे पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥
- बारे कोस बोली पलटे, वीशे पलटे वेश ।
  बुढ़ापे में केश पलटे, लक्खण न पलटे लेश ॥

कहावतें, लोकोक्तियाँ आदि

- जैसा संग वैसा रंग ।
- आप लिखे खुदा बाँचे ।
- कहे खेत की सुने खलिहान की (माँगे हरड़ा दे बहेड़ा) ।
- काम का न काज का, ढाई सेर अनाज का ।
- दुधारू गाय की लात भी भली ।
- आपरी गली में कुत्तोई शेर होवे ।
- पेट करावे वेठ ।
- सूना घर में चोर घुसे ।
- बेठी सूती डूमणी घर में घाल्यौ घोड़ो ।
- मार के आगे भूत भागे ।
- डाबी आँख फूटणनै घणा हेत टूटणनै ।
- पेठ उड़ियोड़ी पाछी नहीं आवै ।

- पहला सुख निरोगी काया,
  दूसरा सुख घर में माया,
  तीसरा सुख घर में जाया।
- गोखत विद्या खोदत पाणी।
- राई का भाव राते गया।
- राई घटे न तिल बढ़ै।
- मूंडा जितरी वाता है।
- समंदर रैणो नै मगरमच्छ सूं वैर।
- दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीवे।
- उखल में मुँह दियो तो मुसला से कांई डरनो।
- एक मछली सब पानी ने गंदो करे।
- सिर मुंडाया पछे वार पूछनो।
- गुड़ खाय ने गुलगुला से परहेज।
- जितनो गुड़ डालो, उतनो ही मीठो होवे।
- तेल देखो, तेल की धार देखो।
- हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा आवे।
- रस्सी जल गई पर बल नहीं गया।
- आपणी माँने कोई डाकण नी केवे।
- मानो तो देव नहीं तो पत्थर।
- लड़े सिपाही नाम सरदार का।
- जैसा देव वैसी पूजा।
- सौ सुनार की तो एक लुहार की।
- बाँझ क्या जाने प्रसव की पीड़ा ?
- मन चंगा तो कठौती में गंगा।
- जुआ साठे घाघरो नाखे।
- पूत का लक्षण पालना में नजर आवे।
- सांस जितरै आस।
- आप मरियां बिनां स्वर्ग कठै।
- कालिया कनै गोरियौ बैठे, वर्ण नहिं ले तो लखण तो लैज।
- आवो तो यो घर है जावो तो वा वाट।
- ओछी ओजरी में धान नहीं पचै।
- किणरै ही छत चुवै, किणरै ही छपरौ चुवै।
- हाथीं रा दांत खावण रा दूजा दिखावण रा दूजा।

- आप आपरै घरमें सारा ठाकर है।
- कुत्तारी पूंछ तो बांकीरी बांकी रेवे।
- कैने बतावण सुं करिने बतावणो वत्तो होवे।
- कोठे होवै सो होट आई रेवै।
- होट बारे सो कोट बारे।
- गूंगो की भाषा गूंगो हीज समझै।
- चोंच दी तो चुग्गो भी देगाज।
- छोटे सूं मोटा हुवै।
- जाजो लाख ने रहेजो साख।
- जाया ज्यारां पूत कातिया ज्यारां सूत।
- ऊंट बिलाई ले गई, हाँजी हाँजी केणो ॥
- आदमी जानिए बसै, सोना जानिए कसे।
- गंगा गए तो गंगादास, जमुना गए तो जमुनादास।
- पूछता-पूछता पाटण जावै।
- गरज के समय गधा ने य बाप बनावे।
- खाक में छोरो, गाँव में ढिंढोरो।
- सूरदास की कारी कामरिया, चढ़े न दूजो रंग।
- हम तुम राजी तो क्या करेगा काजी ?
- सोटी वागे चमचम विद्या आवे रूमझूम।
- हाथी जाय हजार कूत्ता भूसे बजार।
- नाई रूठेगा तो बाल लेगा, सिर तो नहीं लेगा।
- नींद वेची ने उजागरो लेणो।
- जीवता जोवे नी ने मर्या पछी रोवे।
- कोई कणीने नी रोवे, सब अपना-अपना स्वारथ ने रोवै।
- गाय वाले सो गोपाल।
- नवसौ ऊंदर मार मीनांबाई तीरथ चाल्या।
- जिसके पाँव न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।
- ऊगतो नहीं तपै जिको आथम तो कहीं तपे ?
- टीपे टीपे समुद्र भरीजे है।
- सूप बोले तो बोले छलनी क्या बोले, जिसमें बहत्तर छेद।
- लाता का देव वाता से नी माने।

- दूर का डूंगर रलियामणा (सुहावना) ज लागे।
- पाणी पेला पाल बांधणी।
- गाँव का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध।
- थोथा चना बाजे घना।
- दूध का दूध पानी का पानी।
- नौ दिन चले अढ़ाई कोस।
- नामी चोर मार्यो जाय के नामी चोर कमाय खाय।
- सब धान बाईस पंसेरी।
- खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़े।
- आप मर्या ने जग डूबिया।
- एक दिन पावणो, दूजे दिन पइ,
  तीजे दिन नी जाय वणी री अकल गाम गई।
- गाँठ को खाईने गेला साथे जाणो।
- चलता बैल ने आर कुण मारे।
- जागता ने कई जगावणो।
- जैसो वावो वैसो लूणो।
- जठे दु:खे वठेज पीड़।
- झूठ की दौड़ मस्जिद तक।
- दु:खे पेट नै बतावे माथो।
- धरम किए धन ना घटै।
- धोबी को कुत्तो न घर को न घाटको।
- धोलो धोलो सब दूध नी होवे।
- निगाह राखने खावो, वेदा के क्यूं जावो।
- अपनी कदर (इज्जत) अपना हाथ में।
- फरे सो चरे बंध्यो भूखों मरे।
- आँख मींची ने अंधारो।
- पग हेठे (नीचे) बले वो नी दिखे, बीजारो घर बले वो दिखे।
- पीसणहारी कदी भूखी नी मरे।
- लालियो लाभ विना लौटे नहीं।
- झगड़ा (कलह) को मूल हाँसी, और रोग को मूल खाँसी।
- नमे ते सहु ने गमे।

- घर आयोड़ा ने माँ जायोड़ा।
- नहीं बोल्या में नव गुण और बोलवा में सौ अवगुण।
- मन मारे वो बड़ो।
- काम करे वो कामण करे।
- आया ने आवकारो देणो।
- ऊँघ नी देखे उकरड़ो, भूख नी देखे भाटे।
- कम खाणो, गम खाणो ने नम जाणो।
- मारवावाला से तारवावालो बड़ो है।
- जणी को अन्न छुटियो, वणी को घर छुटियो।
- काम करवा से शरीर नी घीसाय।
- कामचोर नी वेणो।
- खारी बोली मावड़ी, मीठा बोल्या लोग।
- उतावला सो बावला। धीरा सो गंभीरा।
- नाम मोटा दर्शन खोटा।
- हांग छोरा पेट फोड़ूं।
- एक पंथ दो काज।
- ऊंट तो अरड़ावता हीज लादिजै।
- इज्जत का कांकरा वेई जाय।
- आपणो घर हांगी ने भर, परायो घर थूंक से डर।
- जैसो वाजे वायरो, वैसी लीजे ओट।
- राखपत सो रखापत।
- उतर्युं घाटी ने थयुं माटी।
- इण कान सुणने वणी काने निकाल देणो।
- आपणो जो आपणो, परायो सो परायो।
- आपरी खाज हाथे ज भांगे।
- आप भला तो जग भला।
- पियर की पालकी से ससुराल की सूली भली।
- रह्या काम रावण से भी नहीं होवे।
- दर्जी को बेटो जठे तक जीवे, वठे तक सीवे,
  नै वाणिया को बेटो जठे तक जीवे वठे तक कमावे।
- हार्यो जुगारी बमणो (दुगुणो) रमे।
- मेहमाना से घर नी वसे।

- 'गई सो गई, अब राख रही को'
- 'जब जागे, तब सबेरा'
- हाथ हमेशा उल्टो ज राखनो-सीधो नहीं।
- दरवाजा पर आया ने कदी खाली हाथ नी मेलनो।
- घणो जाणे वो घणो ताणे।
- मन में राण्डे, मन में परणे।
- वाड़ खेत ने नहीं खावे।
- कुड़ली में गुड़ नहीं घोलनो।
- गाजे सो बरसे नहीं, बरसे सो गाजे नहीं।
- हाथी लारै केई कुत्ता भूसै।
- म्हुँय राणी थुं ही राणी, कुण भरे परण्डे पानी।
- जूना गेहूँ कदी नी सड़े।
- पापड़ खाई ने पदमिनी वणे।
- बाँट चुटने खाणो ने वैकुण्ठ में जाणो।
- महादेवजी का गुण तो पार्वतीज जाने।
- सोना ने कदी काट नहीं लागे।
- सोना की छूरी पेट में नहीं डाली जाय।
- देता का डूंगर चढे।
- गाली देता गुमड़ा नी वे।
- घणो चत्तर कागलो घणो गू मे खरड़ाय।
- वखाणी खिचड़ी दांते चोटे।
- राम राखै तो कोई नहीं चाखै।
- न्हाया का बाल ने खाया का गाल छाना नी रेवे।
- खणेगा सो पड़ेगा, करेगा सो भरेगा।
- बड़ा कहे वो करणो, बड़ा करे वो नहीं करणो।
- सबर को फल मीठो है।
- मनाई खिचड़ी नी खावे।
- भूख में भुंगड़ा ही भला।
- नागो कई धोवे ने कई निचोवे।
- बोले वणा के भूंगड़ा ही बिक जावे
  और नहीं बोले वणा के बोर भी नहीं बिके।
- भांगणों भाखर ने काढ़ नो उंदरो।

- माथा मोटा घर में टोटा।
- मौत को इलाज नहीं, मौत कठेई नी छोड़े।
- माँगिया विना तो माँय नी परोसे।
- शरम की माँ गोड़ा रगड़े।
- सात मामा रो भाणजो भूखो मरे। (भूखो जावे)
- सांतारी माँ ने सियाल खावे।
- साठी ने बुद्धि नाठी।
- सेर ने कदी सवासेर मिल जाय।
- हाथ पोलो जिण रो जगत जोलो।
- भैंस रे आगे भागवत वाँचणो।
- सोहबते असर तुख्मे तासीर।
- समरथ को नहीं दोष गुसाईं।
- लेणा एक ने देणा दोय।
- रूपे रूड़ो गुण वायरो, रोहिड़ारो फूल।
- नाच न आवे आंगण टेड़ा।
- दु:ख सुख रो जोड़ो हे।
- इह भव मीठा परभव कोणे दीठा।
- कण परठो के मण परठो।
- बैठे जोय उठावे न कोय।
- ते ते पाँव पसारिये, जेती लांबी सौर।
- अंतर घट न्यारा रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल।
- आणं ताणं कछु नहीं जाणं, गुरु आणा (वाक्यं) प्रमाणं।
- पूत कपूत तो क्यों धन संचै,
  पूत सपूत तो क्यों धन संचै ?
- पानी पीजे छीनकर, सगा कीजे जानकर। (गुरु कीजे जानकर)।
- खोटो नारियल होरी झोगो।
- सस्तो रोवै बार-बार, महंगो रोवै एकबार।
- मोती को पानी उतर्यो जो उतर्यो।
- हाथ-पग हिलायां विनां कुछ नहीं होवै।
- हाथ में माला, पेट में कुदाला।
- कोयला खाय वणी को कालो मुंडो।
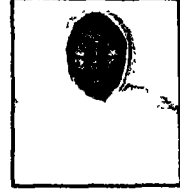
- लूली बहु काम करे ने सात जण टांग समावे।
- दस की लकड़ी ने एक की भारी।
- तीर नहीं तो तुक्को ही सही।
- पराये दुःख दुबलो नी वेणो।
- काम सुधारो, अंगे पधारो।
- नाम धरायो हे तो नास्ति तो वेवावालीज हे।
- भोला रा भगवान् है।
- 'लङ्घनं परमौषधम्' - लंघन (उपवास) उत्कृष्ट दवा है।
- जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा।
- आप खाय काकड़ी और दूजा ने दे आंकड़ी।
- आँख जाय उंडी, भूख रांड भूंडी।
- टूट्यो मोती फाट्यो दूध और फाट्यो मन कदी नी मिले।
- अन्यो नाचे, अन्यो कूदे।
- साँच ने कदी आँच नी।

7. पूज्याश्री की पसंदगी के प्रिय स्तवन-पद एवं सज्झायादि

1. श्री पार्श्वनाथ जिन स्तवन

समय-समय सो वार संभारूं, तुज शु लगनी जोर रे।
मोहन मुजरो मानी लीजे, ज्युं जलधर प्रीति मोर रे ॥१॥ समय०
माहरे तन-धन-जीवन तूंही, एहमाँ झूठ न जाणो रे।
अंतरजामी जगजन नेता, तूं किहाँ नथीं छानो रे ॥२॥ समय०
जेने तुजने हियड़े नवि धार्या, तास जनम कुण लेखे रे।
काचे राचे ते जन मूरख, रत्न ने दूर उवेखे रे ॥३॥ समय०
सुरतरु छाया मूकी गहरी, बावल तले कुण बेसे रे।
तारी ओलग लागे मीठी, किम छोड़ाये विशेषे रे ॥४॥ समय०
वामानन्दन पास प्रभुजी, अरजी चित्तमाँ आणो रे।
रूप विबुधनो मोहन पभणे, निज सेवक करी जाणो रे ॥५॥ समय०

2. प्रभु स्तवन

आज मारा प्रभुजी सामु जुओने
सेवक कहीने बोलावो रे,
अेटले हुँ मनगमतु पाम्यो,
रुठड़ा बाल मनावो रे मारा प्रभुजी ॥१॥ आज मारा०
पतित पावन शरणागत वत्सल
ए जश जगमाँ चावो रे
मन मनाव्या विण नवि मूंकुं
एहिज मारो दावो रे मारा प्रभुजी ॥२॥ आज मारा०
कब्जे आव्या स्वामी हवे नहीं छोडूँ
जिहां लगे तुम सम थाऊँ रे
जो तुम ध्यान विना शिव लहिए
तेहिज दाव बताओ रे मारा प्रभुजी ॥३॥ आज मारा०
महागोप ने महानिर्यामक
एवा एवा विरुद धरावो रे
तो शुं आश्रित ने उद्धरता
घणुं घणुं शु कहावो रे मारा प्रभुजी ॥४॥ आज मारा०
ज्ञान विमल गुरुनो निधि महिमा
मंगल एहि वधावो रे
अचल अभेद पणे अवलम्बी,
अहर्निश एहि दिल ध्यावो रे ॥५॥ आज मारा०

•

3. प्रभु स्तवन

अजित जिन बाल बोले ते सुणजो
मारी मोहदशाने हणजो, अजित०
साधु देखी मैं साधुता लीधी, धारी असाधता अंगे ।
संसार वधार्यो मैं विषय माँ राची, रम्यो संसारीनी संगे ॥१॥ अजित०
हाथमाँ माला मुखमाँ चाला, एवे उखाणे हुं चाल्यो ।
बगलानी पेठे ध्यान धरीने, कांइक ऊपर घा घाल्या ॥२॥ अजित०
मीठुं मीठुं मुखथी बोली, भोलवी जालमाँ नाख्यां ।
स्वारथ साधी हृदयना भावे, किंपाक फल मेरे चाख्या ॥३॥ अजित०

ध्यान धर्युं मैं लोकने ठगवा, वैराग्य जगने बताववा ।
भाषण कीधा मैं कीर्ति फेलाववा, प्रकृति सारी जणाववा ॥४॥ अजित०
आवी कपट क्रिया प्रभु अमारी, तारी आगल संभलावी ।
दर्शन देजो लोक न देखे, पण तू तो छे सदा सांचो ॥५॥ अजित०

•

4. प्रार्थना

ऐसी दशा हो भगवन्, जब प्राण तन से निकले,
गिरिराज की हो छाया, मन में न होवे माया,
तप से हो शुद्ध काया.... जब....१
उर में न मान होवे, दिल एकतान होवे,
तुम चरण ध्यान होवे.... जब...२
संसार दुःख हरणा, जिनधर्म का हो शरणा,
हो कर्म भर्म जरना..... जब....३
अनशन को सिद्धवट हो, प्रभु आदिदेव घट हो,
गुरुराज भी निकट हो.... जब.....४
यह मुझ को दीजे, इतनी दया तो कीजे,
अरजी सेवक की लीजे.... जब....५

•

5. प्रभु-स्तवन

प्रभुजी ! मुज अवगुण मत देखो,
रागदशा थी तूं रहे न्यारो, हुं मन रागे वालुं ।
द्वेष रहित तूं समताभीनो, द्वेषमारग हूं चालुं ॥१॥ प्रभुजी०
मोह लेश फरस्यो नहीं तूं ही, मोह लगन मुज प्यारी ।
तूं अकलंकी कलंकित हुंतो, ए पण रहेणी न्यारी ॥२॥ प्रभुजी०
तूं ही निरागी भावपद साधे, हुं आशा संग विलुद्धो ।
तूं निश्चल चल हुं तूं सुधो, हुं आचरणे ऊँधो ॥३॥ प्रभुजी०
तु ज स्वभावथी अवला माहरां, चरित्र सकल जगे जाण्या ।
एहवा अवगुण मुज अतिभारी, न घटे तुज मुख आण्या ॥४॥ प्रभुजी०
प्रेम नवल जो होई सवाई, विमलनाथ मुख आगे ।
कांति कहे भवरान उतरता, तो वेला नवि लागे ॥५॥ प्रभुजी०

•

6. वैराग्य-पद

क्या तन माँजता रे, एक दिन मिट्टी में मिल जाना।
मिट्टी में मिल जाना बंदे, खाख में खप जाना॥
क्या तन माँजता रे० ॥१॥

मिट्टिया चुन-चुन महल बंधाया, बंदा कहे घर मेरा।
इक दिन बंदे उठ चलेंगे, यह घर तेरा न मेरा॥
क्या तन माँजता रे० ॥२॥

मिट्टिया ओढ़न मिट्टिया बिछावन, मिट्टिया का शिराणा।
इस मिट्टिया का एक भूत बनाया, अमर जाण लोभाणा॥
क्या तन माँजता रे० ॥३॥

मिट्टिया कहे कुंभार ने रे, तूं क्या खुंदे मोय।
इक दिन ऐसा आवेगा प्यारा, मैं खुंदूंगी तोय॥
क्या तन माँजता रे० ॥४॥

दान-शीयल-तप भावना रे, शिवपुर मारग चार।
आनन्दघन भाई ! चेतलो प्यारे, आखिर जाना गँमार॥
क्या तन माँजता रे० ॥५॥

•

7. वैराग्योत्पादक पद

आप स्वभावमाँ रे, अवधू सदा मगन में रहना,
जगत जीव है करमाधीना, अचरिज कछुए न लीना ॥१॥ आप०
तुम नहीं केरा कोई नहीं तेरा, क्या करे मेरा मेरा,
तेरा है सो तेरी पासे, अवर सब अनेरा ॥२॥ आप०
वपु विनाशी तूं अविनाशी, अब है इनका विलासी,
वपु संग जब दूर निकासी, तब तुम शिवका वासी ॥३॥ आप०
राग ने रीसा दोय खवीसा, ए तुम दुःख का दीसा,
जब तुम उनकुं दूर करीसा, तब तुम जग का इसा ॥४॥ आप०
पर की आशा सदा निराशा, ए है जन-जन पासा,
वो काटनकुं करो अभ्यासा, लहो सदा सुख वासा ॥५॥ आप०
कबहीक काजी कबहीक पाजी, कबहीक हुआ आपभ्राजी,
कबहीक जगमें कीर्ति गाजी, सब पुद्गल की बाजी ॥६॥ आप०
शुद्ध उपयोग ने समताधारी, ज्ञान-ध्यान मनोहारी,
कर्म कलंक कुं दूर निवारी, जीव वरे शिवनारी ॥७॥ आप०

•

8. मन वश का पद

मनाजी तूं तो जिन चरणे चित्त लाय,
तेरो अवसर वीत्यो जाय, मनाजी तूं तो,
उदर भरण के कारणे रे, गौआ वन में जाय,
चारो चरे चिहु दिशि फिरे रे, वाकुं चितडुं वाछरड़ा माँय ॥
मनाजी तूं तो प्रभु चरणे० ॥१॥

चार पाँच साहेली मलीने, हिलमिल पाणी जाय,
ताल दिएने खड़ खड़ हंसे रे, वाँकुं चित्तडुं गगरिया माँय ॥२॥ मनाजी०
नटवा नाचे चोकमाँ रे, लख आवे लख जाय,
वंश चढ़ी नाटक करे रे, वाँकुं चितडुं दोरड़िया माँय ॥३॥ मनाजी०
सोनी सोनाने घड़े रे, वली रूपा केरा घाट,
घाट घड़े मन रींझवे रे, वाँकुं चित्तडुं सौनेया माँय ॥४॥ मनाजी०
जुगटिया मन जुगटुं रे, कामिनी ने मन काम,
आनंदघन एम विनवे रे, ऐसे प्रभु को धर ध्यान ॥५॥ मनाजी०

●

9. सज्झाय

निन्दक तूं मत मरजे रे, मारी निन्दा करेगा कुण रे,
निन्दक नेड़ो राखजो रे, आंगन कुटि छबाय रे।
बिन साबुन बिन पानी मेरो, कर्म-मैल कट जाय रे ॥१॥ निन्दक०
भरी-सभा में निंदक बेठो, चित्त निन्दा में जाय रे।
ज्ञान-ध्यान तो कछु नहीं जाने, कुबद हिया के माँय रे ॥२॥ निन्दक०
पीठे (मस्तक) मेल उतारता रे, दे दे हाथे जोर रे।
निन्दक उतारे जीभ सुं कांई, जाणे रलियारो ढोर रे ॥३॥ निन्दक०
धोबी धोवे लूगड़ा ने, निन्दक धोवे मैल रे।
भार हमारा ले लिया कांई, ज्युं वणझारो बैल रे ॥४॥ निन्दक०
निंदक तूं मर जावसी रे, ज्युं पाणी में लूण रे।
"सूरि राजेन्द्र" की सीखड़ी रे, दूजो निन्दा करेगा कोण रे ॥५॥ निन्दक०

मन को प्रेरित करती है, दादीमाँ की मधुर-मधुर स्मृतियाँ
प्रियसु उद्घाटित करती है, गुरुमैया के जीवन की अनुभूतियाँ ॥

विविधा

प्रस्तुत खण्ड भी इस ग्रन्थ का एक महत्त्वपूर्ण भाग है जिसमें पूज्याश्री के संसारपक्षीय परिवार का परिचय, उनके स्वहस्तलिखित पत्र, उनकी सेवा में समर्पित अभिनंदन-पत्रादि तथा स्वयं की डायरी के पृष्ठों के अवलोकन का भी सौभाग्य प्राप्त होगा प्रिय एवं श्रद्धालु पाठकों को । इसके अतिरिक्त इस खंड में सुरम्य पाठ्य सामग्री के साथ पौरवालजाति की उत्पत्ति, महत्त्व, संघवी सेठ श्रीलूणाजी पौरवाल-परिचय एव श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ का संक्षिप्त इतिहास भी एक आकर्षण का केन्द्र बन गया है । इतना ही नहीं, इस खण्ड में अखिल भारतीय श्रीराजेन्द्र-जयन्त जैन सम्यग्ज्ञान कन्याशिविर का एक परिचय जो बालिकाओं के जीवन में सुसंस्कारों का बीजारोपण करने के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी ठोस कदम कहा जा सकता है ।

1. पूज्याश्री का वंशवृक्ष

शा. दल्लाजी सुत

↓

स्वर्गीय लूणाजी संघवी सुत

(पू. दादीजी महाराज साहब के आद्यपुरुष श्री मोहनखेड़ा तीर्थ निर्माता-संसार पक्षीय ददिया श्वसुरजी)

↓

स्व. शा. नेमचन्दजी जमींदार सुत

(पू. दादीजी म. के संसार पक्षीय श्वसुरजी)

↓

स्व. शा. चंपालालजी जमींदार सुत

(पू. दादीजी म. के संसार पक्षीय पतिदेव)

↓

राजमल जमींदार सुत (संसार पक्षीय पुत्र)
स्व. पूनमदेवी (संसार पक्षीय पुत्रवधू)

↓

पुष्पेन्द्रकुमार जमींदार सुत (संसार पक्षीय पौत्र)
श्रीमती संगीता (संसार पक्षीय पौत्रवधू)

↓

मयंक जमींदार (संसार पक्षीय प्रपौत्र)
नेहाकुमारी (संसार पक्षीय प्रपौत्री)

जिनेन्द्रकुमार

जवाहरमल सुत (संसार पक्षीय पुत्र)
कांतादेवी (संसार पक्षीय पुत्रवधू)

↓

आनंदकुमार (संसार पक्षीय पौत्र)
श्रीमती साधना (संसार पक्षीय पौत्रवधू)

↓

(संसार पक्षीय प्रपौत्र)

इसके साथ ही पूज्या दादीजी महाराज साहब (बड़े सुपुत्र-राजमल जमींदार की पाँच सुपुत्रियाँ हैं) की पाँच पौत्रियाँ भी हैं, जिनमें से चार पौत्रियाँ तो जिनशासन और दादागुरुगच्छ में सेवा रत हैं, जिनके नाम इसप्रकार हैं :-

१. साध्वी डॉ. श्री प्रियदर्शनाश्रीजी (एम.ए., पी-एच.डी.)
२. साध्वी डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी (एम.ए., पी-एच.डी.)
३. साध्वी श्री आत्मदर्शनाश्रीजी
४. साध्वी श्री सम्यग्दर्शनाश्रीजी

एवं एक तृतीय नंबर की पौत्री गृहस्थ जीवन में है। सौ. कां. साधना भंवरलालजी जैन।

पू. दादीजी महाराज साहब की (छोटे सुपुत्र जवाहरमल की चार सुपुत्रियाँ हैं) चार पौत्रियाँ भी हैं, जो गृहस्थ जीवन में हैं।

पू. दादीजी म.सा. की (बड़े सुपुत्र की पाँच एवं छोटे सुपुत्र की चार=नव) कुल नव पौत्रियाँ, तीन पौत्र, दो प्रपौत्र व एक प्रपौत्री हैं।

2. पूज्या श्री का पितृपक्षीय परिवार

स्वर्गीय संसार पक्षीय पिता - श्री जड़ावचंदजी सेठ सुत

स्वर्गीया मातुश्री - श्रीमती वजीबाई

↓

रिखबचंदजी एवं पुनमचंदजी (पू. दादीजी म.सा. के संसारपक्षीय सहोदर लघुभ्राता)

भौजाई कान्ताबहन — भौजाई फूलकुंवरबहन

पूज्या दादीजी म.सा. की संसार पक्षीय सहोदर लघु बहनें —

श्रीमती सुन्दरबाई एवं श्रीमती चन्दूबाई

इसके साथ ही पू. दादीजी महाराज साहब के दो भतीजे-इन्द्रेशकुमार व राजेन्द्रकुमार और छह भतीजियाँ हैं।

3. पूज्याश्री के स्व-हस्तलिखित पत्र

॥ श्री ॥ भीनमाल

[illegible]

[illegible]

[illegible] कृपा, गुरु कृपा से सुख साता है,
आपरो कृपा पत्र मिल्यो समाचार जाण्या
म्हारी तबीयत संभाल जो ने सबी
[illegible] सुख साता पुछाव जो ने [illegible]
[illegible] पण [illegible] जो मैं तो साता
मैं [illegible] पण ठीक है कोई
चिन्ता न करे, और [illegible] जी
[illegible] कोमल [illegible] जी आदि

सभी साता में है, सभी सुखसाता
वंदन अभिवंदन पुच्छावे, सभी को
... देवे के सुख साता पूछी
है और आचार्य भगवंत श्री आदि
सभी मुनिराज श्रीसा को वंदन
सुख शाता अर्ज करावे जी और
... सभी श्रावक श्राविकाने
... में काम करे जो मैं

धर्म ध्यान में वर्ते और भाव
... होय तो संघ में खुसी से
जाजो मने कोई तकलीब नहीं
है जैसी तुमारी इच्छा होवे
वैसी कर जो म्हारी कोई बात
की फिकर नहीं करे कोमल
लता श्री जी आदि सभी ठीक
है तमारो मनमानो जैसा कर जो
म्हारो कोई बाता को नां नहीं है
आत्म दर्शना ने समयग्य दर्शना
चारु दर्शना आदि सभी ने शाता
पूछजो जी तबीयत संभालवा को
देवदर्शन में याद करे ने धर्म
ध्यान में वर्ते विहार धीरे २
करे ने तबीयत संभाले सभी मैं
याद करे ने सुख साता पूछे
वंदन अभिवंदन स्वीकार
लि. आप मेहा.
साध्वी श्री ...

આત્મરક્ષા શ્રી
પાર્શ્વનાથ સ્તોત્ર

ૐ નમો ભગવતે
પાર્શ્વનાથાય,
રક્ષા કુરુ કુરુ
ગ્રામે વા નગરે વા
ત્રિકે વા ચચ્ચરે વા
ચતુષ્પથે વા દ્વારે વા
મંત્ર પ્રસાદેન મમ શરીરે

શ્રી પાર્શ્વનાથ જિન સ્તવન

5. पौरवाल जाति की उत्पत्ति एवं महत्त्व

हमारे देश में जातियों का बाहुल्य है और प्रत्येक जाति का अपना महत्त्व है तथा प्रत्येक जाति की उत्पत्ति का कोई न कोई विशेष कारण है। जहाँतक पौरवाल जाति का प्रश्न है, यह जाति भारत की प्रमुख जातियों में से एक है और इस जाति के लोग प्रायः सम्पन्न हैं।

यहाँ यह संकेत करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि जैन संस्कृति में व्यक्ति का महत्त्व उसके जन्म, जाति, कुल, वंश, गोत्र आदि से न माना जाकर उसका मूल्यांकन उसके शीलादि गुणों से किया जाता है। इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि जैनधर्म-संस्कृति में जाति का महत्त्व गौण है। इतना होने पर भी जाति पर विचार तो किया ही जाता है।

पौरवाल जाति में जैन धर्मानुयायी और वैष्णव धर्मानुयायी दोनों मिलते हैं, किंतु जहाँतक इस जाति की उत्पत्ति का प्रश्न है, वह समान ही है।

'पौरवाल' शब्द की उत्पत्ति 'प्राग्वाट्' शब्द से हुई है। जहाँतक इसकी उत्पत्ति के समय का प्रश्न है, जैन मतावलम्बियों के अनुसार इसकी उत्पत्ति अनुश्रुतियों के आधार पर बौद्ध काल से मानी जाती है। यह भी कहा जाता है कि इस जाति की उत्पत्ति श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् लगभग ५७ (५२) वर्ष श्री पार्श्वनाथ संतानीय श्रीमद् स्वयंप्रभसूरि ने भिन्नमाल और पद्मावती में की थी। किन्तु डॉ. के. सी. जैन का मत है कि पौरवाल जाति की उत्पत्ति श्रीमाल (भिन्नमाल का अन्य नाम) से होना सत्य प्रतीत नहीं होता। उनके मतानुसार प्राचीन अभिलेखों एवं हस्तलिखित ग्रंथों में पौरवाल के लिए 'प्राग्वाट्' शब्द का प्रयोग किया गया है और प्राग्वाट् के निवासी थे वे कालान्तर में पौरवाल कहलाये। पौरवाल अपनी उत्पत्ति मेवाड़ के पुर नामक गाँव से भी मानते हैं। पौरवाल लघुशाखा और बृहद् शाखा में विभक्त हैं। डॉ. जैन के अनुसार पौरवाल जाति की उत्पत्ति आठवीं शताब्दी में हुई।

उपर्युक्त विवरण से यह फलित होता है कि पौरवाल जाति की उत्पत्ति 'प्राग्वाट्' से हुई और उत्पत्ति का समय आठवीं शताब्दी माना जाता है।

उल्लेखनीय बिन्दु यह है कि पौरवाल जाति में अनेक महापुरुष हुए हैं, इस श्रृंखला में आर्यरक्षितसूरि, श्रीमद् यशोभद्रसूरि, राजा टोडरमल आदि का नाम गौरव के साथ लिया जाता है। ऐसे ही अनेक समाज रत्न हुए हैं जिनसे समाज गौरवान्वित है। यथा- पहली सदी में वीर जावड़शाह पौरवाल, दसवीं सदी में वीर विमलशाह पौरवाल, चौदहवीं सदी में धरणाशाह पौरवाल आदि हुए। ऐसे महापुरुषों पर पृथक् से एक पुस्तक लिखी जा सकती है। इसी श्रृंखला में हम दानवीर परम गुरुभक्त श्रेष्ठिवर्य श्रीमान् संघवी लूणाजी पौरवाल का नाम भी लेते हैं।

**राजगढ़ (म. प्र.) निवासी संघवी सेठ लूणाजी
द्वारा निर्मित जीर्णोद्धार के पूर्व का
श्री मोहनखेड़ा तीर्थ का चित्र**

तीर्थनिर्माण में दानवीर श्रेष्ठ पुरुषों का योगदान

हमारा देश भारतवर्ष एक लघु विश्व है, क्योंकि यहाँ विश्व के सभी धर्मों के लोग निवास करते हैं और यहाँ सभी धर्मों के तीर्थस्थल/पूजा-आराधना स्थल हैं। जैनधर्म एक प्राचीन धर्म है और यहाँ इस धर्म के अनेक तीर्थस्थल हैं। इन तीर्थस्थानों के निर्माण के पीछे किसी-न-किसी जैनाचार्य अथवा जैन मुनिप्रवरों की प्रेरणा रही है। अनेक तीर्थस्थानों (प्रमुख मंदिरों) का निर्माण या तो किसी राजा द्वारा करवाया गया है या श्रीसंघ के सहयोग से हुआ है या फिर किसी श्रीमंत श्रेष्ठी ने उनका निर्माण स्वोपार्जित लक्ष्मी का सदुपयोग करने और सर्वसामान्य जन को धर्माराधना करने की दृष्टि से करवाया है।

यदि तीर्थ निर्माण के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम पायेंगे कि वहाँ अनेक श्रीमन्तों ने इनके निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस सम्बन्ध में हम कुछ स्थानों के निर्माणकर्ताओं का उल्लेख करना प्रासंगिक समझती हैं। कारण कि सबका विवरण देना न तो यहाँ प्रासंगिक है और न यह हमारे लिये अभी संभव ही है।

अस्तु, प्रस्तुत है **तीर्थमंदिर निर्माताओं की संक्षिप्त सूची :** श्री सिद्धाचलतीर्थ के तेरहवें उद्धारकर्ता के रूप में प्रथम शताब्दी में हुए श्री वीर जावड़शाह पोरवाल का नाम गौरव के साथ लिया जाता है। ये मालवा के थे। देलवाड़ा (आबू) तीर्थ का निर्माण वि.सं. १०८८में श्री वीर विमलशाह पौरवाल ने करवाया। इसी संवत् में श्री विमलशाह पौरवाल ने श्री कुम्भारिया तीर्थ का भी निर्माण करवाया। विश्व विख्यात जैन तीर्थ श्री राणकपुर का निर्माण चौदहवीं शताब्दी में मंत्री श्री धरणाशाह पौरवाल द्वारा करवाया गया। श्री धरणाशाह के पिता श्रेष्ठी श्री कुंवरपाल पौरवाल एवं मंत्री लीवा द्वारा वि.सं. १४६५में श्री पिंडवाड़ा तीर्थ का उद्धार करवाया गया था।

पाली जिले में स्थित श्री खुड़ाला तीर्थ के भव्य मंदिर का निर्माण पौरवाल वंशज श्री रामदेव के पुत्र श्री सुराशाह ने करवाया और उनकेभ्राता श्री नलधर द्वारा प्रभुप्रतिमा की प्रतिष्ठा वि.सं. १२४३ में करवाई। यदि इस क्षेत्र में शोध किया जाय तो और भी अनेक नाम मिल सकते हैं।

6. श्री मोहनखेड़ा तीर्थ निर्माता संघवी सेठ श्री लूणाजी पोरवाल-परिचय

जैन तीर्थ निर्माताओं की इस श्रृंखला में एक नाम का विवरण देना हम उचित समझती हैं। **यह नाम है वीसा पौरवाल वंशज दानवीर परमगुरुभक्त श्रेष्ठीवर्य श्री लूणाजी पौरवाल। (पूरा नाम था संघवी श्री दल्लजी लूणाजी पौरवाल (प्राग्वाद्))। ये श्रेष्ठी धार**

से लगभग चालीस किलोमीटर दूर माही नदी के दाहिने तट की ओर बसे राजगढ़ नामक नगर के निवासी थे । जैनधर्म के प्रति इनकी अटूट आस्था थी और परमकृपालु पूज्यपाद गुरुदेव प्रातःस्मरणीय विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी महाराज साहब के अनन्य गुरुभक्त थे । चूंकि आप धार राज्य के जमींदारों में से थे, इस कारण राज्यपक्ष में भी आपकी अच्छी प्रतिष्ठा थी ।

स्वभाव से सरल और उदार थे । उनमें एक और विशेष गुण था कि वे कमजोर पक्ष के अपने स्वधर्मी भाई-बहनों एवं असहायों को समय-समय पर गुप्त रूप से सहायता भी देते रहते थे । आप अपने परिवारवालों को भी धर्माराधना के लिए हर समय प्रेरणा करते रहते थे ।

संघवी सेठ लूणाजी ने अपना जीवन एक आदर्श पुरुष के रूप में व्यतीत किया । उन्होंने अपने जीवन में प्रत्येक धर्मकार्य में तन, मन व धन से भरपूर लाभ लिया । तत्कालीन समय में राजगढ़ नगर के प्रमुख महानुभावों में सेठ लूणाजी का नाम भी अग्रगण्य था । धार्मिक पक्ष, सांसारिक पक्ष और राज्यपक्ष में सभीतरह से आप मान-प्रतिष्ठा के साथ सम्माननीय माने जाते थे।

एकबार पूज्यपाद दादा गुरुदेवश्री के सामने आपने जिनमंदिर बनवाने की आन्तरिक भावना व्यक्त की तो गुरुदेवश्री ने इस रमणीय शांतिप्रद प्राकृतिक स्थान पर **श्री आदिनाथप्रभु का मंदिर बनवाने का उपदेश दिया ।**

उदारमना परम गुरुभक्त श्रेष्ठिवर्य श्री लूणाजी पौरवाल ने पू. गुरुदेवश्री के आदेश को सहर्ष शिरोधार्य कर यहाँ एक विशाल जिनालय बनवाया और पू. गुरुदेवश्री के करकमलों से ही महामहोत्सव पूर्वक वि.सं. १९४० मृगसिर शुक्ला ७ गुरुवार को प्रतिष्ठा सम्पन्न करवाई ।

यह कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि श्रीमान् संघवी सेठ लूणाजी पौरवाल, पौरवाल जाति के जाज्वल्यमान सितारे थे । उन्हीं के कुल की देदीप्यमान ज्योति थीं प.पू. साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब ।

आपके वंशज प्रपौत्र श्रीमान् राजमलजी जमींदार पौरवाल भी धर्म प्रभावना के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं । आपने अपनी चार पुत्रियों को धर्मशासन के लिये समर्पित कर दिया है, जो वर्तमान में डॉ. साध्वीश्री प्रियदर्शनाश्री, डॉ. साध्वीश्री सुदर्शनाश्री, साध्वीश्री आत्मदर्शनाश्री एवं साध्वी श्री सम्यग्दर्शनाश्री के नाम से प्रख्यात हैं ।

पू. गुरुदेवश्री की प्रेरणा से श्रीमान् संघवी लूणाजी पौरवाल द्वारा निर्मित इस तीर्थ स्थान को 'श्री शत्रुंजयावतार मोहनखेड़ा तीर्थ' नाम दिया गया, जो आज भारतवर्ष के प्रमुख जैन तीर्थों में अपना स्थान रखता है और निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है । इसप्रकार श्रीमान् संघवी सेठ लूणाजी पौरवाल अपने महान् शुभ कार्यों से दादा गुरुदेव के नाम के साथ और श्रीमोहनखेड़ातीर्थ के नाम के साथ अपना नाम जोड़कर जीवन धन्य बना गये, जीवन सफल कर गये ।
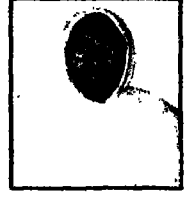
परम पूज्या दादीजी महाराज साहब ने अपने संसार पक्षीय पुत्र राजमलजी जमींदार को एकबार बातचीत के दौरान पूछने पर जो बताया था। वह अपने शब्दों में प्रसंगवश यहाँ प्रस्तुत है :

राजगढ़ निवासी संघवी सेठ लूणाजी परमाराध्यपाद श्रीमद् राजेन्द्रसूरि गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त थे। जिन्होंने राजगढ़ (म.प्र.) चातुर्मास में गुरुदेवश्री के समक्ष अपनी हार्दिक भावना प्रकट की। गुरुदेव ! मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं एक जिनमंदिर की स्थापना करूँ। इसके लिए आपश्री से स्थान का चयन चाहता हूँ।

गुरुदेवश्री ने कहा-"आप में उत्तमोत्तम भावना जागृत हुई है लूणाजी सेठ! आपकी इच्छा सफल हो, इसके लिए मैं शीघ्र ही स्थान बताऊँगा।"

गुरुदेवश्री राजगढ़ गाँव से पश्चिम दिशा में करीब दो-तीन किलो मीटर इसी स्थान की ओर शौच क्रिया (स्थंडिल) के लिए जाया करते थे। अभी जहाँ तीर्थरूप है, ठीक इसके पास में उस समय मजदूरी करके अपनी आजीविका चलाने वाले कुछ मजदूर लोग अपने-अपने घास-फूस के महलों में रहते थे। **उस बस्ती का नाम खेड़ा था। यहाँ जो विशाल वटवृक्ष है, वह बहुत प्राचीन है।**

गुरुदेव श्री यहाँ कुछ क्षणों के लिए विश्राम किया करते थे। उन विश्राम के क्षणों में गुरुदेवश्री को अपने ज्ञानप्रकाश में कुछ ऐसा मालूम हुआ कि यह भूमि जागृत है और भविष्य में इस स्थान को बहुत प्रसिद्धि मिलेगी। यह विचार आते ही—गुरुदेव ने सोचा कि लूणाजी सेठ की भावना है जिनमंदिर निर्माण करने की। वे मुझ से स्थान का चयन भी चाहते हैं तो क्यों न उन्हें यहाँ पर तीर्थ स्वरूप जिनमंदिर निर्माण करने के लिए कहूँ ?

तत्पश्चात् गुरुदेवश्री ने लूणाजी सेठ को यह स्थान बताया और यहाँ पर शत्रुंजय तीर्थ स्वरूप जिनमंदिर स्थापन करनेकी प्रेरणा दी।

लूणाजी सेठ ने गुरुदेवश्री के अमृतवचन को '**तहत्ति**' कहकर शिरोधार्य किया। विक्रम संवत् १९३६ में मंदिर का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ और दो-तीन वर्षों में ही तीर्थ निर्मित हो गया। **तब लूणाजी सेठ ने राजगढ़ श्रीसंघ के साथ गुरुभगवंत से विनम्र निवेदन किया कि—"गुरुदेवश्री ! तीर्थ का नाम संस्करण और प्रतिष्ठा के मुहूर्त्त की आज्ञा प्रदान कीजिए।"**

गुरुदेवश्री के शिष्यों में उपाध्याय श्रीमोहनविजयजी महाराज सा. अत्यन्त सरल-सहज स्वभाव के थे। वे बहुत ही मृदु-मधुरभाषी होने के साथ-साथ गुरुदेवश्री को अतिप्रिय भी थे। इसलिए गुरुदेवश्री ने इस तीर्थ का नाम संस्करण किया —

"**शत्रुञ्जयावतार श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ**" बस, गुरुदेवश्री की और मोहनखेड़ातीर्थ की उसी क्षण से जय जयकार गूँजने लगी।

विक्रम संवत् १९४० मृगसिर शुक्ला सप्तमी, गुरुवार को अपने कर कमलों से इस तीर्थ की प्रतिष्ठा करते हुए मूलनायक "**दादाश्री आदिनाथ भगवान्**" की प्रतिमा विराजमान करने के साथ ४१ अन्य जिनबिंबों की स्थापना की।

संघवी सेठ लूणाजी को "तीर्थ निर्माता" पद से सुशोभित किया और तीर्थ-द्वार पर निम्नांकित शिलालेख लगवाया।

शिलालेख

(ॐ अर्हम् नमः । श्री सौधर्म बृहत्तपोगच्छीय वीसा पौरवाल संघवी दल्लाजी सुत लूणाजी, नेमचंद, चंपालाल ने श्री शत्रुंजयतीर्थ दिग्यात्राफलार्थ श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ स्थापन किया और वि. संवत् १९४० मार्गशिर सुदी ७ गुरुवार के दिन भित्तपट जैनाचार्य श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के करकमलों से मूलनायक भगवान श्रीआदिनाथ स्वामी आदि की मूर्तियाँ विराजमान कीं । यह तीर्थ सनातन त्रिस्तुतिक संप्रदायी राजगढ़ श्रीसंघ को समर्पण किया ।

(उपर्युक्त शिलालेख के साथ मूलनायक श्रीआदिनाथ भगवान् की प्रतिमा के नीचे भी प्रतिष्ठा के अवसरपर पू. दादा गुरुदेवश्री का एवं लूणाजी सेठ का नाम अंकित है।)

यह एक विशेष प्रकार का संयोग ही है कि तीर्थ संस्थापक पू. दादा गुरुदेव ने वि. संवत् १९६३के पौष शुक्ला छठ को राजगढ़ नगर की धर्मशाला में अपनी अंतिम सांस ली और श्रीसंघ ने पौष शुक्ला सप्तमी गुरुवार को इसी तीर्थ के प्रांगण में आपश्री का अंतिम संस्कार किया और इसी स्थान पर गुरुमंदिर बनवाया।

कैसा विचित्र संयोग कि गुरुदेव की जन्म और अंतिम संस्कार तिथि शुक्ला सप्तमी गुरुवार और तीर्थ की प्रतिष्ठा की तिथि भी शुक्ला सप्तमी गुरुवार ! इसके बाद तो यह तीर्थ और भी जन-जन के लिए आराधना-श्रद्धा का केन्द्र बनकर गुरुदेवश्री के ज्ञान-प्रकाशानुसार प्रसिद्धि विकीर्ण करता ही गया।

जीर्णोद्धार के पश्चात् से सम्पूर्ण भारत वर्ष के कोने-कोने से आनेवाले तीर्थयात्रियों और श्रद्धालुओं के लिए यह-उपासना, आराधना, साधना और श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। धन्य है गुरुदेव की ज्ञान-दृष्टि ! शत्रुञ्जयावतार श्रीमोहनखेड़ा-तीर्थ की सदा जय हो, जय हो ! विजय हो !!!

8. पूज्याश्री की सेवा में समर्पित अभिनंदन पत्रादि

"सारद सलिलं इव सुद्धहियया.....
विहग इव विप्पमुक्का .....
वसुंधरा इव सव्वफास विसहा ।"

सूत्रकृतांग २-२-३८

मुनिजनों का हृदय शरदकालीन नदी के जल के समान निर्मल होता है। वे पक्षी की तरह बंधनों से मुक्त और पृथ्वी की भाँति समस्त उपसर्गों व कष्टों को समभाव से सहन करनेवाले होते हैं। सुदीर्घ निर्मल संयम साधिका पू. दादीजी महाराज साहब का जीवन निःसंदेह लोकैषणा से परे था। न उनमें प्रदर्शन था, न आडम्बर, न मायाचार और न किसीप्रकार का अभिमान।

निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, सुख-दुःख, यश-अपयश और अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में आपका जीवन सदा निर्लिप्त रहा। वास्तव में आप यशोलिप्सा से परे एवं समभाव से विभूषित थीं।

जहाँ भी आपश्री के चरण पड़े। वहाँ का जनमानस आपश्री पर न्यौछावर हो गया। जहाँ-जहाँ आपश्री ने शानदार वर्षावास सम्पन्न कर विदाई ली। वहाँ के श्रद्धालु श्रीसंघ ने अपनी श्रद्धा-भावना को आप के श्रीचरणों में भाव-प्रसून, अभिनन्दन एवं प्रशस्ति-पत्रों के माध्यम से प्रकट कर सुख और सन्तोष का अनुभव किया।

कई प्रशस्ति-पत्र, अभिनन्दन-पत्र, गद्य-पद्य के माध्यम से श्रीसंघ द्वारा आपश्री के करकमलों में अर्पित-समर्पित किए गये, जो आपकी महत्ता को दर्शाते हैं। उनमें से कुछ एक यहाँ प्रस्तुत कर रही हैं।

पढ़िए प्रस्तुत 'सन्त प्रशस्ति' जिसे कुक्षी (म.प्र.) के वि.सं. २०३६ में यशस्वी-सफल वर्षावास की पूर्णाहूति के सुअवसर पर मंगल कामनाओं के साथ श्रीसंघ ने समर्पित किया !

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

● श्रीमद् राजेन्द्रसूरि गुरुभ्यो नमः ●

१. सन्त प्रशस्ति

(१)

व्याप्त है अस्तित्व शुभ सर्वत्र ही,
जिस विलक्षण ईश लीला धाम का।
शुद्ध मन से एक क्षण चिन्तन प्रथम,
कीजिये उस अन्त्य काश्यप नाम का॥

(२)

धर्म शिथिलाचार खण्डन के लिए,
अन्त तक जिनने विकट संकट सहे।
विश्व-विश्रुत पूज्य त्रिकालज्ञ उन,
सूरिवर राजेन्द्र की जय जय रहे॥

(३)

सर्वगुण सम्पन्न मृदुभाषी विमल,
काव्य-विद् जो नम्र और उदार हैं ।
उन मुनीश्वर विज्ञ-विद्याचन्द्र के,
पद्म-पद-नत शीश बारम्बार हैं ॥

(४)

तीर्थ रूपी हेतश्री, श्रीमुक्ति श्री,
जो कि जीवन मुक्त है, गत काम है ।
धन्य हैं वे वंद्य हैं, उनके हुए –
योग्य शिष्या से समुन्नत नाम है ।

(५)

पूज्य सतियाँ महाप्रभा प्रभृति जो –
त्याग तप-सर की मनोहर मीन हैं ।
पूजने में पद्म-पद उनके विमल ।
मन हमारे हो रहे तल्लीन हैं ॥

(६)

आज हमको हर्ष है अत्यन्त ही,
हे ! शुभे सम्मान करते आपका ।
सन्त सेवा और दर्शन से सहज,
अन्त होता जग-जनित, अघ-तापका ॥

(७)

आर्य निगमागम तथा पंडित-प्रवर,
सर्वथा कहते यही आए सभी ।
पूर्व पुण्यों के बिना संसार में,
सन्त-दर्शन मिल नहीं सकते कभी ॥

(८)

पुण्य संचित कुछ हमारे पास हैं,
यद्पि यह पहले न कुछ विश्वास था ।
अन्यथा होता न कुक्षी में कभी,
आपका यह पुण्य चार्तुमास था ॥

(९)

आपके पद-पद्म से हे तप निधे,
हो गया यह क्षेत्र सारा धन्य है ।
यह हमारा पूर्णतः कुक्षी नगर,
तीर्थ के सम दीखता सुख जन्य है ।

(१०)

जगत-जल-निधि के अगम जल में पड़े,
बह रहे हैं जीव जो म्रिचमाण से ।
घूमते उनको बचाने के लिए,
आप से ही सन्त दृढ़ जलयान से ॥

(११)

सूरिवर राजेन्द्र की मत-पंक्ति में,
साधु जो अब तक हुए गुण धाम हैं ।
पूज्य-पद सब उन्हीं मुमुक्षु वृंद में,
आपके भी स्वर्ण-अंकित नाम हैं ॥

(१२)

आप हैं शीतल समुज्ज्वल चन्द्र सम,
भव्यतम इस जैन मत-नभ-लोक में।
आपकी यश-चन्द्रिका की चारुता,
फैलती अब जा रही नित लोक में ॥

(१३)

आयु के दुर्द्धर्ष झंझावात में,
भूलते सुध बुध सभी जब लोग हैं ।
धन्य है तब आप उस नव-आयु में,
साधती अत्यन्त दुष्कर योग हैं ॥

(१४)

विश्व दुःख विमुक्ति हित में आपके,
धन्य अनुपम आत्म-शोधन यत्न हैं।
धन्य है वह वंश भी जिसमें हुए,
आप से तत्त्वज्ञ रमणी-रत्न हैं ॥

(१५)

भारती के भव्य-भूषण आप श्री
शास्त्र-विद अति विज्ञवर विद्वान् हैं ।
नित्य अध्ययनशील हैं, स्थितप्रज्ञ हैं,
दुःख सुख मानाभिमान समान है ॥

(१६)

जैन दर्शन आदि के इस वास में,
आपने हमको दिये जो ज्ञान हैं ।
भूल क्या सकते उन्हें तब तक भला,
देह में जब तक हमारे प्राण हैं ॥

(१७)

स्वाद जिव्हा के तजे सब आपने,
भोज्य लेते शुद्ध सादा मात्र हैं ।
वस्तुएँ मीठी, अनूठी, चटपटी,
आपके लेते नहीं कुछ पात्र हैं ॥

(१८)

जान यह पड़ता नहीं है इस समय,
क्या कहें इससे अधिक अब हम यहाँ ।
आपकी जितनी प्रशंसा भी करे,
जान वह पड़ती हमें सब कम यहाँ ॥

(१९)

खेद है इसका हमें अत्यन्त ही,
जा रहे अब आप हमको छोड़कर ।
ठीक है यह, भूप, परिव्राजक अनल,
नेह क्या रखते किसी से जोड़कर ॥

(२०)

अस्तु, फिर भी है विनय यह आप से,
आप उपकारी दया-निधि सन्त हैं ।
लौटकर दर्शन पुनः देगें कभी,
भूलते निज-जन नहीं गुणवन्त हैं ।

(२१)

अन्त में है प्रार्थना भगवान से,
आपको सुख प्रद सदा जलवायु हो ।
और 'मिश्रीलाल' जब तक भूमि यह –
आप तब तक लोक में दीर्घायु हो ॥

नोट :- (१) सन्त प्रशस्ति-(कविता) द्वारा : समस्त श्री जैन श्वेताम्बर संघ कुक्षी (म.प्र.) ।

(२) यह **सन्त प्रशस्ति** परम वन्दनीया साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी महाराज साहब के सम्मान में उपाश्रय कुक्षी (म.प्र.) में पढ़ी गई ।

विक्रम संवत् २०३६ मृगसिर वदि १, सोमवार

दिनांक 5 नवम्बर 1979

प्रस्तुत अभिनंदन-पत्र सन् 1980 के मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के यशस्वी एवं सफल वर्षावास के उपलक्ष्य में विदाई समारोह के सुअवसर पर श्री जैनश्वेताम्बर संघ ने पूज्याश्री को सादर समर्पित किया ।

॥ श्री महावीराय नमः ॥

● प्रातः स्मरणीय विश्वपूज्य प्रभु श्री राजेन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नमः ●

श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ, भोपाल (म.प्र.) की ओर से

परम श्रद्धेया परम वंदनीया साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब के करकमलों में सादर समर्पित

२. अभिनन्दन-पत्र

भव्य व्यक्तित्व की धनी !

आपका भव्य व्यक्तित्व, आपकी हृदयगत सरलता एवं निष्कपटता वह प्रकाशमान स्वरूप है, जो चुम्बक की भाँति सभी को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करके निर्मल भावना का संचार करने में समर्थ है । इसप्रकार शुद्ध-सात्त्विक प्रकृति आपकी सरल आकृति में प्रतिबिंबित होकर सर्वत्र उज्जवल प्रकाश विकीर्ण कर रही है । आपके व्यक्तित्व में '**सादा-सरल जीवन और उच्च-विचार**' का प्रेरणादायक आदर्श मूर्तिमान् हैं ।

मधुरभाषिणी !

जैसे देवताओं की सम्पत्ति अमृत है । ठीक वैसे ही मधुर-मृदुल वाणी मानव की निजी सम्पत्ति है। आप भी मधुर-मृदुल वाणी की धनी हैं । आपकी वाणी एवं आपके व्यवहार में मधुरता व मृदुता प्रतिबिंबित होती है ।

आपकी वाणी मिश्री से भी मीठी है । जब आप किसी से भी वार्तालाप करती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि शक्कर-मिश्री का घोल पिला रही हैं । आपकी वाणी मधुर और अमृत तुल्य है । जब आप माँगलिक प्रदान करती हैं, श्रवण कर सभी आनंदविभोर हो जाते हैं ।

नम्रता की प्रतिमूर्ति !

आपके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अहंकार तो आपसे कोसों दूर हैं। बड़े-छोटे, अमीर-गरीब, आबाल-वृद्ध सभी के साथ आप नम्रतापूर्ण व्यवहार करती हैं। इसी व्यवहार के कारण आप सभी के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई हैं। **'लघुता में प्रभुता बसे' यह आपके जीवन का मूल मंत्र है।** जो भी आपके सम्पर्क में एकबार आ गया, वह आपकी नम्रता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

उत्साहमूर्ति !

आप वय से वृद्ध हैं, परन्तु आप में युवकोचित उत्साह, स्फूर्ति एवं स्वावलंबन इस त्रिवेणी संगम के दर्शन करके हम अत्यन्त गौरव एवं उल्लास का अनुभव करते हैं। आपकी श्रम-सहिष्णुता, स्वावलंबिता एवं कार्य-निष्ठा हम सभी को प्रेरणा तथा उत्साह प्रदान करने का सुंदर साधन है।

श्रेष्ठ पथ-प्रदर्शिके !

आपको स्वभावतः न यश की कामना है और न नाम की अभिलाषा। संघ-समाज व युवापीढ़ी सात्विक जीवन-धारा के साथ सदैव आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होती रहें, आपकी यह आकांक्षा अत्यन्त श्लाघ्य एवं संस्तुत्य है।

आपके गुणों का यथार्थ चित्रण करने के लिए हमारे पास यथोचित शब्द नहीं है, फिर भी आपके महान् व्यक्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धा-भावना प्रकट करते हुए, हम हर्षविभोर एवं गौरवान्वित हो रहे हैं। हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि आप समाज हेतु प्रकाश-स्तम्भ के रूप में सदैव हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहें।

हम आपके सम्मान के लिए यथोचित स्वर-संरचना में असमर्थ हैं, परन्तु आपके आदर्शों से समृद्ध भावोर्मियों से प्रेरित होकर हम अपनी हार्दिक भावनाओं का पुञ्ज प्रस्तुत करते हैं कि आप शतायु हों और आपके उज्ज्वल आदर्श जैनशासन, संघ व समाज में सदैव सच्चेतना का संचार करते रहें।

अन्त में हम आपके स्तुत्य कार्य-कलाप एवं कठोर चारित्र पालन के प्रति शुभकामनाएँ प्रकट करते हुए आपका हार्दिक अभिनंदन करते हैं। श्रद्धा का यह छोटा-सा सुमन स्वीकार कर हमें अनुगृहीत करें।

स्थान : महावीर भवन , भोपाल (म.प्र.) — हम हैं आपके कृपाकांक्षी

वि.सं. २०३७ तिथि : कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा, सन् 1980 — श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ, भोपाल (म.प्र.)

प्रस्तुत अभिनन्दन-पत्र सन् 1985 के किशनगढ़-मदनगंज(राज.) के ऐतिहासिक व यशस्वी चातुर्मास की पूर्णाहूति के सुअवसर पर श्री जैन श्वेताम्बर सकल संघ द्वारा पूज्या श्री को सश्रद्धा समर्पित किया ।

॥ श्री संभवनाथाय नमः ॥

● प्रातः स्मरणीय विश्वपूज्य प्रभु श्री राजेन्द्रसूरीश्वरेभ्यो नमः ●

श्री जैन श्वेताम्बर श्रीसंघ, किशनगढ़-मदनगंज की ओर से समता, सरलता व संयम की त्रिवेणी प.पू. श्री महाप्रभाश्रीजी (पू. दादीजी) महाराज साहब की पावन सेवा में सादर समर्पित

३. अभिनन्दन-पत्र

महापुरुषों के जीवन के क्रिया-कलापों का महत्त्व उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। स्वयं के जीवन को सुयश की सुगन्ध से सुवासित करनेवाली आपने अपनी महत्ता, दिव्यता और भव्यता से जन-जन के अन्तर्मानस को अभिनव आलोक से आलोकित किया है।

आपके अलौकिक गौरवपूर्ण गरिमामय विराट् व्यक्तित्व को चित्रण करने का प्रयास **'गागर में सागर'** भर लेने के समान है। जैसा आपका नाम है, वैसी ही आप गुण निधान हैं। **'यथानाम तथा गुण' यह लोकोक्ति आपके जीवन में चरितार्थ होती है।**

सरलमना !

आपका हृदय दुग्ध के समान स्वच्छ व धवल है। आपका नख से शिख तक सम्पूर्ण जीवन सरल व निष्कपट है। जैसी भीतर हैं वैसी ही बाहर हैं। आप हमारे संघ समाज में सरलता की प्रतिमूर्ति एवं सादगी के प्रतीक रूप में समादृत हैं। सरलता आपका गुण और सादगी आपका भूषण है। अहं भावना से दूर, सरलता व सादगी को आपने अपने जीवन में प्रमुख स्थान देकर संघ-समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया है। आप अपने सरल, सात्त्विक व सादगीमय जीवन द्वारा सदैव समाज-सुधार को प्राथमिकता देकर लोकोन्नति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। आप हृदय से सरल, भाषा से मृदु और भावों से परम पवित्र हैं।

अप्रमत्तता की प्रतिमा !

आपके जीवन का हरक्षण, हरपल अप्रमत्तता में ही व्यतीत होता है। सचमुच प्रमाद ने तो आपको छुआ तक नहीं है। आहार, निहार आदि शरीर की आवश्यक क्रियाओं के अतिरिक्त शायद ही आपके जीवन में कभी ऐसा क्षण आया हो, जब प्रमाद में अधिक समय बीता हो। भारण्ड पक्षी की तरह आपका अप्रमादी एवं क्रियाशील जीवन सदैव एक प्रकाश-स्तम्भ के रूप में संघ-समाज का मार्गदर्शन करता रहा है और करता रहेगा।

तपोमूर्ते !

तप श्रमण जीवन का अनन्य आभूषण है। तप जीवन-शुद्धि का समुज्ज्वल सोपान है।
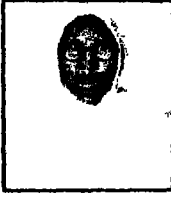
संयम तथा क्षमा सहित तप करने से पूर्व संचित कर्मों का क्षय होता है। आपने तप के उदात्त स्वरूप को हृदयंगम करके आत्मिक आनंद की अनुभूतिपूर्वक अपनी सित्तर वर्ष की वय में उपवास, बेला, तेला, आयंबिल, एकासनादि विविध तपश्चर्याएँ की और कर रही हैं। आपके जीवन में तप-त्याग व संयम की त्रिवेणी निरंतर प्रवहमान हैं।

प्राय: देखा जाता है कि जो तपस्या करता है उसकी प्रकृति उग्र हो जाती है, किंतु आप इसका अपवाद हैं। आप तप-त्याग के लिए हमें सदा प्रेरित करती रहती हैं। आपके तपोमय जीवन की हम जितनी भी प्रशंसा करें, कम ही है। आपकी प्रेरणा अपनी शिष्याओं के लिए भी सदैव यही रही कि जीवन में जबतक तप-त्याग नहीं आयेगा, आत्म-शुद्धि नहीं होगी। क्योंकि तप-संयम की रमणता में ही श्रमणत्व निहित है। आपका तप-त्यागमय जीवन एक प्रेरणादायक आदर्श है।

संयमनिष्ठे !

आपका संयमित, नियमित एवं मर्यादित जीवन अत्यन्त श्लाघ्य तथा अनुकरणीय है। आपका अति कठोर संयममय जीवन सभी के लिए गौरव का विषय है। आपका उज्ज्वल आदर्श संपूर्ण समाज के लिए प्रेरणादायक एवं मार्गदर्शक है।

इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व की धनी !

आपका यशस्वी, तेजस्वी व्यक्तित्व इन्द्र धनुषी रंग लिए हुए हैं। अद्‌भुत प्रभावशाली हैं। जो गहराई में सागर से भी अधिक गंभीर व ऊँचाई में हिमगिरि से उत्तुंग है। वैसे तो आपके बारे में लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

हर व्यक्ति, हर संघ-समाज पर आपके दिव्य, सरल, सुंदर इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व की अमिट छाप सदा के लिए विद्यमान है।

ऐसी महान् व्यक्तित्व की धनी परम श्रद्धेया आप पूज्याश्री के लिए जितना लिखा जाए, उतना ही कम है, किन्तु हम अल्पज्ञ में इतनी शक्ति कहाँ, जो आपके सर्वोच्च गुणों को इस जड़ लेखनी से लिख सकें ? ये श्रेष्ठ पुष्प नहीं हैं, फिर भी हमने आपकी अल्प पखुड़ियों को एकत्र करने का असफल प्रयास किया है।

पुनश्च, हम आपका सश्रद्धा हार्दिक अभिनंदन करते हुए गुरुदेव से यही शुभकामना करते है कि आप स्वस्थ रहें व दीर्घायु प्राप्त करें तथा आपके परम पुनीत सान्निध्य में जिनशासन की अधिकाधिक प्रभावना हों व गुरु-गच्छ की गरिमा में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हों।

इन्हीं मंगल कामनाओं के साथ

हम हैं आपके कृपाकांक्षी
चरणरज
श्री जैनश्वेताम्बर संघ, किशनगढ़-मदनगंज (राज.)

वि.सं. २०४२
मृगसिर वदि एकम, ई. सन् 1985

प्रस्तुत 'भाव-प्रसून' जिसे भरतपुर (राज.) के सन् 1987 के ऐतिहासिक व गरिमापूर्ण चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् विदाई समारोह की स्वर्णिम वेला पर मंगलकामनाओं के साथ श्रीसंघ ने पूज्याश्री को सश्रद्धा समर्पित किया ।

॥ श्री पार्श्वनाथाय नमः ॥

● श्रीमद् राजेन्द्रसूरि सद्गुरुभ्यो नमः ●

४. सादर समर्पित भाव प्रसून

जा रहे हो तुम तो ऐसा लग रहा है,
मौज का संसार अपना मिट रहा है ।

आप से पहले, यहाँ पर कुछ नहीं था,
आदमी को धर्म का परिचय नहीं था;
ढेर सारे भ्रम हमें घेरे हुए थे,
आत्मा का रूप धूमिल हो गया था ।

किन्तु तुमने ज्ञान की गंगा बहाई,
श्रावकों की मृत-विधा फिर, लहलहाई;
स्नेह-भीगी आपकी शब्दावली ने,
सुप्त-हृदयों में पुनः आस्था जगाई ।

आपने ही धर्म पर चलना सिखाया,
आपने सत्कर्म का, मारग दिखाया;
आपने ही नगर के साधर्मियों को,
राजेन्द्रश्री तक पहुँच का रस्ता बताया ।

किन्तु हमको छोड़कर, यों अधपका ही,
'आपश्री' अपने सफर पर जा रही हैं;
और इस घर की, कोई तस्वीर, जैसे-
दूसरे घर को, सजाने जा रही है ।

बिन तुम्हारे, कौन उपदेशित करेगा,
कौन, अब अज्ञान-पीड़ा सोख लेगा ?
झाड़ करके धूल गहरे विभ्रमों की,
कौन, जीवन-मार्ग आलोकित करेगा ?

कौन, अब खुद को तपाकर साधना में,
श्रावकों का, धर्म-परिमार्जन करेगा ?
किन्तु तुमको रोक पाना तो कठिन है,
गाँव-घर मेरा तुम्हें मन में रखेगा ।

आपने जो कर्म का, बिरवा लगाया,
और पावन-ज्ञान का दीपक जलाया;
हम उसे अनवरत उद्दीपित रखेंगे,
होम कर सर्वस्व भी, बुझने न देंगे ।

आप दें आशीष, हे गुरुदेव ! ऐसा,
भक्ति की ये लालसा, घटने न पाए,
मन्त्र फूँको ! बल भरो हे निस्पृही तुम,
धर्म का बिरवा कहीं मुरझा न जाए !

वि. संवत् २०४४ मृगसिर वदि एकम
ईस्वी सन् 1987

वरद-याचक (रचयिता)
बैनीप्रसाद जैन "तरुण"

नोट : (१) भाव-प्रसून - (कविता) द्वारा : श्री जैन श्वेताम्बर सकलसंघ, भरतपुर ।

(२) यह **भाव प्रसून** - (कविता) परम श्रद्धेया पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. के सम्मान में पढ़ी गई ।

श्री – राजेन्द्र-वाटिका में खिला एक पुष्प
म – हक उठा सौरभ जिसका चहुँ दिशि में
हा – य मुरझा गया जो धाणसा की माटी में
प्र – भावित था जिनके जीवनादर्शों से संघ
भा – ग्यशालिनी हैं द्वय चरण किंकर '**प्रियसु**'
श्री – महाप्रभा ममतामयी दादीमाँ का
जी – वन में जिन्हें मिला स्नेह-वात्सल्य ।

वंदनीय है आपकी साधना, वंदनीय है ज्ञान-ध्यान ।
कठोर साधना से सदा, महाप्रभाश्रीजी बनी महान् ॥

पूज्याश्री की निश्रामें आयोजित कन्या शिविरों के विभिन्न दृश्य

पू. दादीजी म.सा. की निश्रा में आयोजित धार्मिक कन्या शिविर उद्घाटन वेला पर प्रार्थना में लीन बालिकाएँ, जालोर (राज.)

जालोर कन्या शिविर समापन की वेला पर पूज्यादादीजी म.सा. की शुभ निश्रा में भाषण देती हुई रुचिका धारीवाल, पाली

पूज्या श्री की निश्रा में शिविर समापन की वेला में पुरस्कार वितरित करते हुए, आहोर निवासी श्रीमान् शाह छगनराजजी मांडोत, राणी स्टेशन

पूज्याश्री की निश्रा में आयोजित पाथेड़ी शिविर समापन की वेला में पुरस्कार वितरित करते हुए, श्रीमान् शाह सुमेरमलजी शाहजी
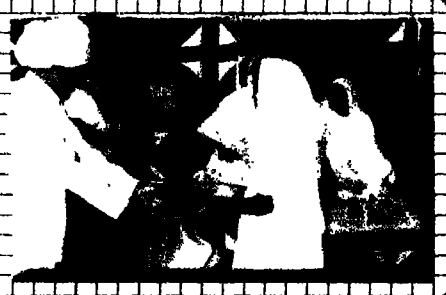
पूज्या दादीजी म.सा. से वासक्षेप प्राप्त करते हुए परम गुरुभक्त श्रीमान् ज्ञानचंदजी कर्णावट एवं कपिलजी कर्णावट मदनगंज, जि. अजमेर

९. अ.भा. श्री राजेन्द्र-जयन्त जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर प्रारंभ-परिचय

भारतीय समाज में नारी की दशा वर्तमान में सन्तोषप्रद नहीं है, जबकि अतीतकाल में नारी को समाज में बहुत ही उच्च स्थान प्राप्त था। उसे समाज में उचित सम्मान एवं स्थान मिलता था। वर्तमान में इस स्थिति का मुख्य कारण बालिकाओं में सम्यग्ज्ञान-सम्यक् शिक्षा का अभाव है। जिससे उनमें अच्छे संस्कारों की कमी पाई जाती है।

एक ओर उन्हें घर में माता-पिता के द्वारा सुसंस्कारों से सिंचित नहीं किया जाता तो दूसरी ओर बाहर भी सुसंस्कारों का वातावरण नहीं मिलता। आज के टी.वी., विडियो, फैशन-व्यसन और अन्धानुकरण आदि ने संयम-सदाचार, अनुशासन एवं मान-मर्यादा आदि का समूल उन्मूलन कर दिया है।

ऐसे भीषणतम वातावरण में बालिकाओं को सुसंस्कारिणी, विनयवती, विवेकवती, संयम-सदाचारिणी और अनुशासननिष्ठ बनाने का यदि कोई उपाय है तो वह है एकमात्र आध्यात्मिक-धार्मिक कन्या शिविरों का विशाल स्तर पर आयोजन। आज धार्मिक शिविर ही एक ऐसा माध्यम है जहाँ पर बालिकाओं को संयम-सदाचार, अनुशासन व मौनादि के गहरे संस्कार मिलते हैं। यहाँ सम्यग्ज्ञान का दिव्य प्रकाश एवं आदर्श जीवन जीने की कला इत्यादि का सम्यक् बोध मिलता है। आज के इस भौतिकवादी युग में शिविर बालिकाओं के जीवन को आध्यात्मिक-नैतिक व धार्मिक मोड़ दे सकता है, उनमें सम्यग्ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित कर सकता है।

बालिकाओं में सुसंस्कारों का बीजारोपण करने हेतु प.पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) महाराज साहब ने अपनी दोनों शिष्याओं प्रिय-सुदर्शनाश्री को प्रेरित करके इस दिशा में सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर लगवाने का ठोस कदम उठाया। इतना ही नहीं, पूज्याश्री की प्रबल प्रेरणा व पावन निश्रा में विभिन्न स्थानों पर व्यापक स्तर पर इक्कीस कन्या शिविर आयोजित हुए। उनके दिवंगत होने के पश्चात् भी यह क्रम अद्यावधि अनवरत रूप से उनकी शिष्याओं की निश्रा में जारी है। अबतक कुल पच्चीस शिविर आयोजित हो चुके हैं, जिनकी विवरण सूची आगे दी गई हैं।

सम्यग्ज्ञान का रसामृत पान करानेवाले इन कन्या शिविरों के आयोजन करने की पूर्ति हेतु श्रुतज्ञानप्रेमी उदार मनस्वी पुण्यशाली आत्माएँ अटूट श्रद्धा के साथ तन-मन-धन से इस पुनीत ज्ञान-यज्ञ के शुभकार्य में समय-समय पर सहभागी-सहयोगी बनीं। आज भी तन-मन-धन से पूर्ण सहयोग देने पूर्वक सम्यग्ज्ञानप्रेमी अपनी बालिकाओं को शिविर में भेजकर शिविर को उदार मन से सुंदर सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

अखिल भारतीय श्री राजेन्द्र-जयन्त जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर क्यों ? कैसे ?

जन्म से जैन, किंतु जैनधर्म-जैनदर्शन व जैन आचार से, अनभिज्ञ अथवा अल्प परिचयवाले विद्यालय-महाविद्यालय की युवतियाँ, कन्याएँ धार्मिक-आध्यात्मिक जीवन में उचित मार्गदर्शन, सही दिशाबोध एवं आत्म-बोध पा सकें, उनका पूरा जीवन शांतिमय, सुखमय व आध्यात्मिकता से सुगंधमय बन सके। इसलिए **"अ.भा. श्री राजेन्द्र-जयन्त जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर" का शुभारम्भ, विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरि दादा गुरु-जन्मभूमि भरतपुर, सन् 1987 में दीपावली अवकाश में प. पूज्यपाद राष्ट्रसंत श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराज साहब की शुभाज्ञानुवर्तिनी प.पूज्या सरलस्वभाविनी साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी महाराज साहब ने करवाया, जिसका संपूर्ण लाभ आहोर निवासी सम्यग्ज्ञानप्रेमी दानवीर उदारमना श्रेष्ठी श्रीमान् शाह छगनराजजी रायचंदजी माण्डोत ने लिया था।**

अवकाश के दिनों में ग्यारह से पन्द्रह दिन तक अनुकूल स्थान पर धार्मिक कन्या शिविर आयोजित करने की योजना होती है। शिविरार्थिनी बहनों की शिविरकाल में मैत्रीभाव और साधर्मिक भक्ति से देखदेख की जाती है।

कन्या शिविर का प्रमुख उद्देश्य

इन सम्यग्ज्ञान कन्या शिक्षण शिविरों के अन्तर्गत जैनधर्म का सरल परिचय, सूत्रार्थज्ञान, जैन सामान्यज्ञान प्रश्नोत्तरी, जैनाचार, श्रावकाचार, श्रमणाचार प्रश्नोत्तरी, जैन तत्त्वज्ञान, जैन कर्मविज्ञान, जैन ऐतिहासिक कथाएँ, गुरुवंदन, सामायिक, चैत्यवंदन, देववंदन, दो प्रतिक्रमण, पंचप्रतिक्रमण मूलसूत्र शुद्ध, कण्ठस्थ एवं विधि-ज्ञान, दैनिक जीवन में उपयोग में आनेवाली आवश्यक क्रियाओं का रहस्य तथा नैतिक व व्यावहारिक जीवन जीने की यथाशक्य शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त स्तुति, चैत्यवंदन, स्तवन-सज्झाय, पच्चक्खाण सूत्र आदि कण्ठस्थ करवाए जाते हैं। प्रतिदिन नवकारसी, चौविहार / तिविहार / दुविहार, सामायिक, प्रतिक्रमण, स्नात्र-पूजादि कराया जाता है। धीरे-धीरे इन सभी का ज्ञान कराना ही इन कन्या शिविरों का मुख्य उद्देश्य है।

आचार रहित जीवन, पानी और आटे के लड्डू के समान है। अतः आचार, विचार, श्रद्धा और शुद्धि का प्रयास किया जाता है। इस शिविर में युवतियों / कन्याओं को विनय-विवेक, संयमी-सदाचारी, अनुशासनयुक्त, मौन साधना और फैशन-व्यसन व अंधानुकरणमुक्त जीवन जीने की कला सिखायी जाती है। शिविर द्वारा कन्याओं में विवेकपूर्वक बड़े-छोटे की मान-मर्यादा का ज्ञान कराया जाता है। युवतियों और कन्याओं में आत्म जागृति एवं विवेक जागृति हेतु विभिन्न स्थानों पर अनेक शिविर आयोजित किए गए और आज भी किए जा रहे हैं। आज के इस भौतिक युग के चकाचौंध में पढ़ी-लिखी युवतियों में नैतिक-आध्यात्मिक उत्थान के

लिए आज इन कन्या शिविरों की अत्यधिक आवश्यकता है।

आज राष्ट्र ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में भौतिकवाद की भयंकर आंधी चल रही है। अत:मानवजीवन आध्यात्मिक दृष्टि से अंधकारमय होता जा रहा है। स्वच्छंदता की उष्णता मानवीय जीवन को संतप्त बना रही है। भोग-तृष्णा मानव को आकुल-व्याकुल बना रही है। ऐसी भौतिकवाद की पढ़ाई के रंग में रंगी हुई युवतियों / नन्ही-मुन्नी बालिकाओं में इसप्रकार की आध्यात्मिक चेतना की जागृति लाने के लिए भी सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर लगाना अति आवश्यक है।

जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर का उद्देश्य जैनधर्म के तत्त्वों का परिचय कराना तो है ही, इसके साथ ही युवापीढ़ी में समग्रता का बोध विकसित करने, जीवन में स्वावलंबन और सेवा-भावना जागृत करते हुए उन्हें सादगीपूर्ण सात्त्विक जीवन जीने की प्रेरणा देने का भी है। कठिनाई में शौर्य एवं तनावपूर्ण परिस्थितियों में समता और संतुलन बनाये रखने की कला सिखाना भी है।

विनय-विवेक, नम्रता, संयम-सदाचार, अनुशासन, मौन, मैत्री-प्रमोद आदि नैतिक सद्गुणों का विकास कराकर सुसंस्कारिणी, विवेकवती, चरित्रनिष्ठा, माता-पितादि पूज्यजनों की आज्ञाकारिणी बनाकर आदर्श कन्याएँ तैयार करना भी है।

तत्त्वचिंतन सरस बनकर बोध जगाये और समग्रता से मैत्री व भक्ति प्रकट हो, यही इन कन्या शिविरों का प्रमुख उद्देश्य है।

शिविर काल में दैनिक अनुशासन प्रवृत्ति

प्रात: 4-00 बजे से रात्रि 10-00 बजे तक सतत ज्ञानोपासना व दर्शनोपासना आदि प्रवृत्ति।

प्रात: नित्य ध्वज-वंदन-भक्तामर-गुरुगुण इक्कीसापाठ, प्रार्थना, माला, प्रभुदर्शन-गुरुवंदन, प्रभु-पूजा-स्नात्र-पूजा, नवकारसी, सामूहिक सामायिक, प्रात:, दोपहर-सायं कक्षाएँ, भोजन करते वक्त मौन, जूठन नहीं छोड़ना, थाली धोकर पीना, रात्रिभोजन त्याग, कंदमूलादि अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग, नाखून बढ़ाने का त्याग, नेलपॉलिश, लिपिस्टिक, पाउडर आदि का त्याग, सायं आरती, सायं चउविहार / तिविहार आदि पच्चक्खाण, सायं प्रतिक्रमण, रात्रि प्रभु-भक्ति, गुरु-भक्ति आदि कार्यक्रम, अखण्ड मौन व्रत, पूर्ण अनुशासन एवं कक्षा व भोजन के समय श्वेत वस्त्र आदि शिविरकाल में शिविरार्थिनी छात्राओं की दैनिक प्रवृत्तियाँ रहती हैं।

शिविर काल में विविध प्रतियोगिताएँ

शिविरकाल में पढ़ाए गए विविध विषयों की लिखित, मौखिक एवं प्रैक्टीकल (व्यावहारिक) परीक्षा, भाषण प्रतियोगिता, सुवाच्य सुंदर-शुद्ध लेखन प्रतियोगिता, श्री भक्तामर स्तोत्र प्रतियोगिता, स्तवन-सज्झायादि प्रतियोगिता, मूलसूत्र शुद्ध व कण्ठस्थ प्रतियोगिता आदि विविध प्रतियोगिताएँ रखी जाती हैं।

शिविर काल में शिविरार्थिनी छात्राओं द्वारा गृहीत विविध नियम

अ.भा. श्री राजेन्द्र-जयन्त जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर

आराधना-पत्र नियम डायरी

प्रतिज्ञादातृ गुरुवर्य्याश्री **प.पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू. दादाजी) म.सा.**

शिविरार्थिनी छात्रा का नाम ....

नगर .... उम्र .... नियम लेने की तारीख ....

क्र.सं.	गृहीत नियमावली	काल-मर्यादा महिना / वर्ष	नियम में छूट
1	प्रतिदिन बड़ों को चरण स्पर्श / प्रणाम करना		
2	प्रतिदिन प्रभु-दर्शन		
3	प्रतिदिन प्रभु-पूजन		
4	प्रतिदिन प्रातः नवकारसी		
5	प्रतिदिन कन्दमूल त्याग		
6	पाँच तिथि हरी सब्जी त्याग		
7	प्रतिदिन माला 1-2-3		
8	रोज सायंकालीन पच्चक्खाण चउ./तिवि./दुविहार		
9	प्रतिदिन एक सामायिक		
10	प्रतिदिन सोते-उठते नवकार स्मरण 3/7/13		
11	प्रतिदिन मौन एक घण्टा / आधा घण्टा		
12	कन्या शिविर में उपस्थिति 1/2/3/4/5		
13	प्रतिदिन टी.वी. सिनेमा त्याग		
14	नाखून बढ़ाने का त्याग		
15	टूथपेस्ट, कोलगेट का त्याग		
16	लिपिस्टिक, नेलपॉलिश, क्रीम-पाउडर का त्याग		
17	हमेशा जूठन नहीं छोड़ना		
18	रोजाना थाली धोकर पीना		
19	भोजन करते वक्त मौन धारण		
20	प्रतिदिन एक घण्टा / आधा घण्टा स्वाध्याय करना		
21	प्रतिदिन रात्रि भोजन त्याग		
22	रोज आधी /1/2/5 नई गाथाएँ याद करना		

लिए हुए कुल नियमों की संख्या ....

नियम ग्राहिका छात्रा के हस्ताक्षर

....

प.पूज्या साध्वीजीश्री के हस्ताक्षर

महाप्रभाश्री

अ.भा. श्रीराजेन्द्र-जयन्त जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर की अपनी अनूठी विशेषताएँ

1 हवादार स्थान के बीच / श्री प्रभु की छत्रछाया में ज्ञानयज्ञ का प्रारंभ।
2 सम्यग्ज्ञान-दर्शन एवं चारित्र का त्रिवेणी संगम अर्थात् रत्नत्रयी की सुंदरतम आराधना।
3 कन्याओं को अपने विकास के लिए नया मार्गदर्शन।
4 आंतरिक मूल्यांकन पर विशेष जोर एवं प्रशस्ति पत्र।
5 कक्षा व भोजन के समय श्वेत ड्रेस (सफेद यूनिफार्म) परिधान अनिवार्य।
6 बड़ी छात्राओं के लिए कक्षा व भोजन के समय सिर ढंकना अनिवार्य।
7 छात्राओं के लिए शिविरकाल तक नाखून बढ़ाने का त्याग अनिवार्य।
8 प्रत्येक छात्रा के लिए अखण्ड मौन-व्रत / द्वितीय मौन-व्रत रखना अनिवार्य।
9 प्रतिदिन लय व संगीत के साथ सामूहिक रूप से स्नात्र-पूजा का आयोजन।
10 सायं प्रतिक्रमण / सामायिक अनिवार्य।
11 दोपहर सामूहिक सामायिक अनिवार्य।
12 मूलसूत्र कंठस्थ प्रतिक्रमण / स्तवन-सज्झायादि प्रतियोगिता का आयोजन।
13 कन्याओं में वक्तव्य कला की प्रतियोगिता।
14 आदर्श जीवन निर्माण का सुअवसर।
15 भौतिकता से उठाकर आध्यात्मिकता की ओर ले जाने वाला सही केन्द्र।
16 युवा पीढ़ी की कन्याओं का नैतिक-धार्मिक-आध्यात्मिक जागरण।
17 साधर्मिक-भक्ति का अपूर्व अवसर।
18 जैनाचार / तत्त्वज्ञान-कर्मवाद आदि की लिखित परीक्षा।
19 आकर्षक पुरस्कार / पारितोषिक और परीक्षा का प्रमाण-पत्र।
20 शिविरार्थिनी छात्रा-अनुशासन लक्की ड्रा पुरस्कार (11 लक्की ड्रो)
21 ग्रुप लीडर्स बहनों का बहुमान-सम्मान-पुरस्कार।
22 "सर्वश्रेष्ठ" पुरस्कार।
23 18 रैंकिंग पुरस्कार एवं प्रथम-द्वितीय-तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण प्रत्येक छात्रा को पुरस्कार।
24 5 कन्या शिविर में उपस्थिति पुरस्कार।
25 पूर्ण अनुशासन-अखण्ड मौन-व्रत साधना / द्वितीय मौन-व्रत साधना पुरस्कार।
26 भाषण प्रतियोगिता पुरस्कार।
27 साधर्मिक शिविरार्थिनी बहनों का परस्पर परिचय और प्रेमभाव।
28 शिविरकाल में प्रतिदिन शिविरार्थिनी छात्रा द्वारा कम-से-कम एक आयंबिल की तपश्चर्या और प्रभावना।
29 कठोर अनुशासन, मौन-व्रत एवं विनय-विवेक, संयम-सदाचार पालन करने की सुंदर शिक्षा एवं प्रेरणा।
30 कन्या शिविर में प्रत्येक छात्रा के लिए शिविरकाल तक मंदिर के संपूर्ण उपकरण (पूजन की साड़ी, मुखकोष, डिब्बी, कटोरी-प्लेट आदि), सामायिक के संपूर्ण उपकरण (श्वेत ऊनी आसन, मुहपत्ति, चरवला, श्वेत सूत की मालादि) एवं ज्ञान के संपूर्ण उपकरण (प्रतिक्रमण-बुक, नोट-बुक, बालपेन, दस्तरी, स्लेट-पैन, धार्मिक पुस्तकें आदि) तथा श्वेत साड़ी, श्वेत रिबिन, बेग, बैज, दवाईयाँ, बिस्तर, क्लीप-रस्सी इत्यादि तथा आवास व भोजन एवं नाश्ता आदि की शिविर आयोजक समिति द्वारा हरतरह की सुंदरतम व्यवस्था निःशुल्क की जाती है।

अ.भा.श्री राजेन्द्र जयन्त जैन सम्यग्ज्ञान कन्या शिविर आयोज्य कन्या शिविरों का विवरण

किस नगर/ग्राम/तीर्थ में, कितने दिन का, किस सन् में और कितनी छात्राओं ने भाग लिया ? इसका विवरण निम्न प्रकार से है –

विवरण सूची

क्रम	कन्या-शिविर-स्थल नगर / ग्राम / तीर्थ	शिविर कितने दिन का	ईस्वी सन् 1987 चातुर्मास से कन्या शिविर प्रारम्भ	कुल छात्रा	कन्या-शिविर स्थल	प्रेरणा एवं पावन निश्रा
1	भरतपुर (राज.) चातुर्मास	09 दिन	24.10.87 से 1.11.87 तक	63	जैन धर्मशाला	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
2	भरतपुर (राज.) चातुर्मास	10 दिन	11.11.88 से 20.11.88 तक	65	जैन धर्मशाला	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
3	जालोर (राज.) ग्रीष्मकालीन	10 दिन	5.6.89 से 14.6.89 तक	90	तीन थुई धर्मशाला	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
4	जालोर (राज.) ग्रीष्मकालीन (महिला शिविर)	10 दिन	22.7.89 से 31.7.89 तक	50	तीन थुई धर्मशाला	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
5	गोविंदपुर तीर्थ (राज.) ग्रीष्मकालीन	11 दिन	23.5.90 से 2.6.90 तक	95	जैन धर्मशाला	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
6	रानी स्टेशन (राज.) ग्रीष्मकालीन	11 दिन	19.6.91 से 29.6.91 तक	85	राजेन्द्र दादावाडी	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
7	जालोर (राज.) चातुर्मास	11 दिन	23.10.91 से 2.11.91 तक	100	ओस. न्याति नोरा	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
8	जालोर (राज.) ग्रीष्मकालीन	13 दिन	25.5.92 से 6.6.92 तक	100	ओस. न्याति नोरा	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
9	भीनमाल (राज.) चातुर्मास	11 दिन	12.10.92 से 22.10.92 तक	175	महावीरजी मंदिर	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
10	उम्मेदपुर तीर्थ (राज.) ग्रीष्मकालीन	13 दिन	16.5.93 से 28.5.93 तक	100	जैन छात्रावास	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
11	जालोर (राज.) चातुर्मास	11 दिन	15.11.93 से 25.11.93 तक	150	नंदीश्वर द्वीप	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
12	पाँथेड़ी (राज.) शीतकालीन	13 दिन	28.1.94 से 9.2.94 तक	115	राजेन्द्र भवन	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.

13	भीनमाल (राज.) ग्रीष्मकालीन	13 दिन	5.6.94 से 17.6.94 तक	230	शंखेश्वरजी मंदिर	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
14	सूरा (राज.) चातुर्मास	11 दिन	5.11.94 से 15.11.94 तक	225	राजेन्द्र भवन	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
15	आकोली (राज.) ग्रीष्मकालीन	13 दिन	16.5.95 से 28.5.95 तक	150	राजेन्द्र भवन	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
16	सियाणा (राज.) चातुर्मास	12 दिन	26.10.95 से 6.11.95 तक	225	ओसवालों की धर्मशाला	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
17	सूरा (राज.) ग्रीष्मकालीन	13 दिन	17.5.96 से 29.5.96 तक	250	राजेन्द्र भवन	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
18	भीनमाल (राज.) ग्रीष्मकालीन	13 दिन	5.6.97 से 17.6.97 तक	250	गोड़ीजी मंदिर	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
19	भीनमाल (राज.) ग्रीष्मकालीन (बाल-तरुण शिविर)	13 दिन	25.6.97 से 6.7.97 तक	70	महावीरजी मंदिर	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
20	भीनमाल (राज.) चातुर्मास (महिला शिविर)	13 दिन	27.7.97 से 8.8.97 तक	60	महावीरजी मंदिर	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
21	भीनमाल (राज.) ग्रीष्मकालीन	13 दिन	2.6.98 से 14.6.98 तक	250	महावीरजी मंदिर	श्री महाप्रभाश्रीजी. म.
22	धाणसा (राज.) ग्रीष्मकालीन	15 दिन	6.5.01 से 20.5.01 तक	160	न्याति नोहरा	डॉ. प्रियसुदर्शनाश्री
23	भरतपुर (राज.) ग्रीष्मकालीन	15 दिन	12.5.02 से 26.5.02 तक	95	श्री राजेन्द्रसूरि कीर्तिमंदिर तीर्थ	डॉ. प्रियसुदर्शनाश्री
24	महुवा (राज.) शीतकालीन	10 दिन	22.12.02 से 31.12.02 तक	85	श्री वर्धमान जैन धर्मशाला	डॉ. प्रियसुदर्शनाश्री
25	भरतपुर (राज.) ग्रीष्मकालीन	13 दिन	8.5.03 से 20.5.03 तक	108	श्री राजेन्द्रसूरि कीर्तिमंदिर तीर्थ	डॉ. प्रियसुदर्शनाश्री

10. चातुर्मास-सूची

धन्य वह ग्राम, नगर आवास ।
जहाँ पूज्याश्री ने, किये चातुर्मास ॥

मालव-गौरव साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी (पू.दादीजी) म. सा. की चातुर्मास-सूची

क्रम सं.	ईस्वीसन्	विक्रमसंवत्	क्षेत्र	
1	1951	2008	जावरा (म.प्र.)	प.पू. गुरुवर्याश्री कमलश्रीजी म.सा. एवं प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
2	1952	2009	अलीराजपुर (म.प्र.)	प.पू. गुरुवर्याश्री कमलश्रीजी म.सा. एवं प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
3	1953	2010	कुक्षी (म.प्र.)	प.पू. गुरुवर्याश्री कमलश्रीजी म.सा. एवं प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
4	1954	2011	राजगढ़ (म.प्र.)	प.पू. गुरुवर्याश्री कमलश्रीजी म.सा. एवं प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
5	1955	2012	राजगढ़-रिंगनोद (म.प्र.)	प.पू. गुरुवर्याश्री कमलश्रीजी म.सा. एवं प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
6	1956	2013	मन्दसौर (म.प्र.)	प.पू. गुरुवर्याश्री कमलश्रीजी म.सा. एवं प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
7	1957	2014	रतलाम (म.प्र.)	प.पू. गुरुवर्याश्री कमलश्रीजी म.सा. एवं प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
8	1958	2015	खाचरोद (म.प्र.)	प.पू. गुरुवर्याश्री कमलश्रीजी म.सा. एवं प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ

9	1959	2016	आहोर (राज.)	प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
10	1960	2017	आहोर (राज.)	प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
11	1961	2018	थराद (उ.गुज.)	प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
[illegible]	[illegible]	2019	थराद (उ.गुज.)	प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
13	1963	2020	थराद (उ.गुज.)	प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
14	1964	2021	आहोर (राज.)	प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
15	1965	2022	भीनमाल (राज.)	स्वतंत्र
16	1966	2023	थराद (उ.गुज.)	स्वतंत्र
17	1967	2024	राधनपुर (गुज.)	स्वतंत्र
18	1968	2025	राधनपुर (गुज.)	स्वतंत्र
19	1969	2026	आहोर (राज.)	प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
20	1970	2027	पारा (म.प्र.)	स्वतंत्र
21	1971	2028	मन्दसौर (म.प्र.)	स्वतंत्र
22	1972	2029	मन्दसौर (म.प्र.)	स्वतंत्र
23	1973	2030	मन्दसौर (म.प्र.)	स्वतंत्र
24	1974	2031	अमलावद (म.प्र.)	स्वतंत्र
25	1975	2032	उज्जैन (म.प्र.)	स्वतंत्र
26	1976	2033	महिदपुर सीटी (म.प्र.)	स्वतंत्र
27	1977	2034	आलोट (म.प्र.)	स्वतंत्र
28	1978	2035	नागदा जंक्शन (म.प्र.)	स्वतंत्र
29	1979	2036	कुक्षी (म.प्र.)	स्वतंत्र
30	1980	2037	भोपाल (म.प्र.)	स्वतंत्र
31	1981	2038	आहोर (राज.)	प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
32	1982	2039	आहोर (राज.)	प.पू. गुरुवर्याश्री हेतश्रीजी म.सा. के साथ
33	1983	2040	सियाणा (राज.)	स्वतंत्र
34	1984	2041	थराद (उ.गुज.)	स्वतंत्र
35	1985	2042	किशनगढ़ (राज.)	स्वतंत्र
36	1986	2043	दुंदाड़ा (राज.)	स्वतंत्र
37	1987	2044	भरतपुर (राज.)	स्वतंत्र
38	1988	2045	भरतपुर (राज.)	स्वतंत्र

39	1989	2046	खिमेल (राज.)	स्वतंत्र
40	1990	2047	जोधपुर सीटी (राज.)	स्वतंत्र
41	1991	2048	जालोर (राज.)	स्वतंत्र
42	1992	2049	भीनमाल (राज.)	स्वतंत्र
43	1993	2050	जालोर (राज.)	स्वतंत्र
44	1994	2051	सूरा (राज.)	स्वतंत्र
45	1995	2052	सियाणा (राज.)	स्वतंत्र
46	1996	2053	भीनमाल (राज.)	स्वतंत्र
47	1997	2054	भीनमाल (राज.)	स्वतंत्र
48	1998	2055	भीनमाल (राज.)	स्वतंत्र
49	1999	2056	धाणसा (राज.)	स्वतंत्र

चातुर्मास यादि

प्रान्त	संख्या
मध्यप्रदेश -	19
पूर्वांचल एवं पश्चिमांचल राजस्थान -	23
गुजरात -	7
कुल	49 चातुर्मास

श्री — श्री वीर के पथ पर चलनेवाली थीं आप
म — मनोबली दृढ़ संकल्पी थीं आप
हा — हार नहीं खानेवाली थीं जीवन में आप
प्र — प्रतिभा थीं पुरूषार्थ की आप
भा — भाव-विभोर होती दु:खी को देख आप
श्री — श्रीफल समान थीं आप
जी — जीवन की सजग प्रहरी थीं आप।

वे चली गईं, पर पीछे छोड़ गई हैं अपने निर्मल, गंभीर, उदात्त एवं स्पष्ट विचारों से सुशोभित पथ, जिस पर चलकर हम सदैव दृष्टि, दिशा एवं गति प्राप्त करती रहेंगी, ऐसा हमारा विश्वास है।